हारीतसंहिता

HĀRȚIA

श्रीः

हारीतसंहिता.

श्रीमदात्रेयमहर्षिहारीतमुनिसंवादरूपा।

(वैद्यकग्रन्थः)

वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनु-
वादितया भाषाव्याख्यया समन्विता।

सेयं

खानदेशीयरावेरग्रामनिवासिपरशुरामभट्टतनय-
गोविन्दशास्त्रिणा सम्यक्परिशोधिता।

मुंबय्यां

श्रीकृष्णदासात्मजेन
गङ्गाविष्णुना
"गणपत कृष्णाजी" मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशिता।

शके १८१५ संवत् १९५०

भावप्रकाश.

सबको जाहिर करनेमे आता है कि हमारे यहां भाषा टीकासहित भावप्रकाश छपरहा है ऐसा भावप्रकाश आज तक कहीं नहीं छपा. न मानो तो आध आनेकी टिकट भेजकर नमूना तो देखिये.

ए ग्रंथ नवीन छपके तयार है.

पथ्यापथ्य सटीक	...	...	किं० १२ आने भाडा २ आने है.
चिकित्साचक्रवर्त्ती	...	...	किं० १ रुपा भाडा ३ आने है.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास

लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापखाना कल्याण

मुंबई.

प्रस्तावना.

सर्व महाशय विद्वज्जनोंकूं विदित होकि, इस अनाद्यनंत संसारमें प्रथम सुख निरोगी काया कहाती है. वह शारीरिक आरोग्यता जिस साधनसें कीजाती है, उसको वैद्यकशास्त्र कहते हैं. इसीकूंही आयुर्वेदभी कहते हैं. यह आयुर्वेद ऋग्वेदका उपवेद है. प्रमाण—"**ऋग्वेदादायुर्वेदं,–यजुर्वेदाद्धनुर्वेदम्** " इत्यादिक हैं इस आयुर्वेदके ऊपर अनेक ऋषिओंनें स्वस्वअनुभवकेसाथ पृथक्पृथक् वैद्यकशास्त्रसंहिता निर्माण करी हैं.–वे वैद्यकशास्त्र की अन्य अन्य संहिता बडी विस्तारसें युक्त हैं. परंतु श्रीमान् आत्रेयमहर्षि और हारीतमुनि इन दोनों गुरु शिष्योंके संवादसें **हारीतसंहितानामक** संहिताके दो ग्रंथ निर्माण किये गयेहै. यह दो ग्रंथ एक **बृहद्धारीतसंहिता** और एक **लघुहारीतसंहिता** इस नामसें विख्यात है. तहां **बृहद्धारीतसंहिता** ग्रंथ बहोत विस्तीर्ण होनेंसे अल्पप्रज्ञ आधुनिक अल्पायुषी लोगोंके उपयोगमें उतना नहीं आसक्ता है. इसवास्ते उस **बृहद्धारीतसंहिता** ग्रंथका साररूप यह **लघुहारीतसंहिता** ग्रंथ सर्व आधुनिक वैद्यलोगोंके उपयोगमें आवेगा. ऐसा समझकर हमनें इस ग्रंथको वेरीनिवासी पंडित **रविदत्तशास्त्रीजीके** द्वारा हिंदीभाषानुवाद बनवायकर और शास्त्रीद्वारा अत्यंत शुद्धकरवायकर छपवायके प्रसिद्ध किया है.––यह **हारीतसंहिता ग्रंथ** बहोतही उपकारक और स्वल्पहोकरभी सर्व वैद्योंको सब तरहके औषधज्ञान और रोगोंकी चिकित्सा करनेंमें अप्रतिम साह्यकारी होगा; इस्में कुछ संदेह नहीं. इस ग्रंथकी भाषा ऋषिभाषित होनेंसें कहां कहां अशुद्धसे शब्दप्रयोग दीखते हैं परंतु वे प्रयोग आर्ष समझकर वैसेके वैसेही रखदिये गये हैं. कारण वे प्रयोग शुद्धकरनेंमें ऋषिका तात्पर्य समझता नहीं है. इसवास्तै जैसेकी वैसेही जहांकहांके प्रयोग रखदिये गये है. और अन्यत्र अच्छी रीतिसें शुद्ध किया- गया है.–अस्तु–वैद्य महाशय लोग इस अपूर्व ग्रंथको अवश्य संग्रहमें रखकर रोगनिवारण द्वारा निर्मल कीर्तिको प्राप्त करेंगे.

आपका.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास–" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापखाना.

कल्याण (मुंबई.)

HARITA

हारीतसंहिताविषयानुक्रमणिका॥

॥ श्रीः ॥

अथ हारीतसंहिता ।

भाषाटीकासमेता ।

प्रथमोऽध्यायः १

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीमद्देवीपदद्वंद्वं प्रत्यूहव्यूहनाशनम् ॥
तन्नमामि नतिर्य्यस्य वितरत्युत्तमां मतिम्॥ १ ॥शिवसहायपुत्रेण
रविदत्तेन धीमता॥हारीतसंहिताभाषा–टीका नूनं विरच्यते॥२॥

ग्रंथकारमंगलाचरण.

नत्वा शिवं परमतत्त्वकलाधिरूढं ज्ञानामृतैकचटुलं परमात्मरूपम् ॥
रागादिरोगशमनं दमनं स्मरस्य शश्वत्क्षपाधिपधरं त्रिगुणात्मरूपम् ॥१॥

परमतत्व कलापै आरूढहुये और ज्ञानरूपी अमृतसे सुंदर और परमात्मरूपको धारण कियेहुये और रागआदि रोगोंको शांत करनेवाले और कामदेवको दग्ध करनेवाले और निरंतर चंद्रमाको मस्तकमें धारन करनेवाले और त्रिगुणात्मरूपवाले ऐसे महादेवजीको प्रणाम करकैं यह हारीतसंहितानामक ग्रंथ करताहूं ॥ १ ॥

आत्रेयहारीतसंवाद

हिमवदुत्तरे कूले सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ शान्तमृगगणाकीर्णे नानापादप शोभिते ॥ २ ॥ तत्रस्थं तपसा युक्तं तरुणादित्यतेजसम् ॥ शुद्धस्फटिकवच्छुभ्रं भूतिभूषितविग्रहम् ॥ ३ ॥ जटाजूटाटवीमूले उषितं शुभ्रकुण्डलम् ॥ आत्रेयं बहुशिष्यैस्तु राजितं तपसान्वितम् ॥ ४ ॥ पप्रच्छ शिष्यो हारीतः सर्वज्ञानमिदं महत् ॥ ५ ॥

सिद्ध और गंधर्वोंसे सेवित किया और शांतस्वरूप मृगोंके समूहसे व्याप्त हुआ और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभितहुआ ऐसे हिमालयपर्वतके उत्तरकूलपै ॥ २ ॥ तरुण

सूर्यका तेजके समान तेजवाले और तपको करतेहुये और शुद्धहुये गिलोरी पत्थरके समान श्वेतरूपवाले और भूतिसे भूषितहुआ शरीरवाले और पूर्वोक्त जगहमें स्थित ॥ ३ ॥ और जटाजूटरूपी वनके मूलमें वसतेहुये और श्वेतकुंडलोंको धारणकिये और बहुतसे शिष्योंसे प्रकाशितहुये और तपस्वी ऐसे आत्रेयजी महाराजको ॥ ४ ॥ हारीत नामवाला शिष्य इस संपूर्ण महाज्ञानको पूछताभया ॥ ५ ॥

हारीत उवाच ॥ भवन् ! गुणगणाधार ! आयुर्वेदविदां वर ! ॥ विनयादविनीतोऽहं पृच्छामि मुनिपुङ्गव ! ॥ ६ ॥ कथं रोगसमुत्पत्तिरुत्पन्नो ज्ञायते कथम् ॥ उपचारः प्रचारश्च कथं वा सिद्धिमिच्छति ॥ ७ ॥ एतत्सम्यक् परिज्ञानं कथयस्व महामुने ! ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यो हारीतेन महात्मना ॥ प्रत्युवाच ऋषिः पुत्रं प्रहस्योत्फुल्ललोचनः ॥ ८ ॥

हारीत कहने लगा—हेभगवन् ! हेगुणोंके समूहके आधार ! हेआयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हेमुनियोंमें उत्तम ! अविनीत मैं विनयसे पूछताहूं ॥ ६ ॥ कैसे रोगकी उत्पत्ति होतीहै ? और उत्पन्न हुआ रोग कैसे जाना जाता है ? और रोगकी चिकित्सा और पथ्य कैसे होताहै ? और वही रोग कैसे सिद्धिको प्राप्त होताहै ? ॥७॥ हेमहामुने ! इस परिज्ञानको अच्छीतरह कहो ऐसे महात्मा हारीतसे पूछेहुये महाचार्य आत्रेयजी हँसकै और खिलेहुये नेत्रोंवाले होकै मुनि हारीतसे कहनेलगे ॥ ८ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र ! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! ॥ चिकित्साशास्त्रकुशल ! वैद्यविद्याविचक्षण ॥ ९ ॥ आयुर्वेदमपारन्तु लोकानां लक्षसंख्यया ॥ कथं तस्य परिज्ञानं कालेनाल्पेन पुत्रक ! ॥१०॥

आत्रेयजी कहतेहै—हेपुत्र हेमहाप्राज्ञ हेसर्वशास्त्रोंमें कुशल हेचिकित्साशास्त्रमें कुशल हेवैद्योंकी विद्याके जाननेवाले ॥ ९ ॥ हेपुत्र ! आयुर्वेद अपार है और तिसके लक्षश्लोक है तिसका जानना मनुष्योंको थोडेकालकरकै कैसे होसक्ताहै अर्थात् मुशकिलहैं ॥ १० ॥

अल्पायुषोऽल्पवक्तारः स्वल्पशास्त्रविशारदाः ॥ अल्पावधारणे शक्ताः कलौ जाता इमे नराः ॥ ११ ॥ अल्पः कलियुगश्चायं नरोपद्रवकारणम् ॥ कथं पुत्र ! प्रवक्ष्यामि विस्तरेण तवागमम् ॥ १२ ॥

अल्प आयुवाले और अल्प बोलनेवाले और स्वल्प अर्थात् थोडे शास्त्रको जाननेवाले और अल्प निश्चयवाले ऐसे ये मनुष्य कलियुगमें उपजेहैं ॥ ११ ॥ यह कलियुगभी अल्प-

रूप है परंतु मनुष्योंको उपद्रवोंका कारण है इसवास्ते हे पुत्र तेरेप्रति विस्तारसे वैद्यक शास्त्रको कैसे कहूं ॥ १२ ॥

यस्य श्रवणकालो यो याति चान्तश्च पुत्रक ! ॥ तस्माच्चाल्पतरेणाऽपि वक्ष्यामि शृणु साम्प्रतम् ॥ १३ ॥ चतुर्विंशसहस्रैस्तु मयोक्ता चाद्यसंहिता ॥ तथा द्वादशसाहस्री द्वितीया संहिता मता ॥ १४ ॥ तृतीया षट्सहस्रैस्तु चतुर्थी त्रिभिरेव च ॥ १५ ॥ पञ्चमी दिक्पञ्चशतैः प्रोक्ताः पञ्चात्र संहिताः ॥ तस्माच्चाल्पतरेणापि वक्ष्यामि श्टणु पुत्रक! ॥ १६ ॥

हे पुत्र ! जिसको जो सुननेका समय है वह अंतको प्राप्त हो जाताहै तिसकारणसे अति थोडे करके तेरेको अब कहताहूं सुन ॥ १३ ॥ मैंने चौवीसहजार श्लोकोंसे युक्त प्रथम संहिता कही है और तैसेही बारहहजार श्लोकोंसे संयुक्त दूसरी संहिता कही है ॥१४॥ और तैसेही छःहजार श्लोकोंसे युक्त तीसरी संहिता कही है और तीनहजार श्लोकोंसे संयुक्त चौथी संहिता कही है ॥ १५ ॥ और डेढहजार अर्थात् पंदहरसौ श्लोकोंसे संयुक्त पांचमी संहिता कही है. ऐसे पांच संहिता मैंनें कहीहैं तिसकारणसे हे पुत्र ! मैं संक्षेपसे कहूंगा तूं सुन ॥ १६ ॥

येन विज्ञानमात्रेण गदवेदविदो भवेत् ॥ किमत्र बहुनोक्तेन चाल्पसारे विशारद ! ॥ १७ ॥ येन धर्मार्थसौख्यं च तद्धि कर्म समाचरेत् ॥ येन संजायते श्रेयो येन कीर्तिर्महत्सुखम् ॥ १८ ॥ तत्कर्म नितरां साध्यं जनानन्दविधायकम् ॥ १९ ॥

जिसके जानने मात्रसे आयुर्वेदको जाननेवाला मनुष्य हो जाताहै. हे विशारद !अल्पसारमें बहुत कहनेसे यहां क्या है ॥ १७ ॥ जिस कर्म्मसे धर्म–अर्थ–सुख–इन्होंकी प्राप्ति होवै तिसकर्म्मका आचरण करना और जिस कर्म्मसे कल्याण–कीर्ति–अतिसुख–ये होवैं ॥ १८ ॥ तिस कर्म्मको निरंतर करै यही कर्म्म मनुष्योंको आनंदका देनेवाला है ॥ १९ ॥

एकं शास्त्रं वैद्यमध्यात्मकं वा सौख्यं चैकं यत्सुखं वा तपो वा॥वन्द्यश्चैको भूपतिर्वा यतिर्वा एकं कर्म श्रेयसं वा यशो वा ॥२०॥ बहुतरमुपचारात् सारमाधारलोके जननमतिसुखानां वर्द्धनं श्रेयसां वा ॥ विगतकलुषभावा चोज्ज्वला कीर्त्तिमूर्त्तिर्न खलु कुटिलतास्याः श्रूयते लोकवृन्दैः ॥ २१ ॥

एकही शास्त्र ठीक है, वैद्यक अथवा वेदांत—और सुखभी एकही ठीक है, भोग अथवा तप—वंदनाके योग्यभी एकही ठीक है, राजा अथवा संन्यासी—कर्मभी एकही ठीक है, कल्याण अथवा यश ॥ २० ॥ इस संसारमें चिकित्सा करनेसे बहुतसा सार प्राप्त होता है, वही सार अतिसुखोंको उपजाता है और कल्याणको बढाता है, और तिसीसे कलुष भावसे वर्जित और प्रकाशित ऐसी कीर्ति उत्पन्न होती है और इस कर्मकरनेवालेकी कीर्तिकी कुटिलता मनुष्योंके समूहोंनें कहींभी नहीं सुनीये है ॥ २१ ॥

आयुर्वेदमिदं सम्यग् न देयं यस्य कस्यचित्॥२२॥ नाभक्तायाप्यशान्ताय न मूर्खाय न चाधमे॥शान्ते देयं न देयं स्यात् सर्वथा नाऽधमेऽधने॥२३॥

अच्छी तरहसे यह आयुर्वेद ऐसे तैसे मनुष्यको नहींदेना ॥२२॥और जो भक्त नहींहो और जो क्रोधीहो और जो मूर्खहो और जो नीचहो तिसकेलिये कभीभी नहीं देना शांतिवाले पुरुषको देना नीच और धनसे रहितको आयुर्वेद नहीं देना ॥ २३ ॥

धर्मिष्ठो कुहनीविवर्जितमनाः शान्तः शुचिः शुद्धधीर्धीरोऽभीरुर्विवेकसारहृदयो विद्याविलासोज्ज्वलः ॥ प्राज्ञो रोगगणप्रचारनिपुणोऽलुब्धः सदा तोषधृगित्थं सर्वगुणाकरो नृपजनैः पूज्यः सदा रोगवित् ॥ २४ ॥

अत्यंत धर्मको माननेवालाहो और कपटसे वर्जित मनवालाहो और शांतहो पवित्रहो शुद्ध बुद्धिवालाहो धीरहो डरनेवाला नहींहो और विवेकके सारसे संयुक्त हृदयवालाहो और विद्याके आनंदसे प्रकाशितहो पंडितहो रोगोंके समूहके प्रचारमें निपुणहो लोभी नहींहो और सबकालमें संतोषको धारनेवालाहो ऐसे सबगुणोंका खजानारूपी वैद्यको राजालोगोंनें सब कालमें पूजना चाहिये ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा यथा मृगपतिं गजयूथनाथः संशुष्कमानमदबिन्दुकपोलधारः ॥ त्यक्त्वा वनं व्रजति चाकुलमानसेन दृष्ट्वा तथा गदगजो भिषजं प्रयाति ॥२५॥यद्वत्तमोवृतमिदं भुवनं मयूखैः प्राकाश्यमाशु कुरुते सकलं रविस्तु॥ तद्वत्सुवैद्य उपलभ्य रुजोतिनाशं शीघ्रं करोति गदिनं गदमुक्तभारम्॥२६ ॥

जैसे सिंहको देखकै हस्तियोंके समूहके स्वामीकी मदबिंदुओंकी धारा गंडस्थलमेंही सूख जातीहै और वह हाथी उस वनको त्याग व्याकुल मन करकै भागताहै तैसे वैद्यको देखकर रोगराज गमन करताहै ॥ २५ ॥ जैसे आंधेरेसे संयुक्तहुआ स्थानमें सूर्य किरनोंसे शीघ्र प्रकाशको करताहै तैसेही कुशलवैद्य रोगके नाशको प्राप्तहो रोगीको रोगरूपी भारसे शीघ्र मुक्त करदेताहै ॥ २६ ॥

लुब्धः क्रूरः शठजठरको मद्यपश्चालसश्चाधीरो भीरुर्विकलहृदयो हीनकर्मार्थमन्दः ॥ शास्त्रज्ञातोऽप्यविदितगदज्ञानपाखण्डखण्डो वर्ज्यो वैद्यः प्रबलमतिभिर्भूमिपैर्वा सुदूरात् ॥ २७ ॥

लोभीहो क्रोधीहो शठहो कठोरहो मदिराको पीनेवालाहो आलस्यवालाहो धीरनहींहो डरनेवालाहो विकलहुये हृदयवालाहो हीनकर्म्मवालाहो प्रयोजनमें मंदहो रोगको नहीं पिछाननेवालाहो ऐसा वैद्य जो शास्त्रको जाननेवालाभी हो तबभी अच्छी बुद्धिवाले राजानें दूरसे वर्ज्जना चाहिये ॥ २७ ॥

वैद्यशास्त्रपठनविधि.

अद्रुतं चाप्यशङ्कञ्च नात्युच्चं नीचमेव च ॥ यः पठेच्छास्त्रमित्थञ्च तस्य शास्त्रान्निर्दृश्यते ॥ २८ ॥ चर्वणं गिलनं चापि कम्पितं श्वसितं तथा॥ नीचोच्चं चैव गम्भीरं वर्जयेत्पाठकेन तु ॥ २९ ॥

अद्भुत प्रकार-अशुद्ध-अतिऊंचा प्रकार-नीचा प्रकार-इन्होंसे रहित साधारण प्रकारसे जो शास्त्रको पढै तिसको शास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ चावना, निगिलना, कांपना, अतिश्वास लेना, नीचापना, ऊंचापना, गंभीरपना, इन सबोंकों पठनकरनेवाला वर्ज्जै ॥ २९ ॥

अनध्याये न शास्त्रस्य नोत्सवे यज्ञकर्मसु ॥ जातके सूतके चाथ पठनं न विधीयते ॥ ३० ॥ चतुर्दश्यष्टमीदर्शप्रतिपत्पूर्णिमास्तथा ॥ वर्ज्याः पञ्च इमाः पाठे मुनिभिः परिकीर्त्तिताः ॥ ३१ ॥ अकाले दुर्दिने गर्जे दिग्दाहे भूमिकम्पने ॥ शास्त्रपाठस्तथा वर्ज्यो ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः॥३२॥ द्वादशैते अनध्यायाः प्रोक्ताः शृणुष्व पुत्रक! ॥ गुरुपीडासमुत्पन्ने नृपे संपीडितेऽथवा ॥३३॥ आहवे जीवसम्पाते प्रदोषे वाऽथवा पुनः॥राष्ट्रपीडासमुत्पन्ने न कुर्याच्छास्त्रपाठनम् ॥३४॥ एतैस्तु पठितं शास्त्रं न स्वार्थे सिद्धिसाधकम् ॥ न श्रेयसे न माङ्गल्ये नोपकारे सुखावहम् ॥ ३५ ॥

अनध्याय, उत्सव, यज्ञकर्म, जन्मको सूतक, मृतसूतक, इन्होंमें शास्त्रको नहीं पढना॥३०॥ चतुर्दशी,-अष्टमी,-अमावास्या,-प्रतिपदा,-पूर्णिमा ये पाचोंतिथि मुनिजनोंनें पढनेमें वर्ज्जी हैं ॥ ३१ ॥ अकाल,-दुर्दिन, गर्ज्जना, दिग्दाह,-भूमिकंप अर्थात् भूचाल,-चंद्रमाका ग्रहण,-सूर्यका ग्रहण,—इन्होंमें शास्त्रका पढना वर्ज्जित है ॥३२॥ हे पुत्र ! बारह अनध्याय कहे है तू सुन गुरुको पीडा उपजै; राजाको पीडा उपजे,॥३३॥युद्ध, जीवोंका मरना, प्रदोष, देशको पीड़ा उपजै ऐसे छः ये और छः अकाल आदि कहचुके इन बारहोंमें शास्त्रका पाठ करै नहीं

॥ ३४ ॥ इन अनध्यायोंमें पठित किया शास्त्र आपने प्रयोजनमें सिद्धिको नहीं देता और कल्याणको नहीं करता और मंगलको नहीं देता और उपकारमें सुखको नहीं देता ॥ ३५ ॥

एवं ज्ञात्वा पठति निपुणो वैद्यविद्यानिधानं श्रेयस्तस्य प्रतिदिनमसौ वाञ्छितार्थं प्रपद्येत् ॥ कीर्तिः सौख्यं भवति नितरां तस्य लोकप्रशंसा पूज्यो राज्ञां सततमपि वै जायते स्वार्थसिद्धिः॥३६॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यगुणदोषशास्त्रपठनविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऐसे जानकै जो कुशल वैद्य शास्त्रको पठित करता है तिसको कल्याण मिलता है, और नित्यप्रति मनोवांछित प्रयोजन प्राप्त होता है और तिस वैद्यको नित्यप्रति सुखहोता है संसारमें कीर्ति और प्रशंसा प्राप्त होती है और अपने प्रयोजनकी सिद्धि होती है और ऐसे पठन करनेवाला पंडित राजा लोगों करकै निरंतर पूजनेके योग्य है ॥ ३६॥ इति बेरीनिवासि बुधशिवसहायतनयवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादित-हारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने वैद्यगुणदोषशास्त्रपाठनविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः । २

———:०:———

चिकित्सासंग्रह.

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि शास्त्रस्यास्य समुच्चयम् ॥ आयुर्वेदसमुत्पत्तिं सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—इस पहले अध्यायको कहकै अब दूसरे अध्यायमें इस शास्त्रके समुच्चयको कहताहूं और आयुर्वेदकी समुत्त्पत्तिको और सब शास्त्रोंके अर्थका संग्रह करताहूं ॥ १ ॥

अष्टौ चात्र चिकित्साश्च तिष्ठन्ति भिषजां वर ! ॥ ता वक्ष्यामि समासेन चिकित्साश्च पृथक् पृथक् ॥ २ ॥

हे वैद्योंमें श्रेष्ठ इसग्रंथमें आठ प्रकारकी चिकित्सा स्थित हैं तिन्होंको और पृथक् पृथक् चिकित्साको कहूंगा ॥ २ ॥

संग्रहस्य प्रवक्ष्यामि प्रथमं चान्नपानकम् ॥ अरिष्टं च द्वितीयं स्यात्तृतीयं च चिकित्सितम् ॥ ३ ॥कल्पं चतुर्थकं प्रोक्तं सूत्रस्थानन्तु पञ्चमम्॥

षष्ठं चात्र शरीरं स्यादित्यायुर्वेदकारकाः ॥४॥ शल्यशालाक्यकायाश्च तथा बालचिकित्सितम् ॥ अगदं विषतन्त्रञ्च भूतविद्या रसायनम् ॥ वाजीकरणमेवेति चिकित्सा चाष्टधा स्मृता ॥ ५॥ वैद्यागमेषु सर्वेषु प्रोक्तं श्रेष्ठमिदं महत् ॥ तथा चाष्टौ चिकित्सायां वदन्ति वेदविज्जनाः ॥ ६ ॥

और संग्रहके अन्नपाननामक प्रथमस्थानको कहूंगा और अरिष्ट नामवाला दूसरा स्थान है और चिकित्सित नामवाला तीसरा स्थान है ॥ ३ ॥ कल्प नामवाला चौथा स्थान है सूत्रस्थान पचिमा है शारीरस्थान छठा है ऐसा आयुर्वेदको करनेवाले कहते हैं ॥ ४ ॥ शल्य–शालाक्य–कायचिकित्सा–बालचिकित्सित–अगद–विषतंत्र–भूतविद्या–रसायन-वाजीकरण–ऐसे चिकित्सा आठ प्रकारसे कही है ॥ ५ ॥ वैद्योंके सब ग्रंथोंमें यह उत्तम और बडा ग्रंथ माना है ऐसे वेदको जाननेवाले जन चिकित्सामें आठ प्रकारको कहते है ॥ ६ ॥

यन्त्रशस्त्राग्निक्षाराणामौषधं पथ्य एव च ॥
स्वेदनं मर्दनं चैव कथितान्युपकारिणाम् ॥७॥

यंत्रकर्म्म, शस्त्रकर्म, अग्निकर्म, औषध, पथ्य, स्वेदन, मर्दन, ये सब उपकारियोंकेलिये कहे है ॥ ७ ॥

एतैर्वैद्यकशास्त्रस्य सारो भवति सर्वतः ॥ ८ ॥

इन्होंसे वैद्यकशास्त्रका सार सब जगहसे यंत्रकर्म्म–शस्त्रकर्म–बंधकर्म–इन्होंके द्वारा होता है जिस करकै वैद्य उद्धार करता है ॥ ८ ॥

अथ शल्यतन्त्रम्

यन्त्रशस्त्रार्थबन्धैस्तु येन चोद्ध्रियते भिषक् ॥ तच्च शल्योद्धरणकं प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ नाराचवालवल्लीभिर्भल्लैः कुन्तैश्च तोमरैः ॥९॥ शिलाग्निभिन्नगात्रस्य तत्र साध्यादिशल्यकम् ॥ १० ॥ तत्प्रतीकारकरणं तच्च शाल्यचिकित्सितम् ॥ तथा बाणसमुद्दिष्टतृणपांशुकमीकचम् ॥ रक्तवस्तु तथा पेशी पूयं शेषान्तरेऽपि यत् ॥ ११ ॥ तच्छल्यमिति जानीयाल्लोष्टकाष्ठविभिन्नकम् ॥ १२ ॥

अथ शल्यतंत्रका लक्षण–यह वैद्यकशास्त्रमें शल्योद्धरण अर्थात् शल्यको निकासना कहते हैं जो बाण केश वल्लि–भाला–कुंतशस्त्र–तोमरशस्त्र–इन्हों करकै ॥९ ॥ पत्थर और अग्निसे भिन्नहुआ शरीरवाले मनुष्यके प्राप्तहुआ जो शल्य जिसको निकासनेका उपाय

करना यह शाल्यचिकित्सित कहाता है ॥ १० ॥ और व्रण अर्थात् घावके प्रकरणमें कहाहुआ तृण–फांस–आदि–लालचीज–मांसकी पेशी–राद–और शेष अंतरमें जो कछु हो ॥११॥ और लोहा लकडी आदि जो है इन सबोंको शल्य जानना॥१२॥यह शल्यतंत्र है–

अथ शालाक्यम्

शिरोरोगा नेत्ररोगाः कर्णरोगा विशेषतः ॥भ्रूकण्ठशङ्खमन्यासु ये रोगाः सम्भवन्ति हि ॥ १३ ॥ तेषां प्रतीकारकर्म नासावर्त्यञ्जनानि च ॥ अभ्यङ्गं मुखगण्डूषक्रिया शालाक्यनामिका ॥ १४ ॥ इति शालाक्यं नाम ॥

अथ शालाक्यतंत्रका लक्षण–शिरके रोग, नेत्रोंके रोग, कानके रोग, और विशेष करके भृकुटी–कनपटी–कंधा–इन्होंमें जो रोग उपजै ॥ १३ ॥ तिन्होंको दूर करनेके लिये जो नस्यकर्म–अंजन–अभ्यंग अर्थात् मालिस–गंडूष अर्थात् कुल्ले करना आदि क्रिया–ये सब शालाक्य कहाते है ॥ १४ ॥

अथ कायचिकित्सा

काषायचूर्णगुटिका पञ्चानां शोधनानि च॥कोष्ठामयानां शमनी क्रिया कायचिकित्सितम् ॥ १५ ॥

अथ कायचिकित्साका लक्षण–काढा चूरन गोली स्वेदन स्नेहन वमन, विरेचन बस्तिकर्म–ये सब और कोष्ठके रोगोंको शांत करनेवाली क्रिया कायचिकित्सित कहाती है॥१५॥

अथ अगदं नाम

गुदामयं बस्तिरुजं शमनं बस्तिरूहकम् ॥ आस्थापनानुवासंतु अगदं नाम एव च ॥ १६ ॥

अथ अगदतंत्र लक्षण–गुदाके और मूत्राशयके रोगको शांत करना निरूहबस्ति–आस्थापन बस्ति–अनुवासनबस्ति ये सब अगदतंत्रनामसे विख्यात है ॥१६॥

अथ बालचिकित्सा

गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमस्तथा ॥ बालानां रोगशमनं क्रिया बालचिकित्सितम् ॥ १७ ॥

अथ बालचिकित्सितकालक्षण–गर्भकी और सूतिकाकी चिकित्साका ज्ञान और बालकोंके रोगोंको शांत करनेवाली क्रिया बालचिकित्सित कहाती है ॥ १७ ॥

अथ विषतन्त्रं नाम ॥

सर्पवृश्चिकलूतानां विषोपशमनी तु या ॥
सा क्रिया विषतन्त्रञ्च नाम प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ १८ ॥

सांप,–बीछू, मकडी, इन्होंके विषको शांत करनेवाली क्रिया विषतंत्र कहाती है ऐसे बुद्धिमानोंनें कहा है ॥ १८ ॥

अथ भूतविद्या नाम ॥

ग्रहभूतपिशाचाश्च शाकिनीडाकिनीग्रहाः ॥
एतेषां निग्रहः सम्यग्भूतविद्या निगद्यते ॥ १९ ॥

अथ भूतविद्याका लक्षण–ग्रह–भूत–पिशाच–डाकिनी–शाकिनी–ग्रह–इन्होंको अच्छी तरह निग्रह करना भूतविद्या कहाती है ॥ १९ ॥

अथ वाजीकरणम् ॥

क्षीणानां चाल्पवीर्य्याणां बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥
तर्पणं समधातूनां वाजीकरणमुच्यते ॥ २० ॥

अथ वाजीकरणका लक्षण–क्षीणहुये और अल्प वीर्यवाले मनुष्योको पुष्ट करना और बलको बढाना और समान धातुवालोंको तृप्त करना–यह वाजीकरण कहाता है॥२०॥

अथ रसायनतन्त्रम् ॥

देहस्येन्द्रियदन्तानां दृढीकरणमेव च ॥ वलीपलितखालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया ॥ २१ ॥ पूर्ववैद्यप्रणीतं हि तद्रसायनमुच्यते ॥ २२ ॥

अथ रसायनका लक्षण–शरीर, इंद्रिय, दंत, इन्होंको दृढ करना और शरीरकी वली, वालोंकी सफेदाई, वालोंका उडजाना, इन्होंक वर्जनेकी जो क्रिया हो ॥ २१ ॥ और पहले धन्वंतरी आदि वैद्योंकी रची हुई हो तिसको रसायन कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ उपाङ्गचिकित्सा ॥

छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं क्षतं पिच्चितमेव च ॥
तेषां दग्धप्रतीकारः प्रोक्तश्चोपाङ्गसंज्ञकः ॥ २३ ॥

अथ उपांगचिकित्साका लक्षण–छिन्न अर्थात् छेदितहुआ–भिन्न अर्थात् विदारितहुआ–भग्न अर्थात् टूटा हुआ–क्षत अर्थात् घाव आदि–पिच्चित अर्थात् पिचलित हुआ–दग्ध अर्थात् जलाहुआ–इन्होंकी चिकित्साको उपांगसंज्ञक कहते है ॥ २३ ॥

२

इति वैद्यकसर्वस्वं चिकित्सागमभूषणम् ॥
पठित्वा तु सुधीः सम्यक् प्राप्स्यते सिद्धिसङ्गमम् ॥२४ ॥
इति वैद्यकसर्वस्वे चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २ ॥

चिकित्सारूपी शास्त्रसे भूषितहुआ वैद्यकसर्वस्व समाप्त हुआ इसको वैद्य अच्छी तरह पढके सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त शास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः॥ ३

वैद्यशिक्षाविधानम् ॥

अथ वक्ष्यामि रोगाणामुपचारक्रमं तथा ॥
जानाति यो बुधः सम्यक् पूज्यते नृपसत्तमैः ॥ १ ॥

अथ रोगोंके चिकित्साक्रमके लक्षण—इसके अनंतर रोगोंकी चिकित्साके क्रमको कहूंगा जो पंडित इसको अच्छी तरह जानता है वह राजालोगोंसे पूजित होता है ॥ १ ॥

उपचार करनेकी योग्यता

ज्ञात्वा रोगसमुत्पत्तिं रोगाणामप्युपक्रमम् ॥
ज्ञात्वा प्रतिक्रियां वैद्यः प्रतिकुर्य्याद्यथोचितम् ॥ २ ॥

कुशलवैद्य रोगकी उत्पत्तिको और रोगोंके पथ्य आदिको और चिकित्साको जानकै पश्चात् यथोचितको करै ॥ २ ॥

देशकालआदिका ज्ञान

देशं कालं वयो वह्निं सात्म्यप्रकृतिभेषजम् ॥
देहं सत्वं बलं व्याधेर्दृष्ट्वा कर्म समाचरेत् ॥ ३ ॥

देश, समय, अवस्था, जठराग्नि प्रकृतिके योग्य औषध, देह, सत्व, रोगका बल इन्हों-को देखकै पीछे चिकित्साका आरंभ करै ॥ ३ ॥

उपचार करनेका फल

धर्मार्थकामलाभः स्यात् सम्यगातुरसेवनात् ॥
यदा नाचरतस्तस्य विनाशश्चात्मनस्तदा ॥ ४ ॥

रोगीकी अच्छी तरह चिकित्सा करनेसे धर्म, अर्थ, काम, इन्होंकी प्राप्ति होती है जो वैद्य रोगीकी चिकित्सा नहीं करता तिस वैद्यके शरीरका नाश होजाताहै ॥ ४ ॥

वैद्यका वैद्यत्व

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ॥
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५ ॥

रोगके तत्त्वको जानना–पीड़ाका नाश करना–वैद्यका यही वैद्यपना है और आयुका मालिक वैद्य नहीं है–अथवा इतनाहीं नहीं है, किंतु आयुका मालिक वैद्यही है ॥ ५ ॥

दोप्रकारका उपचारउपक्रम

द्विविधोपक्रमश्चैव शमनः कोपनो रुजाम् ॥
तथैव ज्ञात्वा विबुधः क्रियां कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ६ ॥

चिकित्सा २ प्रकारकी है एक शमन दूसरी कोपन सो रोगको जानकै कुशलवैद्य क्रियाको करै ॥ ६ ॥

दो प्रकारके वैद्य ॥

वैद्योऽपि द्विविधो ज्ञेयो विकारेङ्गितरोगयोः ॥ उपचारापचारज्ञो द्विविधः प्रोच्यते भिषक् ॥ ७ ॥ उपचारेण शमनमपचारेण कोपनम् ॥ एवं विज्ञाय सद्वैद्यः कुर्य्यात् संशमनक्रियाम् ॥ ८ ॥

वैद्यभी २ प्रकारका है रोगके उपचार अर्थात् चिकित्साको जाननेवाला और रोगके अपचार अर्थात् दुष्परिणामको नहीं जाननेवाला ऐसे २ प्रकारका वैद्य कहा है॥ ७ ॥ उपचारसे रोगकी शांति होती है अपचारसे रोगका कोप होता है ऐसे कुशलवैद्य जानकै संशमन अर्थात् रोगको शांत करनेवाली क्रियाको करै ॥ ८ ॥

व्याधीके साध्यअसाध्यविचार ॥

साध्योऽसाध्यश्च याप्यश्च कृच्छ्रसाध्यस्तथैव च ॥ व्याधिश्चतुर्विधः प्रोक्तः सद्वैद्यैः शास्त्रकोविदैः ॥ ९ ॥ उपचारेण साध्या ये रोगा गच्छन्ति याप्यताम् ॥ याप्यास्त्वसाध्यतां यान्ति साध्यकष्टेन पुत्रक ! ॥ १० ॥ सम्भवन्ति महारोगाः कष्टसाध्या म्रियन्ति वै ॥ एवं चतुर्विधो व्याधि ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥ ११ ॥

साध्य–असाध्य–याप्य–कष्टसाध्य इन भेदोंसे रोगभी ४ प्रकारका कुशल वैद्योंनें कहा है ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! चिकित्साके नहीं करनेसे साध्यरोग कष्टसाध्यपनेको प्राप्त होते हैं और कष्टसाध्य रोग असाध्यपनेको प्राप्त होते हैं साध्यके कष्ट करकै ॥ १० ॥ महारोग उपजते हैं

और कष्टसाध्य रोगवाले मरजाते हैं ऐसे व्याधि च्यारप्रकारकी है और तिसको जानके कर्म्म-का आचरण करै ॥ ११ ॥

उपचारका फल ॥

उपचारकृता दोषाः कृच्छ्रास्ते यान्ति याप्यताम् ॥ याप्याः साध्यत्व मायान्ति कष्टसाध्यं भवेद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥ सुखसाध्यः सुखी शीघ्रं स्यात् सुधीभिरुपक्रमैः ॥ साध्यासाध्यपरिज्ञानं ज्ञात्वोपक्रमणं तथा ॥ १३ ॥

चिकित्साके करनेसे कष्टसाध्यरोग याप्यपनेको प्राप्तहोते हैं और याप्यरोग साध्यपनेको प्राप्त होते हैं ऐसे कष्टसाध्यकी व्यवस्था है ॥ १२ ॥ वैद्योंकी चिकित्सासे रोगी शीघ्र सुखसाध्य होजाता है ऐसे साध्य और असाध्यके परिज्ञानको जानकै पीछे चिकित्साको करै ॥ १३ ॥

दोषके शेष रहजानेसें हानि ॥

साध्यंगते यदा रोगे दोषशेषं न धारयेत् ॥ दोषशेषेऽपि कष्टं स्यात्त स्माद्यत्नान्निकृन्तयेत् ॥ १४ ॥ यथा हि कालदुष्टः स्यात् यथा सूक्ष्मोऽ ग्नितः कणः ॥ स्वल्पस्तद्वत् क्रियाप्राप्तो गदो घोरतरो भवेत् ॥ १५ ॥ तथा दोषस्य शेषे तु शमनं याति चाल्पशः ॥ दैवाद्यद्दुष्टतां याति यथा ग्निः कुपितो भृशम् ॥ १६ ॥

जब साध्य रोग होवै तब वातआदि दोषके शेषको नहीं धारण करना क्योंकि दोषको बाकीरहनेमें कष्टहो जाता है तिसवास्ते दोषको नाशितकरै ॥ १४ ॥ जैसे काल दुष्ट होजाता है जैसे अग्निका सूक्ष्म किनका बढजाताहै तैसे क्रियाको नहीं प्राप्तहुआ स्वल्पभी रोग अतिघोर होजाता है ॥ १५ ॥ दोषके शेषमें अतिअल्परोग शांत होजाता है परंतु दैवसे फिर दूषित होजाता है जैसे अतिकुपितहुआ अग्नि ॥ १६ ॥

अपथ्यसें हानि ॥

यथा काष्ठचयाद्दूरं प्राप्य घोरतरोऽग्निकः॥तथा पथ्यस्य संयोगाद् भवेद् घोरतरो गदः ॥ १७ ॥ कषायैश्च फलैश्चूर्णैः पिण्डलेहानुवासनैः ॥ सर्वाः क्रिया भृशं व्यर्था न शमं याति चामयः ॥ १८ ॥

जैसे काष्ठका समूहसे दूर प्राप्तहुआभी अग्नि अतिघोररूप होजाताहै तैसे अपथ्यके संयोगसे रोगभी अतिघोररूप होजाता है ॥ १७ ॥ काढा-फल-चूरन—गोली—चटणी—

अनुवासन बस्तिकर्म—इन्हों करके सब क्रियां व्यर्थ होजावें और रोग शांत नहीं होवे ॥ १८ ॥

एवं ज्ञात्वा सदा वैद्यै रोगशान्तिककारणम् ॥
कर्त्तव्यमतियोगेन येन रोगः प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

ऐसे जानके सब कालमें वैद्योंनें रोगकी शांतिको करनेवाली क्रिया अतियोगसे अर्थात् पूर्वोक्तक्रिया विशेष करके करनी चाहिये जिस्से रोग शांत होजावे ॥ १९ ॥

लङ्घनकी योग्यता ॥

ज्ञात्वा दोषबलं धीमान् लङ्घनानि समाचरेत् ॥
दोषे सति न दोषाय लङ्घनानि बहून्यपि ॥ २० ॥

वैद्य दोषके बलको जान लंघनोंका आचरण करावै क्योंकि दोषके होनेसे बहुतसेभी है लंघन दोषको करनेवाले नहीं होतेहै ॥ २० ॥

जठराग्निका कर्म ॥

पचेत् प्रथममाहारं दोषानाहारसंक्षये ॥
दोषक्षयेऽनलो धातून् प्राणान् धातुक्षये सति ॥ २१ ॥

जठराग्नि प्रथम भोजनको पकाता है और भोजनके नाश होनेमें वातआदि दोषोंको पकाता है और दोषोंके क्षय होनेमें धातुओंको पकाता है और धातुओंके क्षय होनेमें प्राणोंको पकाता है ॥ २१ ॥

सामनिराम व्याधिका उपक्रम ॥

ज्ञात्वा बलाबलं व्याधेः सामन्निराममेव च ॥
तदा सामे पाचनं स्यान्निरामे पथ्यसंक्रमः॥ २२ ॥

रोगके बल और अबलको जानके और साम तथा निरामरूप रोगको जानके पीछे साम अर्थात् आमसे संयुक्तहुये रोगमें लंघनकरावे और निराम अर्थात् आमसे रहितहुये रोगमें पथ्यको दिवावै॥२२॥

वैद्यकी योग्यता ॥

सामं निरामं सुखसाध्यमेव सम्यग् रुजश्च परिलक्ष्य रुजो विनाशम् ॥
एतद्भवेत् सकलवैद्यकशास्त्रसारं नैवायुषश्च बलदानकरो हि वैद्यः ॥२३॥

साम—निराम—सुखसाध्य—इसप्रकारसे रोगको अच्छी तरह देख और रोगके नाशको देख विचारै सकल वैद्यकशास्त्रका सार यह है और आयुके बलको देनेवाला वैद्य नहीं होता॥२३॥

नो वैद्यो मनुजस्य सौख्यमथवा दुःखञ्च दातुं क्षमो जन्तोः कर्मविपाक एव भुवने सौख्याय दुःखाय च ॥ तस्मान्मानवदुःखकारणरुजां नाशस्य चात्र क्षमो वैद्यो बुद्धिनिधानधाम चतुरो नाम्नैव वैद्योऽपरः ॥२४॥ सम्यग् रुजां परिज्ञानं ज्ञात्वा दोषविनिग्रहम् ॥ प्रत्याख्येयञ्च यः साध्यं जानाति स भवेद् भिषक् ॥ २५ ॥

मनुष्यको सुख अथवा दुःख देनेको वैद्य समर्थ नहीं है किं तु संसारमें सुख और दुःखको देनेवाला कर्मोंका विपाक है तिस कारणसे मनुष्यको दुःख करनेवाले रोगोंको नाशनेके लिये वैद्य समर्थ है और वैद्य बुद्धिभांडारका घरहै. चतुरहै और इससें विपरीत जो दूसरा वैद्यहो वह नामसेंही वैद्यहै॥२४॥जो रोगोंको अच्छी तरह जानकै और दोषोंके निग्रहको जान साध्य और असाध्य रोगीको जानता है तिसको वैद्य कहते है ॥ २५ ॥

उपचार करनेयोग्य मनुष्य ॥

तपस्वी च ब्राह्मणश्च स्त्रियो वा बालकस्तथा ॥ दीनो वा दुर्बलो वापि प्राज्ञो वा पण्डितस्तथा ॥ २६ ॥ महात्मा श्रोत्रियः साधुरनाथो बन्धुवर्जितः ॥ एतान् व्याधिविनिग्रस्तान् प्रतिकुर्य्याद्विशेषतः ॥ २७ ॥

तपस्वी—ब्राह्मण—स्त्री—बालक—दीन—दुर्बल—बुद्धिमान्—पंडित—॥ २६ ॥ महात्मा—वेदपाठी—साधु—अनाथ—बंधुओंसे रहित—ऐसे रोगी हो जावें तो विशेष करकै वैद्य शीघ्र चिकित्सा करै ॥ २७ ॥

उपचारसें धनलेनेयोग्य मनुष्य ॥

राजा च सुधनी चैव मण्डलीको बलाधिपः ॥
उपचार्य्योऽर्थसिद्धिः स्याद्वित्तं ग्राह्यं भयं न च ॥ २८ ॥

राजा—धनवाला साहुकार-छोटा राजा ठाकुर—सेनाका स्वामी—इन्होंकी चिकित्सा करनेमें वैद्यको द्रव्य लेना चाहिये और वैद्य भयको नहींकरै ॥२८ ॥

यश मिलनेयोग्य मनुष्य ॥

मध्यमा वणिजां पङ्क्तिः पुरोधा ब्राह्मणादयः॥ भट्टो वा गणिकाग्रण्यश्चिकित्स्यास्तु विशेषतः ॥ रोगग्रस्तेषु चैतेषु चिकित्सा कीर्त्तिकारिणी॥२९॥

व्यवहार करनेवाले-ब्राह्मण आदि पुरोहित-कवीश्वर-कत्थक अथवा ज्योतिषी—इन्होंकी चिकित्सा वैद्य विशेष करकै करै क्योंकि इन्होंकी करीहुई चिकित्सा कीर्तिको करती है॥२९॥

चिकित्सा करनेको अयोग्य मनुष्य ॥

व्याधश्चौरस्तथा म्लेच्छो वह्निदो मत्स्यबन्धकः ॥ ३० ॥ बहुद्वेषो ग्रामकूटो बन्धको मांसविक्रयी ॥ एतेषां व्याधिग्रस्तानां नैव कुर्य्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥ एतेभ्यः स्वार्थसिद्धिर्नोपकारो हितमङ्गलम् ॥ तेषां जीवाप्तसंजातो वैद्यो भवति दोषभाक् ॥ ३२ ॥

और कसाई-चोर-म्लेच्छ-अग्निलगानेवाला–मछलियोंको वीधनेवाला ॥ ३० ॥ बहुतोंका वैरी–गाममें चुगली करनेवाला मांसको बेचनेवाला–इन्होंके जो रोग उपजै तो वैद्य चिकित्सा नहींकरै ॥ ३१ ॥ क्योंकि इन्होंसे स्वार्थकी सिद्धि नहीं है न उपकार है और कल्याणभी नहीं है और मंगलभी नहीं है तिन्होंको जीवदान देनेसे वैद्य दोषका भागी होजाता है॥३२॥

एवं ज्ञात्वा तु सद्वैद्यः कुर्य्यादथ प्रतिक्रियाम् ॥
धर्मार्थकामसम्पत्तिःकीर्तिर्लोके प्रवर्त्तते॥ ३३ ॥

ऐसे जानके पीछे कुशल वैद्य चिकित्साको करै चिकित्सासे धर्म–अर्थ–काम–इन्हों-की प्राप्ति और लोकमें कीर्ति प्रवृत्त होती है ॥ ३३ ॥

वैद्यकर्तव्यका उपसंहार॥

इति बहुविधियुक्तो वैद्यविद्याविचारः क्षणमपि हृदये यो धारणं संकरोति ॥ स भवति गदसंघस्याथ विध्वंसशक्तो विमलविदितकीर्त्तिः पूज्यमानो नरेन्द्रैः ॥ ३४ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यशिक्षाविधानो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऐसे बहुतसी विधिसे युक्त और वैद्यक विद्याको विचारनेवाला ऐसा वैद्य एक क्षणभर-भी अपने हृदयमें धाराणाको करै वह वैद्य रोगके समूहको नाशनेमें समर्थ है और स्वच्छ तथा विख्यात कीर्तिवाला आर राजा लोगोंसे पूज्यमान हुआ वैद्य प्रसिद्ध होता है ॥ ३४॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथम-स्थाने वैद्यशिक्षाविधानो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः॥ ४

अथदेशकालबलाबलम्॥

इदानीं संप्रवक्ष्यामि देशकालबलाबलम् ॥
सात्म्यं प्रकृतिर्देहश्च तथाग्नीनां विशेषणम् ॥ १ ॥

अब देश–काल-बल-अबल-सात्म्य-प्रकृति-देह-अग्निकी विशेषता-इन्हेंको कहताहूं ॥१॥

देशके भेद

देशस्तु त्रिविधो ज्ञेयो ह्यनूपो जाङ्गलस्तथा ॥
साधारणो विशेषेण ज्ञातव्यास्ते मनीषिभिः ॥ २ ॥

अनूप–जांगल–साधारण–इन नामोंसे देश तीन प्रकारका है और बुद्धिमानोंनें–वे देश विशेष करकै जानने चाहिये ॥ २ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण ॥

बहुतरशुभनद्यश्चारुपानीयपुष्टाः सरससरउपेता शाद्वलासारभूमिः ॥ हरितकुशजलानां शालिकेदाररम्यादिनकरकरदीप्तिं वाञ्छते यत्र लोकः ॥ ३ ॥ गुरुमधुररसाढ्या भाति चेक्षुः सदार्द्रा विविधजनितवर्णाः शालिगोधूमयूषाः ॥ मधुररसविभुक्त्या मानवानां प्रकोपी भवति कफसमीरः स्यात्तदानूपदेशः ॥ ४ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण–सुंदर पानीसे पुष्टहुई बहुतसी सुंदर नदी जहां होवै और रसवाले वृक्षोंसे व्याप्त और हरी दूब घास आदिसे व्याप्तहुई पृथिवी जहां होवे और हरीकुशा तथा पानीसे व्याप्तहुये जो चावलोंके खेत तिन्हों करकै रमणीक हुई है पृथिवी जहां और जहां सूर्य्यकी किरनोंको संसार वांछित करता है ॥ ३ ॥ और जहां भारे और मधुर रससे संयुक्त और सबकालमें गीली ऐसी ईख होती है और जहां अनेक वर्णोंवाले चावल और गेहूं आदि उपजतेहैं–और जहां मधुररसको खानेसे मनुष्योंके वांत और कफका कोप होता है तिसको अनूपदेश कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ जाङ्गलदेशलक्षण ॥

खरपरुषविशालाः पर्वताः कण्टकीर्णा दिशि दिशि मृगतृष्णा भूरुहाः शीर्णपर्णाः ॥ अतिखररविरश्मीपांशुसम्पूर्णभूमिः सरसि रसविहीनः कूपकाम्भःप्रकर्षः॥५॥ तदनु विरससस्याहारिणो गोमहिष्यःप्रभवति रसमांसे रूक्षभावश्च सम्यक् ॥ पुनरपि हिमवाहं शालिशस्यं न चेक्षुर्भवति रुधिरपित्तं कोपमाशु ह्युपैति ॥ ६ ॥

अथ जांगलदेशलक्षण–तीक्ष्ण और कठोर पर्वत जहां स्थित है और जहां कांटोंसे व्याप्तहुई दिशामें मृगतृष्णा अर्थात् विनाहुआ जल मृगोंको प्रतीत होता है और जहां नष्टहुये पत्तोंवाले वृक्ष स्थित हैं और जहां अति तेज सूर्य्यके किरनोंसे गर्महुये रेतसे संपूर्ण

पृथिवी व्याप्त होरही है और जहां रससे हीन होताहुआ कुवाका पानी घटता जाता है ॥५॥ और जहां विनारसके धान्यखानेसें हस्ती, गाय, भैंस, ये बहुत प्रसन्न नहीं होते हैं और जहां रसमें जहां और मांसमें रूषापन उपजता है और शीतलवायु—चावलकी खेती—ईख ये नहीं उपजते हैं और जहां रक्त और पित्त शीघ्र कोपको प्राप्त होता है तिसको जांगलदेश कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ साधारणदेशलक्षण ॥

उभयगुणशतं वा नातिरूक्षं न स्निग्धं न च खरबहुलं चेन्नाभितःकण्टकाढ्यम् ॥ भवति च जलकीर्णं नातिशीतं न चोष्णं समप्रकृतिसमेतं विद्धि साधारणं च ॥ ७ ॥

अथ साधारणदेशलक्षण—जहां अनूपदेशके और जांगलदेशके बहुतसे लक्षण अर्थात् गुणहों और जहां न अति रूषापनहो और न चिकनापन है और जहां तेजकी बहुलता नहींहो और जो सब तर्फसे कांटोंसे व्याप्त होरहाहो और जहां साधारण पाणीहों और न अतिशीत अर्थात् जाडाहो और न अति गर्मीहो और समानप्रकृतिसे संयुक्तहो तिसको साधारण देश कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ कालज्ञान ॥

कालस्तु त्रिविधो ज्ञेयोऽतीतोऽनागत एव च ॥
वर्त्तमानस्तृतीयस्तु वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥ ८ ॥

अथ कालज्ञान—काल तीन प्रकारका है अतीत अर्थात् वीताहुआ—अनागत अर्थात् आनेवाला-वर्तमान अर्थात् वर्तताहुआ इन्होंके लक्षण कहताहूं तू सुन ॥८॥

कालका स्वरूप ॥

कालःकालयते लोकं कालः कालयते जगत् ॥ कालः कालयते विश्वं तेन कालो विधीयते ॥९॥ कालस्य वशगाः सर्वे देवर्षिसिद्धकिन्नराः॥ कालो हि भगवान् देवः स साक्षात्परमेश्वरः ॥ १० ॥ सर्गपालनसंहर्त्ता स कालः सर्वतः समः ॥ कालेन काल्यते विश्वं तेन कालो विधीयते ॥ ११ ॥

काल लोककी संख्या करता है काल जगत्की संख्या करता है काल विश्वकी संख्या करता है तिस्से काल कहाता है ॥ ९ ॥ सब देव, ऋषि, सिद्ध, किन्नर, ये सब कालके वशमें है और

भगवान् देव साक्षात् परमेश्वर ऐसा कालही है ॥ १० ॥ सृष्टि, स्थिति, संहार, इन्होंको करनेवाला और सब जगहसे समान ऐसा कालही है कालसे विश्व संख्याको प्राप्त होता है तिस्से काल कहाता है ॥ ११ ॥

उत्पाक कालका स्वरूप ॥

येनोत्पत्तिश्च जायेत येन वै कल्पते कला ॥
सत्त्ववांस्तु भवेत्कालो जगदुत्पत्तिकारकः॥ १२ ॥

जिस्से उत्पत्ति होती है और जिस्से कलाओंकी गिनती होती है इसवास्ते सत्ववाला काल जगत्की उत्पत्तिको करता है॥१२॥

प्रवर्तक कालका स्वरूप ॥

यः कर्माणि प्रपश्येत प्रकर्ष वर्त्तमानके ॥
सोऽपि प्रवर्त्तको ज्ञेयः कालःस्यात्प्रतिकालकः ॥ १३ ॥

वर्तमानमें जो कर्मोंको देखता है वह प्रवर्तक जानना और कालही प्रतिपालक होता है १३

संहारक कालका स्वरूप ॥

येन मृत्युवशं याति कृतं येन लयं व्रजेत् ॥
संहर्त्ता सोऽपि विज्ञेयः कालः स्यात्कलनापरः॥१४॥

जिसकाल करकै जीव मृत्युके वशको प्राप्त होता है और जिस करकै कृत अर्थात् किया हुआ लयको प्राप्त होता है वही काल संहार करनेवाला जानना यही काल संख्याको करनेवाला है ॥ १४ ॥

कालका सनातनत्व ॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ॥
कालः स्वपिति जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥ १५ ॥

कालही जीवोंको रचता है कालही प्रजाको हरता है कालही शयन करता है कालही जागता है काल दुरतिक्रम है अर्थात् उल्लंघन नहीं कियाजाता ॥ १५ ॥

कालका नाशकस्वरूप ॥

काले देवा विनश्यन्ति काले चासुरपन्नगाः ॥
नरेन्द्राः सर्वजीवाश्च काले सर्वं विनश्यति ॥ १६ ॥

काल अर्थात् समयमें देवता नष्ट होजातेहैं और कालमें ही दैत्य और सर्प नष्ट होते हैं राजे और सब जीव कालमेंही नष्ट होते हैं कालमेंही संपूर्ण नष्टहोता है ॥ १६ ॥

अथ अन्यकालोंके स्वरूप ॥

त्रिकालात् परतो ज्ञेय आगन्तुर्गतचेष्टकः ॥ सूक्ष्मोऽपि सर्वगः सर्वैर्व्य क्ताऽव्यक्ततरः शुभः ॥ १७ ॥ तथा वर्षाहिमोष्णाख्यास्त्रयः काला इमे मताः ॥ तथा त्रयोऽन्येऽपि ज्ञेया उदयमध्यास्तमेव च ॥ १८ ॥

आगंतु और चेष्टासे रहित और सूक्ष्म और सबोंकरके सर्वगत और अतिव्यक्त और अति अव्यक्तसे पर और शुभ ऐसा ऐसा काल त्रिकालसे परे जानना चाहिये॥१७॥वर्षा,शीत, गर्मी,ये तीन काल माने गये हैं और उदय,मध्य,अस्त,ऐसे तीन अन्यभी काल जानने॥१८॥

अथ ऋतुचर्य्या ॥

वर्षा शरच्च हेमन्तः शिशिरश्च वसन्तकः ॥ ग्रीष्मोऽतिक्रमतो ज्ञेय एवं षड् ऋतवः स्मृताः॥ १९ ॥ पृथक् पृथक् प्रवक्ष्यामि रवेर्गतिविशेषणैः॥ प्रकोपं शमनं ज्ञात्वा अयने द्वे स्मृते बुधैः ॥ २० ॥ दक्षिणायनमेकं स्यात् द्वितीयं चोत्तरायणम् ॥

अथ ऋतुचर्य्या–वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म ये क्रमसे छः ऋतु कहे ॥१९॥ इन ऋतुओंको पृथक् २ कहुंगा सूर्य्यकी गतिके विशेषसे प्रकोप और शमनको जान पंडितोंनें दो अयन कहे है ॥ २० ॥ एक दक्षिणायन होता है दूसरा उत्तरायण होता है

अयनोंका वर्णन ॥

वर्षा शरच्च हेमन्तो दक्षिणायनमध्यगाः ॥ २१ ॥
शिशिरश्च वसन्तश्च ग्रीष्मः स्यादुत्तरायणे ॥

वर्षा-शरद-हेमंत-ये तीन ऋतु दक्षिणायनमें होते हैं ॥ २१ ॥ शिशिर, वसंत, ग्रीष्म ये तीन ऋतु उत्तरायणमें होते है

दक्षिणायनकालक्षण ॥

याम्ये गतिर्यदा भानोस्तदा चान्द्रगुणा मही ॥ २२ ॥ वारि शीतलस म्भूतं शीतं तत्र प्रजायते ॥ बलिनो मधुरास्तिक्ताः कषायास्तु विशेषतः ॥२३॥ जीवानां सात्म्यमतुलमोषधीनां च वीर्यता॥आर्द्रत्वं भूधराणाञ्च दिशश्चाप्यतिशीतलाः ॥ २४ ॥ सक्लेदा पृथिवी सर्वा तस्मादार्द्रा सफे

निला ॥ कथं चिकित्सयेत् पित्तं कोपं याति विलीयते॥२५॥ तस्मादनु विपर्य्यासादुपचारेण शाम्यति ॥

जब दक्षिणायणमें सूर्यकी गति होती है तब चंद्रमाके गुणोंवाली पृथिवी होजाती है ॥ २२ ॥ और शीतल पानी होजाता है और शीत पडने लगता है और मधुर तिक्त कसैला ये रस विशेष करके बलवाले हो जाते है ॥ २३ ॥ और ओषधी अर्थात् अन्न आदिकोंकी तथा जीवोंकी प्रकृति बहोतही अच्छी रहती है और पर्वतभी गीले होजाते है और दिशाभी अति शीतल हो जाती हैं ॥ २४ ॥ और क्लेदभाव सहित संपूर्ण पृथिवी हो जाती है और तिसी कारणसे गीली और झागोंवाली पृथिवी होजाती है जहां पित्त कोपको प्राप्त हो जाता है या लीन होजाता है तहां चिकित्सा कैसे होसक्ती है ? ॥ २५ ॥ तिस कारणसे विपर्य्यास करके चिकित्सासे पित्त शांत होता है

उत्तरायणका लक्षण ॥

यदोदीच्यां गतिर्भानोस्तदा सूर्य्यो जलाधिपः ॥ २६ ॥ तस्माद्रुष्णगुणास्तीव्राः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥ खरसूर्य्यांशुजालैस्तु शुष्यते वनकाननम् ॥ २७ ॥ संशुष्का मेदिनी सर्वा दिशः पानादिनीरसा ॥ बलिनोऽम्लकटुक्षाराः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥ २८ ॥ तस्मात् संकुप्यते पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम्॥ओषधिरसः संशुष्को गोजातीनां पयांसि च॥२९॥अल्पं बलं च जन्तूनां कथञ्चित्कफसम्भवः ॥ दृश्यते च वसन्ते च स्वयमेव शमं व्रजेत्॥३०॥एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक्कुर्य्यात्सर्वप्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥

जब उत्तर दिशामें सूर्य्यकी गति होती है तब सूर्य्य जलोंका स्वामी हो जाता है ॥ २६॥ तिस्से दारुण रूप और विशेष करकै दाहको करनेवाले ऐसे गुण उपजते है और सूर्य्यके तेज किरणोंके समूहसे वन बगीचे सूख जाते है ॥२७॥ और संपूर्ण पृथिवी सूख जाती है और जलआदिसे रहित सब दिशा होजाती हैं और खट्टा, चर्चरा, खारा ये रस बलवाले और विशेष करकै दाहको करनेवाले होते हैं ॥ २८ ॥ तिस्से रक्तके साथ मूर्च्छितहुआ पित्त कुपित होता है और ओषधियोंका रस और गायआदिका दूध सूख जाताहै ॥ २९ ॥ और जीवोंमें अल्प बल उपजता है और कदाचित् कफकीभी उत्पत्ति होजाती है और वहां कफकी उत्पत्ति वसंत ऋतु अर्थात् चैत्र वैशाखमें दीखती है और आपही शांत हो जाती है ॥ ३० ॥ ऐसे अच्छी तरह वैद्य जानकै सब रोगोंकी चिकित्साको करै ॥ ३१ ॥

अथ वर्षाऋतुका लक्षण ॥

सघनवारिदवारिसमाकुला अखिलवत्प्रवरोदकपूरिताः ॥ समदवात करा विदिशो दिशः प्रमुदितक्रिमिकीटभृता मही ॥ ३२ ॥ नील सस्यहरितोज्ज्वला मही कुल्यका सलिलसंप्लुता नता ॥ इन्द्रगोपक राजिविराजिता पङ्कभूषणविभूषिता धरा ॥३३॥ उद्भिन्नचूताङ्कुरो भूध रः स्याद्रेजे वनं वा मधुरं व्यकूजन् ॥ भृङ्गा मयूरा जलदस्य घोषं सर्वेऽपि जीवा बलमाप्नुवन्ति ॥ ३४ ॥ केकी कूजति कानने च सरसी म्लानाम्बुपूर्णा तथा हंसा मानसमाव्रजन्ति कमलान्युन्म्लानतां यान्ति च ॥ गर्जन्मेघमहेन्द्रकन्दरदरी सस्यावृता श्यामला भात्येवं पवनस्य को पनकरी वर्षाऋतुः श्रेयसी ॥ ३५ ॥ किञ्चिद्गर्भोद्भवानि स्युः सस्यानां दृ ढतां गमः॥बहुसस्या भवेद्धात्री वारिपूर्णा शरन्मुहुः॥३६॥ नद्यःपूर्णाम्भ सोत्खातशीर्णपातास्तटद्रुमाः ॥ कुल्याप्रस्रवणानान्तु स्रवत्यम्भो दिशो दिशः ॥ ३७ ॥ बहूदकधरा मेघा बहुवृक्षा घनस्वनाः ॥ एवंगुणसमायु क्ता वर्षा स्यादृतुकोविदैः ॥ ३८ ॥ तस्माद्वातकफः कोपी जायते च नृणां भृशम्॥ इति ज्ञात्वा भिषक्छ्रेष्ठः कुर्य्यात्तस्यां प्रतिक्रियाम्॥३९॥ स्वेदनं मर्दनं पथ्यं निर्वातसेवनं तथा ॥ गौराराभारतं शस्तं व्यायामक्रम विक्रमः ॥ ४० ॥ कट्वम्लक्षारसुरसाः सेव्या वातकफापहाः ॥ निरूह बस्तिकर्मात्र कफवातरुजापहम् ॥ ४१ ॥

अथ ऋतुलक्षण—प्रथम वर्षाऋतुका लक्षण और उपचार—मोटे बादल और पानीसे अच्छी तरह आकुल हो और संपूर्ण तरहसे सुंदर पानी करकै पूरित और मदसहित वायुको करनेवाली सब विदिशा और दिशा होवैं और आनंदित हुये कीडोंको धारण करने वाली पृथिवी होवै ॥३२॥ और नीली खेती और दूब घाससे प्रकाशित पृथिवी होवै पानीसे मग्न हुये और नयेहुये नदीके किनारे होवै और इंद्रगोप अर्थात् तीज नामवाले कीडोंकी पंक्तियोंसे शोभित और पंक अर्थात् कीचडरूपी गहनोंसे विभूषित ऐसी पृथिवी होजावै॥३३॥ और ऊपरको कर निकल आयेहुये आमके अंकुरोंवाले पर्वत हो जावै और वन प्रकाशित होजावै और भौंरे तथा मोर मधुर शब्दको करै और बादलोंका शब्द होवै और सब जीव बलको प्राप्त होजावै॥३४॥वनमें मोर बोलै और सरोवर पक्षिओं करिकै रहित तथा पानीसे पूरि-तहोजावै और हंस मानससरोवरमें आकै प्राप्त होजावै और कमल म्लानपनेको प्राप्त होजावै

और गर्जताहुआ मेघ और महेंद्र करकै फटीहुई कंदरां वाली और खेतीसे आवृत और श्यामरूपवाली ऐसी पृथिवी प्रकाशित होजावै ऐसी वर्षाऋतु श्रेष्ठ होतीहै यह वायुको कोपित करतीहै॥३५॥ और खेतियोंके कछुक गाभा तथा दृढपना उपजै और बहुतसी खेतीसे संयुक्त और पानीसे पूर्ण ऐसी पृथिवी होवै और वारंवार शरदऋतुकेभी कछुक लक्षण मिलै ॥३६॥ और नदीमें नहीं पूरितहुये पानीसे उखाडे हुये और गिरेहुये पत्तोंवाले ऐसे तटके वृक्ष होवै और नाली झिरनोंके द्वारा दिशा दिशामें पानीको झिरावै ॥ ३७ ॥ और बहुत पानीको धारनेवाले और बहुतसे शब्दको करनेवाले ऐसे मेघ होजावै और बहुतसे वृक्ष उपजै ऐसे गुणोंसे संयुक्त वर्षाऋतु होतीहै ऐसा ऋतुओंको जाननेवालोंनें कहा है ॥ ३८ ॥ इस ऋतुमें मनुष्योंके अतिशयसे वात कफका कोप होता है ऐसे कुशलवैद्य जानकै तिसकोपकी चिकित्सा करै ॥ ३९ ॥ स्वेदन अर्थात् पसीनाका लाना—मर्दन अर्थात् शरीरको दाबना- और वातको नहीं सेवना—गौर वर्णकी स्त्रीसे रति करना—कसरत करना ये सब वात कफके कोपमें श्रेष्ठ पथ्य है॥४०॥ चर्चरा—खट्टा—खारा ये रस सेवने वात कफको नाशते है निरूह और बस्तिकर्म्म कफ और वातकी पीडाको नाशते हैं ॥ ४१ ॥

अथ शरदृतुका लक्षण ॥

मेघाः सूर्य्यशिलासमानरुचयो ह्यल्पस्रवाल्पस्वना हंसालीजलजालिमण्डितजलं पद्माकरं शोभनम्॥तीव्रस्निग्धमयूखचन्द्रविमला सानन्दिनी कौमुदी चित्रा घर्मविपक्वतोयसुरसा स्यान्निर्मलं पुष्करम् ॥ ४२ ॥ तत्र शीतलगतं वयोगतं जातपित्तरुधिरस्य योग्यताम् ॥ पथ्यमत्र च नरस्य शीतलं दृश्यते कथमपि त्रयोद्भवम् ॥ ४३॥ शृतं क्षीरं सिता पथ्यं चन्द्रिकासेवनं निशि ॥ श्यामारामारतं शस्तं प्रभाते निर्मलं दधि॥ ४४ ॥ कामिन्यालिङ्गनानन्दश्रान्तः शीतसिरोरुहैः ॥ चंदनादीनि सेवेत दृष्टं शरदि कोपनम् ॥ एवं प्रशमनं दृष्टं शरत्पित्तप्रकोपने ॥ ४५ ॥

अथ शरदऋतुका लक्षण और उपचार—सूर्य्य और शिलाके समान रुचिवाले और अल्प झिरनेवाले और अल्प शब्दको करनेवाले ऐसे मेघ होजावै और हंसोंकी पंक्ति तथा कमलोंकी पंक्ति तिसकरकै मंडित जलवाला और शोभित कमलोंका स्थान होजावै और तीव्र तथा स्निग्धरूपी किरनोंवाले चंद्रमासे स्वच्छ और आनंदवाली और चित्ररूपवाली और घामसे पक्वहुये पानीसे सुरसरूप ऐसी चांदनी होवै और मलसे रहित पानी होवै ॥ ४२ ॥ ऐसी शरदऋतुमें आकाशका पानी और पित्तरक्तके योग्य पदार्थ और शीतल पदार्थ येबस

पथ्य है इसऋतुमें सन्निपातका कोप कदाचित् होता है ॥ ४३ ॥ घृत–दूध–मिश्री–रात्रीमें चांदकी चांदनीको सेवना-श्यामरंगकी बाला स्त्रीसे भोग-प्रभातमें निर्मलदही ये सब शरदऋतुमें पथ्य है ॥४४॥ स्त्रीके आलिंगनसे प्राप्तहुये आनंदसे श्रांतहुये पुरुष कमलोंकरके अपने श्रम दूर करै, और शरदऋतुमें पित्तका प्रकोप होनेसें चंदनादिकोंका लेप करै यह कमलधारण और चंदनानुलेपन शरदऋतुमें पित्तके प्रकोपका शमन कारीहै ऐसा देखा है ॥ ४५ ॥

अथ हेमन्तवर्णनम्

बहुशीतः समीरोऽल्पश्चाल्पवासरता ऋतौ ॥ अल्पतेजा दिवानाथो धूमाक्रांताच दिग्भवेत्॥४६॥ विस्तीर्णशालिकेदारा नीलधान्योज्वला मही॥ एवंगुणसमायुक्ता हैमन्ती स्म भवेदृतुः ॥ ४७ ॥ तत्र वातकफा दोषा दृश्यंते कुपिता भृशम् ॥ अग्निसंसेवनं पथ्यं कटुक्षाराम्लसेवनम् ॥ ४८॥ गौरारामारतं शस्तं व्यायामश्च प्रशस्यते ॥ एवं संशाम्यंति दोषाः कफवातसमुद्भवाः ॥ ४९ ॥ बलिनः शीतसंरोधा हेमन्ते प्रबलोऽनिलः ॥ भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः ॥ ५० ॥ अतो हिमेऽस्मिन् सेवेत स्वाद्वम्ललवणान्रसान् ॥ दीर्घानिशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः ॥ ५१ ॥ भवन्त्यकार्य्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ॥ ५२ ॥ अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम् ॥ प्रातर्भुक्त्वा च मधुरकषायकटुतिक्तकम् ॥ ५३ ॥

अथ हेमंतऋतुका लक्षण और उपचार–बहुत शीतलवायु चलै अथवा वायु अल्पचलै और दिनका समय थोडा होजावे और अल्प तेजवाला सूर्यरहे और धूमेंसे आकुलित हुई दिशा होवै ॥४६॥ और विस्तारको प्राप्तहुये चावलोंके खेत होवें और नील तथा अन्नसे प्रकाशित पृथिवी होवै ऐसे गुणोंसे संयुक्त हेमंतऋतु होता है ॥ ४७ ॥ इस ऋतुमें अतिशयसे कुपितहुये वात और कफ दीखते हैं इसमें अग्नि सेवना और चर्चरा–खारा–खट्टा–इन्होंको सेवना पथ्य है ॥ ४८ ॥ गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और कसरत करना श्रेष्ठ है ऐसे कफवातसे उपजा दोष शांत होता है ॥ ४९ ॥ **कितनेक वैद्योंका मत**–बलवाले मनुष्यके शीतको रोकनेसे हेमंतऋतुमें वायु प्रबल हो जाताहै पीछे वायुसे प्रेरित किया यही वायु अल्प आहारआदिवाला होकै धातुओंको पकाता है ॥ ५० ॥ इसवास्ते शीतकालमें स्वादु,–खट्टा,–सलोना–ऐसे रसोंको सेवै और हेमंतऋतुमें बडी रात्रियोंके होनेसे प्रभातमेंही भोजन करनेकी इच्छावाला मनु-

ष्य हो जाता है ॥ ५१ ॥ इसवास्ते अकार्यंकी संभावना करकै यथोक्त द्रव्यका अभ्यास करै॥ ५२ ॥ आक, वड, खैर, करंजुआ, अर्जुनवृक्ष इन आदिको प्रभातमें खाकै पीछे मधुर, कसैला, चर्चरा, कडुआ इन रसोंको सेवै ॥ ५३ ॥

अथ शिशिरवर्णनम् ॥

बहुलशिशिरवातः किञ्चिदुद्भूतसस्या भवति वसुमतीयं पक्वशस्यैस्तु पीता ॥ कथमपि तु हिमं स्याल्लिङ्गवैशेषिकं वा पवनकफविकारो जायते शैशिरे च ॥ ५४ ॥ गौरारामारतमतिशयेनारुणान्यम्बराणि सेव्यं तिक्तं कटुकलवणं प्रायशो ह्यम्लमेव ॥ स्वेदोन्मर्दं प्रतिदिनमिदं कारयेद्यत्र सम्यग् नाशं यातोऽनिलकफगदौ क्वास्ति तेषां प्रकोपः ॥ ५५ ॥

अथ शिशिरऋतुका लक्षण और उपचार—बहुत शीतल वायु चलै और पृथ्वीपर कछुक धान्य उत्पन्न हो और पकी हुई खेतीसे पीली पृथिवी होवै और जाडा पडै और चिन्हकी विशेषता हो तिसको शिशिर ऋतु कहते हैं इसमें वात और कफके विकार उपजते हैं ॥ ५४ ॥ और इस ऋतुमें गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और अतिशय करके लाल रंगके वस्त्रोंको पहनना और कडुआ, चर्चरा, सलोना ये रस सेवने चाहिये और विशेष करके खट्टा रस सेवना चाहिये और इस ऋतुमें पसीनाका लाना और मर्दन करना नित्यप्रती अच्छी तरह करना चाहिये ऐसे करनेसें वात और कफके रोग नाशको प्राप्त हो जाते हैं और तिनोंके प्रकोपकी कौन कथा है ॥ ५५ ॥

अथ वसंततुर्वर्णनम् ॥

मुदितकोकिलकूजितकाननं मदनसूचितकिंशुकशोभितम् ॥ कुसुमसौरभरञ्जितभूधरं क्वणितमत्तमधुव्रतलालसम् ॥ ५६ ॥ मकरकेतनबाणसमाकुलं मुदितमेव समस्तमिदं जगत् ॥ मलयमारुत उष्णगुणान्वितः कफकरो हि वसन्तऋतुर्भवेत् ॥ ५७ ॥ कफजकोपविनाशनलालनं वमननावनरूक्षनिषेवणम् ॥ ५८ ॥ विविधः सुरतानन्दः सम्भ्रमः कफवारणः ॥ व्यायामश्रमसंरोधखिन्नविश्रान्तमानसः ॥ ५९ ॥ कटुक्षाराम्लाः सेव्याश्च शोषणं कफसम्भवम् ॥ एवंक्रियासमापन्नो नरः शीघ्रं सुखी भवेत् ॥ ६० ॥

अथ वसंतऋतुका लक्षण और उपचार—जहां आनंदित हुये कोयल पक्षी वनमें बोलै और कामदेवको सूचित करते हुये केशूके फूलोंसे शोभा हो और फूलोंके गंधसे रंजित पर्वत होवें और जहां खेलते हुये और मदवाले भोरोंकी शोभाहो ॥ ५६ ॥ और कामदेवके बाणसे समाकुल और आनंदित जगत् होवै तिसको वसंतऋतु कहते हैं यह सुंदर वायुसे और उष्ण गुणसे अन्वितहुआ वसंतऋतु होता है यह कफको उपजाता है ॥ ५७ ॥ इस ऋतुमें वमन—नस्य—रूषापदार्थ—इन्होंको सेवना कफके कोपको नाशता है ॥ ५८ ॥ अनेक प्रकारसे कामदेवका आनंद और अच्छीतरह चलना फिरना कफको दूर करता है और इस ऋतुमें कसरतका परिश्रमके रोकनेसे स्वेदित और श्रांतमनवाला मनुष्य सुखी रहता है ॥ ५९॥ और चर्चरा, खारा, खट्टा, ये रस सेवने चाहिये ये कफको शोषते हैं ऐसी क्रियाको प्राप्तहुआ मनुष्य शीघ्र सुखी होजाताहै ॥ ६० ॥

अथ ग्रीष्मवर्णन ॥

दीर्घवासरसंतीक्ष्णं ज्वालामालाकुलं जगत् ॥ दिशि दिशि मृगतृष्णा चोष्णं भृशं भवेद्रजः ॥ ६१ ॥ नैर्ऋतो मारुतो रूक्षः शीर्णपर्णा महीरुहः॥ दग्धतृणाकुलारण्यं दावाग्निसङ्कुला दिशः ॥६२॥ एवं तु लक्ष्म ग्रीष्मस्य पित्तरक्तमुदीर्य्यते ॥ तस्मात् क्रियाप्रतीकारं कुर्य्यात् संशमनं भिषक् ॥ ६३ ॥ जलक्रीडादिवानिद्रासेवनं सुखसाधनम् ॥ श्यामारामारतं शस्तं किञ्चल्कं कुञ्जशीतलम् ॥ ६४ ॥ नीलनालदलोपेतः श्रमघ्नो व्यजनानिलः ॥ केतक्यामोदकुसुमं चन्दनोशीरशीतलैः ॥ ६५ ॥ लेपनं शीतलं सम्यग्धारागाराशयः पुनः ॥ एवंक्रियासमापन्नो ग्रीष्मे च सुखसङ्गमः ॥ ६६ ॥ इति आत्रेयभाषिते ऋतुचर्य्यानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ ग्रीष्मऋतुका लक्षण और उपचार—बडे दिन होवै और तीक्ष्ण होवै और गरमीके समूहसे जगत् व्याकुल होजावै और दिशा दिशमें मृगतृष्णा अर्थात् विनाहुआ जलसा प्रतीत होवै और अति गर्मी और धूली उडै ॥ ६१ ॥ नैर्ऋतदिशाका रूषा वायु चलै—और वृक्षोंके पत्ते उडजावै और दग्धहुये तृणोंके समूहसे व्याप्त वन होवै और दावाग्निसे संकुलित दिशा होजावै ॥ ६२ ॥ तिसको ग्रीष्मऋतु कहते हैं इसमें पित्त और रक्त बढता है तिसवास्ते वैद्य रक्तपित्तको शमन करनेवाली क्रियाको करै ॥ ६३ ॥ इस ऋतुमें जलकी क्रीडा दिनमें शयन करना श्यामवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और कछुक शीतल वस्तुको सेवना ये पथ्य है ॥ ६४ ॥ नीले कमलके पत्तोंसे संयुक्तहुये पंखेकी पवन ग्रीष्मके परिश्रमको

हरता है और केतकीके खिलेहुये फूल, सफेद चंदन, खस, शीतलचीज, इन्हों करकै ॥६५॥ अच्छीतरह लेप करना और फुहाराके स्थानमें वसना ऐसे क्रियाको प्राप्तहुआ मनुष्य ग्रीष्मऋतुमें सुखी रहता है ॥ ६६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने ऋतुचर्य्यानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातो वयोज्ञानं वक्ष्यते ॥

वयश्चतुर्विधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥ हीनं चातुर्थिकं प्रोक्तं तानि व क्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ १ ॥ बालं युवानं वृद्धं च मध्यमं च तथैव च ॥ चतुर्विधं वयः सम्यक् तत्समासेन वक्ष्यते ॥ २ ॥

इसके अनंतर वय अर्थात् अवस्थाके ज्ञानको कहेंगे—अवस्था चार प्रकारसे कही है उत्तम, अधम, मध्यम, हीन, ऐसे तिन्होंको अब कहताहूं ॥ १ ॥ बालक, जुवान, वृद्ध, मध्यम, ऐसे चार प्रकारकी अवस्था हैं तिसको विस्तारसे कहताहूं ॥ २ ॥

मध्यमवयोलक्षणम्

पथि श्रान्तं श्रमक्षीणं बालस्त्री सुकुमारकम् ॥
एतेषां मध्यमा संज्ञा प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ ३ ॥

रस्तामें श्रांतहुआ और श्रमसे क्षीणहुआ, बालक, स्त्री, सुकुमार अर्थात् कोमल मनुष्य, इन्होंकी वैद्यकशास्त्रमें मध्यम संज्ञा कही है ॥ ३ ॥

आषोडशाद्भवेद्बालः पञ्चविंशो युवा नरः ॥ मध्यमं सप्ततिर्य्यावत्परतो वृद्ध उच्यते ॥ ४ ॥ तथा च सुकुमारश्चेत्येते मध्यमसंज्ञकाः॥ वयसः षोडशाधिक्यं समयश्च भवेत्तु यः ॥ ५ ॥ आविंशति समाः प्राप्तो यथा च कृशदेहवान् ॥ पूर्णं वयः स्त्रियः प्राप्ता मध्यमे चाधमं वयः ॥ ६ ॥

सोलहवर्षतक बालक अवस्था होती है पच्चीस वर्षतक जुवान अवस्था होती है सत्तरवर्षतक मध्य अवस्था होती है इस्से पर वृद्ध अवस्था है ॥४॥ये तीन और सुकुमार ये सब, मध्यमसंज्ञक हैं तिसको सोलहवर्षसे अधिक जो समय प्राप्त होवे ॥५॥ और वीशवर्षतक और

जैसे कृश देहवाला होता है तैसेही रहै और जो सुकुमार स्त्री पूर्णअवस्थातक ऐसीही रहै यह मध्यम अवस्थामें अधम अवस्था कहाती है ॥ ६ ॥

पञ्चविंशत्समादूर्द्ध्वमापञ्चाशद्वतः पुमान् ॥ कर्मकठोरा वनिता दृश्यते चोत्तमं वयः ॥ ७ ॥ सप्तविंशत्समादूर्द्ध्वं पञ्चाशत्संयुताः समाः ॥ वालवृद्धिस्तथा यस्य इत्येतदुत्तमं वयः ॥ ८ ॥

पच्चीसवर्षसे उपरंत और पचाशवर्षतक और क्रियामें कठोर पुरुष और स्त्री रहते है यह उत्तम अवस्था दीखती है ॥ ७ ॥ सत्ताईस वर्षसे उपरंत और पचाशवर्षतक जिस मनुष्यके वालोंकी वृद्धिहोवे यहभी उत्तम अवस्था है ॥ ८ ॥

स्थूलोऽतिदीर्घकठिनस्तथा स्त्री बृहदौदरा ॥
इत्युत्तमो ऽवयववान्ज्ञातव्यश्चोत्तमोत्तमः ॥९॥

स्थूल-अतिलंबा-कठोर—ऐसा पुरुष होवै और बडे पेटवाली स्त्री होवै ऐसे उत्तम अवयवोंवाला मनुष्य होता है यह उत्तमोत्तम मनुष्य जानना ॥ ९ ॥

षष्ठ्यूर्द्ध्वमशीतिसमाः प्राप्तं हीनबलं वयः ॥
तदूर्द्ध्वं हीनहीनश्च विज्ञेयो वयसः क्रमः॥१०॥

साठवर्षसे उपरंत अस्सावर्षतक हीनबल अवस्था होती है और अस्सीवर्षसे उपरंत होनसेभी हीन अवस्था होती है ऐसे अवस्थाका क्रम जानना चाहिये ॥ १० ॥

क्षीणाध्वश्रान्तसंखिन्नस्तथा रोगानुपीडितः ॥
रूक्षश्चातिकृशो ज्ञेयो बालसात्म्यमुदाहृतम् ॥११॥

क्षीण—मार्गमें श्रांतहुआ खेदको प्राप्तहुआ—रोगसे पीडित हुआ—रूषा—अति कृश—ये मनुष्य बालककी प्रकृतिके समान प्रकृतिवाले होते हैं ॥ ११ ॥

सुकुमारोऽतिभीरुश्च मध्यकायस्त्रियोपि वा ॥
मध्यसात्म्योऽपि विज्ञेयो मध्यमो वयसात्म्यकः ॥ १२ ॥

कोमल शरीरवाला—अति डरनेवाला—मध्य शरीरवाला—स्त्री—मध्य प्रकृतिवाला—ऐसा मनुष्य मध्य अवस्थावाला जानना ॥ १२ ॥

पञ्चवर्षा स्मृता बाला मुग्धा च षट्समावधिम् ॥ द्वादशाब्दं स्मृता बाला मुग्धा स्यात्सप्तमावधिम् ॥ १३ ॥ प्रौढा च नववर्षाणि प्रगल्भा च त्रयोदश ॥ चतुर्विंशद्वर्षादूर्द्ध्वं सप्तत्रिंशतिमध्यगाः ॥ पूर्णं वयःस्त्रियः प्राप्ता इत्येतदुत्तमं वयः ॥ १४ ॥

पांच वर्षकी स्त्री बालक कहाती है और पीचसे आगे छः वर्षतक स्त्री मुग्धा कहाती है अथवा बारह वर्षकी स्त्री बाला कहाती है और बारहवर्षके आगे सात वर्षसे लगायत स्त्री-मुग्धा कहाती है ॥१३॥तिसके पीछे नव वर्षतक स्त्री प्रौढा कहाती है और तिसके पीछे तेरह वर्षतककी स्त्री प्रगल्भा कहाती है. और इतनेवयके बीचमेंही और चौवीसवर्षसे उपरंत सैंतीस-वर्षतक मध्य अवस्थाकी स्त्री पूर्ण अवस्थाको प्राप्त होती है यह उन्होंकी उत्तम अवस्था है

अथ प्रकृतीका ज्ञान ॥

मध्यसात्म्यश्च स्थूलः स्याद्बलवान् सत्त्ववान्नरः ॥
सचाऽप्युत्तमसात्म्यः स्याद्बलवत्समुपाचरेत् ॥१५॥

मध्य प्रकृतिवालाहो और स्थूलहो बलवालाहो सत्ववालाहो ऐसाभी मनुष्य उत्तम प्रकृ-तिवाला होता है पीछे यह मनुष्य अच्छे २ उपचार करै ॥ १५ ॥

अथ वातादिप्रकृतयः ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रकृतिज्ञानमुत्तमम् ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्॥१६॥

इसके अनंतर उत्तमरूपी प्रकृतिज्ञानको कहताहूं वातिक अर्थात वातकी प्रकृति पैत्तिक अर्थात् पित्तकी प्रकृति श्लैष्मिक अर्थात कफकी प्रकृति सान्निपातिक अर्थात् सन्निपातकी प्रकृति ऐसे है ॥ १६ ॥

अथ वातप्रकृतिलक्षणम् ॥

यः कृष्णवर्णश्चपलोऽतिसूक्ष्मः केशाल्परूक्षो बलवान् क्षमः स्यात् ॥
सूक्ष्मातिदन्तो नखवृद्धिमेति दीर्घस्वनश्चङ्क्रमणक्षमोऽसौ ॥ १७ ॥ दीर्घा
क्रमो लोलुपहीनसत्त्वस्तथैव चाम्लीरसभोजनेच्छुः॥संस्वेदनेनातिविमर्द
नेन सौख्यं समागच्छति वातलो नरः ॥ १८ ॥

अथ वातकी प्रकृतिका लक्षण—जो कृष्णवर्णवालाहो चपलहो अतिकृश शरीरवाला हो अल्पवालोंवालाहो रूखाहो बलवालाहो समर्थहो अतिसूक्ष्म दंतोंवालाहो और नखोंकी वृद्धिको प्राप्त होवै बडा और लंबा बोलनेवालाहो चलनेफिरनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥ और बहुत कूदनेवालाहो लोभीहो सत्वसे वर्जितहो और खट्टे रसको खानेकी इच्छावालाहो और अच्छीतरह पसीना देनेसे तथा मर्दन करनेसे सुखको प्राप्त होवै ऐसा मनुष्य वात-की प्रकृतिवाला होताहै ॥ १८ ॥

अथ पित्तप्रकृतिलक्षणम् ॥

गौरातिपिङ्गः सुकुमारमूर्त्तिः प्रीतः सुशीतो मधुपिङ्गनेत्रः ॥ तीक्ष्णोऽपि कोऽपि क्षणभङ्गुरश्च त्रासी मृदुर्गात्रमलोमकं स्यात् ॥ १९ ॥ गौल्य प्रियस्तिक्तरसानुभोजी द्वेषी च तीक्ष्णे च नवोष्णसेवी ॥ स्तुतिप्रियो दन्तविशुद्धवर्णो जातः सपित्तप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ २० ॥

अथ पित्तकी प्रकृतिका लक्षण—गौरवर्णवालाहो अति पिंगवर्णसे संयुक्तहो और सुकुमार मूर्तिवालाहो प्रीतिवालाहो शीतल पदार्थको चाहनेवालाहो मधसरीखे तथा पिंगवर्णके नेत्रोंवालाहो तेज स्वभाववालाहो और कोईक क्षणभंगुरभीहो उद्वेगसे संयुक्तहो कोमलहो शरीरमें केश बहोतनहीं हो ॥ १९ ॥ और चंचलपनेमें प्रियता करनेवाला हो कडुआ रसको खानेवालाहो वैर करनेवालाहो तेजसे संयुक्तहो नवीन और गर्म वस्तुको सेवनेवालाहो अपनी स्तुतिको चाहनेवालाहो दंतोंसे विशेष करके शुद्धवर्णवालाहो ऐसा मनुष्य पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २० ॥

अथ कफप्रकृतिलक्षणम्॥

सुस्निग्धवर्णः सितनेत्रतृप्तः श्यामः सुकेशो नखदीर्घरोमा ॥ गम्भीरशब्दः श्रुतशास्त्रनिद्रातन्द्राप्रियस्तिक्तकटूष्णभोजी ॥ २१ ॥ स मांसलः स्निग्धरसप्रियश्च सगीतवाद्योऽतिसहिष्णुशीतः ॥ व्यायामशीलो रतलालसोऽसौ भवेत् कफस्य प्रकृतिर्मनुष्यः ॥ २२ ॥

अथ कफकी प्रकृतिका लक्षण—सुंदर स्निग्ध वर्णवालाहो और सपेद नेत्रोंसे तृप्तहो श्यामवर्णवालाहो सुंदर बालोंवालाहो लंबे नख और रोमोंसे संयुक्तहो गंभीर बोलनेवालाहो और वेद, शास्त्र, नींद, तंद्रा, इन्होंमें प्यार करमेवालाहो कडुआ और चर्चराको भोजन करनेवालाहो ॥ २१ ॥ और मोटाहो स्निग्धरसको चाहनेवालाहो गीत और बाजेको पसंद करनेवालाहो अतिसहनेमें शीलस्वभाववालाहो कसरतको करनेवालाहो विषयभोगमें इच्छावालाहो ऐसा मनुष्य कफकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २२ ॥

अथ समप्रकृतिलक्षणम् ॥

संमिश्रवर्णोऽतिसुदीप्तगात्रो गम्भीरधीरोऽतिविदीर्णरोमा ॥
रामाप्रियो भारसहोऽतिमिश्रो भोगेन युक्तः समता प्रकृत्याः ॥२३॥

कई प्रकारसे मिलेहुये वर्णवाला और अतिसुंदर प्रकाशित आंगोंवाला और गंभीरप-

नेमें धीर और अति विदारितहुये रोमोंवाला और स्त्रीसे प्यार करनेवाला और भार अर्थात् बोझाको सहनेवाला और सब लक्षणोंसे अति मिलाहुआ और भोगको भोगनेवाला ऐसा मनुष्य समप्रकृतिवाला होता है ॥ २३ ॥

अथ दिशाभेदेन वातगुणदोषाः ॥

पूर्वदिशाका वायु ॥

अथान्तरं वच्मि मरुत्प्रवाहं पूर्वं तथा पश्चिमदक्षिणोत्तरम् ॥ तेषां गुणान् दोषविकोपनं च पृथक्पृथक्मे गदतः शृणु त्वम् ॥ २४ ॥ शीतोऽतिमाधुर्य्यगुणः प्रयुक्तो वातप्रकोपी बलकृद्विशेषात् ॥ वाताधिकानां व्रणशोफिनाञ्च प्राचीप्रवृत्तः पवनो न शस्तः ॥ २५ ॥

अथ आठ दिशाओंमें प्रवृत्तहुआ वायुके गुणदोषवर्णन–इसके अनंतर वायुके प्रवाहको कहताहूं पूर्व–पश्चिम–दक्षिण–उत्तर–इनदिशाओंके वायुके गुण–दोष–कोप-इन्होंको कहतेहुये मेरेसे पृथक् २ सुन ॥ २४ ॥ शीतलस्वभाववाला और अतिमधुरपनाके गुणोंसे युक्त और वातको कोपनेवाला और विशेष करके बलको करनेवाला ऐसा पूर्वदि–शाका वायु है यह वातकी अधिकतावालोंको और घावपै शोजावालोंको श्रेष्ठ नहीं है२५

आग्नेयदिशाका वायु ॥

किञ्चित्सतिक्तो मधुरान्वितः स्यात् कफः समीरोद्भवरोगकारी ॥
सुशीतलः शोफवतां व्रणानां शस्तो न चाग्नेयसमीरणश्च॥२६॥

कछुक कडुआहो मधुररससे अन्वित है कफ और वातसे उपजे रोगोंका करताहै सुंदर शीतल है शोजावाले घावोंको अच्छा नहीं है ऐसा अग्निदिशाका वायु है ॥ २६ ॥

दक्षिणदिशाका वायु ॥

तिक्तः कषायो मधुरातिमन्दः सुगन्धसंशीतगुणैः प्रकृष्टः ॥ वदन्ति संज्ञां मलयानिलेति प्रकृष्टरामाजनचित्तहारी ॥ २७ ॥ मनोभवस्य प्रकरो मरुत्स्यात्कफोद्भवः सम्भवति प्रचारः ॥ न चातिशीतो न तथोष्णको वा शुभश्च याम्यां प्रभवः समीरः ॥ २८ ॥

कडुआ हो कसैलाहो मधुररससे अतिमंद है और सुगंध तथा शीतल गुणोंकरकै संयुक्तहो और मलयानिलसंज्ञावालाहो यह स्त्रियोंके चित्तको हरता है ॥२७॥ और कामदेवको जगाताहो कफके रोगोंको करताहो और अतिशीतल नहीं हो और अतिगर्म नहीं हो और शुभ हो ऐसा दक्षिणदिशाका वायु है ॥ २८ ॥

नैर्ऋत्यदिशाका वायु ॥

रूक्षोष्णवातः प्रथमः समीरः कट्वम्लपित्तासृजि दोषकारी ॥
प्रशोषणो देहबलस्य वायुः कफान्वितो नैर्ऋतिकः समीरः ॥ २९ ॥

रूषाहो और गर्मवायुसे संयुक्तहो और वायुको शांत करताहो और कटु, अम्ल, पित्त, रक्त, इन्होंमें दोषको करताहो और देहके बलको शोषनेवालाहो और कफसे अन्वितहो ऐसा नैर्ऋतदिशाका वायु होता है ॥ २९ ॥

पश्चिमदिशाका वायु ॥

अथातिसूक्ष्मो मरुतः प्रशस्तो नूनं प्रतीच्यास्तु दिशः प्रवृत्तः ॥
वायुस्तथोदीरति रक्तपित्तं शस्तो व्रणानां कफशोफिनां वा ॥ ३० ॥

पश्चिमदिशाका अतिसूक्ष्म वायु श्रेष्ठ है और दक्षिणदिशाका वायु रक्तपित्तको बढाता है यह वायु घाववालोंको और कफसे उपजे शोजेवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

वायव्यदिशाका वायु ॥

वायव्यजातो मरुतः प्रशस्तः कषायसंशुष्कगुणप्रसन्नः ॥
करोति वातस्य वशं नराणां शस्तो न निन्द्यो व्रणशोफिनाञ्च॥३१ ॥

वायव्यदिशाका वायु श्रेष्ठ है कसैला और अति सूखा गुणसे संपन्न है और मनुष्योंको हवाके वशमें करता है और घावपै शोजावालोंको श्रेष्ठ है और निंदित नहीं है ॥ ३१ ॥

उत्तरदिशाका वायु ॥

स्वादुः कषायश्च कफप्रकोपी वायुः कुबेरस्य दिशः प्रवृत्तः ॥
करोति मेघागमनं जलस्य शीतो न चोष्णो न च निन्द्य एषः ॥३२॥

उत्तर दिशाका वायु सजल मेघको लाता है शीतल है गर्म नहीं है कसैला है स्वादु है कफको कोपता है यह निंदाके योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

ऐशानदिशाका वायु ॥

शीतोतिगौल्यः कफवातकोपं करोति चैशानदिशः प्रवृत्तः ॥
शस्तश्च नासौ व्रणशोफकासिनां क्षमस्तथा श्वासविकारिणाञ्च॥ ३३॥

ईशान दिशाका वायु शीतलहै चंचल है कफ और वातके कोपको करता है और घाव-शोजा-खांसी-क्षय-श्वास रोग-इनविकारवालोंको अच्छा नहीं है ॥ ३३ ॥

अन्यपंचविधवायुगुणः ॥

वस्त्रं नानाविधं चर्म वैणवं तालव्यजनम् ॥
उशीरं शिखिपिच्छन्तु प्रत्येकेन गुणोत्तमाः ॥ ३४ ॥

अथ वस्त्रआदिके वायुका गुणदोषकथन—अनेक प्रकारका वस्त्र, चाम, वांसका पंखा, ताडका पंखा, खसकी टट्टी अथवा पंखा, मोरके पंखोंका पंखा, ये सब हवाके करनेमें एक एक करकै गुणोंमें उत्तम है ॥ ३४ ॥

वस्त्रवायुगुणः ॥

वस्त्रप्रवृत्तो मरुतो न शस्तो व्रणशोफिनाम्॥रक्तवासःसमुत्पन्नं विशेषेण तु वर्जयेत् ॥३५॥ करोति कफरक्तस्य कोपनं बहुरोगकृत् ॥ श्रमग्लानिपिपासासु तन्द्रानिद्राकरो भृशम् ॥ ३६ ॥

वस्त्रकी हवा घावपै शोजावालेको अच्छी नहीं है और लाल वस्त्रसे उपजी हुई हवाको विशेष करकै त्यागै॥३५॥क्योंकि लाल वस्त्रकी हवा कफ रक्तको कुपित करती है और बहुतसे रोगोंको उपजाती है और परिश्रम ग्लानि-पिपासा-तंद्रा-नींद-इन्होंको अति करतीहै ॥३६॥

वेणुवायुगुणः ॥

वैणवं व्यजनं तन्द्रानिद्राकरणमेव च ॥ रूक्षोऽतिकषायरसो न च वातप्रकोपनः ॥ ३७ ॥

वांसका पंखा तंद्रा और नींदको करता है रूषा है अतिकसैला रसवाला है और वातको कोपित नहीं करता है ॥ ३७ ॥

कांस्यपात्रवायुगुणः॥

कांस्यपात्रमरुद्रूक्षः सोष्णो वातस्य शान्तिकृत् ॥ दाहश्रमघ्नः स्वेदघ्नो निद्रासौख्यकरो नृणाम् ॥ ३८ ॥

कांस्यपात्रकी हवा रूखी है गर्म है वातको शांत करती है दाह और श्रमको हरती है और मनुष्योंके नींद और सुखको करती है ॥ ३८ ॥

तालपत्रवायुगुणः ॥

तालपत्रकरम्भाया दलस्य व्यजनो हिमः॥ मधुरोऽतिश्रमघ्नः स्यादार्द्रत्वात्कफकोपनः ॥ ३९ ॥ निद्राकरः प्रीतिकरः शोकरोगविकारहा ॥ दाहपित्तश्रमग्लानिनाशनो भ्रमशान्तिकृत् ॥ ४० ॥

ताडका पत्ता और केलाका पत्ताका पंखाकी हवा शीतल है मधुर है अतिश्रमको हरती है और गीलेपनेसे कफको कोपती है ॥ ३९ ॥ और नींदको करती है प्रीतिको करती है शोक, रोग, विकार इन्होंको नाशती है और दाह, पित्त, परिश्रम, ग्लानि, इन्होंको नाशती है और भ्रमकी शांतिको करती है ॥ ४० ॥

व्यजनवायुगुणः ॥

उशीरमूलरचितं व्यजनं शिखिपिच्छकैः ॥ व्यजनेन सुगन्धः स्यान्मन्दशीतगुणात्मकः ॥ ४१ ॥ ग्लानिमूर्च्छाभ्रमशोषविसर्पविषदर्पहा ॥ इति पञ्चविधो वायुरुपायेन कृतो नृणाम् ॥ ४२ ॥

खसकी जडसे और मोरके पंखोंसे रचाहुआ पंखाकी हवा सुगंधको देती हैं कछुक शीत गुणवाली है ॥ ४१ ॥ और ग्लानि–मूर्च्छा–भ्रम–शोष–विसर्प–विष–इन्होंको नाशती है ऐसे मनुष्योंके लिये उपायसे कियाहुआ वायु पांचप्रकारका है ॥ ४२ ॥

षड्तुओंमें वायुदिशा ॥

शिशिरे पूर्वकृद्वायुराग्नेयो हेमन्ते मरुत् ॥ वसन्ते दक्षिणो वायुर्ग्रीष्मे नैऋत्यकस्तथा ॥ ४३ ॥ वर्षासु पश्चिमो वायुर्वायव्यः शरदि स्मृतः ॥ शिशिरे च हेमन्ते च कथितश्चोत्तरोऽनिलः ॥ ४४ ॥

शिशिर अर्थात् माघ फाल्गुनमें पूर्वका वायु अच्छा है हेमंत अर्थात् मृगशिर पौषमें अग्निदिशाका वायु अच्छा है वसंत अर्थात् चैत्र वैशाखमें दक्षिणका वायु अच्छा है ग्रीष्म अर्थात् ज्येष्ठ आषाढमें नैर्ऋतका वायु अच्छा है ॥ ४३ ॥ वर्षा अर्थात् श्रावण भादुआमें पश्चिमका वायु अच्छा है शरद अर्थात् आश्विन कार्तिकमें वायव्यदिशाका वायु अच्छा है शिशिर और वसंतऋतुमें उत्तरका वायुभी अच्छा है ॥ ४४ ॥

दिनमें षड्तूओंके उपचार ॥

अपराह्णे वर्षा वदन्ति निपुणास्तस्मिन्निशीथे शरत् प्रोक्तः शैशिरिकस्ततो हिमऋतुः सूर्य्योदयादयतः ॥ मध्याह्ने च तथा वदन्ति निपुणा ग्रीष्मो ऋतुः स्यात्ततो वासन्तः कथितो ऋतुस्तु मुनिभिः पूर्वापराह्णे सदा ॥ ४५ ॥

दिनके तीसरे पहरमें वर्षाऋतु होता है अर्द्ध रात्रिमें शरदृऋतु होता है और आधीरातके पीछे शिशिर ऋतु होता है सूर्यके उदयके समय हेमंतऋतु होता है दुपहरके समयमें ग्रीष्मऋतु होता है दिनके पूर्वभागमें वसंतऋतु होता है ॥ ४५ ॥

अथ सविषवायुः ॥

कार्तिके मार्गशीर्षे वा माघे चाषाढसंज्ञके ॥
ऋतुसन्धौ च हेमन्ते सविषः स्यात्तु मारुतः ॥ ४६ ॥

कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ, आषाढ, इन्हेंमें, और छःऋतुओंके संधिमें तथा हेमंतऋतुमें वायु सविष होता है ॥ ४६ ॥

स यस्मिन्नगरे देशे ग्रामे वा नगरेऽपि वा ॥ संस्पृशेदुल्बणो वायुर्गोमनुष्येभवाजिनाम् ॥ ४७ ॥ तिलकं गोषु जानीयाद्यक्ष्माणं मानुषेषु च ॥ गजेषु पावकं विद्याद्धयानां वेद्य उच्यते ॥ ४८ ॥

जिस नगरमें जिस देशमें अथवा जिस गाममें दारुणरूप बिगडाहुआ वायु जब गाय—मनुष्य—हस्ती—घोडा—इन्होंको छुहता है ॥ ४७ ॥ तब गायोंमें तिलक उपजता है और मनुष्योंमें राजरोग उपजता है और हस्तियोंमें पावक अर्थात् अग्नि उपजता है और घोडेंमें पीडा उपजती है ॥ ४८ ॥

रक्षणीयं गजे पित्तं श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा ॥
पवनोऽयं मनुष्याणां प्रायो रक्षेत सर्वदा ॥ ४९ ॥

कुशल वैद्यनें हस्तीमें पित्तकी रक्षा करनी और घोडोंमें सबकाल कफकी रक्षा करनी और सबकालमें विशेष करके मनुष्योंमें वायूको रक्षा करनी ॥ ४९ ॥

अथ दोषोंके वायुकोपका उपशम ॥

वर्षावायुः कुप्यतेऽन्तःशरत्सु लीनो वायुः कुप्यते पित्तरोगे ॥ लीयेत्पित्तं शैशिरे श्लेष्मकुञ्जे हेमन्ते वा चीयमानस्तथापि ॥ ५० ॥ कोपं याति श्लेष्मरोगो वसन्ते तस्माच्छान्तिः श्लेष्मरोगस्य चोष्णे ॥ पित्तं यायात्कोपितां ग्रीष्मकाले दृष्टा शान्तिः पैत्तिकी वार्षिके च ॥ ५१ ॥

वर्षाऋतुमें वायु कोपता है और शरद्ऋतुमें पित्तरोगमें भीतर कुपितहुआ कुपित होताहै शिशिरऋतुमें कफके समूहमें पित्त लीन हो जाता है अथवा हेमंतऋतुमें संचितहुआ पित्त शिशिरऋतुमें लीन हो जाता है ॥ ५० ॥ वसंतऋतुमें कफका रोग कोपको प्राप्त होता है इसवास्ते गर्मसमयमें कफके रोगकी शांति होती है और ग्रीष्मऋतुमें पित्त कोपको प्राप्त होता है और वर्षाऋतुमें पित्तकी शांति देखी है ॥ ५१ ॥

अथ वायुका कोप ॥

अधोवातमूत्रपुरीषस्य रोधात् कषायातिशीतान्निशाजागरेषु ॥ व्यवायेऽथवाहःश्रमाद्वातिभुक्त्याध्वनि प्रायशो भाषणेनातिभीत्या ॥ ५२ ॥ विरूक्षैरतिक्षारतिक्तैः कटूभिस्तथा यानदोलाश्वकोष्ट्रे रथे वा ॥ खरे कुञ्जरे मन्दिरारोहणेनोपवासे भवेन्मारुतस्य प्रकोपः ॥ ५३ ॥ शीते दिने दुर्दिने स्नानपीतेऽपराह्णे निशाजागरे वासरे वा ॥ वर्षासु वै केवलं याति कोपं मरुत्सेवितो याति भुक्तस्य जीर्णम् ॥ ५४ ॥ मसूराः कलायाश्च निष्पावकाश्च महामाषशुभ्रा यवाश्चामलाः स्युः ॥ महाचावलाःकृष्णकान्या प्रदिष्टा हिमाः कङ्गुनीवाररक्ताश्च शाल्यः॥५५॥तथा कोरदूषकः श्यामाक एतैः कृतं चौदनं वा यवागूश्रृतं वा ॥ कलिङ्गानि वास्तूकचिल्लीकपूती पलाण्डुस्तथा गृञ्जनं कन्दशाकम् ॥ ५६ ॥ इमान् सेवितात्यर्थमेति प्रकोपं समीरस्य चोक्तः सुरासम्भवस्तु ॥ ततो यत्नतो रक्षणीयं मनुष्यैः शुभं चेहसे त्वं सदा रोगशान्तिम् ॥ ५७ ॥

अधोवात–मूत्र–विष्ठा–थूकआदिके रोकनेसे कसैला और शीतल पदार्थको सेवनेसे और रात्रिमें जागनेसे मैथुनके करनेसे नित्यप्रति श्रम करनेसे अति भोजनको खानेसे और मार्गमें अति चलनेसे ज्यादै बोलनेसे अति भयसे ॥ ५२ ॥ और रूषै पदार्थसे और अत्यंतसर–कडुआ–चर्चरा–इन्होंसे और डोला अर्थात् पिन्नस–घोडा, ऊंठ, रथ, गधा, हस्ती इन्होंपै चढनेसे अथवा स्थानमेंही रहनेसे वायुका प्रकोप होता है ॥ ५३ ॥ और शीतल दिनमें और मेघआदिसे आच्छादितहुये दुर्दिनमें और दुपहरके पीछे स्नान करनेसे तथा प्रथम पान करनेसे और रात्रिके जागनेमें और वर्षाऋतुमें दिनमें वायु कोपको प्राप्त होता है और सेवित किया वायु कियेहुये भोजनको जराता है ॥ ५४ ॥ मसूर, मठर, मोठ, चौला, जुवार, जव, मोठेचावल, कृष्णअन्न, शीतलअन्न, कांगनी, नीवार धान्य, लालअन्न, तूरीअन्न, ॥ ५५ ॥ कोदूअन्न, शामक, कियेहुये चावल अर्थात् सेंई–गुडयाणीमें बनाये चावल–इंद्रजव–थुवा,–चाकवत अर्थात् वथुवा विशेष, प्याज, गाजर, कंदशाक ॥ ५६ ॥ इन्होंको ज्यादै सेवनेसे वायुका प्रकोप होता है इसवास्ते मनुष्योंनें जतनसे वायुकी रक्षा करनी और हे पुत्र! जो तू सब कालमें शुभ और रोगकी शांतिको चाहता है वायुकी रक्षा करता रह ॥ ५७ ॥

अथ पित्तप्रकोपनिदानम् ॥

अत्युष्णकट्वम्लरूक्षैर्विदाहे ससीन्धूसुरासेवनेनोपवासैः॥घर्मेण क्रोधेन वा स्वेदनेन व्यवायेन वा याति कोपञ्च पित्तम्॥५८॥कुलित्थाढकीयूषमूला कशिग्रुशठीसर्षपाराजिकाशाकमेव ॥ निशाजागरेणापि युद्धे श्रमे वा घनान्ते शरत्सु प्रकोपः प्रदिष्टः ॥५९॥ अम्लेन वापि चोष्णकाले शरत्सु भृशं वासरे मध्यमे वा निशीथे ॥ जीर्णे रसे भुक्तमात्रे प्रकोपः प्रदिष्टो विदैः कोविदैः पैत्तिकः स्यात् ॥ ६० ॥

अतिगर्म, चर्चरा, खट्टा, रूषा, इन्होंको सेवनेसे और दाहमें सेंधानमकसहित मदिराको सेवनेसे गर्मीमें और क्रोधमें पसीने और भोग करनेसे पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ कुलथी, और अरहरका यूष और मूली, सहौंजना, कचूर, सरसों, राई, इन्होंका शाक अथवा इन्होंसे संयुक्त शाकको खाना और वर्षाऋतुमें रात्रिका जागना युद्ध करना—परिश्रम करना—इन्होंसे शरदृऋतुमें पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ खट्टे पदार्थसे और गर्मसमयमें और अतिशय करकै दिनके मध्यभागमें और अर्ध रात्रिमें और जीर्णरसको खानेसे शरदृऋतुमें पित्तका प्रकोप होता है ॥ ६० ॥

अथ कफप्रकोपनिदानम्॥

निशाजागरे वासरे वातिनिद्रा सुशीतोदसंसेवने शीतले वा ॥ पयःपान पीयूषमिक्षुस्तिलैस्तु तथा गृञ्जनैः कन्दशाकैरथापि ॥ ६१ ॥ सदा सेवितैर्वास्तुकैश्वाणुमत्स्यैर्दधिपिच्छिलैर्माषमद्यैर्गुरूभिः ॥ अतिस्निग्धसंसेवनैर्भोजनेषु प्रदिष्टः कफस्य प्रकोपो वसन्ते ॥ ६२ ॥ दिनान्ते प्रभाते निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदिष्टोपि भुङ्क्ते न जीर्णे॥ प्रदिष्टो बुधैः कोविदैरेव रोगः कफोत्पत्ति जानीहि कष्टप्रयुक्ताम् ॥ ६३ ॥ सशीतेऽथवा शीतकाले निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदिष्टोऽपि भुक्तेः ॥ न जीर्णे प्रदिष्टो बुधै रोगवेगो निदानं कफस्येति चोक्तं सुधीभिः ॥६४॥

रात्रिमें जागनेसे और दिनमें अति शयन करनेसे और सुंदर शीतल पानीको तथा शीतल देशको सेवनेसे और दूध—नवीन व्याई गायका दूध—ईख—तिल, गाजर, कंदशाक इन्होंको सेवनेसे ॥ ६१ ॥ और बकराके अंडे तथा मछलीको सदा सेवनेसे और दही—कफकारी पदार्थ—उडद—मदिरा—भारे पदार्थ—अतिचिकना पदार्थ—इन्होंको सेवनेसे वसंतमें

दुष्टहुये कफका कोप होता है ॥ ६२ ॥ दिनके अंतमें–प्रभातमें–रात्रीके अंतमें–भोजनकिये अन्नको नहीं जीर्ण होनेमें कफका कोप होता है ऐसे कफकी उत्पत्तिको कष्टसाध्य जानो ॥ ६३ ॥ शीतल देशमें–शीतल समयमें–रात्रिके अंतमें–भोजनको नहीं जीर्ण होनेमें–मनुष्यके कफका प्रकोप बुद्धिमानोंनें कहा है ॥ ६४ ॥

अथ दोदोषोंके कोपकी उत्पत्ति ॥

यदा विपर्य्यासगते ऋतौ च प्रकोपनं यस्य यथा प्रदिष्टम् ॥ तत्सेवमानस्य नरस्य रोगः स्याद्वन्द्वजो नाम विकारकारी ॥ ६५ ॥ यस्मिन्नृतौ वातविकोप उक्तस्तस्मिन्यदि श्लेष्मविकोपनानि ॥ संसेवते वा मनुजस्तदास्य भवेत्प्रकोपः कफपित्तयोश्च ॥ ६६ ॥ यस्मिन्मरुत्कुप्यति सेवते यः पित्तस्य कोपप्रकराणि यानि ॥ विपर्य्ययो वा ऋतुधान्ययोश्च स पित्तवातप्रभवस्तदा स्यात् ॥ ६७ ॥

जब विपरीतपनेको ऋतु प्राप्त हो जावे तब जिसका कोप जैसे कहा है तिसको सेवनेवाले मनुष्यके द्वंद्वज अर्थात् दोदोषोंसे उपजा रोग उत्पन्न होता है ॥ ६५ ॥ जिस ऋतुमें वायुका कोप कहा है तिसहीऋतुमें जो कफको कुपितकरनेंवाले पदार्थोंको मनुष्य सेवै तब तिस मनुष्यके कफका और पित्तका कोप होता है ॥ ६६ ॥ जिस ऋतुमें वायु कोपता है तिस ऋतुमें पित्तको कुपित करनेंवाले पदार्थोंको सेवै अथवा ऋतुका और ऋतुके योग्य अन्नका विपरीतपना होवै तब पित्त वातसे उपजा रोग होता है ॥ ६७ ॥

अथ सन्निपातकी उत्पत्ति ॥

विपर्य्यासागते काले रसे विपरिसेविते ॥ तदा स्यात्सन्निपातो हि रोगोपद्रवकारकः ॥ ६८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे दोषप्रकोपो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जब काल विपरीतपनेसे वर्तै और रसभी विपरीतपनेसे सेवित कियाजावै तब सन्निपात उपजता है यह रोगमें उपद्रव करता है ॥ ६८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने दोषप्रकोपो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६

अथ रसोंके गुणदोषका वर्णन ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसानाञ्च गुणागुणान् ॥
येन विज्ञानमात्रेण रसानां गुणविद्भवेत् ॥ १ ॥

इसके अनंतर रसोंके गुण और दोषको कहताहूं जिसको जाननेसे रसोंके गुणको जाननेवाला होवै ॥ १ ॥

छःरस ॥

मधुरः कषायस्तिक्तोम्लकश्च क्षारः कटुः षड्रसनामधेयम् ॥
द्वयं द्वयं वातकफप्रकोपनं द्वयं तथा पित्तकरं वदन्ति ॥ २ ॥

मधुर, कसैला, कडुआ, खट्टा, खारा, चर्चरा, ऐसे छः प्रकारके रस हैं इन्होंमें दो दो रस वात और कफको कोपते हैं और दो रस पित्तको करते हैं ॥ २ ॥

षड्रसगुणदोषवर्णनम् ॥

क्षारः कषायः पवनः प्रकोपी मधुरोऽथ तिक्तः कफकोपनश्च ॥ कट्वम्लकौ पित्तविकारकारिणौ कट्वम्लकौ वातशमौ प्रदिष्टौ ॥ ३ ॥ पित्तस्य नाशी मधुरः सतिक्तः कटूकषायौ शमनौ कफस्य ॥ अन्योन्यमेतच्छमनं वदन्ति परस्परं दोषविवृद्धिमन्तः ॥ ४ ॥

खारा और कसैला रस वायुको कोपता हैं मधुर और कडुआ रस कफको कोपता है चर्चरा और खट्टा रस पित्तके विकारको करता है और वातको शांत करता है ॥ ३ ॥ मधुर और कडुआ रस पित्तको नाशता है चर्चरा और कसैला रस कफको शांत करता है आपसमें दोषकी विवृद्धिवाले आपसमें मिश्रितहुये शमनको कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ रसगुणोंके गुणकर ॥

मधुरकटुकावन्योन्यस्य प्रकर्षविधायिनौ लवणवियुतोऽम्लीकः प्रोक्तो विशेषरसानुगः ॥ अविकृतस्तथा तिक्तैर्युक्तः कषायरसो लघुर्भवति सुतरां स्वादुःश्रेष्ठो गुणं प्रकरोति वै ॥ ५ ॥

मधुर और चर्चरा रस आपसके प्रकर्षको करते हैं नमकसे विशेष करकै युक्तहुआ खट्टा रस विशेष रसके पश्चात् गमन करता है नहीं विकारको प्राप्तहुआ और कडुआ रससे युक्तहुआ ऐसा कसैला रस हलका होता है और अच्छीतरह स्वादु रस सेवितकिया जावै तो गुणको करता है ॥ ५ ॥

वातादिविरुद्धरस ॥

कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम् ॥
कट्वम्ललवणाः पित्तं स्वाद्वम्ललवणाः कफम् ॥ ६ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला, ये रस वायुको कोपते हैं चर्चरा, खट्टा, सलोना, ये रस पित्तको कोपते हैं मधुर, खट्टा, सलोना, ये रस कफको कोपते है ॥ ६ ॥

दोषोंके विरोधी रसोंका वर्णन ॥

समीरणे तु नो देयाः कटुतिक्तकषायकाः ॥
पित्ते कट्वम्ललवणाः स्वाद्वम्ललवणाः कफे ॥ ७ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला ये रस वायुमें नहीं देने चाहिये चर्चरा, खट्टा, सलोना, ये रस पित्तमें नहीं देने चाहिये मधुर, खट्टा, सलोना, ये रस कफमें नहीं देने चाहिये ॥ ७ ॥

वातादिकोंमें रसयोजना ॥

स्वाद्वम्ललवणान्वीते तिक्तस्वादुकषायकान् ॥
पित्तेकफे तिक्तकटुकषायान् योजयेद्रसान् ॥ ८ ॥

मधुराम्लौ क्षारकटुकौ तिक्तकषायकौ चेत्येतावन्योन्यरसविरोधिनौ भवेताम् ॥

वायुमें मधुर, खट्टा, सलोना, ये रस युक्त करने पित्तमें चर्चरा, कडुआ, कसैला, ये रस युक्त करने कफमें मधुर, खट्टा, सलोना, ये रसयुक्त करने ॥ ८ ॥ मधुर रस और खट्टा रस विरोधी है खारा और चर्चरा रस विरोधी है कडुआ और चर्चरा रस विरोधी है ॥

अथ मधुर रसके वीर्य्यका वर्णन ॥

यः स्वादुः श्रमशोषहारिबलकृद्वीर्य्यप्रदः पुष्टिदः प्रह्लादं रसने करोति तद नु श्लेष्मप्रवृद्धिं ततः ॥ पित्तानां दमनः श्रमोपशमनो वृष्यो नराणां हितः क्षीणानां क्षतपाण्डुनेत्ररुजसंहर्त्ता भवेन्माधुरः ॥ ९ ॥

जो स्वादुहो श्रम और शोषको हरताहो बलको करताहो वीर्य्यको देनेंवालाहो पुष्टिको देताहो आनंदको देताहो जीभमें कफकी वृद्धिको करताहो पित्तको हरताहो परिश्रमको शांत करताहो मनुष्योंको पुष्ट करताहो क्षीणमनुष्योंके कल्याण करनेंवालाहो और घाव–पांडुरोग–नेत्ररोग–इन्होंको हरताहो तिसको मधुर रस कहतेहैं ॥ ९ ॥

अथ कडुआरसके वीर्यका वर्णन ॥

यस्तिक्तः कफवायुसंहृतिकरः कुष्ठादिदोषापहः शीतः सर्वरुजापहोभ्रमहरो रुच्यो न संक्लेदनः ॥ जिह्वास्फोटकनाशनोऽथ भवति क्षीणक्षतानां हितो वक्त्रोल्लासकरः प्रकृष्टकथितो निम्बादिकास्वादकृत् ॥ १० ॥

कडुआ रस कफवायुका संहार करता है कुष्ठआदि दोषको नाशता है शांतस्वरूप है सबरोगोंको हरता है भ्रमको हरता है रुचिमें हित है क्लेदको अच्छी तरह करता है और जीभकी फुन्सियोंको नाशता है क्षीण और घाववालोंको हित है मुखमें आनंदको करता है और नींबआदिके स्वादको करता है ॥ १० ॥

अथ रसके वीर्यका वर्णन ॥

नेत्रं स्रावयते मुखं विदहते कर्णस्य तापं वहन्बीभत्सं तनुते मुखं विकुरुते पित्तास्रजः कोपनम् ॥ अग्नीनध्युषते क्षतं विदहते जीर्णो न शस्तो भवेत् वातान्नाशयते कफश्च दहते कटुको महारौद्रकः ॥ ११ ॥

चर्चरा रस नेत्रको झिराता है मुखको विशेष करकै दग्ध करता है कानोंमें जालको प्राप्त करता है भयानकरूप मुखको करता है पित्तको और रक्तको कुपित करता है जठराग्नीको जगाता है क्षणमात्र दाहको करता है और पुराना चर्चरारस श्रेष्ठ नहीं होताहै वायुको नाशता है और कफको दग्ध करता है और अति दारुण रूप है ॥ ११ ॥

अथ खट्टारसके वीर्य्यका वर्णन ॥

जिह्वाक्लेदं जनयति तथा नेत्रनिर्म्मीलनं च बीभत्सं वा जनयति सदा वातरोगापहारी ॥ कण्डूकुष्ठक्षतरुजकरो नो हितः शोफिनः स्यादम्लः प्रोक्तो मरुतशमनोऽसृक्प्रकोपं तनोति ॥ १२ ॥

खट्टारस जीभमें क्लेदको करता है नेत्रोंको मीचता है सब कालमें भयानकपनेको उपजाता है वातके रोगको हरता है और खाज, कुष्ठ, घाव, इन्होंको उपजाता है शोजावालेको हित नहीं है वायुको शांत करता है रक्तके कोपको विस्तृत करता है ॥ १२ ॥

अथ कसैलारसके वीर्य्यका वर्णन ॥

जिह्वां कण्ठं ग्रसति नितरां ग्राहकश्चापि सारे श्लेष्मव्याधेरुपशमकरः श्वासकासापहर्त्ता ॥ हिक्काशूलं हरति नितरां शोधनः स्याद्व्रणानां प्रोक्तश्चायं समधिकगुणः श्रेष्ठकाषायनामा ॥ १३ ॥

कसैलारस जीभको और कंठको ग्रसता है अतीसारको बंद करता है कफकी व्याधिको शांत करता है श्वासरोगको और खांसीको नाशता है हिचकीको और शूलको हरता है और घावोंको निरंतर शोधता है यह रस अधिक गुणोंवाला कहा है ॥ १३ ॥

अथ खारारसके वीर्य्यका वर्णन ॥

क्षारः क्लेदं जनयति मुखेऽस्वादुरुष्णो विदाही शूलश्लेष्मारुचिहरतृषा मूत्रकृच्छोषणश्च ॥ आमाहारं जनयति पुनर्वह्निसन्धुक्षणः स्याच्छ्रेष्ठः प्रोक्तःस हि रसमहान्सर्वतो योग्यभूतः ॥ १४ ॥ इति षड्रस वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

खारारस मुखमें ग्लानीकों उपजाता है स्वादु नहीं है गर्म है विशेष करके दाहको करता है और शूल, कफ, अरुचि, तृषा, मूत्र इन्होंको करता है शोषनेंवाला है वारंवार अफाराको उपजाता है जठराग्नीको जगाता है सब जगह योग्य नहीं है कहींक अच्छाभी है ॥ १४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने षड्रस वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥

अथ पानीका वर्ग ॥

—:o:—

अथातः संप्रवक्ष्यामि पानीयानि पृथक्पृथक् ॥
श्रणुध्वं च समासेन गुणान्गुणविपर्य्ययम् ॥ १ ॥

अब पानियोंको अलग २ कहताहूं पानियोंके गुण और दोषोंको सुनो ॥ १ ॥

जलभेद.

द्विविधं चोदकं प्रोक्तमान्तरिक्षं तथौद्भिदम् ॥ आन्तरिक्षं तु द्विविधं गाङ्गं सामुद्रिकं पयः ॥ २ ॥ तद्वच्चतुर्विधं प्रोक्तमन्तरिक्षसमुद्भवम् ॥ भूमौ निपतितं तच्च जातं चाष्टविधं जलम् ॥ ३ ॥ गाङ्गसामुद्रविज्ञानं कथयिष्यामि सांप्रतम् ॥ धारितं येन पात्रेण लक्ष्यते तेन तद्विधम् ॥४॥

पानी दो २ प्रकारका कहा है आंतरिक्ष अर्थात् आकाशका– दूसरा औद्भिद अर्थात् पृथिवीका और आंतरिक्ष पानीभी २ प्रकारका है एक गांग–दूसरा–सामुद्रिक–॥ २ ॥ तै

सेही आकाशसे उपजा पानी च्यारप्रकारका कहा है और पृथिवीमें पतितहुआ वही पानी आठ प्रकारका है ॥ ३ ॥ गांग और सामुद्रपानीके विज्ञानको अब कहताहूं जिस पात्र करकै धारणकियाजावै तहां तिसीप्रकारसे दीखता है ॥ ४ ॥

अथ गांगपानीकी परीक्षा ॥

धौतं शुद्धं सितं वस्त्रं चतुर्हस्तप्रमाणकम् ॥ दण्डास्त्रिहस्ताच्चत्वारश्चतुष्कोणेषु बन्धयेत् ॥ ५ ॥ तस्मात्परीक्ष्यं तत्तोयं शुद्धे रौप्यमयेऽथवा ॥ कांस्यपात्रे समुद्धृत्य परीक्षेत भिषग्वरः॥६॥शुद्धकार्पासतूलं वा श्वेतशाल्योदनस्य वा ॥ पिण्डिका तत्समा क्षिप्ता श्वेततां याति सा पुनः ॥७॥ श्वेता तु निर्म्मला पिण्डी शुद्धश्च निर्मलं पयः ॥ तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं गृहीताङ्गं सुभाजने ॥ ८ ॥

धोयाहुआ शुद्ध सपेद ऐसे वस्त्रको च्यारहाथप्रमाणसे ले पीछे तीनतीन हाथके दंडों च्यारकोणोंमें बंधवावै ॥ ५ ॥ तिस्से शुद्धहुये रूपेके पात्रमें तिस पानीकी परीक्षा करै अथवा कांसीके पात्रमें घाल परीक्षा करै ॥ ६ ॥ अथवा सपेद कपासकी जडको अथवा सपेदशालिचावलकी जड़को पीस पींडी बना तिस पानीमें गेरै जो फिर सपेदपनेको प्राप्त होवै॥७॥ और सपेदहोकै वह पिंडी निर्मल होजावै और वह पानीभी निर्मल होजावै तिसको गांग पानी कहतेहैं वह गांगपानी सबदोषोंको हरता है परंतु इस पानीको सुंदर पात्रमें ॥ ८ ॥

गंगाजलके गुण.

तद्धारयेच्च मतिमान्बल्यं मेध्यं रसायनम् ॥ श्रमक्लमपिपासाघ्नं कण्डूदोषनिवारणम् ॥ १९ ॥ लघु मूर्च्छातृषाच्छर्दिमूत्रस्तम्भविनाशनम् ॥ गङ्गोदकस्य वृष्टिः स्याद्दिवसे वा प्रदृश्यते ॥ १० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य धारणकरै यह बलमें हितहै पवित्र है रसायन है और ग्लानि, परिश्रम, प्यास, इन्होंको हरता है खाजके दोषको दूर करता है ॥ ९ ॥ हलका है और मूर्च्छा, तृषा, छर्दि, मूत्रस्तंभ— इन्होंको नाशता है अथवा सूर्य्यके दीखतेहुये जो वर्षता है वह गांगपानी है ॥ १० ॥

अथ सामुद्र पानीका लक्षण गुण दोष वर्णन ॥

आविलं समलं नीलं घनं पीतमथापि च॥ सक्षारं पिच्छिलं चैव सामुद्रं

तन्निगद्यते ॥ ११ ॥ सघनं कफकृच्चैव कण्डूश्लीपदकारकम् ॥ सवातलं च विज्ञेयं रक्तदोषार्त्तिकारणम् ॥ १२ ॥

कालिसको लियेहो मलसे सहितहो नीलाहो मोठाहो पीलाहो खारसे संयुक्तहो आगोंसे युक्तहो तिसको सामुद्रपानी कहते है ॥ ११ ॥ यह कफको करता है खाज और श्लीपद रोगको उपजाता है वातल है रक्तके रोगोंको करता है ॥ १२ ॥

चारप्रकारकी वृष्टि ॥

द्विविधमुदकं प्रोक्तं तथा वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥
रात्रिवृष्टिर्दिवावृष्टिर्दुर्दिनावीक्षणोद्भवा ॥ १३ ॥

पानी २ प्रकारका कहा है तथा ४ प्रकारकाभी कहेंगे रात्रिमें जो वर्षता है दिनमें जो वर्षताहै दुर्दिनमें जो वर्षताहै ॥ १३ ॥

अथ दुर्दिनमे वर्षाहुआ पानीके गुण दोष वर्णन ॥

निशाजलं कफकरं घनशीतगुणात्मकम् ॥
सामुद्रतोयस्य समं विज्ञेयं वातकोपनम् ॥ १४ ॥

रात्रिमें वर्षा पानी कफको करता है भारा है शीतलगुणोंवाला है सामुद्रसंज्ञक पानीके समान है और वातको कोपता है ॥ १४ ॥

अथ रात्रिको वर्षाहुआ पानीके गुण दोष वर्णन ॥

दिवा सूर्य्यांशुतप्ताश्च मेघा वर्षन्ति यत्पयः ॥
तत्कफघ्नं पिपासाघ्नं लघुवातप्रकोपनम् ॥ १५ ॥

दिनमें सूर्यके किरनोंसे तप्तहुये जो मेघ पानीको वर्षाते है वह कफको नाशता है प्यासको हरता है हलका है वातको कोपता है ॥ १५ ॥

अथ दिनमें वर्षाहुवा पानीके गुण दोष वर्णन ॥

दुर्दिने वृष्टिसन्तापं वातभूतं सवातलम् ॥
कफकृच्छोषहननं तर्पणं दोषकोपनम् ॥ १६ ॥

दुर्दिनमें वर्षाहुआ पानी वातल है कफको करता है शोषको हरता है तृप्तांको करता है दोषोंको कोपता है ॥ १६ ॥

क्षणवृष्टिके गुण ॥

तथा वा क्षणवृष्टिश्च दोषरोगकरी नृणाम् ॥

कण्डूत्रिदोषजननं पानीयं न प्रशस्यते ॥ १७ ॥

श्रावण महीनेमें जो क्षण २ में वृष्टि होती है वह वर्षा मनुष्योंके दोषको और रोगको करती है और इसका पानी खाजको और त्रिदोषको उपजाता है और अच्छा नहीं है ॥१७॥

श्रावणवृष्टिके गुण ॥

मेघा वमन्ति यत्तोयं सशैलवनकानने ॥
श्रावणे निन्द्यते भूमौ कराम्बु वर्षते रविः ॥ १८ ॥

श्रावणमें जो पानी वर्षता है वह पृथिवीमें निंदित है जो पर्वत वन बडा वन इन्होंमें मेघ पानीको वर्षाते है ॥ १८ ॥

अथ भादुवाके वृष्टिके गुण ॥

सघनं नाभसं नीरं श्लेष्मकृद्वातकोपनम् ॥
शमनं पित्तरोगाणां मधुरं रक्तदोषकृत् ॥ १९ ॥

भादुवाकी वर्षाका पानी मोठा है कफको करता है वातको कोपता है पित्तके रोगोंको शांत करता है मधुर है और रक्तदोषको करता है ॥ १९ ॥

अथ आश्विनके वृष्टिके गुण ॥

रूक्षं पित्तकरं चाम्लं गुल्मरक्तविकारकृत् ॥
चित्रानक्षत्रसम्भूतं खरं शस्यविदोषकृत् ॥ २० ॥

आश्विनमें हुई वर्षाका पानी रूखा है पित्तको करता है खट्टा है गुल्मको और रक्तके विकारको करता है चित्रानक्षत्रमें वर्षाहुआ पानी तेज है और खेतीके दोषको करता है ॥२०॥

अथ कार्तिकके वृष्टिके गुण ॥

कार्त्तिकीवृष्टिसम्भूतं स्वातिसन्तापशीतलम् ॥ नाशनं च त्रिदोषाणां स
र्वशस्यप्रवर्द्धनम् ॥ २१ ॥ शीतलं बलकृद्वृष्यं त्रिदाहज्वरनाशनम् ॥

कार्तिकमें वर्षी हुई वर्षाका पानी संतापको शीतल करता है त्रिदोषको नाशता है सब प्रकारकी खेतीको बढाता है ॥ २१ ॥

स्वातीजलके गुण ॥

क्वचित् पुण्यतरे देशे शरद्वर्षति माधवम् ॥ २२ ॥ पित्तज्वरविनाशाय श
स्यनिष्पत्तिहेतवे ॥ अम्बरस्थं सदा पथ्यममृतं स्वातिसम्भवम् ॥ २३ ॥

गगनाम्बु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यच्च भाजने ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं यन्त्रापे क्ष्यं ततः परम् ॥ २४ ॥

शीतल है बलको करता है पुष्टिमें हित है दाहको और ज्वरको नाशता है ॥ २२ ॥ कहींक अति पवित्रदेशमें शरदऋतु उत्तम पानीको वर्षाता है यह पित्तज्वरको हरता है और खेतीकी सिद्धिका कारण है ॥ २३ ॥ आकाशका पानी सदा पथ्य है स्वातीनक्षत्रपै सूर्य्य हो तब वर्षा हुआ पानी अमृतरूप है सुंदरपात्रमें गृहीत किया आकाशका पानी त्रिदोषको नाशता है बलमें हित है रसायन है पवित्र है और तिस्से परे यंत्रापेक्ष्यसंज्ञक पानी जानना ॥ २४ ॥

अकालवृष्टिके लक्षण और गुण ॥

अनार्त्तवं विमुञ्चन्ति जलं जलधरास्तु यत् ॥
पतितं तत् त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनामपि ॥ २५ ॥

जो वादल समयके विना पानीको वर्षाते है वह पानी सब मनुष्योंके त्रिदोषको करता है ॥ २५ ॥

अथ अकालमें वर्षाहुई वर्षाके पानीका लक्षण ॥

अकाले वृष्टिसन्तापसम्भूतं तद्विकारकृत् ॥
विशेषाच्छ्लेष्मरोगाणां कारणान्न प्रशस्यते ॥ २६ ॥

अकालमें वर्षा पानी संतापरूपी विकारको करता है और विशेषकरकै कफके रोगोंके कारनसे यह पानी उत्तम नहीं है ॥ २६ ॥

अथ धारसंज्ञकआदि च्यारप्रकारके पानीका लक्षण ॥

तथा धारं च कारं च तौषारं हैममेव च ॥
चतुर्विधं समुद्दिष्टं तेषां वच्मि गुणागुणान् ॥ २७ ॥

धार, कार, तौषार, हैम, इन भेदोंसे पानी चार प्रकारके है तिन्होंके गुण और दोषको कहताहूं ॥ २७ ॥

कारजलकी उत्पत्ति ॥

धारं चतुर्विधं प्रोक्तं वक्ष्ये कारं महामते !॥श्रीमतां महाप्राज्ञानां हिताय रुजशान्तये॥२८॥स्वर्णद्याः शीतवातेन मेघविस्फूर्जसङ्कुलम्॥शीताम्बु कठिनं भूत्वा शिलं जातं हिमेन तु॥२९॥पश्चात् सुसूर्य्यात् सन्तापात् किञ्चिद्वै द्रवते जलम् ॥ वमन्ति मेघाः सलिलशकलं शीतलं मतम् ॥ ३० ॥

धारसंज्ञक पानीको गांगआदि चारप्रकारसे मैं कहचुकाहूं अब हे महामते! कारसंज्ञक पानीको श्रीमान् और बडे पंडितोंके कल्याणके लिये और रोगकी शांतिके लिये मैं कहताहूं ॥ २८ ॥ गंगाआदि नदियोंका शीतलपानी मेघके शब्दसे संकुलित हुआ कठिन होके पीछे जाडा करके शिलारूपी अर्थात् बर्फ हो जाता है ॥ २९ ॥ पीछे सूर्य्यके संतापसे कछुक झिरता है तब मेघ पानीके किनके अर्थात् ओलोंको वर्षाते हैं तिन्होंका पानी शीतल माना है ॥ ३० ॥

कारजलके गुण.

कारं शीतगुणैः श्रमोपशमनं शोषार्त्तिनिर्णाशनं मूर्च्छामोहशिरोर्त्तिनाशनकरं हिक्कावमेर्वारणम् ॥ शोफानां व्रणिनान्तु दोषशमनं पित्तात्मिकानां हितं शंसंति प्रवरं गुणैः प्रतिदिनं तस्मान्न दूरे कृतम् ॥ ३१ ॥

यह कारसंज्ञकपानी शीतके गुणोंसे परिश्रमको शांत करता है और शोषरूपी पीड़ाको नाशता है और मूर्च्छा, मोह, शिरकी पीडा, इन्होंको नाशता है हिचकीको और छर्दिको दूर करता है शोजावालोंके और घाववालोंके दोषको हरता है और पित्तकी प्रकृतिवालोंको हित है और उसकी बहोत प्रशंसा करते है और नित्यप्रति गुणोंसे संयुक्त होता है इसवास्ते यह पानी वर्जना नहीं ॥ ३१ ॥

अथ तुषारपानीके गुण ॥

तौषारं लघु शीतलं श्रमहरं पित्तार्त्तिशान्तिप्रदं दोषाणां शमनं जलार्त्तिहननं सर्वामयघ्नं परम् ॥ कुष्ठश्लीपदचर्चिकाविषहरं पामाविसर्पापहं क्षीणानां क्षतशोषिणां हितकरं संसेव्यते मानवैः ॥ ३२ ॥ हैमं घनञ्च मधुरञ्च कफात्मकञ्च मूर्च्छाश्रमार्त्तिशमनं भ्रमनाशनञ्च॥ पित्तासृजः प्रशमनं रुधिरक्षमञ्च शान्तिं करोति हिमसम्भववारि सद्यः ॥ ३३ ॥ धारं पृथिव्यां पतितं पयस्तु तत्रैव जातं गुणभेदभिन्नम् ॥ नानाविधैर्भेदगुणैश्च सम्यग् जातं जलं चाष्टविधं वदन्ति ॥ ३४ ॥

तौषारसंज्ञक पानी हलका है शीतल है श्रमको हरता है पित्तके रोगको शांत करता है दोषोंको शांत करता है जलके रोगको हरता है सब रोगोंको नाशता है और कुष्ठ—श्लीपद रोग—मकडीका विष इन्होंको नाशता है पामाको और विसर्परोगको हरता है क्षीणपुरुषोंको और क्षतशोषियोंको हितकारी है इसवास्ते मनुष्योंनें सेवना चाहिये ॥ ३२ ॥ हैमसंज्ञकपानी मोटा है मधुर है कफकारी है मूर्च्छाको श्रमको और भ्रमको हरता है रक्तपित्तको शांत

करता है रक्तको बंद करता है और शांतिको शीघ्र करनेवाला है ॥ ३३ ॥ धारसंज्ञकपानी पृथिवीमें पतितहुआ तहांही गुणोंके भेदोंसे भिन्न होजाता है पीछे अनेकप्रकारके भेद गुणोंसे अच्छीतरह संयुक्तहुआ वही पानी आठ प्रकारसे कहा है ॥ ३४ ॥

पृथ्वीउपरके आठप्रकारका जल.

नद्यौद्भिदं प्रास्रवणं च चौंड्यं कौपं ताडागं सरसोद्भवञ्च ॥
वाप्युद्भवं तत्प्रवदन्ति धीरा नीरं समासेन वदन्ति चात्र ॥ ३५ ॥

नादेय-औद्भिद पर्वतके द्वारा झिरनेसे उपजा—चौंड्यसंज्ञक—कूवाका—तलावका-सारसका—बावडीका—ऐसे धीरवैद्य यहां विस्तारसे कहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ नदीके पानीका गुण ॥

यत् श्रीमताञ्चैव महीपतीनां सेव्यं तथा योग्यतमं प्रदिष्टम् ॥ नादेयमम्बु मधुरं तथा लघु रूक्षं तथोष्णं शमनञ्च वायोः ॥ ३६ ॥ सन्दीपनं शस्यविनाशनञ्च हिमागमे वा शिशिरे निषेव्यम् ॥ बलप्रदं पथ्यकरं नराणां प्रदिष्टमेतत्तु सदा भिषग्भिः ॥ ३७ ॥

नदीका पानी लक्ष्मीवालोंको और राजालोगोंको अतियोग्य कहा है और मधुर है हलका है रूषा है गर्म है वायुको शांत करता है ॥ ३६ ॥ जठराग्निको जगाता है खेतीको नाशता है शीतके आगमनमें अथवा शिशिरऋतुमें सेवना योग्य है और बलको देता है मनुष्योंको पथ्यरूप है ऐसे पंडितोंनें सबकालमें कहा है ॥ ३७ ॥

अथ औद्भिद पानीका गुण दोष ॥

औद्भिद्यमुष्णं लघु वातहारि सपैत्तिकं तृड्ज्वरनाशनञ्च ॥
कुष्ठव्रणानां श्रमशोषिणाञ्च शस्तं न च क्षारगुणोपपन्नम् ॥ ३८ ॥

पृथिवीको विदारितकरबडी धारासे निकसनेवाला पानी औद्भिद कहाता है यह पानी गर्म है हलका है वातको हरता है पित्तसे संयुक्त है तृषाको और ज्वरको नाशता है कुष्ठ और घाववालोंको श्रम और शोषवालोंको खारागुणसे उपपन्न हुआ श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३८ ॥

अथ झिरनाके पानीका गुण ॥

उष्णं कषायं स्रवणोद्भवञ्च श्लेष्मापहं गुल्महृदामयघ्नम् ॥
कण्डूविसर्पक्षयरोगकारि नानाविधं दोषचयं करोति ॥ ३९ ॥

पर्वतके द्वारा झरनासे उपजा पानी गर्म है कसैला है कफको हरता है गुल्मरोगको और

हृद्रोगको नाशता है और खाज विसर्परोग–क्षयरोग–इन्होंको करता है और अनेक प्रकारके दोषोंको संचित करता है ॥ ३९ ॥

अथ चौंड्यसंज्ञक पानीका गुण ॥

वदन्ति चौंड्यं लवणं तथा गुरु कफात्मकं वारि विकारकर्तृ ॥
हिक्काज्वरं शूलमरोचनञ्च करोति नूनं त्वचि दोषरोगम् ॥ ४० ॥

आपही शिलासे आकीर्ण हुआ छिद्रमें नीला अंजनके समान पानी हों और लता वेल आदिसे आच्छादितहो तिसको चौंड्यसंज्ञकपानी कहते हैं यह पानी सलोना है भारी है कफको करता है विकारको उपजाता है और हिचकी–शूल–अरोचक–इन्होंको उपजाता है और त्वचा अर्थात् खालमें दोषको और रोगको उपजाता है ॥ ४० ॥

अथ कूवाके पानीका गुण दोष ॥

रूक्षं कफघ्नं लवणात्मकञ्च सन्दीपनं पित्तकरं लघूष्णम् ॥
कौपं जलं वातहरं प्रदिष्टं हितं न शस्तं शरदि वदन्ति ॥ ४१ ॥

कूवाका पानी रूखा है नमकसे कछुक संयुक्त है अग्निको जगाता है पित्तको करता है हलका है गर्म है वातको हरता है और शरदृऋतुमें हित नहीं है ॥ ४१ ॥

अथ तलावका पानीके गुण दोष ॥

घनं कषायञ्च तडागजं स्यात्स्वादु विपाके मधुरं तथैव ॥
शस्तं शरत्सु कफकृत् सवातं ग्रीष्मे हितं तत्प्रवदन्ति धीराः ॥४२॥

सुंदर पृथिवीके भागमें जहां बहुत वर्षोंका पानी इकट्ठाहो तिसको तलावका पानी कहते हैं यह मोठा है कसैला है स्वादु है पाकमें मधुर है शरदऋतुमें अर्थात् आश्विन कार्तिकमें श्रेष्ठ है कफको करता है वायुसे सहित है ग्रीष्मऋतु अर्थात् ज्येष्ठ आषाढमें हित नहीं है॥४२॥

अथ सारसपानीके गुण दोष ॥

क्षारं घनं वातकफानुकारि त्वग्दोषकारि कटु दीपनञ्च ॥
प्रोक्तं विपाके भ्रमशोषकारि स्यात् सारसं नो सुखकारि वारि ॥ ४३ ॥

पर्वतकी शिला आदिसे रुकीहुई नदीका पानी जहां झिरकै इकट्ठा होवै तिसको सारसपानी कहते है यह पानी खारा है भारा है वातको और कफको करता है और खालमें दोषको उपजाता है कडुआ है अग्नीको जगाता है पाककालमें भ्रमको और शोषको करता है और सुखको देनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ नदियोंकी प्रकृति ॥

क्षारं कवोष्णं कफवातरोगविनाशनं पित्तकरं कटु स्यात् ॥
शस्तं सदा पित्तविकारिणाञ्च शस्तं न शस्तं शरदि वदन्ति ॥ ४४ ॥

बावडीका पानी खारा, कुछ थोडा गरम, कफ वात रोगोंको नाशकरनेवाला पित्तकारक तीखा और पित्तविकारी मनुष्योंको सदा हितकारी है. परंतु शरदऋतुमें हितकारी नहींहै ॥४४॥

अथ नदियोंकी प्रकृति ॥

इति चाष्टविधं प्रोक्तं जलं भिषजसत्तमैः ॥
नादेयं संप्रवक्ष्यामि समुद्रगामिस्रोतसाम् ॥ ४५ ॥

ऐसे उत्तमवैद्योंनें पानी आठप्रकारसे कहा है और समुद्रमें गमन करनेंवाली नदियोंको कहताहूं ॥ ४५ ॥

तथा प्राच्यांगमाश्वान्याः पश्चिमानुगमास्तथा ॥ तासां गुणागुणान् वक्ष्ये समासेन गुणोत्तम ! ॥ ४६ ॥ ससैकता सपाषाणा द्विविधा चाम्बुवाहिनी ॥ एवं चतुर्विधा नद्यो वातपित्तकफात्मिकाः ॥ ४७ ॥

पूर्वमें गमन करनेवाली और पश्चिममें गमन करनेवाली जो नदी है तिन्होंके गुणोंको हे गुणोत्तम विस्तार करकै कहूंगा ॥ ४६ ॥ वालूरेतवाली और पत्थरोंवाली ऐसे नदी २ प्रकारसे है और पूर्वोक्त दोनोंके मिलनेसे च्यार प्रकारकी नदी है ये वात पित्त कफसे संयुक्त है॥४७॥

अथ सदावहनेवाली नदीके गुण दोष ॥

सदावहा वा घनवारिकोष्णा मरुत्कफानां शमनश्च तस्याः ॥
नीरं वसन्ते हितकृद्विशेषात् नदीभवं नैव हिमागमे च ॥ ४८ ॥

सबकालमें वहनेवाली नदी मोठापानीवाली होती है कछुकगर्म होती है वायुको और कफको शांत करती है तिन्होंका पानी चैत्र और वैशाखमासमें विशेष करकै हितको करता है और जाडाके आगमनमें अच्छा नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ पत्थरोंवाली नदीके गुण दोष ॥

घनविमलशिलानां स्फालनाज्जातफेनं बहलसजलवीचीच्छन्नसंक्षोभदृप्तम् ॥ ननु लघु सुखशीतं नाति चोष्णं घनञ्च हरति पवनपित्तं श्लेष्मकृद्वारि सम्यक् ॥ ४९ ॥

मोठे और विशेषकरके मलोंवाले ऐसे पत्थरोंके संयोगसे झागोंवाला और बहुतसे तरंगोंके क्षोभसे गर्मको प्राप्तहुआ और सुंदर शीतल और अतिगर्म नहीं और भारा ऐसा पानी वातको और पित्तको अच्छीतरह हरता है ॥ ४९ ॥

अथ वालूरेतवाली नदीका पानीके गुण दोष ॥

न घनविमलतोयं सैकतायाः प्रवाहो न च भवति लघुत्वं श्लेष्मकृद्धन्ति पित्तम् ॥ भवति मधुरमेवं किञ्चिदुष्णं कषायं भवति पवनकारि शोषमूर्च्छां निहन्ति ॥ ५० ॥

वालूरेतके प्रवाहमें यह पानी मोठा नहीं है विशेष करके मलसे रहित नहीं है हलकाभी नहीं है कफको करता है पित्तको हरता है मधुर है कछुक गर्म है कसैला है पवनको करता है शोषको और मूर्च्छाको नाशता है ॥ ५० ॥

अथ उत्तरसे वहनेवाली नदियोंके और पानीके गुण दोष ॥

हिमवत्प्रभवा नद्यः पुण्या देवर्षिसेविताः ॥ घनपाषाणसिकतावाहिन्यो विमलोदकाः ॥ ५१ ॥ हन्ति वातकफं तोयं श्रमशोषविनाशनम् ॥ किञ्चित् करोति वा पित्तं त्रिदोषशमनं जलम् ॥ ५२ ॥ मलयप्रभवा नद्यः शीततोयामृतोपमाः ॥ घ्नन्ति वातञ्च पित्तञ्च शोषभ्रमश्रमापहाः ॥५३॥ गङ्गा सरस्वती शोणो यमुना सरयू शची ॥ वेणा शरावती नीला उत्तरापूर्ववाहिनी॥५४॥ हिमवत्प्रभवा श्वेता हिमसम्भवशीतलाः ॥ समाः सर्वगुणैर्नद्यो वातश्लेष्महरा नृणाम् ॥ ५५ ॥ आसां नवशतैर्युक्ता गङ्गा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ तथा चर्म्मण्वती वेत्रवती पारावती तथा ॥ ५६ ॥ क्षिप्रा महापद्मी पीता मुत्सकान्या मनस्विनी ॥ शेवती शैवलिन्यश्च सिन्धुयुक्ताः समुद्रगाः ॥ ५७ ॥ वातपित्तहरं नीरं त्रिदोषघ्नं मतं परम् ॥ श्रमग्लानिहरं वृष्यमुत्तराशानुगामि च ॥ ५८ ॥

हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई नदी पवित्र है देवते और मुनियोंसे सेवित है मोटे पत्थर और वालूरेतको वहानेवाली है मलसे रहित पानीवाली है ॥ ५१ ॥ इन्होंका पानी वातको और कफको नाशता है श्रमको और शोषको दूर करता है अथवा कछुक पित्तको करता है और त्रिदोषको शांत करता है ॥ ५२ ॥ मलय पर्वतसे उपजी नदी शीतलपानीवाली है अमृतके समान पानीको वहती है और वात, पित्त, शोष, भ्रम, श्रम, इन्होंको नाशती है ॥५३॥

गंगाजी, सरस्वती, शोण, यमुना, सरयू, शची, वेणा, शरावती, नीला, ये नदी उत्तरको और पूर्वको वहाती है ॥ ५४ ॥ हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई और बर्फके संभवसे शीतल हुई ऐसी ये नदी सबगुणोंसे समान है और मनुष्योंके वातको और कफको हरती है ॥ ५५ ॥ इन्होंमेंसे नौसौ ९०० नदियोंसे युक्त हुई गंगाजी पंडितोंनें कही हैं तैसेही चर्मण्वती, वेत्रवती, पारावती, ॥ ५६ ॥ क्षिप्रा, महापदी, पीता, मुत्सका, मनस्विनी, शेवती, शैवलिनी, सिंधु, ये सब नदी समुद्रमें गमन करती है ॥ ५७ ॥ इन्होंका पानी वातको और पित्तको हरता है और त्रिदोषको हरनेवाला माना है परिश्रमको और ग्लानिको हरता है वीर्य्यमें हित है और उत्तरदिशासे आता है ॥ ५८ ॥

अथ तापीआदिनदियोंके गुण दोष ॥

तापी तापा च गोलोमी गोमती सलिला मही ॥ सरस्वतीयुता नद्यो नर्मदा पश्चिमानुगाः ॥ ५९ ॥ आसां जलं घनं पीतं पित्तघ्नं कफकृत्तथा ॥ वातदोषहरं हृद्यं कण्डूकुष्ठविनाशनम् ॥ ६० ॥

तापी, तापा, गोलोमी, गोमती, सलिला, मही, सरस्वती, नर्मदा, ये पश्चिमसे वहती हैं ॥ ५९ ॥ इन्होंका पानी मोठा है पीला है पित्तको नाशता है कफको करता है वातदोषको हरता है सुंदर है खाजको और कुष्ठको नाशता है ॥ ६० ॥

पश्चिमाद्रिसमुद्भूता गौतमी पुण्यभावना ॥ आसां शीतं जलं वापि कफवातविकारकृत् ॥ पित्तदं शमनं बल्यं मूत्रदोषविकारकृत् ॥ ६१ ॥ पूर्णा पयस्विनी वेत्रा प्रणीता च वरानना॥ द्रोणा गोवर्द्धनी यान्या गौतम्यानुगता इमाः ॥ ६२ ॥ आसां जलं घनं नातिवातश्लेष्मविकारकृत्॥ पूर्वसामुद्रगाश्चैव नद्यो नवशतैर्युताः ॥ ६३॥ कावेरी वीरकान्ता च भीमा चैव पयस्विनी ॥ बिभावरी विशाला च गोविन्दी मदनस्वसा ॥ पार्वती चापरा नद्यो दक्षिणादिग्गमा इमाः॥ ६४ ॥ प्रत्येकशो न सेवेत युक्तायाश्च पृथक् पृथक् ॥ सर्वासां परिसंख्या च शतानां चैकविंशतिः ॥ ६५ ॥

पश्चिमके पर्वतसे उपजी गौतमी पवित्र है इसका पानी शीतल है कफको और वातके विकारको करता है पित्तकारक है, दोषशामक है, बलकारक है, मूत्रदोषके विकारको करता है ॥ ६१ ॥ पूर्णा, पयस्वनी, वेत्रा, प्रणीता, वरानना, द्रोणा, गोवर्द्धनी इनआदि नदी गौतमी नदीके अनुगमन करती है ॥ ६२ ॥ इन्होंका पानी अति मोटा नहीं है वातके और कफके विकारको करता है और पूर्वके समुद्रमें गमन करनेवाली नौसौ ९०० नदी हैं ॥ ६३ ॥

कावेरी, वीरकांता, गोविंदी, मदनस्वसा, पार्वती, इनआदि नदी दक्षिणदिशाको गमन करती हैं ॥६४॥ एक एक नदीको नहीं सेवै और पृथक् २ युक्तहुई सब नदियोंकी २१०० इक्कीससौ संख्या अर्थात् गिनती है ॥ ६५ ॥

क्रोशे क्रोशे भवेत् कुल्या योजने योजने नदी ॥
द्वियोजना च विज्ञेया महानीरा बुधैर्नदी ॥ ६६ ॥

कोश कोशमें विस्तारवाली कुल्या कहाती है और चार चार कोशमें विस्तारवाली नदी कहाती है और आठ आठ कोशमें विस्तारवाली महानदी कहाती है ॥ ६६ ॥

अथ पृथिवीके भागका पानी ॥

भूमिः पञ्चविधा ज्ञेया कृष्णा रक्ता तथा सिता ॥ पीता नीला भवेच्चान्या गुणास्तासां प्रकीर्त्तिताः ॥ ६७ ॥ कृष्णा च मधुरा रूक्षा कषाया पीतवर्णिनी ॥ रक्ता सा च भवेत्तिक्ता मधुराम्ला सिता स्मृता ॥ ६८ ॥ नीला सकटुका ज्ञेया भूमिभागजलं विदुः ॥ सघनं मधुरं नीरं कृष्णं भूमिपरिश्रितम् ॥ ६९ ॥ पीताश्रितं कषायञ्च रक्तायाः क्षारमाधुरम् ॥ सितायामम्लमधुरं भूमिभागेन लक्षयेत् ॥ ७० ॥ तथा चतुर्विधं तोयं वक्ष्यामि शृणु कोविद ! ॥ पापोदकं रोगोदकमंशूदकारोग्योदकौ ॥ ७१ ॥

काली–लाल सपेद–पीली नीली–इन भेदोंसे पृथिवी पांचप्रकारकी है तिन्होंके गुण कहते है ॥ ६७ ॥ कालीपृथिवी मधुर है कडुई है रूषी है पीली पृथिवी कसैली है लाल पृथिवी कडुवी है सपेद पृथिवी मधुर और खट्टी है ॥ ६८ ॥ नीली पृथिवी चर्चरी जाननी ऐसेही पृथिवीके भागका पानी कहा है ॥ ६९ ॥ पीली पृथिवीका कसैला पानी है लाल पृथिवीका पानी खारा और मधुर है सपेद पृथिवीका पानी खट्टा है मधुर है ऐसे पृथिवीके भागसे पानीको लक्षितकरै ॥ ७० ॥ अब पापोदक–रोगोदक–अंशूदक–आरोग्योदक–इन भेदोंसे पानीको च्यारप्रकारसे कहताहूं हे कोविद ! सुन ॥ ७१ ॥

अथ पापोदकका गुण दोष ॥

पापं पापोदकं चैव करोत्येवमरोचकम् ॥ विष्ठायुक्तं ग्राहि नीरं कृमिकीटसमाकुलम् ॥ ७२ ॥ समलं नीलशैवालं पापन्तु नर्दितञ्च यत् ॥ स्नाने पाने न तत् शस्तं नराणां वा हयेषु च ॥ ७३ ॥ स्नानेन त्वग्भवान्रोगान् कण्डूकुष्ठविसर्पकृत् ॥ पानेन कफगुल्मानां कृमीणां वरसम्भवान् ॥ करोति विविधान् रोगांस्तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥

पापोदकसंज्ञक पानी पापरूप है और रुचिको बिगाड़ता है विषसे संयुक्तहुआ पानी कबज-को करता है और कीडे आदिसे संयुक्त ॥ ७२ ॥ और मलसे सहित और नीले शिवालसे संयुक्त ऐसा पानीभी पापोदक कहाता है यह मनुष्योंको और घोडोंको स्नानमें और पानमें अच्छा नहीं है ॥७३॥ यह पानी स्नानके करनेसे खालके रोग–खाज–कुष्ठ–विसर्प–इन्हों-को करता है और पीनेसे कफके गुल्मरोगको और कृमिरोगको उपजाता है ॥ ७४ ॥

अथ रोगोदकके गुणदोष ॥

बहुवृक्षलताकुञ्जे छायाकूपोऽथवा सरः ॥ अव्ययश्चेदधोऽप्येवं कृमि शैवालसंयुतम् ॥ ७५ ॥ क्लिन्नं सपिच्छलं कृष्णं वृक्षमूलाश्रितं भवेत्॥ बहुवृक्षपर्णयुक्तं दुर्गन्धं मूत्रगन्धवत् ॥७६॥ रोगोदकं विजानीयात् करोति विषमान् गदान् ॥ शूलं कुष्ठञ्च कण्डूञ्च सेवितेन करोति हि ॥७७॥ विण्मूत्रतृणनीलिकाविषयुतं तप्तं घनं फेनिलं दन्तग्राह्यमनार्त्तवं हि सजलं दुर्गन्धि शैवालजम् ॥ नानाजीवविमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघपङ्काविलं चन्द्रार्कांशुसुगोपितं न च पिबेन्नीरं सदा दोषलम् ॥ ७८ ॥ गुल्मप्लीहार्शः पाण्डुञ्च जलं वापि जलोदरात् ॥७९॥

बहुतसे वृक्ष और बेलोंके समूहमें जो छाया विषैं कूवाहो अथवा तलावहो और तिसमें पानी सदा बनारहताहो कीडे और शिवालसे वह पानी संयुक्तहो ॥ ७५ ॥ और क्लेदपनेको प्राप्तहो और झागोंसे संयुक्तहो कालाहो और वृक्षोंकी जडमें आश्रितहो और बहुतसे वृक्षोंके पत्तोंसे व्याप्तहो दुर्गंधितहो और मूत्रके गंधके समानगंधवालाहो ॥ ७६ ॥ तिसको रोगोदक जानना यह विषमरोगोंको करता है और सेवनेसे शूल-कुष्ठ-खाज-इन्होंको करता है॥ ७७ ॥ अथवा विष्ठा–मूत्र–तृण–नीला शिवाल–विष–इन्होंसे संयुक्तहो और गर्महो मोटाहो झा-गोंसे संयुक्तहो दंतोंको ग्रहण करताहो अकालमें वर्षाहो दुर्गंधसे युक्तहो शिवालसे संयुक्तहो अनेकप्रकारके जीवोंसे मिश्रितहो अत्यंत भाराहो पत्तोंके समूह और कीचड़से मैलाहो चंद्र-मा और सूर्यकी किरनोंसे रक्षितहो ऐसा पानीभी रोगोदक कहाता है इसकोभी नहीं पीना यह सबकालमें दोषोंको उपजाता है ॥ ७८ ॥ और सेवनेसे गुल्मरोग–तिल्लीरोग,ववासीर, पांडु,जलोदर,इन्होंको उपजाता है ॥ ७९ ॥

अथ अंशूदकके गुणदोष ॥

दिवा सूर्य्यांशुसन्तप्तं रात्रौ चन्द्रांशुशीतलम् ॥ अंशूदकमिति ख्यातं सर्वरोगनिवारकम् ॥ ८० ॥ कफमेदोनिलघ्नं च दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ श्वासकासहरं नीरं चक्षुष्यं नेत्ररोगहृत् ॥ ८१ ॥

दिनमें सूर्यके किरनोंसे तप्तहुआ और रात्रिमें चंद्रमाके किरनोंसे शीतलहुआ ऐसा पानी अंशूदक कहा है यह सब रोगोंको दूर करता है ॥ ८० ॥ कफ, मेद, वात—इन्होंको नाशता है जठराग्नीको जगाता है बस्तिको शोधता है श्वासको और खांसीको हरता है नेत्रोंमें हित है और नेत्रके रोगोंको हरता है ॥ ८१ ॥

अथ आरोग्योदकके गुणदोष ॥

पादशेषन्तु कथितं तच्चारोग्यजलं विदुः ॥ कासश्वासहरं पथ्यं मारुतं चापकर्षति ॥ ८२ ॥ सद्यो ज्वरं हरत्याशु समेदःकफनाशनम् ॥ प्रतिश्यायं पाचयति शूलगुल्मार्शोनाशनम् ॥ ८३ ॥ दीपनञ्च हुताशस्य पाण्डुशोफोदरापहम् ॥ अजीर्णञ्च जरत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ८४ ॥

अग्निके द्वारा पकानेसे जो चौथाईभाग शेष रहै वह आरोग्योदक कहाता है यह खांसीको और श्वासको हरता है पथ्य है वायुको नाशताहै ॥ ८२ ॥ नये ज्वरको शीघ्र हरता है मेदको और कफको नाशता है पीनस अर्थात् खेहरको पकाता है और शूल—गुल्मरोग—ववासीर—इन्होंको नाशता है ॥ ८३ ॥ अग्निको जगाता है और पांडुरोग—शोजा—उदररोग इन्होंको हरताहै और रात्रिमें पीयाहुआ गर्मपानी अजीर्णको जराता है ॥ ८४ ॥

अथ शीतपानीके गुण ॥

मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तान्विते पुनः ॥
सन्निपातसमुत्थे च तत्र शीतोदकं हितम् ॥ ८५ ॥

मदिराके पीनेसे उपजे रोगमें और पित्तसे अन्वितहुये रोगमें और सन्निपातसे उपजे रोगमें शीतल पानीको पीना हित है ॥ ८५ ॥

गर्मपानीके गुण ॥

शारदे च तथा ग्रीष्मे क्राथेत् पादावशेषितम् ॥ शिशिरे च वसन्ते च कुर्यादर्द्धावशेषितम् ॥ ८६ ॥ विपरीतमृतौ घृष्वा प्रावृषि वार्द्धभागिकम् ॥ ८७ ॥ क्राथ्यमानं च निर्वेगं निष्फेनं निर्मलञ्च यत् ॥ अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ ८८ ॥ तत्पादहीनं वातघ्नं चार्द्धं पित्तविकारजित् ॥ कफघ्नं पादशेषन्तु पानीयं लघु पाचनम् ॥ ८९ ॥ धारापाते हि विष्टम्भि दुर्जरं पवनापहम् ॥ शृतशीतं त्रिदोषघ्नं कफान्तश्चाम्मि शी

तलम् ॥ ९० ॥ दिवसे क्वथितं तोयं रात्रौ तद्गुरु वर्जयेत् ॥ रात्रौशृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥ ९१ ॥

शरदऋतुमें और ग्रीष्मऋतुमें पकानेमें चौथाई भाग शेषरहा पानी हित है शिशिरमें और वसंतऋतुमें पकानेमें आधा शेषरहा पानी हित है ॥ ८६ ॥ हेमंतऋतुमें पकानेसे तीनहिस्से शेषरहा पानी हित है और वर्षाऋतुमें पकानेमें आधा भाग शेषरहा पानी हित है ॥ ८७ ॥ अग्निपै पकानेमें वेगसे रहितहो झागोंसे वर्जितहो मलसे रहितहो पकानेमें आधा भागशेषहो तिसको उष्णोदक कहते हैं ॥ ८८ ॥ पकानेमें चौथाई भाग जलाहुआ पानी वातको हरता है आधा भाग जला हुआ पानी पित्तको हरता है तीन भाग जलाहुआ पानी कफको हरता है ऐसा पानी हलका है पाचन है ॥ ८९ ॥ धाराके पातसे लिया पानी विष्टंभको करता है मुशकिलसे जरता है वायुको हरता है अग्निपै पकाके शीतल किया पानी त्रिदोषको नाशता है कफको हरता है शीतल है ॥ ९० ॥ दिनमें पकाये हुये पानीको रात्रिमें नहीं पीवै यह भारी हो जाता है और रात्रिमें पकाये हुये पानीको दिनमें नहीं पीवै यहभी भारी होजाता है ॥ ९१ ॥

अथ पानीविषयकविधि.

मदात्यये सदाहे च रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे ॥ रक्तमेहे विशेषेण नोष्णं तोयं प्रशस्यते ॥ ९२ ॥ पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ॥ आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ॥ ९३ ॥ अजीर्णे च तथा कासे न शीतमुदकं हितम् ॥ प्रतिश्याये प्रसेके च ज्वरे कुष्ठे व्रणेषु च ॥ ९४ ॥ शोफे नेत्रामये चैव मन्दाग्नौ च तथा क्षये ॥ सूतिजातासुतानारीरक्तस्रावेऽप्यरोचके ॥ ९५ ॥ एतेषां सिद्धिमिच्छद्भिः पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ जीर्णे च क्षुत्प्रपन्ने च पीतं हन्त्युदरानलम् ॥ ९६ ॥

मदात्यय रोग, दाह, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्त हुआ रक्तपित्त, रक्तप्रमेह, इन्होंमें विशेष करकें गर्मपानी श्रेष्ठ नहीं है ॥ ९२ ॥ पसलीशूल, पीनसरोग, वातरोग, गलग्रह, अफारा, स्तिमित श्वासरोग, कोष्ठरोग, तत्कालके जुलाब, वमनआदि, नवीनज्वर ॥ ९३ ॥ और अजीर्ण, खांसी, इन्होंमें शीतल पानी अच्छा नहीं है और पीनस रोग, प्रसेक, ज्वर, कुष्ठ, घाव, ॥ ९४ ॥ शोजा, नेत्रके रोग, मंदाग्नि, क्षयरोग, सूतिका नारी, रक्तस्राव, अरोचक ॥ ९५ ॥ इन्होंकी सिद्धिको चाहनेवाला मनुष्य अल्पपानीको पीवै भोजनको जीर्ण होनेमें और छीकोंके आनेमें पिया हुआ पानी पेटके अग्निको नाशता है ॥ ९६ ॥

करोति गुल्मं शूलं वा तथा श्रान्ते बहूदकम् ॥ तस्माज्जीर्णेऽनलं हन्ति अजीर्णे वारिभेषजम् ॥९७॥ भुक्तान्तः परतः शस्तं पीतं वारि गुणात्मकम् ॥ अध्वश्रान्ते क्षुधाक्रान्ते शोषक्रोधातुरेषु च ॥९८॥ विषमासनोपविष्टे च पीतं वारि रुजाकरम्॥ तस्मात् प्रसन्ने मनसि पानीयं मन्दमाचरेत्॥९९॥ आदौ पीत्वा दहत्यग्निर्मध्ये पीत्वा रसायनम् ॥ तदन्ते च जलं पीत्वा न ज्जलं दुर्जरं भवेत् ॥ १०० ॥ भोजनादौ जलं पीत्वा चाग्निसादः कृशाङ्गता ॥ अन्ते करोति स्थूलत्वमूर्ध्वमामाशयात् कफम् ॥ १०१ ॥ इति तोयपानविधिः ॥ इति जलवर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

परिश्रमसे थकाहुआ मनुष्य बहुत पानीको पीवै तो गुल्म और शूलरोगकी उत्पत्ति होती है और भोजनको जीर्ण होनेमें पियाहुआ पानी जठराग्निको हरता है और अजीर्णमें पानी ओषधरूप है ॥ ९७ ॥ भोजन करनेके मध्यमें और पीछेसे पियाहुआ पानी गुणोंको करता है और मार्गके चलनेसे श्रांतहुआ और भूखसे पीडितहुआ और शोक, क्रोध, रोग, इन्होंसे पीडितहुआ ॥ ९८ ॥ और विषम आसनपै स्थितहुआ ऐसा मनुष्य पानीको पीवै तो शीघ्र रोगकी उत्पत्ति होती है तिसकारणसे प्रसन्न हुये मनमेंभी अल्प पानीको पीवै ॥ ९९ ॥ भोजनकी आदिमें पिया पानी अग्निको नाशता है भोजनके मध्यमें पिया पानी रसायन अर्थात् अमृतके समान है भोजनके अंतमें पिया पानी दुःखसे जरता है ॥ १०० ॥ भोजनकी आदिमें पानीको पीनेसे मंदाग्नि और अंगोंका कृशपना होजाता है और भोजनके अंतमें पियाहुआ पानी मुठापेको करता है और आमाशयसे ऊपर कफको करता है ॥ १०१ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने जलवर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ दुग्धवर्गवर्णन.

अथातः संप्रवक्ष्यामि क्षीरवर्गन्तु वत्सक ! ॥
दधिसर्पिर्वसातक्रं तेषां सर्वगुणागुणम् ॥ १ ॥

हे पुत्र ! अब क्षीरवर्गको कहताहूं और दही, घृत, वसा, तक्र—इन्होंके सब गुण और दोषको कहूंगा ॥ १ ॥

अथ दूधकी उत्पत्ति.

यद्यदाहारजातन्तु रसं क्षीरशिरानुगम् ॥ सरोजलं च भुक्तं च तथा पित्तेन संयुतम् ॥ २ ॥ पाचितं जाठरे वह्नौ पित्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ पच्यमानं शिराप्राप्तं क्षीरतोयेन पुत्रक! ॥ ३ ॥ तेन क्षीरमिति ख्यातमग्निसामात्मकं पयः ॥ अमृतं सर्वभूतानां जीवनं बलकृन्मतम् ॥ ४॥

जो जो भोजनसे रस उपजता है वही दूधकी नाडीके अनुगत होता है रस पदार्थ और पानी जो भोजन किया है वह पित्तसे संयुक्त होके ॥ २ ॥ जठराग्निके द्वारा पच्यमन हुआ वह अन्नजलरस शिरामें दुग्धजलके साथ प्राप्त होता है ॥३॥ तिस्से दूध ऐसा कहाता है यह दूध जठराग्निके समान स्वभाववाला होता है और यही दूध अमृत है सब जीवोंका जीवन है और बलको करनेवाला माना है ॥ ४ ॥

हारीतः संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ कथं रसस्य सम्पत्तिः कथं संचीयते विभो! ॥ ५ ॥ कथं रक्तस्य संस्थाने क्षीरं पाण्डु समीरितम् ॥ कथं तत्र कुमारीणां वन्ध्यानां न कथं भवेत् ॥ ६ ॥

संशयको प्राप्तहुआ हारीत फिर पिताको पूछताभया हे विभो ! रसकी सिद्धि कैसे है ? और कैसे रस संचित होता है ? ॥ ५ ॥ और कैसे रक्तके स्थानमें सपेद रंगसे प्रेरितहुआ दूध हो जाता है ? कुमारीकन्याके और वंध्यास्त्रियोंके कैसे नहीं होता ? ॥ ६ ॥

एवं पृष्टो महावीर्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ शृणु पुत्र महाप्राज्ञ ! यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥ क्षीरं स्निग्धं तथा रक्तं पित्तेन पाकतां गतम् ॥ रक्तं श्वेतत्वमायाति तथा क्षीरं सितं भवेत् ॥ ८ ॥

ऐसे पूछे हुये महावीर्य्यवाले आत्रेयजी कहनेलगे हे पुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! जो पहले पंडतोंनें कहा है वह सुन ॥ ७ ॥ जैसे स्निग्धरूपी दूध और रक्त पित्तसे पाकभावको प्राप्त होता है, और रक्त सफेदपनेको प्राप्त होता है तैसे दूधभी सफेद होजाता है ॥ ८ ॥

क्षीरनाडी कुमारीणां वन्ध्यानां च कथं भवेत् ॥ अल्पधातुबलं यस्मात्तस्मात् क्षीरं न जायते ॥ ९ ॥ वन्ध्यानां क्षीरनाड्यस्तु वातेन परिपूरिताः ॥ क्षीरं च न भवेत्तस्मादार्त्तवं चाधिकं यतः ॥ १० ॥

कुमारीकन्याओंके और वंध्याओंके दूधकी नाडी कैसी होती है जिस्से अल्पधातु और अल्पबल होता है तिस्से कुमारीके और वंध्याके दूध नहीं होता है ॥ ९ ॥ वंध्यास्त्रियोंके

दूधकी नाडी वायुसे पूरित होती है तिस्से दूध नहीं उपजता है किंतु आर्तव अधिक होता है ॥ १० ॥

प्रसूतासु च नारीषु बलेन सह सूयते ॥ तेन स्रोतोविशुद्धिः स्यात् क्षीर माशु प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥ तस्मात् सद्यःप्रसूतायां जायते श्लैष्मिकं पयः ॥ तेन कठिनतां याति तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

और बालकको जन्मानेंवाली नारियोंमें बल करकै बालक जन्मता है तिस्से विशेष करकै शुद्धि होती है तब दूध शीघ्र प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ तिसवास्तै तत्काल प्रसूतहुई नारीमें कफकी प्रकृतिवाला दूध उपजता है तिसकरकै वह दूध कठिनपनेको प्राप्त होता है तिस्से वह वर्जदेना ॥ १२ ॥

स्रोतोविशुद्धिकरणं बलकृद्दोषनाशनम् ॥
पयस्त्रिदोषशमनं वृष्यश्चाग्निप्रवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

स्रोतोंके विशेष करकै शुद्धिको करनेंवाला और बलको करनेवाला और दोषको नाशनेवाला ऐसा दूध त्रिदोषको शांत करता है और पुष्टिको करता है और जठराग्निको बढाता है १३

पृथक् २ रंगकीस्त्रियोंके दूध

कृष्णा वृष्या च वातघ्नी पयस्तस्या विशेष्यते ॥ श्वेतापयः श्लेष्मकृच्च वातलं रक्तिकापयः ॥ १४ ॥ पित्तसंशमना पीता तस्याः क्षीरं विशेष्यते ॥

काली स्त्री पुष्टिको करती है वातको नाशती है तिसका दूध अच्छा होता है सफेदरंगकी स्त्रीका दूध कफको करता है लालरंगकी स्त्रीका दूध वातको करता है ॥ १४ ॥ पीलीस्त्रीका दूध पित्तको शांत करता है और यह अच्छा है ॥

पृथक् २ रंगकीगायोंका दूध

कृष्णारक्पित्तसंयुक्ता श्वेता श्लेष्मगुणान्विता ॥ १५ ॥ कफवाताश्रिता पीता रक्तवातगुणान्विता॥यद्यद्वर्य्यगुणास्ते तु ज्ञातव्याः सुमहात्मना ।१६।।

कालीगाय रक्त और पित्तसे संयुक्त होती है सफेद रंगवाली कफके गुणोंसे संयुक्त होती है ॥ १५ ॥ पीली कफ और वातसे संयुक्त होती है लालरंगवाली वातके गुणसे संयुक्त होती है ऐसे जोजो उत्तमगुण है वे—सब महात्मा वैद्यकों जानने चाहिये ॥ १६ ॥

धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम् ॥
शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥ १७ ॥

गायका दूध धारोंसे गर्महुआही हित है भैंसका दूध धारोंसे पीछे शीतलहुआ हित है भेडके दूधको गर्म करके पीछे गर्मरूपही पथ्य है बकरीके दूधको गर्मकर पीछे शीतलकरा पथ्य है १७

अथ गायके दूधके गुण ॥

गव्यं पवित्रं च रसायनं च पथ्यं च हृद्यं बलपुष्टिदं स्यात् ॥
आयुष्प्रदं रक्तविकारपित्तत्रिदोषहृद्रोगविषापहं स्यात् ॥ १८ ॥

गायका दूध पवित्र है रसायन है पथ्य है मनोहर है बलको और पुष्टिको देता है आयुको देता है और रक्तविकार, पित्तरोग, त्रिदोष, हृद्रोग, विष, इन्होंको नाशता है ॥ १८ ॥

अथ बकरीके दूधके गुण ॥

छागं कषायं मधुरञ्च शीतं ग्राहि लघु पित्तक्षयापहारि ॥
कासज्वराणां रुधिरातिसारे हितं पयश्छागलजं त्रिदोषजित्॥१९॥

बकरीका दूध कसैला है मधुर है शीतल है कबजको करता है हलका है पित्तको और क्षयको नाशता है खांसीसहित ज्वर, रक्तका अतीसार इन्होंमें हित है और त्रिदोषको जीतता है॥ १९॥

अथ भेडके दूधके गुण ॥

औरभ्रं मधुरं रूक्षमुष्णवातकफापहम् ॥
न शस्तं रक्तपित्तानां वातिकानां हितं भवेत् ॥ २० ॥

भेडका दूध मधुर है रूखा है उष्णवातको और कफको नाशता है रक्तपित्तवालोंको अच्छा नहीं है और वातवालोंको अच्छा है ॥ २० ॥

अथ भैंसका दूधके गुण॥

स्निग्धं मरुच्छीतकरं च तन्द्रानिद्राकरं वृष्यतमं श्रमघ्नम् ॥
बलप्रदं पुष्टिकरं कफस्य सञ्जीवनं माहिषमुच्यते पयः ॥ २१ ॥

भैंसका दूध चिकना है वायुको और शीतको उपजाता है तंद्राको और नींदको करता है अतिपुष्ट है परिश्रमको नाशता है बलको देता है कफको करता है और संजीवनरूप है॥२१॥

अथ ऊंटनीका दूधके गुण ॥

रूक्षं तथोष्णं लवणं कफस्य निवारणं वातविकारहारि ॥
लघु प्रशस्तं कटुकं कृमीणां शोफार्शसामौष्ट्रपयोऽनुकूलम् ॥२२ ॥

ऊंटनीका दूध गर्म है सलौना है रूखा है कफको दूर करता है वातके विकारको नाशता है हलका है अच्छा है चर्चरा है कीडोंको निकासता है शोजाको और ववासीरको शांत करता है ॥ २२ ॥

स्त्रियोंके दूधका गुण ॥

सञ्जीवनं बृंहणमेव सात्म्यं सन्तर्पणं नेत्ररुजापहं च ॥
पित्तस्य रक्तस्य च नाशनं च नारीपयः स्नेहनमेव शस्तम् ॥ २३ ॥

स्त्रियोंका दूध संजीवन है, पुष्टिकारक है, स्वभावसैं रहता है, तृप्ति करता है, नेत्रोंकी पीडा दूर करता है, दुष्टपित्तका और रक्तका नाश करता है, चिकनाई देता है, ऐसा स्त्रियों-का दूध अच्छा है ॥ २३ ॥

अथ प्रभातका दूधके गुण ॥

निशाशीतांशुसंशीतं निद्रालस्यश्रमानुगम्॥
सघनं शीतकफकृत्क्षीरं प्राभातिकं भवेत्॥ २४ ॥

रात्रिके चंद्रमाकी किरनोंसे शीतलहुआ नींद, आलस्य, परिश्रम, इन्होंको शांत करने-वाला और भारा शीतको और कफको करनेवाला ऐसा प्रभातका दूध होता है ॥ २४ ॥

अथ दिनका दूधके गुण॥

वासरे सूर्य्यसन्तापात्सद्योष्णं कफवातजित् ॥

दिनमें सूर्यके संतापसे तत्काल गर्महुआ कफको और वातको जीतनेंवाला पित्तको शांत करनेवाला ऐसा दिनका दूध है ॥

अथ रात्रिके दूधका गुण ॥

हितं तत्पित्तशमनं सुशीतं भोजने निशि ॥२५॥

रात्रिमें भोजनके समय अच्छा शीतल किया दूध हित है और पित्तको शांत करता है ॥ २५ ॥

अथ दूधको पीनेकी विधि ॥

अल्पाम्बुपानव्यायामात् कटुतिक्ताशने लघु ॥ पिण्याकाम्लाशिनीनां तु गुर्वभिष्यन्दि शीतलम् ॥ २६ ॥ क्षीणानां दुर्बलानाञ्च तथा जीर्णज्व

रार्दिते ॥ दीप्ताग्नीनामतन्द्राणां श्रमशोषविकारिणाम् ॥ २७ ॥ व्यवायिनामल्परेतसां श्वासिनां विषमाग्नीनाम् ॥ तथा च राजयक्ष्मणां क्षीरपानं विधीयते ॥ २८ ॥ न शस्तं लवणैर्युक्तं क्षीरं चाम्लेन वा पुनः ॥ करोति कुष्ठं त्वग्दोषं तस्मान्नैव हितं मतम् ॥ २९ ॥

अल्प पानीको पीना और कसरत और चर्चरा तथा कडुआ भोजन इन्होंको सेवनेवालोंको दूध हलका है तिलोंकी पीठी और खट्टे पदार्थोंको सेवनेवालोंको दूध भारा है कफको करता है और शीतल है ॥ २६ ॥ क्षीण, दुर्बल, जीर्णज्वरसे पीडित, दीप्तअग्निवाला, तंद्रासे वर्जित श्रम और शोषको विकारवाले ॥ २७ ॥ मैथुन करनेवाले अल्पवीर्यवाले, श्वासवाले, विषम अग्निवाले, राजरोगवाले, इनसबोंको दूधका पान कराना ॥ २८ ॥ नमकसे संयुक्त अथवा खट्टे पदार्थसे संयुक्तकिया दूध अच्छा नहीं है यह कुष्ठको और खालमें रोगको करता है इसवास्ते यह हित नहीं है ॥ २९ ॥

अथ गायका दहीके गुण॥

अम्लं स्वादुरसं ग्राहि गुरूष्णं वातरोगजित् ॥ मेदःशुक्रबलश्लेष्मरक्तपित्ताग्निशोफकृत् ॥ ३० ॥ स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम्॥ वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुजाकरम् ॥ ३१ ॥

गायका दही खट्टा है स्वादुरसवाला है कबजको करता है भारा है गर्म है वातरोगको जीतता है और मेद, बल, वीर्य्य, रक्त, पित्त, शोजा, इन्होंको करता है ॥ ३० ॥ और विशेष करकै पाककालमें मधुर है अग्निको जगाता है बलको बढाता है वायुको नाशता है पवित्र है और रोगको करता है ॥ ३१ ॥

अथ बकरीका दहीके गुण ॥

आजं दधि भवेच्चोष्णं क्षयवातविनाशनम् ॥ दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्निप्रदीपनम् ॥ ३२ ॥ विपाके मधुरं वृष्यं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ शस्तं प्राभातिकं प्रोक्तं वातपित्तनिबर्हणम् ॥ ३३ ॥

बकरीका दही गर्म है क्षयको और वातको नाशता है और ववासीर, श्वास, खांसी, इन्होंमें हित है अग्निको जगाता है ॥ ३२ ॥ और पाककालमें मधुर है वीर्यमें हित है रक्तपित्तको साफकरताहै तिसमेंभी प्रभातका दही अच्छा है वात और पित्तको दूरकरता है ॥ ३३ ॥

अथ भैंसका दहीके गुण ॥

घनं माहिषमुद्दिष्टं मधुरं रक्तदोषकृत् ॥
कफशोफहरं स्वस्थं पित्तकृद्वातकोपनम् ॥ ३४ ॥

भैंसका दही करडा है मधुर है रक्तदोषको करता है कफको और शोजेको हरता है स्वस्थ है पित्तको करता है वातको कोपता है ॥ ३४ ॥

अथ ऊंटनीके दहीके गुण ॥

विपाके कटुसक्षारं गुरुभेद्यौष्ट्रिकं दधि ॥
वातमर्शांसि कुष्ठानि क्रिमीन्हंत्युदरं परम् ॥ ३५ ॥

ऊंटनीका दही विपाकमें तीखा,खारा, भारा, मलका भेदनेवाला, वायु, अर्श, कोढ, कृमि, और उदररोगोंका नाश करता है ॥ ३५ ॥

अथ स्त्रीके दहीके गुण ॥

स्निग्धं विपाके मधुरं बल्यं संतर्पणं हितम् ॥
चक्षुष्यं ग्राहि दोषघ्नं दधि नार्या गुणोत्तमम् ॥ ३६ ॥

स्त्रियोंका दही चिकना, विपाकमें मधुर, बलदेनेवाला, धातुओंकूं तृप्त करनेवाला, ठंढा, नेत्रोंकूं हितकर, वातादिदोषोंकूं नाशनेवाला और बडागुणकारी है ॥ ३६ ॥

अथ भेडका दहीके गुण ॥

कोपनं कफवातानां दुर्नाम्नां चाविकं दधि ॥ दीपनीयं तु चक्षुष्यं पांडुकृच्चापि वातुलम् ॥ ३७ ॥ रूक्षमुष्णं कषायं स्यादत्यभिष्यंदि दोषलम् ॥ रसे पाके च मधुरं कषायं कुष्ठवर्द्धनम् ॥ ३८ ॥

भेडका दही कफ और वात तथा अर्शरोग इन्होंको कोपनेवाला,जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला, नेत्रको हितकर, पांडुरोगकूं उपजानेवाला, वायु उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ ३७ ॥ पित्तको करता है वातको शांत करता है और रूखा, गरम, कसैला, श्लेष्माको पैदा करनेवाला, दोषोंको उपजानेवाला, रसमें और पाकमें मधुर और कसैला, कुष्ठरोगकूं बढानेवाला होता है ॥ ३८ ॥

अथ वर्षाकालके दहीका गुण ॥

वार्षिकं पित्तकृद्वातशमनं कफकोपनम् ॥
गुल्मार्शःकुष्ठरोगे च रक्तपित्ते न शस्यते ॥ ३९ ॥

वर्षाकालका दही कफको कोपता है और गुल्मरोग ववासीर, कुष्ठ, रक्तपित्त, इन्होंमें अच्छा नहीं है ॥३९॥

अथ शरदृतुके दहीका गुण ॥

शारदं दधि गुर्वम्लं रक्तपित्तविवर्द्धनम् ॥
शोफतृष्णाज्वरार्त्तानां करोति विषमज्वरम् ॥ ४० ॥

शरदृतुका दही भारा है खट्टा है रक्तपित्तको बढाता है और शोजा, तृषा, ज्वर, इन्हों-से पीडितोंके विषमज्वरको करता है ॥ ४० ॥

अथ हेमंतऋतुके दहीका गुण ॥

गुरु स्निग्धं सुमधुरं कफकृद्बलवर्द्धनम् ॥
वृष्यं मेध्यं च हैमन्तं पुष्टिदं तुष्टिवद्धिदम् ॥ ४१ ॥

हेमंत और शिशिरऋतुका दही भारा है मधुर है कफको करता है बलको बढाता है वी-र्यमें हित है पवित्र है पुष्टिको देता है और तुष्टिको बढाता है ॥ ४१ ॥

अथ शिशिरऋतुके दहीका गुण ॥

वृष्यं बलकरं पैत्तं श्रमस्यापहरं परम् ॥
शैशिरं सघनं चाम्लं पिच्छलं गुरु चैव च ॥ ४२ ॥

शिशिरऋतुका दही करडा है खट्टा है कफकारी है भारा है वीर्यमें हित है बलको करता है पित्तमें अच्छा है श्रमको हरता है ॥ ४२ ॥

अथ वसंतऋतुके दहीका गुण ॥

वातलं मधुरं स्निग्धं किञ्चिदम्लं कफात्मकम्॥
बलकृद्वीर्य्यकृत्प्रोक्तं वसन्ते न प्रशस्यते ॥ ४३ ॥

वसंतऋतुका दही वातल है चिकना है कछुक खट्टा है कफकी प्रकृतिवाला है बलको और वीर्यको करता है इसवास्ते वसंतऋतुमें दही अच्छा नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ ग्रीष्मऋतुके दहीका गुण ॥

लघु चाम्लं भवेद्ग्रीष्मे चात्युष्णं रक्तपित्तकृत्॥
शोषभ्रमपिपासाकृद् दधि प्रोक्तं न ग्रैष्मिके ॥ ४४ ॥

ग्रीष्मऋतुका दही हलका है खट्टा है अतिगर्म है रक्तपित्तको करता है और शोष, भ्रम, पिपासा, इन्होंको नाशता है इसऋतुमेंभी दही अच्छा नहीं है ॥ ४४ ॥

अथ दहीका वर्जना ॥

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु दोषकृन्न हितं भवेत् ॥ न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाऽप्यघृतशर्करम् ॥ ४५ ॥ लवणं दधि भुञ्जीत भुञ्जीताऽप्युदकेन च ॥ तल्लवणाम्बुसंयुक्तं दधि शस्तं निशि ध्रुवम् ॥ ४६ ॥ ज्वरासृक्पित्तविसर्पकुष्ठिनां पाण्डुरोगिणाम्॥संप्राप्तकामलानाञ्च शोफिनाञ्च विशेषतः॥४७॥ तथा च राजयक्ष्मणामपस्मारे च पीनसे॥ प्रतिश्यायार्दितानाञ्च भोजने न हितं दधि ॥ ४८ ॥

शरद, ग्रीष्म, वसंत, इन ऋतुओंमें दही दोषको नहीं करता है हित है रात्रिमें दहीको नहीं खाना घृत और खांडसे रहित दहीको नहीं खाना ॥ ४५ ॥ नमकसे मिलाहुआ और पानीसे मिलाहुआ ऐसे दहीको खाना और रात्रीमें दहीको खावै तो नमक और पानीसे संयुक्तकर खाना ॥ ४६ ॥ ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पांडुरोग, कामला, शोजा, ॥ ४७॥ राजरोग, मृगीरोग, पीनस, खेहर, इनरोगवालोंको भोजनमें दही हित नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ दहीको खानेकी विधि ॥

हिक्काश्वासार्शःप्लीहानामतीसारे भगन्दरे ॥
शस्तं प्रोक्तं दधि चैषां लवणेन विमूर्च्छितम् ॥ ४९ ॥

हिचकी, श्वास, ववासीर, तिल्लीरोग, अतीसार, भगंदर इन्होंमें नमकसे संयुक्तकिया दही खाना अच्छा है ॥ ४९ ॥

अथ गायका तक्र अर्थात् छाछके गुण ॥

गव्यं त्रिदोषशमनं पथ्ये श्रेष्ठं तदुच्यते ॥
दीपनं रुचिकृन्मेध्यमर्शोदरविकारजित् ॥५०॥

गायका तक्र त्रिदोषको शांत करता है पथ्यमें श्रेष्ठ है अग्निको जगाता है रुचिको करता है पवित्र है ववासीरको और अतीसारको नाशता है ॥ ५० ॥

अथ भैंसका तक्रके गुण॥

माहिषं कफकृत्किञ्चिद्घनं शोफकरं नृणाम् ॥
शस्तं प्लीहार्शोग्रहणीदोषेऽतीसारिणामपि ॥ ५१ ॥

भैंसका तक्र कफको करता है कछुक करडा है मनुष्योंके शोजाको करता है और तिल्लीरोग, संग्रहणी, अतीसार, इनरोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥

अथ बकरीका तक्रके गुण ॥

छागलं लघु संदिग्धं त्रिदोषशमनं परम् ॥
गुल्मार्शोग्रहणीशूलपाण्ड्वामयविनाशनम् ॥ ५२ ॥

बकरीका तक्र चिकना है त्रिदोषको नाशनेमें उत्तम है और गुल्म, ववासीर, संग्रहणी-रोग, शूल, पांडुरोग, इन्होंको नाशता है ॥ ५२ ॥

अथ तक्रवर्णन ॥

तथा च त्रिविधं तक्रं कथ्यते शृणु पुत्रक!॥ यथा योगेन तत् सम्यक् शस्यते येषु रोगिषु ॥ ५३ ॥ समुद्धृतघृतं तक्रमर्द्धोद्धृतघृतञ्च यत् ॥ अनुद्धृतघृतञ्चान्यदित्येतत्त्रिविधं मतम् ॥ ५४ ॥ सर्वं लघु च पथ्यञ्च त्रिदोषशमनं परम् ॥ ततः परं वृष्यतरं क्रमेण समुदीरितम्॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु विद्यात् कफात्मकम् ॥ बलप्रदन्तु क्षीणानामामशोफातिसारकृत् ॥ ५६ ॥

तक्र ३ प्रकारका है सो मैं कहताहूं हेपुत्र! सुन अच्छीतरह यथायोग करकै वह तक्र जिन-रोगोंमें अच्छा है सो दिखाताहूं ॥ ५३॥ जो घृतसे वर्जित तक्र है और घृतसे सहित तक्र है और अनुद्धृततक्र है ऐसे ३ प्रकारसे तक्र कहा है॥५४॥घृतसे वर्जिततक्र हलका है पथ्य है त्रिदोषको शांत करता है घृतसहित तक्र वीर्यमें हित कहा है ॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतसंज्ञक तक्र कठिन है भारा है कफकी प्रकृतिवाला है क्षीणमनुष्योंको बल देता है और आमदोष, शोजा, अतीसार–इन्होंको करता है ॥ ५६ ॥

अथ साधारणतक्रके गुण ॥

गरोदरार्शोग्रहणीपाण्डुरोगे ज्वरातुरे ॥ वर्चोमूत्रग्रहे वापि प्लीहव्यापदमेहिषु ॥ ५७ हितं संप्रीणनं बल्यं पित्तरक्तविरोधकृत् ॥ मधुरं पित्तरक्तघ्नमत्युष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ ५८ ॥

कृत्रिमविष, उदररोग, ववासीर, ग्रहणीदोष, पांडुरोग, ज्वर, विष्ठाका बंधा, मूत्रका बंधा, तिल्लीरोग, प्रमेह–इनरोगवालोंको ॥ ५७ ॥ साधारणतक्र हित है प्रीतिको करता है बलमें

हित है पित्तरक्तका विरोधी है मधुर है पित्तरक्तको नाशता है अतिगर्म है और रक्तपित्तको करता है ॥ ५८ ॥

अथ बहुतपानीवाले तक्रका गुण ॥

बहूदकं दीपनीयं रक्तपित्तप्रकोपनम् ॥
पीनसे श्वासकासे च न शस्तमिह कथ्यते ॥ ५९ ॥

बहुतपानीवाला तक्र अग्निको जगाता है रक्तपित्तको कुपित करता है और पीनस, खांसी, श्वास, इनरोगोंमें अच्छा नहीं है ॥ ५९ ॥

अथ विशेषवर्णन ॥

अर्द्धोदकमुदश्वित्स्यात्तक्रं पादजलान्वितम् ॥
वातं कफं हरेद्घोरमुदश्वित् श्लेष्मलं भवेत् ॥ ६० ॥

आधेपानीसे संयुक्त उदश्वित् कहते है और चौथाईपानीसे संयुक्तको तक्र कहते है६०

अथ हाथसे मर्दितकिया तक्रका गुण ॥

करेण मर्दितं जन्तुतर्पणं बलकृन्मतम् ॥
श्रमापहरणं स्निग्धं ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत् ॥ ६१ ॥

हाथसे मर्दितकिया तक्र जीवोंको तृप्त करता है बलको करनेवाला है परिश्रमको हरता है और ग्रहणीदोष,ववासीर, अतीसार इन्होंको नाशता है ॥ ६१ ॥

अथ तक्रनिषेध ॥

ऋते शोके च क्षीणानां नोष्णकाले शरत्सु च ॥ न मूर्च्छाभ्रमतृष्णासु तथा रक्ते सपैत्तिके ॥ न शस्तं तक्रपानञ्च करोति विविधान् गदान् ॥ ६२ ॥

शोजाके विना क्षीणोंको और गर्मकालमें, शरदऋतुमें और मूर्च्छा, भ्रम, तृषा, इन्होंमें, और रक्तपित्तमें तक्रको पीना अच्छा नहीं है किंतु अनेकप्रकारके रोगोंको करता है ॥६२॥

अथ तक्रपानविधि ॥

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोच्छ्रायामयेषु च ॥ मार्गावरोधे दुष्टेऽग्नौ गुल्मार्शसि तथामये ॥ ६३ ॥ शस्तं प्रोक्तश्च तक्रं स्यादमीषां सर्वदा हितम् ॥ सर्वकालेषु तच्छस्तमजाजिलवणान्वितम् ॥ ६४ ॥

शीतकालमें, मंदाग्निमें, कफकी अधिकतासे उपजे रोगोंमें, स्रोतोंके रुकजानेमें, दुष्टहुआ अग्निमें, गुल्मरोगमें, बवासीरमें ॥ ६३ ॥ मनुष्योंको तक्र हित कहा है जीरा और नमकसे संयुक्तकिया तक्र सबकालमें उत्तम है ॥ ६४ ॥

अथ नौनीघृतकी विधि ॥

नवनीतं नवग्राहि हृद्यं चोल्बणदीपकम् ॥ क्षयारुच्यर्दितप्लीहग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥६५॥ चक्षुष्यं शिशिरं स्निग्धं वृष्यं जीवनबृंहणम् ॥ क्षीणे द्रवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगनुत् ॥ ६६ ॥ स्मृतिवाय्वग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्द्धनः ॥ वातपित्तकफोन्मादशोफालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ सर्वदोषापहं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ ६७ ॥

नौनीघृत नवीन अवस्थाको हरता है सुंदर है अग्निको जगाता है और क्षय, अरुचि, लकुवावात, तिल्लीरोग, ग्रहणीदोष, बवासीर—इन्होंको नाशता है ॥ ६५ ॥ और नेत्रोंमें हित है सुंदर शीतल है चिकना है वीर्यको करता है जीवोंको जिवानेवाला है धातुओंको पुष्ट करता है क्षीणमनुष्यको हित है द्रवरूप है शीतलस्वभाववाला है कबजको करता है रक्तपित्त-को और नेत्ररोगको नाशता है ॥ ६६ ॥ और स्मृति, वायु, अग्नि, वीर्य, पराक्रम, कफ, मेद—इन्होंको बढाता है और वात, पित्त, कफ, उन्माद, शोजा, अलक्ष्मी, ज्वर, इन्होंको नाशता है सबदोषोंको हरता है रसमें और पाकमें मधुर है ॥ ६७ ॥

अथ फेनविधि ॥

कृष्णगोऽश्वपयःफेनमजानां वेति शस्यते ॥ मन्दाग्नीनां कृशानाञ्च विशेषादतिसारिणाम् ॥ ६८ ॥ उत्साहदीपनं बल्यं मधुरं वातनाशनम् ॥ सद्योबलकरञ्चैव तस्य क्षीरविलोडितम् ॥ ६९ ॥ क्षीणज्वरातिसारे च सामे च विषमज्वरे ॥ मन्दाग्नौ कफमाश्रित्य पयःफेनं प्रशस्यते ॥ ७० ॥ क्षीरं गवां क्षीरफेनं तक्रं वा हितमेव च ॥ पक्वान्नभक्षणाद्वापि ग्रहणी तस्य नश्यति ॥ ७१ ॥ ताम्बूलं नैव सेवेत क्षीरं पीत्वा तु मानवः ॥ यावत्तच्च द्रवेत् क्षीरं भुक्तान्ताद्वापि शस्यते ॥ ७२ ॥

कालीगाय और घोडीका दूधके झाग अथवा बकरीका दूधके झाग मंदाग्निवालोंको और कृशमनुष्योंको और विशेष करके अतीसारवालोंको अच्छे होते हैं ॥ ६८ ॥ दूधको विलोनेसे उपजे झाग उत्साहको करते हैं बलमें हित है मधुर है वातको नाशते हैं शीघ्रबलको

करते हैं ॥ ६९ ॥ क्षीणज्वर, अतीसार, आमज्वर, विषमज्वर, मंदाग्नि, कफको आश्रितहोंके दूधके झागोंका पान श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥ गायका दूध अथवा गायका दूधके झाग अथवा गायके दूधका तक्र हित होता है और गायके तक्रको पीनेवालाके पकेहुये आंबको खावै तो ग्रहणीदोषका नाश होता है ॥ ७१ ॥ दूधका पान करकै नागरपानको सेवै नहीं जबतक वह दूध द्रवभावको नहीं प्राप्तहोवै और अन्यभोजनके अंतमें नागरपान अच्छा है अथवा भोजनके अंतमें दूधका पीना अच्छा है ॥ ७२ ॥

अथ गायके घृतका गुण ॥

विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तकफापहम् ॥
चक्षुष्यं बलकृन्मेध्यं गव्यं सर्पिर्गुणोत्तमम् ॥ ७३ ॥

गायका घृत पाककालमें मधुर है वीर्यमें हित है और वात, पित्त, कफ, इन्होंको नाशता है नेत्रोंमें हित है बलको करता है पवित्र है गुणोंमें उत्तम हैं ॥ ७३ ॥

अथ बकरीके घृतका गुण ॥

आज्यं सन्दीपनीयश्च चक्षुष्यं बलवर्द्धनम्॥
कासश्वासक्षयाणाञ्च हितं पाके कफापहम् ॥ ७४ ॥

बकरीका घृत जठराग्निको जगाता है नेत्रोंमें हित है बलको बढाता है और खांसी, श्वास, क्षय, इनरोगवालोंको हित है और पाककालमें कफको नाशता है ॥ ७४ ॥

अथ भैंसके घृतका गुण ॥

सवातपित्तशमनं सुशीतं माहिषं घृतम् ॥
मधुरं गुरु विष्टम्भि बल्यं श्रेष्ठगुणात्मकम् ॥ ७५ ॥

भैंसका घृत वातको और पित्तको शांत करता है सुंदर शीतल है मधुर है भारा है विष्टंभी है बलमें हित है और श्रेष्ठगुणोंवाला है ॥ ७५ ॥

अथ ऊंटनीका घृतके गुण ॥

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषकृमिविषापहम् ॥
दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ७६ ॥

ऊंटनीका घृत पाककालमें चर्चरा है और शोष, कृमि, विष, इन्होंको नाशता है अग्निको जगाता है कफ और वातको नाशता है और कुष्ठ, गुल्म, उदररोग, इन्होंको हरता है॥७६॥

अथ भेडके घृतका गुण ॥

पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्वरोगविषापहम्॥
वृद्धिं करोति चास्थ्नां वै वाश्मरीशर्करापहम् ॥ ७७ ॥

भेडका घृत पाककालमें हलका है सबतरहके रोगोंको और विषको हरता है हड्डियोंको बढाता है पथरीको और शर्कराको नाशता है ॥ ७७ ॥

अथ घोडीके घृतका गुण ॥

वृद्धिं करोति देहाग्नेः पय आश्वं विषापहम्॥
चक्षुष्यमूषणश्चाग्नेर्वातदोषनिवारणम् ॥ ७८ ॥

घोडीका घृत जठराग्निको बढाता है पाककालमें हलका है विषको हरता है नेत्रोंमें हित है जठराग्निको जगाता है और वातदोषको दूर करता है ॥ ७८ ॥

अथ दूधसेही निकाले घृतका गुण ॥

वृद्धिं करोति चास्थ्नां वै नतु प्रोक्तश्च विषापहम् ॥
तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुत् पयसो घृतम् ॥ ७९ ॥

दूधसे निकासा घृत तृप्तीको करता है नेत्ररोगको नाशता है हड्डियोंको बढाता है, विषोंको दूर करता है और दाहको हरता है ॥ ७९ ॥

अथ पुराने घृतका गुण ॥

सर्पिर्जीर्णं तच्च सन्धुक्षणे च मूर्च्छाकुष्ठोन्मादकर्णाक्षिशूले ॥
शोफार्शसोर्योनिदोषे व्रणेषु शस्तं सर्पिर्जीर्णमेवं नृणां स्यात् ॥ ८० ॥

पुरानाघृत जठराग्निको जगाता है और मनुष्योंके मूर्च्छा, कुष्ठ, उन्माद, कर्णशूल, नेत्रशूल, शोजा, ववासीर, योनिदोष, घाव, इन्होंमें हित है ॥ ८० ॥

अथ नारीके घृतका गुण ॥

कफेऽनिले योनिदोषे रोगेष्वन्येषु तद्धितम् ॥
चक्षुष्यमार्त्तं स्त्रीणाञ्च सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ८१ ॥

कफ, वात, योनिदोष, अन्यभी रोग, इन्होंमें उत्तम है नेत्रोंमें हित है और अमृतके समान है ऐसा नारीका घृत कहा है ॥ ८१ ॥

अथ घृतका विशेष वर्णन ॥

बलक्षये तर्पणभोजनेषु श्रमे च पित्तासृजि रेणुयुक्ते ॥ नेत्रामये कामल

पाण्डुरोगे क्षये नवं सर्पिर्वदन्ति धीराः ॥ ८२ ॥ ज्वरे विबन्धेषु विषूचिकायामरोचके वा शमिते तथाग्नौ ॥ पानात्यये वापि मदात्यये वा शस्तं न सर्पिर्बहु मन्यते सुधीः ॥ ८३ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे क्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

बलक्षयमें, तर्पणमें, भोजनमें, परिश्रममें, पित्तरक्तमें, नेत्रके रोगमें, कामलामें, पांडुरोगमें, क्षयमें, वैद्य घृतको उत्तम कहते है ॥ ८२ ॥ ज्वरमें, विबंधमें, विषूचीसंज्ञक हैजामें, अरोचकमें, मंदाग्निमें, पानात्ययमें, मदात्ययमें, वैद्य घृतको अच्छा नहीं मानतेहैं ॥ ८३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने क्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ मूत्रवर्ग ॥

मूत्रं गोऽजाविमाहिष्यं गजाश्वोष्ट्रखरोद्भवम् ॥
मूत्रं मानुषजञ्चान्यत्समासेन गुणाञ्छृणु ॥ १ ॥

गाय,बकरी,भेड,भैंस,हस्ती,घोडा,ऊंट,गधा,मनुष्य,इन्होंके मूत्रोंके गुणविस्तारसे सुन ॥१॥

अथ गोमूत्रके गुण ॥

तीक्ष्णञ्चोष्णं क्षारमेवं कषायं बल्यं मेध्यं श्लेष्मवातान्निहन्ति ॥ भेदि रक्तपित्तशमं करोति गुल्मानाहदर्पदोषापहञ्च ॥ २ ॥ भ्रूशङ्खहनुकण्ठकमुखानाञ्च रोगान् गुल्मातिसारगुदमारुतनेत्रगदान् ॥ कासं सकुष्ठं जठरकृमिकोशजालं गोमूत्रमेकमपि पीतमहानि हन्ति ॥ ३ ॥

गायका मूत्र तीक्ष्ण है गर्म है खारा है कसैला है बलमें हित है पवित्र है कफको और वातको नाशता है भेदित करनेवाला है रक्तपित्तको शांत करता है और गुल्म, अफारा, उन्माद दोष, इन्होंको हरता है ॥ २ ॥ और भ्रुकुटी, कनपटी, ठोडी, कंठ, मुख, इन्होंके रोगोंको और गुल्म, अतीसार, ववासीर, वातरोग, नेत्ररोग, खांसी, कुष्ठ, पेटमें कीडोंका समूह—इन्होंको कईदिन पीनेसे नाशता है ॥ ३ ॥

अथ बकरीके मूत्रका गुण ॥

आजं मूत्रं तीक्ष्णमुष्णं कषायं योज्यं पाने शूलगुल्मार्त्तिनाशम् ॥ कासश्वासकामलापाण्डुरोगार्शसाञ्चैव श्रेष्ठमेतद्वदन्ति ॥ ४ ॥

बकरीका मूत्र तीक्ष्ण है गर्म है कसैला है गुल्मको और शूलको नाशता है और खांसी, श्वास, कामला, पांडुरोग, ववासीर– इन्होंमें श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ मेंढाके मूत्रका गुण ॥

सक्षारं कटुकं तीक्ष्णं मूत्रं वातघ्नमाविकम् ॥
दुर्नामोदरशूलघ्नं कुष्ठमेहविशोधनम् ॥ ५ ॥

मेंढाका मूत्र सर है कडुआ है तीक्ष्ण है वातको नाशता है और कुष्ठ, ववासीर, उदररोग, शूल, प्रमेह, इन्होंको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ भैंसाके मूत्रका गुण ॥

सारं सतिक्तं कटुकं कषायं प्रभेदि वातस्य शमं करोति ॥
पित्तप्रकोपं कुरुते सदा च कुष्ठार्शपाण्डूदरशूलनाशम् ॥ ६ ॥

भैंसाका मूत्र सर है कडुआहै चर्चरा है कसैला है भेदन करता है वातको शांत करता है सबकालमें पित्तको कुपित करता है और पांडु, ववासीर, कुष्ठ, उदररोग, शूल, इन्होंको नाशता है ॥ ६ ॥

अथ हस्तीके मूत्रका गुण ॥

सुतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं कफकोपनम् ॥
क्षारमण्डलकुष्ठानां नाशनं गजमूत्रकम् ॥ ७ ॥

हस्तीका मूत्र सुंदर कडुआ है सलोना है भेदन करता है वातको नाशता है कफको कोपता है और क्षारसे उपजे मंडल और कुष्ठोंको नाशता है ॥ ७ ॥

अथ घोडाके मूत्रका गुण ॥

कासकफहरं छर्दिक्रिमिकुष्ठविनाशनम् ॥
दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातश्लेष्मविकारनुत् ॥ ८ ॥

घोडाका मूत्र खांसीको और कफको हरता है और छर्दि, कृमि, कुष्ठ, इन्होंको नाशता

है अग्निको जगाताहै चर्चरा है तीक्ष्ण है गर्म है वात और कफके विकार नाशता है ॥ ८ ॥

अथ ऊंटके मूत्रका गुण ॥

औष्ट्रं कफहरं रूक्षं क्रिमिदद्रूविनाशनम् ॥
श्रेष्ठं कुष्ठोदरोन्मादशोषार्शःक्रिमिवातनुत् ॥ ९ ॥

ऊंटका मूत्र कफको करता है रूखा है कृमिरोगको और दद्रूको नाशता है श्रेष्ठ है और कुष्ठ, उदररोग, उन्माद, शोष, ववासीर, कृमि, वात, इन्होंको नाशता है ॥ ९ ॥

अथ गधाके मूत्रका गुण॥

गार्दभं नामनं मूत्रं तैलं योज्यं क्वचिद्भवेत् ॥
सक्षारं तिक्तकटुकमुन्मादकुष्ठरोगनुत् ॥ १० ॥

गधाका मूत्र निवाय देता है और कहींके तेलमें युक्त करनेके योग्य है खारा है और कडुआ है चर्चरा है उन्मादको और कुष्ठको नाशता है ॥ १० ॥

अथ नरके मूत्रका गुण ॥

मानुषं क्षारकटुकं मधुरं लघु चोच्यते ॥
चक्षुरोगहरं बल्यं दीपनं कफनाशनम् ॥ ११ ॥

मनुष्यका मूत्र खारा है चर्चरा है मधुर है हलका है नेत्रोंके रोगको हरता है बलमें हित है अग्निको जगाता है और कफको नाशता है ॥ ११ ॥

अथ प्रसूता और अप्रसूताके मूत्रका गुण ॥

अप्रसूताया घनं मूत्रं प्रसूताया द्रवं लघु॥
न किंगुणविशेषः स्यात्समता पाकवीर्य्ययोः ॥ १२ ॥

नहीं प्रसूत अर्थात् व्याईहुईका मूत्र कठिन होता है व्याईहुईका मूत्र पतला होता है हलका होता है और कछुगुणमें विशेषता नहीं है पाककालमें और वीर्य्यमेंभी समता है॥१२॥

अथ मूत्रविशेष ॥

सौरभेयकमूत्रन्तु घनं सान्द्रं प्रशस्यते ॥ तच्च वृषणहीनानां किञ्चिल्लघुतरं मतम् ॥ १३ ॥ वृषमूत्रञ्च शोफघ्नं क्रिमिदोषविनाशनम् ॥ कामलाग्रहणीपाण्डुनाशनञ्चाग्निदीपनम् ॥ १४ ॥ अजागविगतं मूत्रं पाने शस्तं

भिषग्वर! ॥ आविकं माहिषं चाश्वं तैलपाके विधीयते ॥ १५ ॥ गजमूत्रप्रलेपश्च कण्डूदद्रूविसर्पनुत् ॥ कारभं खरमूत्रं वा तैले नस्ये विधायकम्॥१६॥इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्याय. ॥९॥

सुरभीगायका मूत्र कठिन और मोटा श्रेष्ठ होता है वधिया किये बैलका मूत्र कछुक हलका है ॥ १३ ॥ बैलका मूत्र शोजाको हरता है कृमिदोषको नाशता है और कामला, ग्रहणी, पांडुरोग, इन्होंको नाशता है और अग्निको जगाता है ॥ १४ ॥ बकरीका और गायका मूत्र पीनेमें श्रेष्ठ है हे वैद्यवर ! मेंढाका मूत्र, भैंसाका मूत्र, घोडाका मूत्र, ये तीनों तेलपाकमें हित है ॥ १५ ॥ हस्तीके मूत्रका लेप खाज, दद्रू, विसर्प्प, इन्होंको नाशता है ऊंटका मूत्र और गधाका मूत्र तेलमें और नस्यमें उत्तम है ॥१६॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ इक्षुवर्ग ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि इक्षुवर्गं गुणाधिकम् ॥
रसायनोत्तमं बल्यं रोगवारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

अब गुणोंसे अधिक संयुक्तहुये ईखके वर्गको कहताहूं यह ईखवर्ग उत्तम रसायन है रोगोंको दूर करता है ॥ १ ॥

स्वादुईखका गुण ॥

स्निग्धश्च तर्पणं वापि बृंहणश्च सजीवनम् ॥ २ ॥

स्वादु ईख चिकना है तृप्तीको करता है धातुओंको पुष्ट करता है और जीवनरूप है ॥२॥

अथ सफेदईखका गुण ॥

तद्वातपित्तशमनश्वतथैव वृष्य अन्तर्विदाही कफकृत्सितेक्षुः ॥ ३ ॥

सफेदईख वातको और पित्तको शांत करता है वीर्यको बढाता है और शरीरके भीतर दाहको करता है ॥ ३ ॥

अथ कालाईखके गुण ॥

तद्वत् सुकृष्णो भवते गुणानां वृष्यो भवेत् तर्पणदाहहन्ता ॥
क्षारः स किञ्चिन्मधुरो रसेन शोषापहर्त्ता व्रणशोफकारी ॥ ४ ॥

कालईख सफेदईखके गुणोंसे संयुक्त होता है वीर्यको बढाता है तृप्तिको और दाहको नाशता है खारा है और रसकरकै कछुक मधुर है शोषको हरता है घावको और शोजाको करता है ॥ ४ ॥

अथ यंत्रसे निकासेहुये रसका गुण ॥

यन्त्रेण पीडितरसः कथितो गुरुश्च वृष्यः कफञ्च कुरुतेऽथ सुशीतलश्च ॥ पाके विदाहबलकृच्च सुशोभनश्च संसेवितो रुधिरपित्तरुजं निहन्ति ॥ ५ ॥

यंत्रसे निकासेहुये ईखका रस भारा है वीर्यको करता है कफको करता है सुंदर शीतल है पाककालमें दाहको करता है बलको उपजाता है सुंदर शोभित है और सेवितकिया रक्तका और पित्तका रोगको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ दांतोंसे पीडितकिये रसका गुण ॥

दन्तैर्निष्पीडितरसो रुचिकृद्गुरुश्च सन्तर्पणो बलकरः कफकृच्छ्रमघ्नः ॥ विष्टम्भकारी रुधिरस्य तथैव पित्तदोषं निहन्ति सकलं वमनञ्च शोषम्॥६॥

दंतोंसें पीडितकर निकासाहुआ ईखका रस रुचिको करता है भारा है तृप्तिको करता है बलको उपजाता है कफको करता है परिश्रमको नाशता है विष्टंभको करताहै रक्तको और पित्तको नाशता है वमनको और शोषको हरता है ॥ ६ ॥

अथ बासी रसका गुण ॥

रसपर्य्युषितेनेष्टस्तापहैकमते गुरुः ॥
कफपित्तकरः शोषी भेदनो वाऽथ मूत्रलः ॥ ७ ॥

बासीईखका रस अच्छा नहीं है और किसीकके मतमें तापको हरता है भारा है कफको और पित्तको करता है शोषको करता है भेदन करता है और वातको उपजाता है॥७॥

अथ पक्वरसका गुण ॥

पक्वो गुरुरतः स्निग्धः सतीक्ष्णःकफवातहा ॥
पित्तघ्नोऽपि विशेषेण गुल्मातीसारकासहा ॥ ८ ॥

पकायाहुआ ईखका रस भारा है चिकना है तीक्ष्ण है कफको और वातको नाशता है और विशेषकरकै पित्तको शांत करता है और गुल्म, अतीसार, खांसी-इन्होंको नाशता है॥८॥

अथ फाणितरसका गुण ॥

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं शुक्रलञ्च तत् ॥
पित्तघ्नञ्च श्रमहरं रक्तदोषनिषूदनम् ॥ ९ ॥

फाणितरस भारा है कफको करता है धातुओंको पुष्ट करता है वीर्य्यको बढाता है पित्तको नाशता है परिश्रमको हरता है और रक्तदोषको दूर करता है ॥ ९ ॥

अथ गुडका गुण ॥

बल्यो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः ॥ स पुराणोऽधिकगुणो गुल्मार्शोऽरोचकापहः ॥ १० ॥ क्षये कासे क्षतक्षीणे पाण्डुरोगेऽसृजः क्षये ॥ हितो योग्ये न संसुक्तो गुडः पथ्यतमो मतः ॥ ११ ॥

गुड बलमें हित है वीर्यको करता है भारा है चिकना है वातको नाशता है मूत्रको शोधता है और पुराना गुड अधिक गुणोंवाला है और गुल्म, बवासीर, अरोचक—इन्होंको नाशता है ॥ १० ॥ और क्षय, खांसी, छातीके फटनेसे क्षीण, पांडुरोग, रक्तक्षय, इनरोगोंमें हितपदार्थसे संयुक्तकिया गुड अतिपथ्य माना है ॥ ११ ॥

अथ गुडकी खांडका गुण ॥

गुडखण्डश्च मधुरः सितश्च वातपित्तहा ॥
किञ्चिच्छीतगुणोपेतो बल्यो वृष्यो रुचिप्रदः ॥ १२ ॥

गुडकी खांड मधुर है सफेद है वातको और पित्तको नाशती है कछुक शीतगुणसे संयुक्त है बलमें हित है वीर्यको देता है और रुचिकोभी देता है ॥ १२ ॥

अथ साधारण खांडका गुण ॥

वातपित्तहरं शीतं स्निग्धं बल्यं मुखप्रियम् ॥
चक्षुष्यं श्लेष्मकृच्चोक्तं खण्डं वृष्यतमं मतम् ॥ १३ ॥

खांड साधारण वातको और पित्तको हरती है शीतल है चिकनी है बलमें हित है मुखमें प्रिय है नेत्रोंमें हित है कफको करती है और वीर्यको अति बढाती है॥ १३ ॥

अथ मिश्रीका गुण ॥

सिता सुमधुरा प्रोक्ता वृष्या शुक्रविवर्द्धनी ॥
पित्तघ्नी मधुरा बल्या शर्करा पायिनी नृणाम्॥ १४ ॥

मिश्री सुंदर मधुर है वीर्यको बढाती है धातुओंको पुष्ट करती है पित्तको नाशती है मधुर है बलमें हित है मनुष्योंकी रक्षा करती है ॥ १४ ॥

अथ सुंदरखांडका गुण ॥

शर्करान्या सुशीता च कासशूलसमुद्भवा ॥
हिता पित्तास्रजि शोषे मूर्च्छाभ्रममदापहा ॥ १५ ॥

सफेद खांड सुंदर शीतल है खांसीको और शूलको उपजाती है पित्तरक्तमें हित है शोषमें हित है और मूर्च्छा, मद, भ्रम, इन्होंको नाशती है ॥ १५ ॥

अथ गुडविशेषता ॥

गुदामये कामलशोषमेहे गुल्मामये पाण्डुहलीमके च ॥ वाते सपित्तास्रजि राजरोगे रुचिप्रदो रोगहरो गुरुः स्यात् ॥ १६ ॥ कासे शोषे गुडो नेष्ट अन्यत्रापि हितो मतः ॥ योगयुक्तोऽहि सर्वत्रहितो गुणगणालयः ॥ १७ ॥ क्षामक्षामक्षतरुजाश्वासमूर्च्छातुरोगिणाम् ॥ अध्वश्रान्तिश्रमदविषमूत्रकृच्छ्राश्मरीणाम् ॥ १८ ॥ जीर्णक्षामज्वरविषमगे रक्तपित्तप्रकोपे ॥ तृष्णादाहक्षयरुधिरगे सर्वरोगान् निहन्ति ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ।१०।

गुदारोगमें, कामलामें, शोषमें, प्रमेहमें, गुल्ममें, पांडु और हलीमकमें, वातमें, रक्तपित्तमें, राजरोगमें, गुड रुचिको देता है और रोगको हरता है ॥ १६ ॥ परंतु खांसीमें और शोषमें अकेला गुड अच्छा नहीं है और अन्य जगह हित है और योगोंमें युक्तकिया गुड, सब रोगोंमें हित है और गुणोंके समूहका स्थान है ॥ १७ ॥ कृश, क्षयरोग, श्वास, मूर्च्छा, इनरोगोंको और मार्गके चलनेसे थूकना, परिश्रम, मद, विष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, इनरोगोंको ॥ १८ ॥ बुढापा, विषमज्वर, रक्तपित्तका प्रकोप, तृषा, दाह, क्षय, रक्तरोग, इन्होंको गुड हरता है॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ कांजिकवर्ग ॥

सन्धानं शीतलं स्वादु महातीसारनाशनम् ॥

कांजी शीतल है स्वादु है महातीसारको नाशती है ॥

अथ चावलोंके पानीका गुण ॥

सुस्वादु शीतलश्चैव बृंहणं तण्डुलोदकम् ॥ १ ॥

चावलोंका पानी सुंदर स्वादु है शीतल है और धातुओंको पुष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ तुषोदकका गुण ॥

तुषोदकं वातपित्तहरन्तु रक्तपित्तहरं प्रभेदकञ्च ॥
विपाचनं स्याज्जरणं क्रिमिघ्नमजीर्णहन्तृ कटुकं विपाके ॥ २ ॥

तुषोदक वातपित्तको हरता है रक्तपित्तको हरता है भेदन करता है विशेषकरके पाचन है जराता है कीडोंको हरता है अजीर्णको हरता है और पाककालमें चर्चरा है ॥ २ ॥

अथ जव और गेहूंकी कांजीका गुण ॥

जातं यवाम्लं कटुकं विपाके वातापहं श्लेष्महरं सरक्तम् ॥ पित्तप्रकोपं कुरुते सभेदि विदूषणं पित्तगदास्रजश्च ॥ ३ ॥ सन्दीपनं शूलहरं रुचिप्रदं गोधूमजातं कथितं कषायम् ॥ सन्दीपनं स्याज्जरणं कफघ्नं समीरदोषं हरते ततोऽपि ॥ ४ ॥

जवोंकी कांजी पाककालमें चर्चरी है वातको और कफको हरती है रक्तको और पित्तको कोपती है भेदन करती है और रक्तपित्तको दूषित करती है ॥ ३ ॥ गेहूंकी कांजी कसैली है अग्निको जगाती है भोजनको जराती है कफको नाशती और वायुके दोषको हरती है ॥ ४ ॥

अथ तैलयुक्तकांजीका गुण ॥

पीतं जरयते बामं बाह्यदाहश्रमापहम् ॥
स्याच्च तत्कुष्ठकण्डूघ्नं तैलयुक्तं समीरहृत् ॥ ५ ॥

तेलसे युक्तहुई कांजी भोजनको जराती है शरीरके बाहिरके दाहको और परिश्रमके हरती है कुष्ठको और खाजको तथा वायुको नाशती है ॥ ५ ॥

अथ युगंधरकांजीका गुण ॥

युगन्धराम्लं कफवातहन्तृ शूलामयानां जरणप्रकर्त्तृ ॥
तीक्ष्णं तथाम्लं श्रमदोषहन्तृ मेहार्शसो रक्तहितं मतञ्च ॥ ६ ॥

ये पूर्वोक्त दोनों कांजी निर्मलीहुई कफको और वातको हरती हैं शूलको दूर करती हैं खट्टी हैं श्रमदोषको हरती हैं प्रमेहमें और बवासीरमें हित है॥ ६ ॥

अथ कांजीका परिहार॥

शोषे मूर्च्छाज्वरार्त्तानां भ्रमके दुर्विषार्दिते ॥ कुष्ठानां रक्तपित्तानां काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥ ७ ॥ पाण्डुरोगे राजयक्ष्मे तथा शोफातुरेषु च ॥ क्षतक्षीणे पथिश्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ॥ नरे नैव हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥ ८ ॥

शोषमें मूर्च्छा और ज्वरसे पीड़ितको कुष्ठ और रक्तपित्तमें कांजी अच्छी नहीं है ॥ ७ ॥ पांडुरोगमें राजरोगमें और शोजासे पोड़ितरोगीको और क्षतसे क्षीणहुयेको और मार्गमें थकेहुये और मंदज्वरसे पीड़ितको कांजी अच्छी नहीं है किंतु दोषोंको करती है ॥ ८ ॥

अथ कांजीकी प्रशंसा ॥

शूलवातार्दितानान्तु तथा जीर्णविबन्धिनाम् ॥ श्रेष्ठं प्रोक्तं तथाम्लञ्च गुणाधिक्यं नरेषु च ॥ ९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे काञ्जिकवर्गो नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

शूल और वातसे पीडितको अजीर्ण और बंधावालेको कांजी श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें गुणोंकी अधिकता करती है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां कांजिकवर्गो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ चावलोंके मंडका गुण ॥

धान्यमण्डं पित्तहरं श्रमघ्नञ्चाश्मरीहरम् ॥
वातलं रक्तशमनं ग्राहि सन्दीपनं वरम् ॥ १ ॥

चावलोंका मांड पित्तको हरता है परिश्रमको हरता है पथरीको हरता है वायुको उपजाता है रक्तको शांत करता है कबजको करता है और अग्निको अच्छीतरह जगता है॥१॥

अथ लालचावलके मांडका गुण ॥

रक्तशाल्युद्भवं मण्डं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥
प्रमेहानश्मरीं हन्ति वातलं पित्तहृद्वरम् ॥ २ ॥

लालचावलोंका मांड मधुर है कबजको करता है प्रमेहोंको और पथरीको हरताहै वातल है पित्तको हरता है सुंदर है ॥ २ ॥

अथ सफेदचावलोंके मांडका गुण ॥

मधुरं शीतलं किञ्चित् श्लेष्मलं शोषनाशनम् ॥
अश्मरीमेहसंच्छर्दिवातलं श्वेततण्डुलम् ॥ ३ ॥

सपेद चावलोंका मांड मधुर है शीतल है कछुक कफको करता है शोषको नाशता है और पथरी, प्रमेह, छर्दि, वात, इन्होंको करता है ॥ ३ ॥

अथ जवोंके मांडका गुण ॥

यवमण्डं कषायं स्यात् ग्राहि चोष्णे विपाकि च॥

जवोंका मांड कसैला है कबजको करता है गर्मपाकवाला है.

अथ गेहूंके मांडका गुण॥

तद्वद्गोधूमसम्भूतं मधुरं पित्तवारणम्॥ ४ ॥

गेहुंओंका मांड जवोंके मांडके समान गुण देता है परंतु मधुर है और पित्तको दूर करता है ॥४॥

अथ क्षुद्रअन्नके मांडका गुण ॥

अन्येषां क्षुद्रधान्यानां मण्डं वातहरं स्मृतम् ॥

क्षुद्रसंज्ञक अन्नोंका मांड वातको हरनेवाला कहा है.

अथ कोदूं अन्नके मांडका गुण ॥

ग्लानिमूर्च्छाकरं सद्यः कौद्रवं न हितं मतम् ॥ ५ ॥

कोंदूं अन्नका मांड ग्लानिको और मूर्च्छाको शीघ्र करता है और हित नहीं माना है ॥ ५ ॥

अथ क्षुद्र अन्नकी कांजीका गुण ॥

तद्वच्च क्षुद्रध्यान्याम्लं वातलं पित्तकारकम् ॥ करोति श्लीपदं गुल्मं प्रतिश्यायादिकोपनम् ॥ ६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मण्डवर्गो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

क्षुद्रअन्नकी कांजी ग्लानिको और मूर्च्छाको शीघ्र हरती है वातल है पित्तकोभी करती है श्लीपदको और गुल्मको करती है और खेहर आदिको कोपती है॥६॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने मंडवर्गोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ यूषवर्ग ॥

प्रथम कुलथीके यूषका लक्षण ॥

कुलत्थयूषो मधुरः कषाया भवेच्च रक्तस्य कफस्य हन्ता ॥
महाश्मरीवायुजमेदहन्ता सन्दीपनो मेहविशोषणश्च ॥ १ ॥

कुलथीका यूष मधुर है कसैला है रक्तसहित कफको नाशता हैं, और पथरी, ववासीर, मेद, इन्होंको नाशता है अग्निको जगाता है और प्रमेहको शोषता है ॥ १ ॥

अथ हरडके यूषका गुण ॥

भवेदाढक्या मधुरश्च यूषं विशोषणं वातनिवारणञ्च ॥
श्लेष्मापहं पित्तहरं ज्वराणां पृथक् पृथक् कृमिहृत् दारुणञ्च ॥२॥

हरडका यूष मधुर है शोषता है वातको दूर करता है और दारुणरूपी कफको और पित्तको हरता है ज्वरको शांत करता है कृमिरोगको नाशता है ॥ २ ॥

अथ मूगके यूषका गुण ॥

शीतलं मधुरं मौद्गयूषं पित्तविकारजित्॥
तच्च वातहरं प्रोक्तं ज्वराणां शमनं परम् ॥ ३ ॥

मूगका यूष शीतल है मधुर है पित्तके विकारको जीतता है वातको हरता है और ज्वरोंको निश्चय शांत करता है ॥ ३ ॥

अथ चनाके यूषका गुण॥

कषायं कटुकं चोष्णं वातघ्नं कफदोषकृत् ॥
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चणानां यूषमुच्यते ॥ ४ ॥

चनाका यूष कसैला है चर्चरा है गर्म है वातको नाशता है कफको करता है और रक्तपित्तको निश्चय नाशता है ॥ ४ ॥

अथ उडदके यूषका गुण ॥

घनं सवातं कफकृन्माषयूषश्च पित्तकृत् ॥
अम्लं पर्य्युषितं तच्च तैलपाने च शस्यते ॥ ५॥

उड़दका यूष कठिन है वातको और कफको करता है खट्टा है और बासीहुआ यह यूष तेलपाकमें श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

अथ अन्ययूषोंके गुण ॥

अन्यानि च प्रशस्तानि कुलत्थान्युषितानि च ॥ मसूरास्त्रिपुटा बल्याः कलायाद्याश्च वर्जिताः ॥ ६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

और बासीहुये कुलथी आदिकेभी यूष अच्छे है और मसूरके यूष बलमें हित है और मठर आदिके यूष वर्जित है ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोध्यायः॥ १४ ॥

अथ तैलवसावर्ग ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि तैलानाञ्च गुणागुणान् ॥
तच्च ज्ञेयं समासेन यथायोग्यं यथाविधि ॥ १ ॥

अब तेलोंके गुणदोषको कहताहूं वह तेल विस्तारसे यथायोग्य जानना ॥ १ ॥

अथ तिलोंके तेलका गुण ॥

कषायानुरसं स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च ॥ पित्तकृद्वातशमनं श्लेष्मरोगादिवर्द्धनम् ॥ २ ॥ अल्पं रुचिकरं मेध्यं कण्डूकुष्ठविकारनुत् ॥ वृष्यं श्रमापहं ज्ञेयं तिलतैलं विदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ छिन्ने भिन्ने च्युते घृष्टे भग्नाग्निदाहकेऽपि च॥वाताभिष्यन्दिस्फुटने चाभ्यङ्गे तिलतैलकम् ॥४॥ विषे व्यालशुनः सर्पभेकाभ्यङ्गावगाहने ॥ पाने बस्तौ बलाशे च तिलतैलं विधीयते ॥ ५ ॥ तिलतैलं विधेयं स्यात् सर्वरोगनिवारणे ॥ ६ ॥

तिलोंका तेल कसैला है स्वादु है सूक्ष्म है गर्म है फैलनेवाला है पित्तको करता है वातको शांत करता है और कफरोगआदिको बढाता है ॥ २ ॥ अल्परूपी यह तेल रुचिको करता है पवित्र है खाजको और कुष्ठको नाशता है धातुको पुष्ट करता है परिश्रमको नाशता है ऐसे तिलोंके तेलको बुद्धिमान् कहतेभये ॥ ३ ॥ और छिन्न अर्थात् तलवार आदिसे

कटाहुआमें-भिन्न अर्थात् बरछी आदिसे कटाहुआमें-घिसनेमें-पत्थरआदिकी रगडसें छिलनेमें-हाड आदिके टूटनेमें-अग्निसे जलनेमें-वाताभिष्यंदमें-फूटनेमें-मालिस करनेमें-तिलोंका तेल उत्तम है ॥ ४ ॥ भेडिया और कुत्ताके विषमें सर्पआदिके विषमें-मालिस-स्नान-पान-बस्तिकर्म्म-इन्होंके द्वारा चिकित्सामें और कफके रोगमें तिलोंका तेल हित है ॥ ५ ॥ और सब रोगोंको दूर करनेके लिये तिलोंके तेलका विधान है ॥ ६ ॥

अथ सरसोंके तेलका गुण ॥

कटु तिक्तं तथा ग्राहि उष्णं स्यात् कफवातनुत्॥कृमिकण्डूशोधनं स्यात् पित्तकृत् सार्षपं स्मृतम् ॥ ७ ॥ कर्णरोगे कृमिरोगे तथा वातामयेषु च॥ कण्डूकुष्ठामये चैव कफमेदोगुणेषु च ॥ ८ ॥ प्रशस्यं सार्षपञ्चैव रोगा णाञ्च विभावयेत् ॥ बस्तिकर्मणि नो शस्तं पित्तदाहकरं महत् ॥ ९ ॥

सरसोंका तेल चर्चरा है कडुआ है कब्जको करता है गर्म है कफको और वातको नाशता है कीड़ोंको और खाजको शोधता है और पित्तको करता है ॥ ७ ॥ और कानरोग, कृमिरोग, वातके रोग, खाज, कुष्ठ, कफका रोग, मेद ॥ ८ ॥ इन्होंमे उत्तम बस्तिकर्ममें अच्छा नहीं है पित्त और दाहको करता है ॥ ९ ॥

अथ अलसीके तेलका गुण ॥

**अलसीप्रभवं तैलं घनं मधुरपिच्छलम् ॥
विपाके चोष्णवीर्यञ्च वातश्लेष्मनिवारणम् ॥ १० ॥**

अलसीका तेल कठिन है मधुर है कफको करता है और पाककालमें गर्मवीर्यवाला है वातको और कफको दूर करता है ॥ १० ॥

अथ अरंडके तेलका गुण ॥

**एरण्डजं घनञ्चापि शीतमेव मृदु स्मृतम् ॥
हृद्बस्तिजङ्घाकट्यूरुशूलानाहविबन्धनुत् ॥ ११ ॥**

अरंडका तेल कठिन है शीतल है कोमल है और हृदय बस्तिस्थान, जांध, कटि, ऊरु, इन्होंमें उपजे शूलको और अफाराको और बंधाको नाशता है ॥ ११ ॥

अथ तैलविशेषता ॥

आनाहाष्ठीलवातास्रकृप्लीहोदावर्त्तशूलिनाम् ॥ हन्ति वातविकाराणां वि

दध्याच्च प्रशान्तये ॥ १२ ॥ यावन्तः स्थावराः स्नेहाः समासेन प्रकीर्त्तिताः ॥ सर्वे तैलगुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाशनाः ॥ १३ ॥ सर्वेभ्यस्त्विह तैलेभ्यस्तिलतैलं प्रशस्यते ॥ १४ ॥

अफारा, अष्ठीला, वातरक्त, तिल्लीरोग, उदावर्त, शूल, वातरोग, इन्होंकी शांतिके लिये तेल है ॥ १२ ॥ जो स्थावरसंज्ञक स्नेह विस्तारसे कहे हैं वे सब तेलके समान गुणोंको करनेवाले हैं और वातको नाशते हैं ॥ १३ ॥ सब प्रकारके तेलोंसे तिलोंका तेल श्रेष्ठ है॥१४॥

अथ लाल अरंडके तेलका गुण ॥

तैलमेरण्डजं बल्यं गुरूष्णं मधुरं तथा ॥
तीक्ष्णोष्णं पिच्छलं विस्रं रक्तमेरण्डसम्भवम् ॥ १५ ॥

लाल अरंडका तेल बलको करता है भारा है गर्म है मधुर है तीक्ष्ण है गर्म है कफको करता है कच्चे गंधवाला है ॥ १५ ॥

अथ कुसुंभके तेलका गुण ॥

कुसुम्भतैलमुष्णन्तु विपाके कटुकं गुरु ॥
विदाहकं विशेषेण सर्वदोषप्रकोपनम् ॥ १६ ॥

कुसुंभका तेल गर्म है पाककालमें चर्चरा है भारा है विशेषकरके दाहको करता है और सबदोषोंको कोपता है ॥ १६ ॥

कफोद्वातानि तैलानि यान्युक्तानि च कानिचित् ॥
गुणं कर्म च विज्ञाय कफवातानि निर्दिशेत् ॥ १७ ॥

कफको नाशनेवाले जो तेल कहे है तिन्होंका गुण और कर्मको जान कफ और वात रोगमें प्रयुक्त करने ॥ १७ ॥

अथ कुरंटाके तेलका गुण ॥

सहकारतैलमीषत्तिक्तमतिसुगन्धि वातकफहरं सूक्ष्मम् ॥
मधुरं कषायमेवं नातिरक्ते पित्तकरञ्च ॥ १८ ॥

कुरंटाका तेल कछुक कडुआ है अतिसुगंधित है वातको और कफको हरता है सूक्ष्म है मधुर है कसैला है रक्तको अति नहीं उपजाता है और पित्तको करता है ॥ १८ ॥

अथ तेलकी विशेषता ॥

सौवर्चलेङ्गुदीपीलुशिंशपासारसम्भवम् ॥ सरलागुरुदेवादिपादपसम्भवन्तु

यत् ॥ १९ ॥ तुम्बुरूत्थं करञ्जोत्थं ज्योतिष्मत्युद्भवं तथा ॥ अर्शःकुष्ठ कृमिश्लेष्मशुक्रमेदोऽनिलापहम् ॥ २० ॥ करञ्जारिष्टके तिक्ते नात्युष्णे न विनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥

कालानमक, हींगण, पीलू, सीसमका सार इन्होंके तेल और सरलवृक्ष, अगर, देवदार-इन्होंके तेल ॥ १९ ॥ धनियांका तेल, करंजुवाका तेल, मालकांगनीका तेल ये ववासीर, कुष्ठ, कृमिरोग, कफ, वीर्य्य, मेद, वात, इन्होंको नाशते है ॥ २० ॥ करंजुवाका तेल और नींबका तेल अतिगर्म नहीं कहा है ॥ २१ ॥

अथ स्वच्छ तिवसका तेल आच्छोडका तेल नारियलका तेल तथा महुवाके तेलका गुण ॥

कषायं मधुरं तिक्तं सारणं व्रणशोधनम् ॥
अच्छातिमुक्तकाच्छोडनालिकेरमधूकजम् ॥ २२ ॥

तिवसका तेल आच्छोडका तेल नारियलका और महुवाका तेल कसैला है मधुर है कडुआ है सर है घावको शोधता है ॥ २२ ॥

अथ काकडी खीरा कोहला ल्हेसवा पीलू इन्होंके तेलका गुण ॥

त्रपुष्युर्वारुकूष्माण्डश्लेष्मातकपीलूद्भवम् ॥
वातपित्तहृदर्शोघ्नं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ॥ २३ ॥

काकडी, खीरा, कोहला, ल्हेसवा, पीलू—इन्होंके तेल वात, पित्त, ववासीर इन्होंको नाशते है कफको करते है भारे है शीतल है ॥ २३ ॥

अथ सालपर्णी और केशूके तेलका गुण ॥

पित्तश्लेष्मप्रशमनं श्रीपर्णीकिंशुकोद्भवम् ॥ २४ ॥

सालपर्णी और केशूका तेल पित्तको और शोजेको नाशता है ॥ २४ ॥

अथ वसावर्ग ॥

वसा मज्जा च वातघ्नी बलपित्तकफप्रदा ॥ सौकरी माहिषी वसा वातला श्लेष्मवर्द्धनी ॥ २५ ॥ सर्पनकुलगौधेया लेपने व्रणकुष्ठहा ॥ मत्स्यशिशुमारमकरग्राहादीनां वसाप्येवम् ॥ सा विसर्पहरा च हृद्या कुष्ठरोगविनाशिनी च ॥ २६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने तैलवसावर्गो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वसा अर्थात् हड्डियोंका स्नेह वातको नाशता है और बल,पित्त, कफ,इन्होंको देता है सूकरकी और भैंसकी वसा वातको करती है और कफको बढाती है ॥२५॥ सर्प, नोला, गोह—इन्होंको वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है और मच्छ, शिशुमार, मकरमच्छ, ग्राह, इनआदिकीभी वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है परंतु यह वसा विसर्परोगको हरती है सुंदर है और कुष्ठको विशेषकरके हरती है ॥ २६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने तैलवसावर्गो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ धान्यवर्ग

प्रथम शालिचावलका वर्णन ॥

रक्तशालिर्महाशालिः कलमा षष्टिकापरा ॥ खञ्जरीटापसाही च जीरकान्या कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगन्धी शूकला चान्या बिलवासी कचोरका ॥ गरुडा रुक्मवन्ती च कलमान्या तथापरा ॥ बिल्वजा मागधी पीता ता अष्टादश शालयः ॥ २ ॥

रक्तशालि, महाशालि, कलमा, षष्टिका, खंजरीटा, अपसाही, जीरका, कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगंधी, शूकला, बिलवासी, कचोरका, गरुडा, रुक्मवंती, कलमा, बिल्वजा, मागधी, पीता, ऐसे अठारह प्रकारके शालिचावल कहे है ॥ २ ॥

अथ शालियोंके गुण दोष ॥

रक्तशालिस्त्रिदोषघ्नी चक्षुष्या मूत्ररोगहा ॥ महाशालिर्गुरुर्वृष्या चक्षुष्या बलवर्द्धिनी ॥३॥ शीता गुरुस्त्रिदोषघ्नी मधुरापरषष्टिका ॥ ४ ॥ जीरका वातपित्तघ्नी कलमा श्लेष्मपित्तहा ॥ कपिञ्जला श्लेष्मला स्यान्मागधी कफवातला ॥ ५ ॥ बिलवासी गुरुश्चापि पित्तघ्नी शुक्रवर्द्धिनी ॥ शूकला पित्तवातघ्नी कचोरा पित्तनाशिनी ॥ ६ ॥ गरुडान्या च वातघ्नी पित्तमूत्रगदापहा ॥ रुक्मवन्ती लघू रुचिबलपुष्टिकरा मता ॥ ७ ॥ कलमान्या लघुः पथ्या वातश्लेष्मविवर्द्धिनी ॥ बिल्वजा मागधी पीता सामान्यास्तागुणागुणैः ॥ ८ ॥ रुचिकृद्बलकृन्मूत्रदोषघ्नी च श्रमापहा ॥ दग्धग्रामाचले जाताः शालयो लघुपाकिनः ॥ ९ ॥ सु

पथ्या बद्धविण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षिणः॥ केदारप्रभवा वृक्षा वातपि त्तविनाशिनः ॥ १० ॥ रक्तपित्तविकारघ्ना वातलाः कफकारकाः ॥ देशे देशे विभिन्नानि नामानि परिलक्षयेत् ॥ ११॥ समान्गुणैश्च सर्वांस्तान्भू मिभागोद्भवान्विदुः॥ १२॥शालयश्छिन्नरोहाश्च मूत्रला वातला हिमाः १३

रक्तशालिचावल त्रिदोषको नाशता है नेत्रोंमें हित है मूत्ररोगको नाजता है महाशालि भारा है धातुको पुष्ट करता है नेत्रोंमें हित है बलको बढाता है ॥ ३ ॥ षष्टिका शीतला है भारा है त्रिदोषको हरता है और मधुर है ॥४॥ जीरका वातको और पित्तको हरता है कलमा कफको और पित्तको नाशता है कपिंजला कफको करता है मागधी कफको और वातको करता है ॥ ५ ॥ बिलवासी भारा है पित्तको नाशता है वीर्यको बढाता है शूकला पित्तको और वातको नाशता है कचोरा पित्तको नाशता है ॥ ६ ॥ गरुडा वातको नाशता है पित्तको और मूत्ररोगको हरता है रुक्मवंती हलका है और रुचि, बल, पुष्टि, इन्होंको करता है ॥७॥ अन्यप्रकारका कलमा हलका है पथ्य है वातको और कफको बढाता है और बिल्वजा, मागधी, पीता,ये तीनों गुण और दोषों करके समान है ॥ ८ ॥ खंजरीटा शाली रुचिको और बलको करता है मूत्रदोषको नाशता है और परिश्रमको हरता है दग्धग्राममें और पर्वतमें उपजे शालिचावल हलका पाकवाले हैं ॥९॥ खेतमें उपजे शालिचावल सुंदर पथ्य हैं विष्ठाको और मूत्रको बांधते हैं रूखे हैं कफको नाशता है वातको और पित्तको नाशता हैं ॥१०॥ कोईक शालि रक्तपित्तके विकारको नाशते हैं वातल हैं और कफको करते हैं इन शालियों के नाम देशदेशमें भिन्न जानने ॥ ११ ॥ पृथिवीके भागोंसे उपजे सबप्रकारके शालि गुणोंसे समान जानने ॥ १२ ॥ छिलकासे वर्जित शालि मूत्रको उपजाते हैं विष्ठाको बांधते हैं और कफके कालमें सुंदर पथ्य हैं मूत्रको देते हैं वातको उपजाते है और शीतल हैं ॥१३॥

अथ क्षुद्रधान्यवर्ग ॥

श्यामाकः कोद्रवः कण्डूर्मर्कटी कपिकच्छुरा ॥
क्षुद्रधान्यमिदं प्रोक्तं श्रृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यते ॥ १४ ॥

शामक, कोदू, कंडू, मर्कटी, कपिकच्छुरा, इन नामोंसे क्षुद्रधान्य कहा है अब मैं कहताहूं हे पुत्र! सुन ॥ १४ ॥

अथ श्यामक और कोदूके गुण दोष ॥

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफवारणः॥ कोद्रवो रूक्षो ग्राही स्या द्रक्तपित्तविशोषणः ॥ १५ ॥ नाधिककफकृत् प्रोक्तो रुच्यः स्वादुः प्र कीर्त्तितः ॥ १६ ॥

शामक शोषनेवाला है रूखा है वातल है कफको दूर करता है कोदू रूखा है कबजको करता है और रक्तपित्तको शोषता है ॥ १५ ॥ और कफकी अधिकताको नहीं करता है रुचिमें हित है और स्वादु है ॥ १६ ॥

अथ विदलान्नका गुण ॥

विदलान्नानि वक्ष्यामि शृणु पुत्र ! यथाक्रमम् ॥ यवगोधूमचणका माषो मुद्गाढकी तथा ॥ १७ ॥ मकुष्टकः कुलत्थश्च मसूरस्त्रिपुटस्तथा ॥ निष्पावकः कलायश्च विदलान्नं प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

हेपुत्र ! विदलसंज्ञक अन्नोंको कहताहूं सुन जव, गेहूं, चना, उडद, मूंग, तूरीअन्न— ॥ १७ ॥ मोठ, कुलथी, मसूर, चौला, रानमूंग, मठर, इन्होंको विदलअन्न कहते हैं ॥१८॥

अथ जवोंका गुण ॥

रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः कषायो मधुरो यवः ॥
वृष्यो ग्राही कफघ्नश्च स्यात् पित्तश्वासकासनुत् ॥ १९ ॥

जव रूखा है शीतल है भारा है स्वादु है कसैला है मधुर है वीर्यमें हित है कबजको करता है कफको नाशता है पित्तके श्वास और खांसीको हरता है ॥ १९ ॥

अथ गेहूंका गुण ॥

मधुरो गुरुर्विष्टम्भी वृष्यो बल्योऽथ बृंहणः ॥
ईषत्कषायो मधुरो गोधूमः स्यात्त्रिदोषहा ॥ २० ॥

गेहूं मधुर है भारा है विष्टंभी है वीर्यमें हित है बलको करता है धातुओंको बढाता है कछुक कसैला है मधुर है और त्रिदोषको नाशता है ॥ २० ॥

अथ तिलोंका गुण ॥

तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपनपथ्य उक्तः ॥ बल्योऽग्निमेधाजननो वरेण्यो मूत्रस्य दोषहरणो गुरुश्च ॥२१॥ तिलेषु सर्वेष्व सितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथान्ये ॥ २२ ॥

तिल पाककालमें मधुर है अतिबलवाला है चिकना है घावपै लेप करनेमें पथ्य है बलमें हित है अग्निको और बुद्धिको देता है सुंदर है मूत्रके दोषको हरता है और भारा है ॥ २१ ॥ सब प्रकारके तिलोंमें काला तिल प्रधान है और सपेद तिल मध्यम है और अन्य प्रकारके तिल हीनगुणवाले हैं ॥ २२ ॥

अथ चनाका गुण ॥

रक्ते कफे पीनसके तु कण्ठे गलामये वातरुजे सपित्ते ॥ शीतः प्रतिश्या
यकृमीन्निहन्ति शुष्कस्तथार्द्रश्चणकः प्रशस्तः ॥ २३ ॥

रक्त, कफ, पीनस, कंठरोग, गलरोग, वातरोग, पित्त इन्होंमें चना हित है शीतल है खेहरको और कीडोंको नाशता है सूखा और गीला चनाके गुण ऐसे कहे हैं ॥ २३ ॥

अथ उडदका गुण ॥

स्निग्धोऽथ वृष्यो मधुरश्च बल्यो मरुत्कफानां परिबृंहणश्च ॥
पाकेऽम्लकोष्णो विदितो हिमश्च माषोऽथ हृद्यः कथितो नरैश्च ॥२४॥

उडद चिकना है वीर्यमें हित है मधुर है बलमें हित है वायुको और कफको बढाता है पाककालमें खट्टा है कछुक गर्म है शीतल है और सुंदर है ॥ २४ ॥

अथ मूंगका गुण ॥

शीतः कषायो मधुरो लघुः स्यात् पैत्तास्रजदोषहरः सरश्च ॥
विपाकतोऽसौ कटुकप्रधानो मुद्गस्तथान्यःकथितोऽभिरम्यः ॥ २५॥

मूंग शीतल है मधुर है हलका है पित्त और रक्तके दोषको हरता है सर है पाककालमें चर्चरा है और रमणीक है ॥ २५ ॥

अथ तुवरका गुण ॥

मृदुः कषाया च सरक्तपित्तं वातं कफं हन्ति मुखव्रणञ्च ॥
गुल्मज्वरारोचककासच्छर्दिहृद्रोगदुर्नामहराढकी स्यात् ॥ २६ ॥

तुवर कसैला है और रक्तपित्त, वात, कफ, मुखमें घाव, गुल्म, ज्वर, अरोचक, खांसी, छर्दि, हृद्रोग, ववासीर इन्होंको हरता है ॥ २६ ॥

अथ रानमूंगका गुण ॥

सरक्तपित्तकफवातहन्ता चोष्णः कषायो मधुरः प्रदिष्टः ॥
ग्राही सुशीतो गुदकीलगुल्मं मकुष्टकः सर्वगदान् निहन्ति ॥ २७ ॥

रानमूंग रक्तपित्त, कफ, वात—इन्होंको नाशता है गर्म है कसैला है मधुर है कबजको करता है सुंदर शीतल है और ववासीर, गुल्म—सब रोग इन्होंको हरता है ॥२७॥

अथ कुलथीका गुण ॥

उष्णो जयेन्मारुतपीनसन्तु कासप्रतिश्यायविबन्धगुल्मान् ॥
हिक्कां सरक्तस्तु बलाशपित्तं निहन्ति मेदश्च कुलत्थकोऽयम् ॥ २८॥

कुलथी गर्म है वातको, पीनस, खांसी, खेहर, बंधा, गुल्म, हिचकी, इन्होंको नाशती है और लालकुलथी कफ, पित्त, मेद, इन्होंको हरती है ॥ २८ ॥

अथ चौलाका गुण ॥

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्ट. स्नायुं करोत्यस्थिगतं बलिष्ठम् ॥
शूलविबन्धभ्रमशोफकर्त्ता दाहार्शहृद्रोगविकारकारी ॥ २९ ॥

चौला रूखा है विशेषकरकै शोषता है मधुर है हड्डीके नसको बलवाला बनाता है और शूल, बंधा, भ्रम, शोजा–इन्होंको करता है और दाह, हृद्रोग, ववासीर, इन्होंको करता है २९

अथ मटरका गुण ॥

किञ्चित्कषाया मधुराः प्रदिष्टा रक्तप्रशान्तिं जनयन्ति बल्याः ॥ किञ्चि
त्सवातं विनिघ्नन्ति पित्तं कलायका मुद्गसमानरूपाः ॥ ३० ॥

मटर कछुक कसैला है मधुर है रक्तको शांत करता है बलमें हित है वातको और पित्तको कछुक नाशता है यह मूंगके समान रूपवाला होता है ॥ ३० ॥

अथ मसूरका गुण ॥

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः शूलार्त्तिगुल्मग्रहणीविकारान् ॥
करोति वातामयवर्द्धनञ्च पित्तास्रजं ग्राहहरो मसूरः ॥ ३१ ॥

मसूर रूखा है शोषी है मधुर है और शूल, गुल्म, ग्रहणीदोष-इन्होंको करता है वातरोगको बढाता है पित्त रक्तको उपजाता है कबजको नाशता है ॥ ३१ ॥

अथ धान्यवर्गका उपसंहार ॥

इति प्रदिष्टो बहुधान्यवर्गो ग्रन्थस्य विस्तारभयाच्च किञ्चित् ॥ ये ये
प्रसिद्धाः सुतरां हि लोके तेषां गुणाः श्रेष्ठतमाः प्रदिष्टाः॥ ३२॥ इति आत्रे
यभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने धान्यवर्गो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

ऐसे धानवर्ग कहा ग्रंथका विस्तारके भयसे कछुक कहा है जोजो प्रसिद्ध धान्य लोकमें है तिन्होंके गुण अतिश्रेष्ठ माने है ॥ ३२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थानेधान्यवर्गो नाम पंचदशोध्यायः॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ शाकवर्गः ॥

शाकश्चतुर्विधं प्रोक्तं पत्रं पुष्पं फलं तथा ॥ कन्दश्चापि समुद्दिष्टं वक्ष्याम्येतत्पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ द्विविधं शाकमुद्दिष्टं गुरु विद्यात् तथोत्तरम् ॥ प्रायः सर्वाणि शाकानि विष्टम्भीनि गुरूणि च ॥ २ ॥ रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च॥

पत्र, पुष्प, फल, कंद, इन भेदोंसे शाक च्यार प्रकारका कहा है तिसको पृथक् २ कहताहूं ॥१॥ शाक २ प्रकारका कहा है भारा और हलका और विशेषकरकै सब शाक विष्टंभको करते हैं भारे हैं ॥२॥ रूखे हैं और बहुत मलवाले हैं विष्ठा और अधोवातको करते हैं.

अथ पृथक् २ शाकोंके गुण दोष ॥

जीवंतीशाकके गुण ॥

चक्षुष्या सर्वरोगघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा ॥ ३ ॥

जीवंतीशाक नेत्रोंमें हित है सब रोगोंको नाशता है मधुर और शीतल है ॥ ३ ॥

अथ चौलाईके शाकके गुण ॥

स्वादुपाकमसृक्पित्तविषघ्नं तण्डुलीयकम् ॥
विविधवातविड्हन्ता मूत्रवातकफे हितः ॥ ४ ॥

चौलाई शाक पाककालमें स्वादु है और रक्त, पित्त, विष, इन्होंको नाशता है अनेकप्रकारका वात और विष्ठाको हरता है और मूत्र, वात, कफ, इन्होंमें हित है ॥ ४ ॥

अथ कासविंदाके शाकके गुण ॥

मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः ॥
विशेषतः पित्तहर इत्युक्तः कासमर्दकः ॥ ५ ॥

कासविंदाशाक मधुर है कफको और वातको नाशता है पाचन है कंठको शोधता है और विशेषकरकै पित्तको हरता है ॥ ५ ॥

अथ जयंती और मुकोह शाकके गुण ॥

जयंती वातकफकृत्पित्तसंशमनी तथा ॥
त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रसायनी ॥ ६ ॥

जयंती शाक वातको और कफको करता है पित्तको शांत करता है मकोह विशेष शाक त्रिदोषको शांत करता है वीर्यमें हित है और रसायन है ॥ ६ ॥

अथ वथुवा और चिल्ली शाकके गुण ॥

वास्तूकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसां हितम् ॥
तद्वच्चिल्ली तु विज्ञेया वातपित्तविकारिणाम् ॥ ७ ॥

वथुवाशाक मधुर है सुंदर है वात और पित्तकी ववासीरवालोंको हित है चिल्लीशाक-भी वथुवाके समान गुणोंको देता है परंतु वात पित्तके विकारवालोंको अच्छा है ॥ ७ ॥

अथ केतकी और मेथी शाकके गुण ॥

केतकी वातला वृष्या तन्द्रानिद्राकरी मता ॥
मेथिका वातशमनी वेजिका वातला मता ॥ ८ ॥

केतकीशाक वातल है वीर्यमें हित है तंद्राको और नींदको करता है मेथी शाक वातको शांत करता है वेजिका शाक वातको करता है ॥ ८ ॥

अथ सरसों और सोंपके शाकका गुण ॥

सार्षपञ्च त्रिदोषघ्नं रुचिदश्चाग्निवर्द्धनम् ॥
शतपुष्पा त्रिदोषघ्नी मेध्या पथ्या रुचिप्रदा ॥ ९ ॥

सरसोंका शाक त्रिदोषको नाशता है रुचिको देता है अग्नीको बढाता है सौंपका शाक त्रिदोषको नाशता है पवित्र है पथ्य है रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ कटेली और कुसुंभा शाकके गुण ॥

जरात्र सिंहिका प्रोक्ता सातीसारे प्रशस्यते ॥ कुसुम्भं रुचिकृद्वातं हन्ति बल्यं रुचिप्रदम् ॥ १० ॥ किञ्चिद्वातावहं स्वादु विपाके च कफापहम् ॥ किञ्चिच्चाम्लं भवेत्क्षारं प्रशस्तमग्निमान्द्यके ॥ ११ ॥ भेदनं रूक्षं मधुरं कषायमतिवातलम् ॥

कटेलीका शाक अतीसारमें श्रेष्ठ है कसुंभाका शाक रुचिको करता है वातको हरता है और बलमें हित है प्रीति बढाता है ॥ १० ॥ कछुक उदरमें वातको करता है पाककालमें स्वादु है कफको हरता है कछुक खट्टा है खाराहै और मंदाग्निमें श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ भेदन है रूखा है मधुर है कसैला है अति वातुल है

अथ चूकाशाकके गुण ॥

उष्णा कषायमधुरा चाङ्गेरीवह्निदीपनी ॥ १२ ॥

चूकाशाक गर्म है कसैला हैं मधुर है और अग्निको जगाता है ॥ १२ ॥

अथ दूसरे शाकोंके गुण ॥

कफादनी तथा फञ्जी तिलपर्णी तु सिंहिका ॥
चक्रमर्दन इत्यन्ये दुर्जरा वातकोपनाः ॥ १३ ॥

कफादनी, फंजी, तिलवन, सिंहिका, पुवाड, ये शाक दुर्जर है और वातको कोपतेहैं ॥ १३ ॥

अथ कफकारक और वातल शाक ॥

पिण्डालुको बला भिण्डी चिञ्चुकान्या बलादनी ॥
एते श्लेष्मकराः शाका वातलाग्निप्रशान्तकाः ॥ १४ ॥

श्वेतरतालु, खरैंहटी, भिंडी, चिञ्चुका, बलादनी ये शाक कफको करते हैं वातल हैं अग्निको मंद करते हैं ॥ १४ ॥

अथ शाकोंके विशेष गुण ॥

सर्वे शाका दृष्टिहरा वीर्य्यत्वात्तण्डुलीयकम् ॥ तथैव शतपुष्पञ्च जयन्ती कासमर्दकम् ॥ १५ ॥ आलूषकञ्च वेताग्रं गुडूची चापमर्दकम् ॥ किरात तिक्तसहितास्तिक्ताः पित्तहरा मताः ॥ १६ ॥

सब शाक दृष्टिको हरते है और वीर्यपनेसे चौलाई शौंफ–जयंती–कासविंदा ॥ १५ ॥ आलू, वेंतकी कोपल, गिलोय, चापमर्दक, चिरायता, ये शाक कडुवे है और पित्तको हरनेवाले माने है ॥ १६ ॥

अथ अन्यप्रकारके शाक ॥

कूष्माण्डकालिङ्गकलिङ्गचिर्भटं पटोलञ्च पुष्पञ्च तथा च तुण्डी ॥
बीजन्तु कर्कोटककारवेल्लं कोशातकीवेल्लिफलानि चैव ॥ १७ ॥

कोहला, कलिंगड, इंद्रजव, लालतूंबी, परवल, मीठीतोरी, ककोडा, करेला, कडुई तोरी, वेल्लिफल येभी सब शाक कहे है ॥ १७ ॥

अथ कोहलाका गुण ॥

कूष्माण्डं त्रिविधं ज्ञेयं बाल्यं मध्यं तथोत्तमम् ॥ वातघ्नं रोचकं बाल्यं मध्यमं स्यात्त्रिदोषहृत् ॥ १८ ॥ शोफं वातकफौ हन्ति रक्तपित्त निबर्हणम् ॥ १९ ॥

कोहला ३ प्रकारका जानना एक बालक दूसरा मध्य तीसरा उत्तम—बालक कोहला वातको नाशता है रुचिको उपजाता है मध्यम कोहला त्रिदोषको हरता है ॥ १८ ॥ उत्तम कोहला शोजा, वात, कफ, इन्होंको हरता है और रक्त पित्तको दूर करता है ॥ १९ ॥

अथ कुरुडुके शाकका गुण ॥

कलिङ्गं कफकृद्वातकरणं पित्तनाशनम् ॥ २० ॥

कुरुडूका शाक कफको करता है वातको करता है और पित्तको नाशता है ॥ २० ॥

अथ करेलाका गुण ॥

कारवेल्लश्च वातघ्नः कफघ्नः पित्तकारकः ॥
उष्णो रुचिकरः प्रोक्तो रक्तदोषकरो नृणाम् ॥ २१ ॥

करेला वातको नाशता है कफको हरता है पित्तको करता है गर्म है रुचिको करता है और मनुष्योंके रक्तके दोषको करता है ॥ २१ ॥

अथ लालतूरीके पुष्पका गुण ॥

पुष्पञ्च चिर्भटश्चैव दोषत्रयकरं स्मृतम् ॥
अपक्वं जीर्णकफकृत्पक्वं किंचिद्विशिष्यते ॥ २२ ॥

तूंबाका फूल त्रिदोषको करता है नहीं पकाहुआ अजीर्णको और कफको करता है और पकाहुआ कछुक विशेष होजाता है ॥ २२ ॥

अथ तोरी ककोडा करेला कडुई तोरीका गुण ॥

तुण्डीरमग्निरुचिकृद्वातपित्तनिवारणम्॥कर्कोटकं त्रिदोषघ्नं रुचिकृन्मधुरं तथा ॥ २३ ॥ कोशातकीफलं स्वादु मधुरं वातपित्तनुत् ॥ विपाके च कफं हन्ति ज्वरे शस्तं प्रदिश्यते ॥ २४ ॥

तोरीशाक अग्निको और रुचिको करता है वातको और पित्तको दूर करता है ककोडा त्रिदोषको नाशता है रुचिको उपजाता है और मधुर है ॥ २३ ॥ कडुई तोरी स्वादु है पाकमें मधुर है वातको और पित्तको नाशता है कफको हरती हैं और ज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥

अथ परवलका गुण ॥

पटोलपत्रं विनिहन्ति पित्तं नालं कफघ्नं प्रवदन्ति धीराः ॥ फलञ्च तस्यास्तु त्रिदोषशान्तिं करोति नूनं ज्वरिणो हितं स्यात् ॥ २५ ॥

परवलका पत्ता पित्तको हरता हैं और परवलका नाल कफको नाशता है और परवलका फल त्रिदोषको शांत करता है और ज्वरवालेको निश्चय हित है ये सब वेलियेंके शाक कहे ॥ २५॥

अथ बैंगनका गुण ॥

निद्राकरं प्रीतिकरं गुरु स्यात्सवातलं कासविकारकारि ॥ श्रेष्ठं सुदीर्घं कफवर्धनञ्च सश्वासकासारुचिवर्धनञ्च ॥ २६ ॥

बैंगन नींदको और प्रीतिको करता है भारा है वातल है खांसीके विकारको करता है और सुंदर लंबा बैंगन श्रेष्ठ है कफको बढाता है और श्वास, खांसी, अरुचि; इन्होंको बढाता है ॥ २६ ॥

अथ बडी कटेलीका गुण ॥

तथा बृहत्याः फलमेव शस्तं सन्दीपनं स्यात्कफवातनाशनम् ॥ कण्डूविसर्पज्वरकामलानां तथारुचौ शस्तमिदं वदंति ॥ २७ ॥

बडी कटेलीका फल श्रेष्ठ है अग्निको जगाता है कफको और वातको नाशता है और खाज, विसर्प, ज्वर, कामला, अरुचि, इन्होंमें उत्तम है ये फलशाकके गुण कहे. ॥ २७ ॥

अथ कंदशाक ॥

कन्दशाकान्प्रवक्ष्यामि शृणु पुत्र पृथक् पृथक् ॥ सूरणः पिण्डपिण्डालू पलाण्डुर्गृञ्जनस्तथा ॥ २८ ॥ ताम्बूलपर्णः कन्दः स्याद्धस्तिकन्दस्तथापरः ॥ वराहकन्दश्चाप्यन्यः कन्दशाका इमे स्मृताः ॥ २९ ॥

कंदशाकोंको पृथक् २ कहताहूं हे पुत्र! सुन. जिमीकंद, पिंडशाक, आलू, प्याज, गाजर ॥ २८ ॥ रातालुं, हस्तीकंद, वराहकंद, ये कंदशाक कहे है ॥ २९ ॥

अथ जमीकंदका गुण ॥

दीपनः सूरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः ॥ विशेषात्सर्वपथ्यः स्यात्प्लीहगुल्मविनाशनः ॥ ३० ॥

जमीकंद अग्निको जगाता है कफको नाशता हैं रुचिमें हित है सुंदर है हलका है विशेष करके पथ्य है तिल्लीरोगको और गुल्मको नाशता है ॥ ३० ॥

अथ आम्लिकाकंदका गुण ॥

आम्लिकायाः स्मृतः कन्दो ग्रहण्यर्शोहितो लघुः ॥ ३१ ॥

आम्लिका कंद हलका है ग्रहणीदोष और ववासीरमें हित है ॥ ३१ ॥

अथ पिंडशाकका गुण ॥

पिण्डको वातलः श्लेष्मी ग्राही वृष्यो महागुरुः ॥

पिंडशाक वातको करता है कफवाला है वीर्यमें हित है बहुत भारा है–

अथ आलूका गुण ॥

पिण्डालुकः श्लेष्मकरः शुक्रवृद्धिकरो मृदुः ॥ ३२ ॥

रातालू कफको करता है वीर्यको बढाता है और कोमला है ॥ ३२ ॥

अथ प्याजका गुण ॥

पलाण्डुर्वातकफहा शुक्रलः शूलगुल्मनुत् ॥

प्याज वातको और कफको नाशता है वीर्यको बढाता है शूलको और गुल्मको नाशता हैं

अथ रातालूका गुण ॥

ताम्बूलपर्णः कन्दः स्याच्छुक्रलो विशदो लघुः ॥ ३३ ॥

रतालूकंद वीर्यको बढाता है सुंदर है और हलका है ॥ ३३ ॥

अथ हस्तिकंदका गुण ॥

हस्तिकन्दो गुरुर्ग्राही शुक्रवृद्धिप्रदो मतः ॥

हस्तिकंद भारा है कब्जको करता है वीर्यको बढाता है

अथ वाराहकंदका गुण ॥

वराहकन्दश्चार्शोघ्नो वातगुल्मनिवारणः ॥ ३४ ॥

वाराहकंद ववासीरको नाशता है वातको और गुल्मको दूर करता है ॥ ३४ ॥

अन्ये तेऽज्ञातकन्दाश्च ते न प्रोक्ता मयाऽनघ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३५ ॥ दीपनोऽर्शास्तथा गुल्मक्रिमिप्लीहविनाशनः॥ दद्रूणां रक्तपित्तानां कुष्ठानां न प्रशस्यते ॥ ३६ ॥ एते कन्दाः समाख्याताः श्रीमन्तो हि भिषग्वर ॥ ३७ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने शाकवर्गो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अन्यभी कंद है वे अप्रसिद्ध है इसवास्तैं मैंनें नहीं कहेहैं परंतु सब प्रकारके कंद शाकोंमें

जमीकंद श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥ और अग्निको जगाता है और ववासीर, गुल्म, कृमिरोग, तिल्लीरोग, इन्होंको नाशता है परंतु दद्रू और कुष्ठको अच्छा नहीं है ॥ ३६ ॥ हेवैद्यवर ! शोभासे युक्त हुये कंद मैंनें अच्छीतरह कहेहैं ॥३७॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने शाकवर्गो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ फलवर्ग ॥

आम्रं जम्बूश्च कोलश्च दाडिमामलकं तथा॥ खर्जूरश्च परूषश्च मातुलुङ्गपियालजम् ॥ १ ॥ नागरं वाम्लिका चैव द्राक्षा च करमर्दकम् ॥ क्षीरिका मधुराश्चैव फलवर्गे प्रकीर्त्तिताः ॥ २ ॥

आंब, जामन, वेर, अनार, आमला, छुहारा अथवा खजूरिया, फालसा, विजौरा, चिरौंजी॥ १ ॥नारंगी, अमली, दाख, करौंदा, खिरनी, सुंदर खजूर फल—ये सब फलवर्गमें कहेहैं ॥२॥

अथ आंबके फलका गुण ॥

अपक्वमाम्रं फलमेव शस्तं संग्राहि पित्तासृजि कोपनञ्च ॥ तथा विपक्वं मधुरञ्च चाम्लं भेद्यं सपित्तामयनाशनञ्च ॥ ३ ॥

कछुक पकाहुआ आंबका फल श्रेष्ठ है कबजको करता है पित्तको और रक्तको कोपता है और विशेष पकाहुआ आंबका फल मधुर है खट्टा है दस्तावर है और पित्तके रोगको नाशता है ॥ ३ ॥

अथ जामन वेर अनार चिरोंजीके गुण ॥

जम्बूर्ग्राही मधुरकफहा रोचनो वातहारी कोलश्चाम्लं मधुरमथवा श्लेष्मलं ग्राहि शस्तम् ॥ श्रेष्ठं वातादिकरुजहरं दाडिमञ्चामयघ्नं तत्प्रोक्तश्च मधुरमुदितं स्वादु राजादनञ्च ॥ ४ ॥

जामनका फल कबूजको करता है मधुर है कफको नाशता है रुचिको करता है और वातको हरता है—वेर खट्टा है अथवा मधुर है कफको करता है कबूजको करता है सुंदर है अनारका फल श्रेष्ठ है वात आदिकी पीडाको हरता है और रोगको नाशता है—चिरौंजी मधुर है और स्वादु कहा है ॥ ४ ॥

अथ विशेषवर्णन ॥

परूषककरहपीलुकानां पियालसिंहीकरमर्दकानाम् ॥ फला
नि मेहे विनिहन्ति पित्तं हन्याच्च सर्वातुरसन्धिवातम् ॥ ५ ॥

फालसा, करहा, पीलू, चिरौंजी, कटेली—करोंदी—इन्होंके फल प्रमेहको और पित्तको हरते हैं और रोगीका संपूर्ण शरीरके वातको हरता है ॥ ५ ॥

अथ विजोराका गुण ॥

स्यान्मातुलुङ्गः कफवातहन्ता हन्ता क्रिमीणां जठरामयघ्नः॥संदूषितरक्त
विकारपित्तसन्दीपनः शूलविकारहारी ॥ ६ ॥ श्वासकासारुचिहरं तृ
ष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥ दीपनं लघु रुच्यञ्च मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥ ७ ॥
त्वक् तिक्ता दुर्जरा तिष्या क्रिमिवातकफापहा॥ स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं
करहं वातपित्तजित् ॥ ८ ॥ मध्यं श्लेष्मातकं छर्दिकफारोचकनाशनम् ॥
दीपनं लघु संग्राहि गुल्मार्शोघ्नन्तु केशरम् ॥ ९ ॥ पित्तमारुतहृद्वातपित्त
लं बद्धकेशरम् ॥ हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ॥ १० ॥ शूला
जीर्णविरुद्धेषु मन्दाग्नौ कफमारुते ॥ अरुचौ श्वासकासे च स्वरसोऽस्यो
पदिश्यते ॥ ११ ॥ रसोऽतिमधुरो हृद्यो वीर्य्यं पित्तानिलापहम् ॥ कफ
कृद्दुर्जरः पाके मातुलुङ्गकटाहकः॥ १२ ॥ चेतोहारी तेन पृथगतिकटुत्व
ञ्चाभिधत्ते ॥ हृद्रोगानाहगुल्मश्वसनकफकरो ग्रीष्मकालेऽपहन्ता ॥१३॥
वीर्य्यकृच्चार्शहृत्काले स्यात्तथा क्रिमिहृन्मतम् ॥ तिक्तं पुष्पञ्च बीजञ्च
गुल्मनुत्स्यात्तथापरम् ॥ १४ ॥

विजौरा कफको और वातको नाशता है और कृमिरोगको हरता है और पेटके रोगको दूर करता है दूषितहुये रक्तविकारको और पित्तको दूर करता है अग्निको जगाता है और शूल-विकारको नाशता है ॥ ६ ॥ और विजोराका फल श्वास, खांसी, अरुचि, इन्होंको नाशता है तृषाको हरता है कंठको शोधता है अग्निको जगाता है हलका है रुचिमें हित है ॥ ७ ॥ विजौराकी छाल कडुई है दुर्जर है सुंदर है और कृमि, वात, कफ,इन्होंको नाशती है और विजोराकी कोंपल स्वादु है शीतल है भारा है चिकना है वातको और पित्तको जीतता है ॥ ८ ॥ और विजौराका गूदा कफको नाशता है छर्दिको और कफके अरोचकको नाशता

है और विजौराका केसर अग्निको जगाता है हलका है कबजको करता है गुल्मको और ववासीरको नाशता है॥९॥पित्तको और वातको हरता है और केसरसे संयुक्तहुआ विजौराका फल पित्तको और वातको करता है सुंदर है वर्णको करता है रुचिमें हित है और रक्त, मांस, बल, इन्होंको देता है ॥ १० ॥ और विजोराका स्वरस शूल, अजीर्ण, मंदाग्नि, कफ, वात, अरुचि, श्वास, खांसी, इन्होंमें उत्तम है ॥११॥ और विजोराका रस अति मधुर है सुंदर है वीर्यको देता है पित्तको और वातको नाशता है कफको करता है और पाककालमें दुर्जर है ॥ १२ ॥ और चित्तको हरता है तिस्से पृथक् अति चर्चरापनाको धरता है और हृद्रोग, अफारा, गुल्म, श्वास, इन्होंको अन्यकालमें करता है और गर्मकालमें नाशता है॥१३॥ विजौराके फूल और बीज सुंदर कालमें वीर्यको करते हैं ववासीरको दूर करते हैं कृमिको हरते हैं कडुवे है और गुल्मको नाशते हैं ॥ १४ ॥

अथ नींबूका गुण ॥

निम्बूकं क्रिमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमुष्णमुदरग्रहापहम् ॥ वातपित्तकफशूलिनां हितं नष्टधान्यरुचिशोधनं परम् ॥ १५ ॥ त्रिदोषसद्योज्वरपीडितानां दोषाश्रितानाञ्च स्रवज्जलानाम् ॥ मलग्रहे बद्धगुदे हितञ्च विसूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १६ ॥

निंबू कीडोंके समूहको नाशता है तीक्ष्ण है गर्म है पेटके कजबको हरता है और वात, पित्त, कफ, इन्होंके शूलवालोको हित है और नष्टअन्नमें रुचिको शोधता है ॥ १५॥ त्रिदोष और तत्काल उपजे ज्वरसे पीडितको और दोषसे आश्रित हुयोंको और पानीको झिरातेहुयेको और विष्ठाके बंधमें और बद्धगुदरोगमें और विसूचिका अर्थात् हैजाके भेदमें हित है ऐसे मुनिजन कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ नारंगीका गुण ॥

नारङ्गजं स्वादु गुणोपपन्नं सन्दीपनं रोचकमर्शसाञ्च ॥ त्रिदोषहृच्छूलक्रिमीन्निहन्ति मन्दाग्निकासश्वसनापहारि ॥ १७ ॥

नारंगीफल स्वादु है गुणवाला है अग्निको जगाता है ववासीरमें रुचिको उपजाता है और त्रिदोष, शूल, कृमि, मंदाग्निरोग, खांसी, श्वास—इन्होंको नाशता है ॥ १७ ॥

अथ अम्लीका गुण ॥

अम्ली हि चाम्लफलमविपक्कं तदस्रपित्तामकरं विदाहि ॥ वातामये शूलगदे प्रशस्तं पक्कं तथा शीतगुणोपपन्नम् ॥ १८ ॥

नही पकाहुआ अम्लीफल पित्तको और आमको करता है विशेषसे दाहको करता है वातरोगमें और शूलमें श्रेष्ठ है और पकाहुआ अम्लीका फल शीतल होता है ॥ १८ ॥

अथ दाखका गुण ॥

द्राक्षाफलं मधुरमम्लकषाययुक्तं क्षारेण पित्तमरुतां कफहारि शीघ्रम् ॥ श्रेष्ठं निहन्ति रुधिरामयदाहशोषमूर्च्छाज्वरश्वसनकासविनाशकारि॥ १९॥ कषायघ्ना विपाके च द्राक्षा चैव कफे हिता ॥ २० ॥

दाख मधुर है खट्टा है कसैला है खारेपनेसे पित्त—वात—कफ—इन्होंको शीघ्र हरता है श्रेष्ठ है और रक्तरोग—दाह—शोष—मूर्च्छा—ज्वर—श्वासरोग—खासी—इन्होंको नाशता है ॥१९॥ और पाककालमें कसैलेपनेको नाशता है और कफमें हित है ॥ २० ॥

अथ नारियलका गुण ॥

नालिकेरं सुमधुरं गुरु स्निग्धश्च शीतलम् ॥ हृद्यं सबृंहणं बस्तिशोधनं रक्तपित्तनुत् ॥२१ ॥ विष्टम्भि पक्वं मतिमन्नपक्वं कफवातलम् ॥ बृंहणं शीतलं वृष्यं नालिकेरफलं विदुः ॥ २२ ॥

नारियल मधुर है भारा है चिकना है शीतल है सुंदर है धातुओंको पुष्ट करता है बस्तिको शोधता है रक्तपित्तको नाशता है ॥ २१ ॥ विष्टंभी है ये सब पकेहुयेके गुण है हेबुद्धिमन् ! नहीं पकाहुआ नारीयल कफको और वातको करता है धातुओंको बढाता है शीतल है और वीर्यमें हित है ॥ २२ ॥

अथ केलाके फलका गुण ॥

हृद्यं मनोज्ञं कफवृद्धिकारि शान्तश्च सन्तर्पणमेव बल्यम् ॥ रक्तं सपित्तं श्वसनश्च दाहं रम्भाफलं हन्ति सदा नराणाम् ॥ २३ ॥ अपक्वं संग्राहि च शीतलश्च कषायकं वातकफं करोति ॥ विष्टम्भि बल्यं गुरु दुर्जरश्च आरण्यरम्भाफलमेव तद्वत् ॥ २४ ॥

पकाहुआ केलाका फल सुंदर है मनोहर है कफको बढाता है शांतिको करता है तृप्तिको करता है बलमें हित है और रक्तपित्त-श्वासरोग—दाह—इन्होंको सबकालमें नाशता है२३ नहीं पकाहुआ केलाका फल कबजको करता है शीतल है कसैला है वातको और कफको करता है विष्टंभी है बलमें हित है भारा है दुर्जर है और वनके केलाका फलभी इन्हीं गुणोंवाला है ॥ २४ ॥

अथ कैथका गुण ॥

कपित्थकाम्लं मधुरं कषायं विशदं गुरु ॥ कासातिसारहृद्रोगच्छर्दि कफामयापहम् ॥ २५ ॥ कपित्थं मधुरं शीतं कषायं ग्राहकं लघु॥२६॥

कैथफल खट्टा है मधुर है कसैलाहै सुंदर है भारा है और खांसी, अतीसार, हृद्रोग, छर्दि, कफरोग, इन्होंको नाशता है ॥ २५ ॥ कच्चाकैथफल मधुर है शीतल है कसैला है कबजको करता है और हलका है ॥ २६ ॥

अथ खजूरिया अथवा छुहाराका गुण ॥

अपक्कं खर्जूरफलं त्रिदोषशमनं मतम् ॥
पक्कमेव हितं श्रेष्ठं त्रिदोषशमनं परम् ॥ २७ ॥

नहीं पकाहुआ खजूरिया अथवा छुहारा त्रिदोषको शांत करता है और पकाहुआ हित हैं श्रेष्ठ है और निश्चय त्रिदोषको शांत करता है ॥ २७ ॥

अथ सुपारीका गुण ॥

कषायमधुरं भेदि पूगं पित्तकफापहम् ॥ २८ ॥

सुपारीफल कसैला है मधुर है मलको पतला करता है पित्तको और कफको नाशता है२८

अथ नागरपानका गुण ॥

नागवल्लीदलं हृद्यं सुगन्धि कफवातजित् ॥ २९ ॥

नागरपान सुंदर है सुगंधवाला है कफको और वातको जीतता है ॥ २९ ॥

अथ कत्थाका गुण ॥

खदिरः कफपित्तघ्नः कण्ठ्यः कुष्ठनिबर्हणः ॥ ३० ॥

कत्था कफको और पित्तके नाशता है कंठमें हित है कुष्ठको दूर करता है ॥ ३० ॥

अथ चुन्नाका गुण ॥

चूर्णकं पित्तहृत्तीक्ष्णं ताम्बूलं कफवातजित् ॥ ३१ ॥ संयोगात्सुरसं स्वादु मुखवैरस्यनाशनम् ॥ दन्तस्थैर्य्यकरं शोषपीनसरोगशान्तिकृत्॥३२॥

चुन्ना पित्तको हरता है तीक्ष्ण है और नागरपान कफको और वातको जीतता है परंतु संयोगसे सुंदर रसवाला है स्वादु है और मुखमें विरसपनेको करता है ॥ ३१ ॥ और दंतोंको स्थिर करता है और शोष, पीनस इनको शांत करता है ॥ ३२ ॥

अथ कत्था कपूरसे संयुक्त नागरपानका गुण ॥

रोगपाटवसंशुद्धिस्वरकान्तिकरं मतम् ॥ कण्ठ्यं रुच्यमुरस्यञ्च फलकर्पूरसंयुतम् ॥ ३३ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७ ॥

कत्था कपूरसे संयुक्त किया नागरपान रोगको शोधता है स्वरको और कांतिको करता है कंठमें हित है रुचिको उपजाता है और छातीमें गुणको करता है ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ मधुवर्ग ॥

अतो वक्ष्यामि माक्षीकं त्रिविधं शृणु पुत्रक ! ॥
भ्रामरं सारघं क्षौद्रं तेषां वच्मि गुणागुणम् ॥ १ ॥

अब शहदको कहूंगा हेपुत्र ! वह शहद तीन प्रकारका है सुन भ्रामर१ सारघ २ क्षौद्र ३ तिन्होंके गुणोंके और दोषोंको कहताहूं ॥ १ ॥

अथ शहदका गुण ॥

शीतं कषायं मधुरं लघु स्यात्सन्दीपनं लेहनमेव शस्तम् ॥ संशोधनञ्च व्रणशोधनञ्च संरोपणं हृद्यतमञ्च बल्यम् ॥ २ ॥ त्रिदोषनाशं कुरुते च पुष्टिं कासक्षये वा क्षतजे च छर्दौ ॥ हिक्काभ्रमे शोषणपीनसानां रक्तप्रमेहे सरलातिसारे ॥ ३ ॥ रक्तातिसारे च सपित्तरक्ते तृण्मोहहृत्पार्श्वगदेऽपि शस्तः ॥ नेत्रामये वा ग्रहणीगदे वा विषे प्रशस्तं भ्रमरैश्चितं यत् ॥ ४ ॥

शहद शीतल है कसैला है मधुर है हलका है अग्निको जगाता है स्वादु है सुंदर शोधता है घावको शुद्ध करता है घावपै अंकुरको लाता है अति मनोहर है बलमें हित है ॥ २ ॥ त्रिदोषको नाशता है पुष्टिको करता है खांसीमें, क्षयमें, छातीके फटनेमें, छर्दीमें और हिचकी, भ्रम, शोष, पीनस, रक्तप्रमेह कोमल, अतीसार, इन्होंमें हित है ॥३॥ और रक्तातिसार, पित्तर-

क, तृषा, मोह, हृद्रोग, पसलीरोग, इन्होंमें श्रेष्ठ है भ्रामर शहद नेत्ररोगमें अथवा संग्रहणीमें और विषमें हित है ॥ ४ ॥

अथ शहदकी विशेषता ॥

भ्रामरं सघनं जाड्यं भूयिष्ठं मधुरश्च यत् ॥ क्षौद्रं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेहनम् ॥ ५ ॥ तस्माल्लघुतरं रूक्षं सारघं नातिशीतलम् ॥ कासे क्षये प्रशस्तं स्यात्कामलार्शोविनाशनम् ॥ ६ ॥ नातिशीतं नच रूक्षं दीपनं बलकृन्मतम् ॥ अतीसारे नेत्ररोगे क्षते वा क्षतजं हितम् ॥ ७ ॥ भ्रामरं वृक्षसंस्थाने बिटपे सारघं भवेत् ॥ रन्ध्रे तु कोटरे वापि क्षौद्रं तत्र प्रशस्यते ॥ ८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मधुवर्गो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

भ्रामर शहद कठिन है मोटा है भारा है मधुर है और क्षौद्रसंज्ञक शहद विशेषपनेसे शीतल है हलका है स्वादु है ॥ ५ ॥ इस्सेभी अति हलका सारघ शहद है यह रूखा है अति शीतल नहीं है खांसीमें और क्षयमें अतिश्रेष्ठ है कामलाको और बवासीरको नाशता है ॥ ६ ॥ क्षौद्रशहद अतिशीतल नहीं है रूखाभी नहीं है अग्निको जगाता है बलको करता है और अतीसार—नेत्ररोग—घाव—क्षतसे उपजारोग—इन्होंमें हित है ॥ ७ ॥ वृक्षपै भ्रामर शहद होता है तृणके गुच्छेमें सारघ शहद होता है वृक्षके छिद्रमें अथवा कोटरमें क्षौद्र शहद होता है ॥ ८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने मधुवर्गोनाम अष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ मद्यवर्ग ॥

गौडी माध्वी तथा पैष्टी निर्यासा कथितापरा ॥ इति चतुर्विधा ज्ञेयाः सुरास्तासां प्रभेदकाः ॥ १ ॥ भेदेन द्वादश प्रोक्ताः सुराः सौवीरकारसैः ॥ सीधुर्गौडी च मत्स्यण्डी गुडेन प्रभवास्त्रयः ॥२॥ माध्वीकं मधुकं माध्वं मधुना संयुताः सुराः ॥ पैष्टीष्वरिष्टजातन्तु तण्डुलप्रभवास्त्रयः ॥३॥ मृद्वीकारससम्भूता ताडमाडरसोद्भवा ॥ निर्यासा सा तु विज्ञेया तासां वच्मि गुणागुणम् ॥ ४ ॥

गौडी, माध्वी, पैष्टी, निर्यासा, इनभेदोंसे मदिरा४प्रकारकी है तिन्होंके भेद ॥१॥ बारह १२ कहे है सीधु–गौडी–मत्स्यंडी–ये तीन मदिरा गुडसे बनती हैं ॥२॥ माध्वीक, मधुक, माध्व, ये तीन मदिरा शहदसे बनती हैं पैष्टी, अरिष्ट, जात, ये तीन मदिरा चावलोंसे बनती हैं ॥ ३ ॥ मृद्वीका मदिरा रससे बनती है ताडमदिरा ताडके रससे बनती है और वही निर्यासा मदिरा जाननी तिन्होंके गुण और दोषोंको कहताहूं ॥ ४ ॥

अथ सुधुमदिराका गुण ॥

सीधुः कषायाम्लकमाधुरो वा सन्दीपनो भेदमलापमर्दः ॥ आ
मातिसारानिलपित्तशूलश्लेष्माभयार्शोग्रहणीगदघ्नः ॥ ५ ॥

सीधुमदिरा कसैली है खट्टी है अग्निको जगाती है मेदको और मलको नाशती है और आमातीसार, वात, पित्त, शूल, कफका रोग, ववासीर, ग्रहणीदोष, इन्होंको नाशता है॥ ५ ॥

अथ गौडी मदिराका गुण ॥

गौडी कषाया मधुराम्लशीता सन्दीपनी शूलमलापहन्त्री ॥ हृद्या
त्रिदोषं शमयत्यजीर्णं पाण्डूमथार्शः श्वसनं निहन्ति ॥ ६ ॥

गौडीमदिरा कसैली है मधुर है खट्टी है शीतल है अग्निको जगाती है शूलको और अफाराको हरती है सुंदर है और त्रिदोष, अजीर्ण, पांडुरोग, ववासीर, श्वासरोग इन्होंको शांत करती है ॥ ६ ॥

अथ मत्स्यंडी मदिराका गुण ॥

हरति मलमियञ्च दीपनी पाण्डुमेहान् लघुमधुरसुशीता रोचना पित्त
हन्त्री ॥ जरयति सकलं वा पीतमम्लातिमात्रं श्वसनरुधिरकासान् हन्ति
वा कामलाञ्च ॥ ७ ॥

राबकी मदिरा अग्नीको जगाती है और मल, पांडुरोग, प्रमेह, इन्होंको हरती है हलकी है मधुर है सुंदर शीतल है रुचिको करती है पित्तको हरती है सब चीजोंको जराती है पीनेमें खट्टी है और श्वासरोग, रक्त, खांसी, कामला, इन्होंको नाशती है ॥ ७ ॥

अथ माध्वीक मदिराका गुण ॥

माध्वीकं शीतलं चाम्लं मधुरमपि तथा कषायोष्णकञ्च हन्यात्पित्तामया
र्शः श्वसनमपि तथा चातिसारं प्रमेहान्॥ शूलानाहोपमर्दं जरयति सकलं
दीपयत्यग्निसात्म्यं तस्माद्धातामवातं वमनमपि तथा हन्ति सर्वांश्च रोगान्॥८॥

माध्वीक मदिरा शीतल है खट्टी है मधुर है कसैली है गर्म है और पित्तरोग—ववासीर, श्वासरोग, अतीसार, प्रमेह, शूल, अफारा, इन्होंको नाशती है सब चीजको जराती है अग्निको जगाती है और वात—आमवात—वमन—सब प्रकारके रोग—इन्होंको नाशती है ॥ ८ ॥

अथ मदिराका गुण ॥

कषाया मधुरा चाम्ला सुरा सन्दीपनी मता ॥
कासार्शोग्रहणीस्तन्यमूत्ररोगविनाशिनी ॥ ९ ॥

मदिरा कसैली है खट्टी है अग्निको जगाती है और खांसी—ववासीर—ग्रहणीदोष—दूधरोग—मूत्ररोग—इन्होंको नाशती है ॥ ९ ॥

अथ पैष्टीमदिराका गुण ॥

पैष्टी सन्दीपनी रुच्या कफकृद्वातनाशिनी ॥
पित्तला पाण्डुरोगाणां कारिणी बहुधा मता ॥ १० ॥

पैष्टी मदिरा अग्निको जगाती है रुचिमें हित है कफको करती है वातको नाशती है पित्तको उपजाती है और विशेष करकै पांडुरोगोंको करती है ॥ १० ॥

अथ महुआ वृक्षकी मदिराका गुण ॥

वातपित्तकरो रूक्षः कषायो विशदो गुरुः ॥
श्लेष्मलो भेदनो ग्राही मूत्रकृच्छ्रशिरोऽर्त्तिनुत् ॥ ११ ॥

महुआकी मदिरा वातको और पित्तको करती है रूखी है कसैली है सुंदर है भारी है कफको करती है मलको पतला करती है कबूजको करती है मूत्रकृच्छ्रको और शिरके रोगको नाशती है ॥ ११ ॥

अथ ताडकी मदिराका गुण ॥

श्लेष्मदोषकरा वृष्या वातला श्लेष्मवर्द्धनी ॥
कासहृल्लासविध्वंसकरणा ताडमण्डिका ॥ १२ ॥

ताडकी मदिरा कफको करती है वीर्यमें हित है वायुको उपजाती है कफको बढाती है और खांसीको तथा थुकथुकीको नाशती है ॥ १२ ॥

अथ मदिराकी विशेषता ॥

पूर्णे कषायपित्ते च योगयुक्ता सुरा हिता ॥ बहुदोषहरा चैव श्लेष्मरोगे विशेषतः ॥ १३ ॥ श्रमज्वरातुरे शोषे शोफपाण्ड्वामये क्षये ॥ मतेः क्

मेऽपस्मारे च पक्षाणाञ्च भ्रमेषु च ॥ १४ ॥ श्रान्ते वा विषपीते वा सर्पदष्टे जलोदरे ॥ रक्तपित्ते तथा श्वासे वारुणी न हिता मता ॥ १५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मद्यवर्गो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

कषायपनेसे युक्त हुआ पित्त जब पूर्ण होवै तब योगसे युक्तकरी मदिरा हित है यह बहुत दोषोंको हरती है और विशेष करकै कफके रोगमें हित है ॥ १३ ॥ परिश्रम और ज्वरसे पीडित और शोष, शोजा, पांडुरोग, क्षय, वृद्धिकी,ग्लानि, मृगीरोग, यशआदिसें उपजा भ्रम इन्होंसे पीडितको ॥ १४ ॥ और शांतहुयेको और विषको पीयेहुयेंको और सर्पसे डसेको और जलोदर—रक्तपित्त—श्वासरोग, इन्होंसे पीडितको मदिरा हित नहीं है ॥ १५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थान एकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ चौपायोंका और दुपायोंका मांसवर्ग ॥

शूलिनः शृङ्गिणश्चैव नखिनोऽन्ये प्रकीर्तिताः ॥ श्वापदाः पक्षिणश्चान्ये मत्स्याश्चान्याः सरीसृपाः ॥ १ ॥ जलेचरा जलाधारा ग्रामारण्यनिवासिनः ॥ अनूपा जाङ्गला जीवास्तथा साधारणोऽपरः ॥ २ ॥ मृगरुरुचित्राङ्गास्तथा गण्डश्च वनगवयमहिषाः ॥ सूकराद्याश्च येऽपि भवन्ति विविधवर्णा ग्रामवासिनश्च ॥ ३ ॥ ये ये वनगजाद्याश्च ग्रामकाद्याश्च शृङ्गिणः ॥ शूकरच्छिक्कराद्याश्च शूरिणो वा भवन्त्यमी ॥ ४ ॥

शूलवाले, शिंगवाले, नखवाले, श्वापद, पक्षी, मच्छ, सर्प ये जो कहे हैं ॥ १ ॥ जलमें विचरनेंवाले, जलके आश्रितहुये ग्राममें वसनेंवाले, वनमें वसनेंवाले, आनूपदेशमें रहनेवाले-जांगलदेशमें रहनेंवाले, साधरणदेशमें रहनेंवाले ॥ २ ॥ मृग, रोहिषमृग, विलावभेद, गेंडा, रोझ, भैंसा, शूरआदि—ये सब अनेक प्रकारका वर्णवाले ग्राममें वसनेवाले है ॥३ जो जो वनमें रहनेवाले हस्तीआदि हैं और जो ग्राममें रहनेंवाले शींगवाले हैं और शूर, छिक्कर इनआदिभी ग्रामवासी है ॥ ४ ॥

अथ सरीसृपवर्णन ॥

शशकः शल्लकी गोधा मार्जाराद्या नखायुधाः ॥

सर्पमत्स्यादिका ये च ते विज्ञेयाः सरीसृपाः ॥ ५ ॥

शशा, सेह, गोह, बिलाव, इनआदि नखरूपी शस्त्रोंवाले है सर्प और मच्छ आदि सरीसृप संज्ञक जानने ॥ ५ ॥

अथ आनूपवर्णन ॥

मत्स्यमङ्कुरकाद्या ये कच्छपा दुर्जरादयः ॥ हंससारसचक्राद्याः कपि अलकुमूद्काः॥६॥आनूपास्तेषु विज्ञेयाः श्लेष्मला वातकोपनाः॥७॥

मच्छ,मंकुरक आदि कच्छप ये दुःखसे जरनेंवाले है और हंस, सारस, चकुवा, इन आदि और पपैय्या, पंडेरिआ पक्षी, ॥ ६ ॥ ये सब आनूपदेशमें रहनेंवाले होते है और कफको करते है और वातको कोपते है ॥ ७ ॥

अथ जाङ्गलवर्णन ॥

शशलावकवाताटा गोधाहरिणकूटकाः ॥ छिक्कराद्यास्तथान्येऽपि तित्तिराद्याश्च कूर्चकाः ॥ ८ ॥ भारद्वाजास्तथा श्येना मूषका वरवारणाः ॥ इत्येता जाङ्गला जीवा ये जलेन विना स्थिताः ॥ ९ ॥

शशा, लावा, वाताट, गोह, हरिण, कूटक, छिक्कर आदि और तीतरआदि, जीवक पक्षी॥ ॥८॥ काग अथवा मुर्गा विशेष, शिकरा, मूषा-माषीविशेष ये सब जांगलसंज्ञक है ये पानीके विनाभी स्थित रह सकते है ॥ ९ ॥

अथ जलचरजीववर्णन ॥

शूकरा मृगशल्लाद्याः सलिलाशयमाश्रिताः ॥ मकराद्याश्च गण्डाका गवयाश्च तथापराः ॥ १० ॥ महिषाद्याश्च ये चैव ते च साधारणा मताः ॥ कुररबकमकराः कङ्कचटकपिकभृङ्गसारसाः ॥ ११ ॥ आडिदात्यूहहंसा जलकरटिकपिङ्गटिट्टिभाद्याश्च ॥ जलेचरा विहङ्गास्ते खञ्जरीटाश्च भासकाः ॥ १२ ॥ इत्येते जलजा जीवाः स्थलजाः स्थलचारिणः ॥ १३ ॥

शूर, हरण, शल्ल अर्थात् गोहके आकार जीव इन आदि जीव पानीका आशयके आश्रित रहते है और मकर मच्छ आदि-गैंडा-रोझ॥१०॥भैंसा आदि जीव साधारणमाने है और पपैया-बगला–मकरा– कंक– वत्तक–कोयल– भौरा–सारस– ॥ ११ ॥ आडीपक्षी-ढौंकरपक्षी-हंस--शंखकाजीव–रटिक–पिंगपक्षी–टिटवीपक्षी इनआदि॥१२॥जलमें विचरनेंवाले है खंजरीट और भासपक्षीभी जलचारी है और स्थलमें विचरनेंवाले स्थलचारी जीव कहाते है॥ १३ ॥

अथ ग्रामचारी पशुवर्ग ॥

गजवाजिनस्तथोष्ट्रा माहिषा सौरभाजकाः ॥ खरशूकरमेषाश्च श्वानो मार्जारमूषकाः ॥ १४ ॥ इत्येते पशवो ज्ञेया ग्रामवासनिवासिनः ॥

हस्ती, घोडा, ऊंट, भैंसा, बैल, बकरा, गधा, शूर, मेंढा, कुत्ता, बिलाव, मूषा ॥ १४ ॥ ये सब जीव गाममें वसनेवाले है ॥

ग्रामचारी पक्षी

कुक्कुटकलविङ्कपारावतकपोतकाः ॥ १५ ॥
पक्षिणो ग्रामचाराश्च बच्मि चैषां गुणागुणम् ॥ १६ ॥

और मुर्गा, चिमणापक्षी, परेवा, कबूतर, ॥ १५ ॥ ये पक्षी गाममें विचरते है इन्होंके गुण और दोषको कहताहूं ॥ १६ ॥

हरिणोंके मांसका गुण ॥

शृङ्गिणां हरिणः श्रेष्ठो बल्यो रोचनदीपनः ॥
त्रिदोषघ्नो लघुः पाके मधुरो ज्वरिणां हितः ॥ १७ ॥

शिंगवालोंमें हरिण श्रेष्ठ है बलमें हित है रुचीको देता है अग्निको जगाता है त्रिदोषको हरता है हलका है पाककालमें मधुर है ज्वरवालोंको हित है ॥ १७ ॥

अथ कृष्णमृगके मांसका गुण ॥

क्षते क्षयार्शसोः पाण्डावरोचकनिपीडिते ॥
कासश्वासातुराणाञ्च एणमांसं सुखावहम् ॥ १८ ॥

छातीका फटजाना, क्षय, ववासीर, पांडु, अरुची, खांसी, श्वास, इन्होंसे पीडित रोगियोंको कृष्णमृगका मांस हित है ॥ १८ ॥

अथ चित्रांगके मांसका गुण ॥

चित्राङ्गो वातशमनो बृंहणो बलकृन्मतः ॥
श्लेष्मलः कथितो वापि दुर्जरो मेदवर्द्धनः ॥ १९ ॥

बिलावका मांस वातको शांत करता है धातुओंको पुष्ट करता है बलको बढाता है कफ-को करता है दुर्जर है और मेदको बढाता है ॥ १९ ॥

अथ छिक्करके मांसका गुण ॥

छिक्करो लघु बृंही च मधुरो दोषनाशनः ॥

तुल्यो हरिणमांसस्य ज्वरेष्वपि प्रशस्यते ॥ २० ॥

छिक्करका मांस हलका है धातुओंको पुष्ट करता है मधुर है दोषको नाशता है मृगका मांसके समान है और ज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ रक्तमृगके मांसका गुण ॥

रोहितो बृंहणश्चैव विबन्धी दुर्जरो घनः ॥
ज्वरिणां विषमाग्नीनामतीसारेण त्रास्यते ॥ २१ ॥

रक्त मृगका मांस धातुओंको बढाता है विशेष करकै बंधाको करता है दुर्जर है कठिन है और ज्वर, विष, अग्नी, इनरोगवालोंको अतीसार करकै त्रासित करता है ॥ २१ ॥

अथ गैंडा, रोझ, भैंसा, ऊंट, घोडा-इन्होंके मांसोंके गुण ॥

तथैव गण्डगवयमहिषोष्ट्रतुरङ्गकाः ॥
विबन्धिगुरवः स्निग्धा वातालस्ये प्रकीर्त्तिताः ॥ २२ ॥

गैंडा, रोझ, भैंसा, उंट, घोडा इन पांचोंके मांस विशेष करकै बंधाको करते है भारे हैं चकने हैं वातमें और आलस्यमें हित है ॥ २२ ॥

अथ शूरके मांसका गुण ॥

वातघ्नं रोचनं वृष्यं दुर्जरं श्रमनाशनम् ॥
वातलं पित्तशमनं रुचिदं धातुवर्द्धनम् ॥ २३ ॥

शूरका मांस वातको नाशता है रुचिमें हित है वीर्यमें हित है दुर्जर है परिश्रमको नाशता है पित्तको शांत करता है धातुओंको बढाता है ॥ २३ ॥

अथ शशाके मांसका गुण ॥

शशको जाङ्गलश्रेष्ठो लघुर्वृष्यश्च दीपनः ॥ रुचिकृत्तर्पणो बल्यस्त्रिदोषशमनो मतः ॥ २४ ॥ ज्वरे च पाण्डुरोगे च क्षये कासे गुदामये ॥ राजयक्ष्मणि पाण्डौ च तथातीसारिणां हितः ॥ २५ ॥

शशाका मांस जांगलजीवोंके मांसोंमें श्रेष्ठ है हलका है वीर्यमें हित है अग्निको जगाता है रुचिको करता है तृप्तिको करता है बलमें हित है और त्रिदोषको शांत करता है ॥२४॥ और ज्वर, पांडुरोग, क्षय, खांसी, बवासीर, राजरोग, पांडुरोग, आतीसार, इनरोगवालोंको हित है ॥ २५ ॥

अथ शेहके मांसका गुण ॥

शल्लकी बृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥
वातश्लेष्महरो हृद्यो मधुरो धातुवर्द्धनः ॥ २६ ॥

शेहका मांस धातुओंको पुष्ट करता है वीर्यमें हित है बलको करता है चिकना है रुचिको देता है वातको और कफको हरता है सुंदर है मधुर है और धातुओंको बढाता है॥२६॥

अथ गोह सरीखा शल्यकनामवाला जीवके मांसका गुण ॥

शल्यको बृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥
वातलः किञ्चिद्धातूनां वर्द्धनो मधुरो घनः ॥ २७ ॥

गोह सरीखा जीवका मांस धातुओंको पुष्ट करता है बलमें हित है चिकना है वीर्यमें हित है रुचिको देता है वातको करता है धातुओंको कछुक बढाता है मधुर है और कठिन है ॥ २७ ॥

अथ गोहके मांसका गुण ॥

रक्तपित्तहरा वृष्या स्निग्धा मधुरशीतला ॥
श्वासकासहरा प्रोक्ता गोधा चार्शोहिता बला ॥ २८ ॥

गोहका मांस रक्तपित्तको हरता है वीर्यमें हित है चिकना है मधुर है शीतल है श्वासको और खांसीको हरता है और ववासीरमें हित है ॥ २८ ॥

अथ मूषाके मांसका गुण ॥

स्निग्धो बलकरः शुक्रवर्द्धनो मधुरो लघुः॥दुर्नामक्रिमिदोषघ्नो वातहारी च मूषकः ॥ २९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुष्पदानां मांस वर्गो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

मूसाका मांस चिकना है बलको करता है वीर्य्यको बढाता है मधुर है हलका है और ववासीरको और कृमिदोषको हरता है और वातकोभी नाशता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थानेमांसवर्गोनाम विंशोध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ स्थलमें विचरनेंवाले जीवोंका मांसवर्ग ॥

प्रथम लावापक्षीके मांसका गुण ॥

पक्षिणाञ्च महाश्रेष्ठो लावको जाङ्गलात्मजः ॥ संग्राही दीपनः प्रोक्तः कषायो मधुरो लघुः ॥१॥ तथा विपाके मधुरः सन्निपातेऽतिपूजितः॥२॥

लावाका मांस सब पक्षियोंके मांससे श्रेष्ठ है परंतु जांगलदेशमें विचरनेंवाला लावापक्षीका मांस हो यह कब्जको करता है अग्निको जगाता है कसैला है मधुर है और हलका है ॥१॥ और पाककालमें मधुर है और सन्निपातमें अतिपूजित है ॥ २ ॥

अथ तीतरके मांसका गुण ॥

तथैव तित्तिरो वृष्यो मेधाग्निबलवर्द्धनः ॥ सर्वदोषहरो बल्यो बलाका समता गुणैः ॥ ३ ॥ वार्त्ताको विशदो वृष्यो यथा लावस्तथैव च ॥ कृष्णगौरप्रभेदाश्च श्रेष्ठो गौरश्च तित्तिरः ॥ ४ ॥ तृतीयतित्तिरोऽन्योऽपि सामान्यो गुणलक्षणैः ॥ सवातलोऽतिबलकृद्घनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ५ ॥

तीतरका मांस वीर्यमें हित है और बुद्धि, अग्नि, बल, इन्होंको बढाता है सबदोषोंको हरता है बलमें हित है और बगलाका मांसके समान गुणोंवाला है ॥ ३ ॥ वार्त्ताकसंज्ञक तीतरका मांस सुंदर है वीर्यमें हित है और लावाका मांसके समान गुणोंवाला है कृष्ण और गौर तीतरोंमें गौर वर्णका तीतर श्रेष्ठ है ॥४ ॥ गुण और लक्षणों करकै समान तीसरे रंगका तीतर अन्यभी होता है परंतु वह वातल है अतिबलको करता है तिसका मांस कठिन है और कछुक रसायन है ॥ ५ ॥

अथ नीला मोरके मांसका गुण ॥

मेधावृद्धिं स्रोतसाञ्च करोत्युत्पाटनं शिखी ॥
सवातलोऽतिबलकृद्घनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ६ ॥

नीला मोरका मांस बुद्धिको बढाता है और कानोंको उत्पाटित करता है वातल है अतिबलको करता है कठिन है और कछुक रसायन है ॥ ६ ॥

अथ साधारण मोरके मांसका गुण ॥

सुस्निग्धो श्लेष्मलो वृष्यो घनः शुक्रविवर्द्धनः ॥
मांसवृद्धिकरो बल्यो द्वितीयश्च मयूरकः ॥ ७ ॥

साधारण मोरका मांस सुंदर चिकना है कफको करता है वीर्यमें हित है कठिन है वीर्यको बढाता है मांसको बढाता है बलमें हित है ॥ ७ ॥

अथ मुर्गाके मांसका गुण ॥

तथैव कुक्कुटो ज्ञेयो मधुरश्च गुणात्मकः ॥ ८ ॥

मुर्गाका मांसभी मोरका मांसके समान गुणोंवाला है और मधुर है ॥ ८ ॥

अथ कपोतके मांसका गुण ॥

कपोतो बृंहणो बल्यो वातपित्तविनाशनः ॥
तर्पणः शुक्रजननो हितो नृणां रुचिप्रदः ॥ ९ ॥

कपोतका मांस धातुओंको पुष्ट करता है बलमें हित है वातको और पित्तको नाशता है तृप्तिको करता है वीर्यको बढाता है और मनुष्योंके रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ परेवाके मांसका गुण ॥

तथा पारावतो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः॥ बल्यो वृष्यो रुचिकृच्च तथा हारीतको मतः ॥ १० ॥ पोतको भङ्गिका क्षुद्रा तथाच कुनटी तथा ॥ एते तुल्यगुणा ज्ञेया लघुवातापहारिणः ॥ ११ ॥

परेवाका मांस वातको और कफको करता है भारा है बलमें हित है वीर्यमें हित है रुचिको करता है और ऐसेही गुणोंवाला तिलजिरुपक्षीका मांस है ॥ १० ॥ और पीत्तक—इंद्रगोप—मधुमाखी—कुनटी इन च्यारोका मांस समान गुणोंवाला है हलका है और वातको हरता है ॥ ११ ॥

अथ ककेराके मांसका गुण ॥

लघुश्च क्रकरो ज्ञेयः कायाग्निवर्द्धनो भृशम् ॥ १२ ॥

ककेराका मांस हलका है शरीरकी अग्निको बढाता है ॥ १२ ॥

अथ खातीचिडाके मांसका गुण ॥

तथा लघुर्वातहरः काष्ठकूटोऽग्निवर्द्धनः ॥ वातश्लेष्माधिको ज्ञेयः शीतलः शुक्रवर्द्धनः॥ १३॥अश्मरीं हन्ति विशदो बलकृन्मांसतक्षणः॥ १४॥

खातीचिडाका मांस हलका है वातको हरता है और जठराग्निको बढाता है वात और कफकी अधिकतासे संयुक्त है शीतल है और वीर्यको बढाता है ॥ १३ ॥ पथरीको हरता है सुंदर है बलको करता है मांसको काटता है ॥ १४ ॥

अथ चकोर, तोता, मैंना इन्होंके मांसका गुण ॥

चकारोऽथ तथा शारी समदोषौ गुणागुणैः ॥ १५ ॥

चकोर, तोता, मैंना, इन्होंकाभी मांस गुण और दोषोंसे समान है ॥ १५ ॥

अथ कुंजके मांसका गुण ॥

क्रौंचो वृष्योऽतिरुचिकृदश्मरीं हन्ति नित्यशः ॥
शोषमूर्च्छाहरो वृष्यो हन्ति कासमरोचकम् ॥ १६ ॥

कुंजका मांस वीर्यमें हित है ज्यादे रुचिको करता है निश्चय पथरीको हरता है और शोष, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, इन्होंको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ कोयलके मांसका गुण ॥

कोकिलः श्लेष्मलो ज्ञेयः पित्तसंशमनो मतः ॥ १७ ॥

कोयलका मांस कफको करता है बलमें हित है और वीर्यको बढाता है ॥ १७ ॥

अथ विवृताक्षके मांसका गुण ॥

विवृताक्षस्त्रिदोषघ्नो बल्यः शुक्रविवर्द्धनः ॥ १८ ॥

विवृताक्षका मांस त्रिदोषको नाशता है बलमें हित है और वीर्यको बढाता है ॥ १८ ॥

अथ घरका वत्तकके मांसका गुण ॥

गृहस्थ चटको वृष्यो बलशुक्रविवर्द्धनः ॥ सर्वदोषहरश्चापि दीपनो मांसवर्द्धनः ॥१९॥ इति आत्रेयभाषिते हारितोत्तरे स्थलचराणां मांसवर्गो नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

घरके वत्तकका मांस वीर्यमें हित है बल और वीर्यको बढाता है सब दोषोंको हरता है अग्निको जगाता है और मांसको बढाता है ॥ १९॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने स्थलचराणां मांसवर्गोनाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ जलचरोंका मांसवर्ग

प्रथम हंसआदि जलके पक्षियोंके मांसका गुण

हंसः श्लेष्मकरो बलातिरुचिदो वृष्यो गुरुः शीतलस्तद्वच्च कण्ठजाड्य शुक्रजननो वृष्योऽतिरुच्यो मृदुः ॥ ज्ञेयः सारसकः कफानिलहरो वृष्यो गुरुश्चोच्यते वृष्यो वीर्य्यविवर्द्धनः कफहरः कङ्कस्तथा भासकः॥ १ ॥

हंसका मांस कफको करता है बलको और अति रुचिको देता है वीर्यमे हित है भारा है और शीतल है सारसका मांस हंसका मांसके समान गुणोंवाला है कंठमें जडपनेको और वीर्यको करता है वीर्यमें हित है रुचिमें हित है और कोमल है कफको और वातको हरता है और भारा है कंक और भासपक्षीका मांसमें हित है और वीर्य्यको बढाता है ॥ १ ॥

आडी आदि पक्षीके मांसका गुण ॥

आडी वातविकारकासहननी बल्या वृषा दीपनी क्रौञ्ची चासुरिशुक्रदोषहननी तुल्यस्तथा कर्कटः॥ दात्यूहो मरुतस्य नाशनकरो वृष्यो बलःशुक्रदस्तथा श्रेष्ठगुणः श्रमोपशमनः शुक्रप्रदो वातहा ॥ २ ॥

वातका विकार और खांसीको हरता है बलमें और वीर्यमें हित है और अग्निको जगाता है कुंजका मांस और आसुरीका मांस वीर्यके दोषको हरता है और इसीके समान गुणोंवाला कांकडपक्षीका मांस है और करढोंक पक्षीका मांस वातको नाशता है वीर्यमें हित है बलको और वीर्य्यको देता है और श्रेष्ठ गुणोंवाला है परिश्रमको शांत करता है ॥ २ ॥

अथ मकर मच्छके मांसका गुण ॥

मत्स्यानां मकरः श्रेष्ठो दीपनो वातनाशनः ॥
रुचिप्रदः शुक्रकरश्चाश्मरीदोषनाशनः ॥ ३ ॥

सबप्रकारके मच्छोंके मांसोंमें मकरमच्छका मांस श्रेष्ठ है अग्निको जगाता है वातको नाशता है रुचिको देता है वीर्य्यको करता है और पथरी दोषको नाशताहै ॥ ३ ॥

अथ मच्छके मांसका गुण ॥

शृङ्गी वातविनाशनो रुचिकरो वृष्यः कफघ्नो मतस्तस्माद्रोहितको हितो बलकरो वातात्मकःश्लेष्मकः ॥ ४ ॥ श्लेष्माकरी तु शफरी

नलमीनः कफात्मकः ॥ शकुली च विशाला च ज्ञेयौ वातकफात्मकौ ॥ बिलं विमत्स्यं ज्ञेयश्च वातपित्तकफाकरम् ॥ ५ ॥

शृंगीमच्छका मांस वातको नाशता है रुचिको करता है वीर्यमें हित है वात और कफकी प्रकृतिवाला है ॥ ४ ॥ शफरी मछली कफको करती है नलनामक मच्छ वातकी प्रकृतिवाला है शकुली और विशालानामवाली दोनों मच्छली वात और कफकी प्रकृतिवाली है बिल और विमत्स्यनामवाले मच्छ वात, पित्त, कफ, इन्होंको नाशते है ॥ ५ ॥

अथ कच्छुवाके मांसका गुण ॥

कच्छपो मधुरः स्वादुः शुक्रवृद्धिकरो मतः ॥
वातश्लेष्मप्रजननो बृंहणो रूक्ष एव च ॥ ६ ॥

कछुवाका मांस मधुर है स्वादु है वीर्यको बढाता है वात और कफको उपजाता है धातुओंको पुष्ट करता है और रूखा है ॥ ६ ॥

अथ खेंकडाके मांसका गुण ॥

कुलीरोऽतिबलो वृष्यः पाण्डुक्षयविनाशनः ॥
शोफातिसारग्रहणीस्थविराणां स्त्रियां हितः ॥ ७ ॥

खेंकडाका मांस ज्यादै बलको करता है वीर्यमें हित है धातुओंको पुष्ट करता है और रूखा है और शोजा, अतीसार, संग्रहणी दोष, इन्होंसे पीडित और बूढा और स्त्री इन्होंको हित है ॥ ७ ॥

अथ मांसविशेषता

मकरो दीपनो हृद्यो ग्राही चोष्णविकारहा ॥
मूत्राश्मरीणां शमनो गुल्मातीसारनाशनः ॥ ८ ॥

मकर मच्छका मांस अग्निको जगाता है सुंदर है कबजको करता है गर्म विकारको नाशता है मूत्ररोग और पथरोको शांत करता है गुल्म और अतीसारको नाशता है ॥ ८ ॥

अथ वर्जनीय मांस

बककाकारिश्येनशूकरखरोष्ट्राश्वादयो भल्लुका व्यालाः सौरभेयप्रभृतयश्च ये चान्ये जीवा नृणाम् ॥ मण्डूकाश्च सरीसृपादिकगणा यूकाः कलिङ्गाश्च ये काकसारसशारिकाः शुका इमे भक्ष्या न शस्ता इमे ॥ ९॥ गृहचटकचकोराः काकजात्याश्च श्येनाः पिकशुकमघशारीभृङ्गदात्यू

हमाङ्गाः ॥ जलकरटकपोतपोटकीखञ्जरीटाः कुकुरमघमलिङ्गा यूकपिङ्गादयश्च ॥ १० ॥ एते भक्ष्या नैव भक्ष्या न चेष्टा ये चान्येऽप्यज्ञातनामाण्डजाश्च ॥ अन्ये चापि श्वापदा ये च निन्द्यास्ते च खाद्ये वर्जिताश्चात्र सर्वे ॥ ११ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मांसवर्गो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

काक, बाज, शिकरा, गधा, शूर, उंट, कुत्ता, रीछ, भेडिया, गाय, बैल, आदि और मेंडक, सर्प आदि समूह, जूम, धूम्याटपक्षी, सारस, मैना, तोता, इन्होंके मांस खानेमें वर्जित है ॥ ९ ॥ और घरमें रहनेंवाली वत्तक, चकोर, काककी जातीके पक्षी, शिकराकी जातीके पक्षी, कोयल, तोताकी जातीके पक्षी, मघा, शारी, भोरा, करढौंकपक्षी, मांग, शंखका जीव, कबूतर, पोटकी, खंजना, कुत्ता, मघ, मलिंग, जूम, पिंगापक्षी ॥ १० ॥ इन्होंके मांस खानें और चेष्टाके योग्य नहीं है और जो जो निंदित जीव है तिन्होंके भी मांस वर्जने चाहिये ॥ ११ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने मांसवर्गो नाम द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ अन्नपानवर्ग ॥

प्रथम मंडका गुण ॥

मण्डः परिस्रवो भक्तस्तर्पणो वातनाशनः ॥ मूत्रमेहसमीरघ्नो रुचिकृन्मूत्रलो मतः ॥ १ ॥ आशुमण्डो भवेद् ग्राही मधुरो वा कफात्मकः ॥ तर्पणः क्षयदोषघ्नः शुक्रवृद्धिकरः परः ॥ २ ॥

मंड झिरानेंवाला है तृप्तिको करता है वातको नाशता है मूत्र, मेह, और वातको नाशता है रुचिको करता है और मूत्रको उपजाता है ॥ १ ॥ शीघ्रकिया मंड कबजको करता है मधुर है कफकी प्रकृतिवाला है तृप्तिको करता है क्षय दोषको नाशता है और वीर्यको बढाता है ॥ २ ॥

अथ भातका गुण ॥

अप्रसाधितभक्तो युगन्धराणां भक्तश्च घनो विशदमाधुरश्च ॥
कफे त्रिदोषशमनश्च कथ्यते कासश्च श्वासात्मक एव स स्मृतः ॥३॥

नहीं साधित किया और दो तरहसे मिलाहुआ भात कठिन है सुंदर है मधुर है कफमें हित है त्रिदोषको नाशता है खांसीको और श्वासरोगको हरता है ॥ ३ ॥

अथ यवागू अर्थात् गुडपाणीका गुण ॥

सन्दीपनी स्वेदकरा यवागूः सम्पाचनी दोषमलामयानाम् ॥
सन्तर्पणी धातुबलेन्द्रियाणां शस्ता भवेत्स्याज्ज्वररोगिणाञ्च ॥ ४ ॥

यवागू पसीनाको लाती है अग्निको जगाती है और दोष, आम, बल, इन्होंको पकाती है और धातु, बल, इंद्रिय, इन्होंको तृप्ति करती है और ज्वररोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ यवागूका लक्षण ॥

भागैकश्च भवेत् तत्र द्विभागेन जलं क्षिपेत् ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यनागरम् ॥ ५ ॥ धान्यकस्य समांशानि पिष्ट्वा श्वेतासित ण्डुलान् ॥ संशुद्धा शिथिला किञ्चित् सा यवागूर्निगद्यते ॥ ६ ॥ यवागू मुपभुञ्जानो जनो नारुचिमाचरेत् ॥ शाकमाषफलैर्युक्ता यवागूः स्या च्च दुर्जरा ॥ ७ ॥

एक भाग द्रव्य और दो भाग पानी मिलावै और चीता, पीपलामूल, पीपल, चव्य, सूंठ, ॥५ ॥ धनियां, ये सब समभाग लेने सफेद और दूसरे रंगके चावल इन सबोंको पीस मिलाकै पकावै कछुक पतली रहै तिसको यवागू कहतेंहै ॥ ६ ॥ यवागूको भोजन करताहुआ मनुष्य अरुचिको नहीं प्राप्त होता और शाक, उडद, फल, इन्होंसे युक्तकरी यवागू दुर्जर होती है ॥ ७ ॥

अथ मंडका गुण ॥

पञ्चकोलकधान्याकैर्युक्तो रास्नान्वितः पुनः ॥
मण्डस्त्रिदोषशमनो ज्वराणां पाचनः परः ॥ ८ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सूंठ, धनियां, रायशन, इन्होंसे युक्त किया मंड त्रिदोषको नाशता हैं और ज्वरोंको पकाता है ॥ ८ ॥

अथ खीरका गुण ॥

पायसं गुरु विष्टम्भजननं श्लेष्मवातलम् ॥
पित्तसंशमनं बल्यं वृष्यं श्रेष्ठं रसायनम्॥ ९ ॥

खीर भारा है विष्टंभको करती है कफ और वातको करता है पित्तको शांत करता है बलमें और वीर्य्यमें हित है श्रेष्ठ है और रसायन है ॥ ९ ॥

अथ खीचडीका गुण ॥

गुरुर्विष्टम्भजननो वातश्लेष्मकरः स्मृतः ॥ पित्तसंशमनो बल्यो वृष्यश्चैव बलप्रदः ॥ १० ॥ मुद्गस्तण्डुलसंयुक्तो माषतण्डुलवान् पुनः ॥ अन्यथा धान्यगुणवान् लक्ष्यते च भिषग्वर! ॥ ११ ॥ तिलानां संयुतो हृद्यो धातुपुष्टिविवर्द्धनः ॥ गुरुर्विष्टम्भमलकृद् दुर्जरः श्लेष्मकोपनः॥१२॥

खीचडी भारा है विष्टंभको करती है वातको और कफको करती है पित्तको शांत करती है बलमें और वीर्य्यमें हित है और बलको देती है ॥ १० ॥ चावलोंसे युत हुई अथवा चावल और उडदोंसे युतहुई खीचडीके ये गुण है अन्यतरहकी खीचडो अन्नके गुणको देती है ॥ ११ ॥ तिलोंकी खीचडी सुंदर है धातुओंकी पुष्टिको बढाती है भारा है विष्टंभको और मलको करती है दुर्जर है कफको कोपती है ॥ १२ ॥

अथ दालका गुण

सूपश्चोक्तस्त्रिदोषघ्नो व्यञ्जितश्चैव सर्पिषा ॥
धातुपुष्टिकरः श्रेष्ठो बृंहणो बलवर्द्धनः ॥ १३ ॥

दाल त्रिदोषको नाशती है और घृतमें भूनी अथवा छोंकीहुई दाल धातुओंकी पुष्टिको करती है श्रेष्ठ है धातुओंको और बलको बढाती है ॥ १३ ॥

अथ खलका गुण ॥

वातकफकरो हृद्यः खलको बलकारकः ॥ १४ ॥

तिलोंका खल वातको और कफको करता है सुंदर है और बलको करता है ॥ १४ ॥

अथ अनारका पन्ना ॥

कफानिलहरो हृद्यो दीपनो दाडिमाम्लकः ॥ १५ ॥

अनारका पन्ना कफको और वातको हरता है सुंदर है और अग्निको जगाता है ॥१५॥

अथ पापडका गुण ॥

पर्पटस्तैलसंभृष्टो दोषाणाञ्च ज्वरापहः ॥
रुचिकृद्बलकृच्चैव दाहशोषतृषापहः ॥ १६ ॥

तेलमें भुनाहुआ पापड दोषोंसे उपजे ज्वरको नाशता है रुचिको और बलको करता है और दाह, शोष, तृषा, इन्होंको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ संडाकीका गुण ॥

सण्डाकी च गुरुस्निग्धा दुर्जरा गुरुशीतला ॥
पित्तश्लेष्मकरा बल्या धातूनाञ्च बलप्रदा ॥ १७ ॥

संडाकी भारी है चिकनी है दुर्जर है अति शीतल है पित्तको और कफको करती है बलमें हित है और धातुओंके बलको देती है ॥ १७ ॥

अथ उडद आदिके वडोंका गुण ॥

दुर्जरा मधुरा रुच्या वटिका माषकादिभिः ॥ १८ ॥

उडद आदिके वडे दुर्जर हैं मधुर हैं रुचिमें हित हैं ॥ १८ ॥

अथ शिखरणका गुण ॥

गुडदधिप्रमुदिता हिता शिखरिणी नृणाम् ॥
धातुवृद्धिकरा वृष्या वातपित्तविनाशिनी ॥ १९ ॥

गुड और दहीसे बनीहुई शिखरण मनुष्योंको हित है धातुओंको बढाती है वीर्यमें हित है वातको और पित्तको नाशती है ॥ १९ ॥

अथ शीधुका गुण ॥

शीतलः पित्तशमनो भ्रममूर्च्छातृषापहः ॥
खण्डेन संयुतः श्रेष्ठो घृतयुक्तो जलाधिकः ॥ २० ॥

शीधु शीतल है पित्तको शांत करता है और भ्रम, मूर्च्छा, तृषा, इन्होंको नाशता है और खांड तथा घृतसे संयुक्त और पानीकी अधिकतासे संयुक्त ऐसा शीधु श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ मंथका लक्षण और गुण ॥

शक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ॥ नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्यभिधीयते ॥ २१ ॥ मन्थः सद्यो बलच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥
साम्लः स्नेहश्च सगुडो मूत्रकृच्छ्रस्य साधनः ॥ २२ ॥

घृतमें भुनेहुये सत्तुओंमे पानी मिलाके ऐसा बनावे जो न अति पतला और न अति कठिन हो तिसको मंथ कहते है ॥ २१ ॥ तत्कालका बनाया मंथ बल, छर्दि, पिपासा, दाह, इन्होंको नाशता है खट्टा है स्नेहन है और गुड सहित मंथ मूत्रकृच्छ्रको साधता है ॥ २२ ॥

अथ मांसका गुण ॥

सिद्धं मांसं वेसवारेण युक्तं बल्यं श्रेष्ठं स्वादु संदीपनञ्च ॥ त्रिदोषशमनं गुरु लवणस्नेहयुक्तं दुर्जरं दीपनं स्मृतम् ॥ २३ ॥

सिद्ध किया और वेसवारसंज्ञक मसालासे संयुक्त किया मांस बलमें हित है श्रेष्ठ है स्वादु है अग्निको जगाता है त्रिदोषको शांत करता है भारा है नमक और स्नेहसे संयुक्त किया मांस दुर्जर है और अग्निको जगाता है ॥ २३ ॥

अथ मांसकी श्रेष्ठता ॥

नहि मांससमं किञ्चिदन्यद्देहमहत्त्वकृत् ॥
मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वाद्विशिष्यते ॥ २४ ॥

शरीरकूं बढानेकेवास्ते मांससरीखा दूसरा कोई पदार्थ नहीं है. तिसमांसमेंभी जो प्राणी मांस खाते हैं उनप्राणिओंका मांस मांससें भरा रहता है. इसवास्तै वह बोहोत अच्छा होता है ॥ २४ ॥

अथ भूंजेहुए मांसका गुण ॥

अङ्गारैः परिपक्कञ्च दीपनं श्लेष्मनाशनम् ॥
बल्यञ्च स्नेहसंयुक्तं घनं घनगुणात्मकम् ॥ २५ ॥

मांस अग्निको जगाता है हलका है श्लेष्मको नाशता है. बलमें हित है और स्नेहसे संयुक्त किया यही मांस कठिन है और कठिन गुणवाला है ॥ २५ ॥

अथ मंडका गुण ॥

अत्युष्णं मण्डकं पथ्यं लघु चैव यथोत्तरम् ॥ त्रिकशूलपार्श्वशूलपरिणामापहंतथा ॥ तृष्णामारुतछर्दिघ्नमामाशयकरं तथा ॥ २६ ॥

मंड अति गर्म है पथ्य है, हलका है यह त्रिकशूल, पसलीशूल, परिणामशूल, इन्होंको नाशता है तृष्णा, वायु,छर्दि इन्होंको नाशता है. आमको बढाता है ॥ २६ ॥

अथ मांडाका गुण ॥

तप्तकर्परपक्का या रोचनी मधुरा घना ॥
कफवृद्धिकरी बल्या पित्तरक्तप्रदायिनी ॥ २७ ॥

तप्तकिये तवेपर पकाया मांडा रुचिको करता है मधुर है कठिन है कफको बढाता है बलमें हित है पित्त और रक्तको देता है ॥ २७ ॥

अथ पूरी और घेवरका गुण ॥

पूरिका घृतपूरन्तु त्रिदोषशमनं परम् ॥
वृष्यं संबृंहणं स्वादु क्षतक्षयनिवारणम् ॥ २८ ॥

पूरी और घेवर त्रिदोषको शांत करता है वीर्यमें हित है धातुओंको पुष्ट करता है स्वादु है क्षत और क्षयको नाशता है ॥ २८ ॥

अथ गूंझ मालपुवाका गुण ॥

गुरूष्णो दुर्जरो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ॥
पूपकः श्लेष्मको हृद्यो वृष्यो वातानुलोमनः ॥ २९ ॥

मालपुआ भारा है दुर्जर है वातको और कफको करता है कफको करता है सुंदर है वीर्यमें हित है और वातको अनुलोमता है ॥ २९ ॥

अथ सोमालिकाका गुण ॥

सोमालिका घना स्वादू रोचनी बलवर्द्धनी ॥
दुर्जरा दोषशमनी वृथानुकरणी मता ॥ ३० ॥

सोमालिका पक्कान्न कठिन है स्वादु है रुचिको उपजाता है बलको बढाता है दुर्जर है दोषको शांत करती है और वीर्यमें हित है ॥ ३० ॥

अथ फेनीका गुण ॥

बृंहणी वातपित्तघ्नी पथ्या लघुतरा मता ॥
फेनिका रोचनी बल्या सर्वधातुबलप्रदा ॥ ३१ ॥

फेनी विष्टंभको करती है रुचिको उपजाती है बलमें हित है और सब धातुओंमें बलको देती है ॥ ३१ ॥

अथ भिन्न वडाका गुण ॥

विष्टम्भी मधुरो हृद्यो घनो वातकफात्मकः ॥
स सिक्तो वा त्रिदोषघ्नो दुर्जरो जायते पुनः ॥ ३२ ॥

भिन्नकिया वडा विष्टंभको करता है मधुर है सुंदर है कठिन है वातकी और कफकी प्रकृतिवाला है और सेचितकिया वडा त्रिदोषको नाशता है फिर दुर्जर होजाता है ॥ ३२ ॥

अथ अभिन्नवडाका गुण ॥

अभिन्नो दुर्जरो बल्यो घनतृष्णाप्रदः स्मृतः ॥
तीक्ष्णो विपाके विष्टम्भी दुर्जरो जायते पुन. ॥ ३३ ॥

नहीं भिन्न किया वडा दुर्जर है बलमें हित है ज्यादै तृषाको देता है तेज है पाककालमें विष्टंभी है फिर दुर्जर होजाता है ॥ ३३ ॥

अथ लड्डूका गुण ॥

कटुकास्तर्पणा बल्या दुर्जराःशोषकारकाः ॥ मन्दाग्नौ न प्रशस्यन्ते
मोदका बहुवर्णकाः ॥ द्रव्यं गुणविशेषेण सारस्वादेन वा पुनः ॥३४॥

लड्डु चर्चरे है, तृप्तिको करते है बलमें हित है दुर्जर है शोषको करते है और मंदाग्निमें हित नहीं है बहुत वर्णवाले है अथवा द्रव्यका गुण विशेष करकै–व–सारस्वाद करकै लड्डु-कहे है ॥ ३४ ॥

अथ यवपोलिकाका गुण ॥

पोलिका कथिता बल्या कफदोषकरी मता ॥
वृष्या वीर्य्यप्रदा ज्ञेया दोषला वीर्य्यवर्द्धनी ॥ ३५ ॥
विदलान्नस्य या पर्णा सिद्धा कर्परकेण तु ॥
रुच्या वान्नविशेषेण दोषान् सर्वान् विभावयेत् ॥ ३६ ॥

जवोंकी पोळी बलमें हित है कफदोषको करती है वीर्यमें हित है वीर्यको देती है दोषोंको उपजाती है और वीर्यको बढाती है ॥ ३५ ॥ और तंदूरपर पकाईहुई रोटी रुचिमें हित है ऐसेही अन्नका दोषके अनुसार सब पदार्थोंको विचारै ॥ ३६ ॥

अथ अन्नके गुणोंका उपसंहार ॥

अन्यानि चान्नपानानि नैवोक्तानि महामते ! ॥
ग्रन्थविस्तारभीरुश्च लोको वक्तुं न च क्षमः ॥ ३७ ॥

हे महामते! अन्य अन्न और पान नहीं कहे है क्योंकि ग्रंथको बढजानेसे संसारकें लोक विचारनेंको समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ ३७ ॥

अथ थकेहुए मनुष्यको भोजननिषेध ॥

श्रमात्तु भोजनं यस्तु पानं वा कुरुते नरः ॥
ज्वरः संजायते तस्य छर्दिर्वा तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य परिश्रमसे भोजनको अथवा पानको करता है तिसके शीघ्रही ज्वर अथवा छर्दि उपजती है ॥ ३८ ॥

अथ भोजनके उपरांत मेहेनत और सुरतका निषेध ॥

कृत्वा तु भोजनं सद्यो व्यायामं सुरतं तथा ॥
यः करोति विपत्तिः स्यात्तस्य गात्रस्य निश्चितम् ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य भोजनको करकै तत्काल कसरतको अथवा मैथुनको करता है तिसके शरीरमें निश्चय दुःख होजाता है ॥ ३९ ॥

अथ थंडा और गरमभोजनका निषेध ॥

न चातिशीतं भुञ्जीत नात्युष्णं भोजने हितम् ॥
कुर्य्याद्वातकफौ शीतमुष्णं भवति सारकम् ॥ ४० ॥

अतिशीतलपदार्थको खावैनहीं और अतिगर्म भोजनभी हित नहीं है क्योंकि शीतल भोजन वातको और कफको करता है और गर्म भोजन दस्तावर है ॥ ४० ॥

श्रमितआदिकोंके भोजनका निषेध ॥

न श्रान्तो भोजनं कुर्य्यान्न व्यायामसमाकुलः ॥
विषमासने न भोक्तव्यं करोति विविधान् गदान् ॥ ४१ ॥

परीश्रमसे थकाहुआ और कसरतसे थकाहुआ मनुष्य भोजनको करै नहीं और विषम आसन बैठकै भोजनको करै नहीं ये अनेक प्रकारके रोगोंको करते हैं ॥ ४१ ॥

भोजनमें फलादिकोंका नियम ॥

आदौ फलानि भुञ्जीत वर्जयित्वा तु कर्कटीम् ॥
न नक्तं दधि भुञ्जीत भोजनार्द्धं न धावनम् ॥ ४२ ॥

काकडीके विना सब फलोंको आदिमें खावै रात्रिमें दहीको नहींखावै और आधा भोजन करकै कुल्लोंको नहीं करै ॥ ४२ ॥

भोजनके पीछे बैठनेका नियम ॥

भोक्तोपविशति स्थौल्यं बलमुत्तानशायिनः ॥
आयुर्वामकटिस्थस्य मृत्युर्धावति धावति ॥ ४३ ॥

जो भोजनको करकै बैठता है वह स्थूलपनेंको प्राप्त हो जाता है और भोजन करकै सोधा शयन करनेंवालेकै बल बढता है और भोजन करकै वामें करवट शयन करनेंसे आयु बढता है और भोजन करकै दोडनेंसे मृत्यु दौडता है ॥ ४३ ॥

भोजनमें पानीका नियम ॥

नवादौ सलिलं पेयं भोजने पानमाचरेत् ॥ अर्द्धाहारेण भुञ्जीत तृतीयं व्यञ्जनेन तु ॥ ४४ ॥ चतुर्थं तोयपानेन पूर्णहारः सुजायते ॥ ४५ ॥

भोजनकी आदिमें पानोको नहीं पीवै भोजन करतेहुये पानीको पीवै दो भागके कोष्ठको भोजनसे पूरितकरै और तीसरे भागको व्यंजनसे पूरित करै ॥ ४४ ॥ और चौथे भागको पानीसे पूरित करै ऐसे पूर्ण भोजन होता हैं ॥ ४५ ॥

भोजनके ऊपर व्यायाम ॥

भोजनोर्ध्वं चंक्रमते शतपादं शनैः शनैः ॥
पश्चादुत्तानशयनं ततो वामे क्षणं स्वपेत् ॥ ४६ ॥

और भोजन करकै सौं १०० पैर हौलें २ चलै पीछे सीधा शयनकर पीछे वामें करवट दो घडी शयन करै ॥ ४६ ॥

अथ भोजनके उपरांत नेत्रादिकोंका मार्जन ॥

भुक्त्वोपरि समाचम्य मार्जयेद्दक्षिणाकरैः ॥
पुनर्दक्षिणहस्तेन मार्जयेदुदरं सुधीः ॥ ४७ ॥

भोजन करकै पीछे आचमनले दाहिने हाथसे मुखको शुद्ध करै पीछे दाहिने हाथ करकै बुद्धिमान् पेटको शोधित करै ॥ ४७ ॥

अथ अडकारका नियम ॥

उद्गीरयेत्समुद्गारं न चोद्गारस्य धारणा ॥ ४८ ॥

अडकारको अच्छी तरह लेवै क्योंकि अडकारको धारित करना अच्छा नहीं ॥ ४८ ॥

अथ व्यायामादिकोंका नियम ॥

व्यायामञ्च व्यवायञ्च धावनं पानमेव च ॥ युद्धं गीतञ्च पाठञ्च क्षणभुक्तो विवर्जयेत् ॥ ४९ ॥ न सद्यःपीते पठनं गमनं न च कारयेत् ॥ न वा वाहनमारोहं विवादं न च कारयेत् ॥ ५० ॥

और भोजन करकै दो घडीतक कसरत, मैथुन, दंतधावन आदि शुद्धि, जलआदिका पान इन्होंको और कुशती आदि युद्ध, गाना, पढाना, इन्होंको वर्जै ॥ ४९ ॥ और तत्काल पानीको पीकै पठन और गमनको न करै भोजन करकै बोझाको उठावै नहीं और सवारी आदिपर चढै नहीं और विवादको करै नहीं ॥ ५० ॥

अथ दिनमें शयन करनेका निषेध ॥

दिवास्वापं न कुर्य्यात्तु भुक्त्वोपरि च विश्रमेत् ॥ अकालशयनाच्छ्लेष्मा प्रतिश्यायः प्रपीनसः ॥ ५१ ॥ क्षयशोफशिरोऽर्त्तिश्च जायते चाग्निमन्दता ॥ ५२ ॥

और दिनमें शयनको करै नहीं किंतु भोजनकरकै विश्राम करै अकालमें शयन करनेंसे कफ, खेहर, पीनसरोग ॥ ५१ ॥ क्षय, शोजा, शिरमें पीडा— मंदाग्नि ये उपजते हैं ॥ ५२ ॥

अथ दिनमें शयन करानें लायक मनुष्य ॥

मद्यपीते परिश्रान्ते हिक्काश्वासातुरेषु च ॥ भयशोकक्षुधार्त्तानां पठनान्मैथुनेन च ॥ ५३ ॥ तथैव वृद्धबाले च भाराक्रान्ते तथातुरे ॥ अतीसारे च शोफे च तृष्णापानात्ययेऽपि च ॥ ५४ ॥ ग्रीष्मे बाल्ये निशादग्धे दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥ ५५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ प्रथमस्थानं समाप्तम् ॥ १ ॥

मद्यपान करनेमें, परीश्रमसे थकनेंमें, हिचकी और श्वासकी पीडामें, भय, शोक, भूख, इन्होंमें, पठन और मैथुनमें ॥ ५३ ॥ वृद्धपना और बालकपनामें, बोझासे थकेहुयेमें, रोगमें, अतीसार और शोजामें, तृषा और पानात्यय रोगमें ॥ ५४ ॥ ग्रीष्मऋतुमें रात्रिके जागनेमें दिनको शयन करना हित है ॥ ५५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां प्रथमस्थाने अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

——यहां प्रथमस्थान समाप्त हुआ——

अथ द्वितीयस्थान ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि द्वितीयस्थानमुत्तमम् ॥ शुभा शुभानि स्वमानि स्वास्थ्यारिष्टानि मानुषे ॥ १ ॥ शृणु पुत्र ! समासेन यथा वत्स ! प्रकाश्यते ॥ २ ॥

अथ आत्रेयजी कहते हैं—अब उत्तमरूपी द्वितीयस्थानको कहताहूं मनुष्योंके शुभ, अशुभ, स्वम, स्वस्थपना, अरिष्ट ॥ १॥ इन्होंको हे पुत्र ! विस्तारसे सुन जैसे हे वत्स ! प्रकाशितकिया जाता है ॥ २ ॥

हारीत उवाच ॥ ज्ञातं मया महाप्राज्ञ ! अन्नपानं तथोत्तमम् ॥ इदानीं ज्ञातुमिच्छामि रोगाणां रोगविज्ञताम् ॥ ३ ॥ कर्मजा व्याधयो ये च तान्वद त्वं महामते ! ॥ ४ ॥

अथ हारीत पूछता है—हे महाप्राज्ञ ! अन्नपानकी विधि मैंनें जानी अब रोगवालोंके रोगोंको जाननेंकी इच्छा करताहूं ॥३॥ हे महामते ! कर्मसे जो व्याधि उपजती है तिन्होंको आप कहो ॥ ४ ॥

आत्रेय उवाच ॥ कर्मजा व्याधयः सर्वे भवन्ति हि शरीरिणाम् ॥ सर्वे नरकरूपाः स्युः साध्यासाध्या भवन्त्यमी ॥ ५ ॥ अज्ञातं यत्कृतं पापं पश्चात्कृच्छ्रे समाचरेत् ॥ प्रायश्चित्तबलेनापि साध्यरूपो भवेद्गदः ॥ ६ ॥ क्रियते ज्ञातरूपेण यत्पश्चात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ प्रायश्चित्तेन प्रान्ते तु कष्ट साध्यो भवेद्गदः ॥ ७ ॥ ब्रह्मघ्नगोघ्नधरणीपतिघातकश्च आरामतोयधर नाशकपारदाराः ॥ स्वाम्यङ्गनागुरुवधूकुलजाभिगामी एते त्रयोदश प्रब लरूपधरा गदाश्च ॥ ८ ॥ पाण्डुः कुष्ठं राजयक्ष्मातिसारो मेहो मूत्रं चाश्मरी मूत्रकृच्छ्रम् ॥ शूलः श्वासः कासशोफव्रणाश्च दोषाश्चैते पाप

रूपा नृणां स्युः ॥ ९ ॥ ज्वरो जीर्णं तथा छर्दिभ्रममोहाग्निमान्द्यताः ॥ यकृत्प्लीहार्शःशोषाश्च एते चैवोपदूषकाः ॥ १० ॥ व्रणं शूलं शिरःशूलं रक्तपित्तं तथोर्द्धगम् ॥ एते रोगा महाप्राज्ञ ! अभिशापाद्भवन्ति हि ॥ ११॥ अन्येऽपि बहुधा रोगा जायन्ते दोषसम्भवाः ॥ अतो वक्ष्ये समासेन शृणु त्वञ्च महामते ॥ १२ ॥

अथ आत्रेयजी कहते हैं–शरीरधारियोंके कर्मसे उपजनैंवाली सब व्याधि है और सब दुःखरूप है साध्य और असाध्यरूप व्याधि है ॥५॥ विनाजानें जो किया हुआ पाप है वह पीछे कृच्छ्र चांद्रायणको करै परंतु प्रायश्चित्तका बलसे वह पाप साध्यरूप रोग हो जाता है ॥ ६ ॥ जो जानके पाप किया जाता है वह पीछे कृच्छ्र चांद्रायणको करता है इस प्रायश्चित्त-करकै कष्टसाध्य रोग होजाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मणको मारनैंवाला, गायको मारनैंवाला, राजाको मारनैंवाला और बाग, तथा जलके स्थानको नाशनैंवाला और पराई स्त्रीको अपनी स्त्री बनानैंवाला और स्वामीकी भार्य्या, गुरुकी भार्य्या, अपनें कुलमें उपजी ऐसी स्त्रियोंसे भोग करनैंवाला ऐसे मनुष्योंकै तेरह प्रकारके रोग होते है ॥ ८ ॥ पांडु, कुष्ठ, राजरोग, अतीसार, मूर्च्छा, मूत्ररोग पथरीरोग, मूत्रकृच्छ्र, शूल, श्वास, खांसी, शोजा, घाव ये पापरूपरोग तिन मनुष्योंके उपजते हैं ॥ ९ ॥ और ज्वर, अजीर्ण, छर्दि, भ्रम, मोह, मंदाग्नि, यकृतरोग, तिल्ली-रोग, ववासीर, शोष, ये उपरोग कहाते है ॥ १० ॥ घाव, शूल, शिरका शूल, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्तहुआ रक्तपित्त–ये रोग हेमहाप्राज्ञ ! अभिशापसे होते है ॥११॥ अन्यभी बहुतसे रोग दोषोंसे उपजते हैं इसवास्तै विस्तारसे मैं कहूंगा हेमहामते ! तू सुन ॥ १२ ॥

अथ कर्मविपाक ॥

ब्रह्मघ्नो जायते पाण्डुः कुष्ठी गोवधकारकः ॥ राजघ्नो राजयक्ष्मी स्याद तिसार्य्यौपघातकः ॥ १३ ॥ स्वाम्यङ्गनाभिगमने मेहा रोगा भवन्ति हि॥ गुरुजायाप्रसङ्गेन मूत्ररोगोऽश्मरीगदः ॥ १४ ॥ स्वकुलजाप्रसङ्गाच्च जाय ते च भगन्दरः ॥ शूली परोपतापी च पैशून्याच्छ्वासकासिनः ॥ १५ ॥ मार्गे विघ्नकरा ये तु जायन्ते पादरोगिणः ॥ अभिशापाद्व्रणोत्पत्तिर्यकृद्वा पि प्रजायते ॥ १६ ॥ सुरालये जले चापि शकृद्वृष्टिं करोति यः ॥ गुदरो गा भवन्त्यस्य पापरूपातिदारुणाः ॥ १७ ॥ परतापिद्विजानाञ्च जायन्ते हि महाज्वराः ॥ परान्नविघ्नजननादजीर्णमपि जायते ॥ १८ ॥ गरदश्छ

र्दिरोगी स्यात्पादाष्टविभ्रमी तथा ॥ धूर्त्तोऽपस्माररोगी स्यात्कदन्न दोऽग्निमान्द्यके ॥ १९ ॥ यकृत्प्लीहो भवेद्रोगो भ्रूणपातकपातकात् ॥ व्रणं शूलं शिरःशूलं परतापोपकारणात् ॥ २० ॥ अपेयपानरतको रक्त पित्ती प्रजायते ॥ दावाग्निदायको यस्तु जायते च विसर्पवान् ॥ २१ ॥ बहुवृक्षोपच्छेदी च जायते च बहुव्रणः॥परद्रव्यापहाराच्च जायते ग्रह णीगदः ॥ २२ ॥ कुनखी स्वर्णस्तेयाच्च प्रसूतिस्तस्य जायते ॥ रौप्य स्तेयाच्चित्रकुष्ठं ताम्रचौराद्विपादिका ॥२३ ॥ त्रपुश्चौरः सिध्मलश्च मु खरोगी च सीसहृत्॥ बर्बरो लोहचौरः स्यात्क्षारचौरोऽतिमूत्रलः ॥२४॥ घृतचौरोऽन्त्ररोगी च तैलचौरोऽतिकण्डुकः ॥ एतैश्छिद्रैस्तु काणाक्षो ब क्रोक्तौ वक्रलोचनः ॥ २५ ॥ दोषवान्स्याच्छ्यावदन्तो दुष्टवाक्कुष्ठदूष णः ॥ रसनाशाज्जिह्वरोगी गोत्रहा लूतिकाव्रणी ॥ २६ ॥ एते चैव म हादोषा अतो वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ कृच्छ्रेण येन सिध्यन्ति पापरू पा इमे गदाः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणको मारनेंवाला पांडुरोगी होता है गायको मारनेंवाला कुष्ठी होता है राजाको मारनेंवाला राजरोगी होता है मनुष्यको मारनेंमें सलाह देनेंवाला अतीसाररोगीहोता है॥१३॥ स्वामीकी स्त्रीसे भोग करनेंसे प्रमेह रोग उपजता है और गुरुकी स्त्रीसे भोग करनेंमें मूत्ररोग और पथरी रोग उपजता है ॥ १४ ॥ अपनें कुलसे उपजी स्त्रीके संग भोग करनेंसे भगंदर रोग उपजता है पराये सुखको देख दुःखपानेवालाके शूलरोग होता है चुगली करनेंसे श्वासरोग और खांसी उपजती है ॥ १५ ॥ मार्गमें विघ्नकरनेंवालोंके पैरोंमें रोग उपजता है अभिशापसे घावकी उत्पत्ति अथवा यकृत् रोग उपजता है ॥ १६ ॥ देवतोंके स्थानमें और पानीमें जो विष्ठाको गेरता है तिसके पापरूपी और दारुण ऐसे गुदाके रोग उपजते है ॥ १७ ॥ ब्राह्मणको दुःखदेनेंसे महाज्वर उपजता है और पराये भोजनमें विघ्नको करनेंसे अजीर्णरोग उपजता है ॥ १८ ॥ विषको देनेंवालेके छर्दिरोग उपजता है अथवा वह रोगी घुटनोंसें आठ दिशातक भ्रमनेंवाला होता है धूर्त मनुष्यके मृगीरोग उपजता है और कुत्सित अन्नको देनेंवाला मंदाग्निसे पीडित होता है ॥ १९ ॥ गर्भको गिरानेवाला यकृत्रोगसे और तिल्लीरोगसे पीडित होता है दूसरेको देख दुःखपानेंसे घाव, शूल, शिरका, शूल ये उपजते हैं॥ २० ॥ नहीं पीनेके योग्य चीजको पीनेंवाला रक्तपित्तसे पीडित होता हैं और वनमें अग्निको लगानेंवाला विसर्प्परोगी होजाता है ॥ २१ ॥ बहुतसे वृक्षको

छेदनेंवाला बहुत घावोंसे पीडित होता है और पराये द्रव्यको हरनेंसे ग्रहणी रोग उपजता है ॥ २२ ॥ सोनाकी चोरी करनेंसे कुत्सितनखोंवाला होजाता है चांदीको चोरनेसें चित्र-कुष्ठ उपजता है तांबाको चुरानेसे विपादिका कुष्ठ उपजता है ॥ २३ ॥ रांगको चुरानेंसे सेपरोग होता है सीसाको चुरानेंसे मुखरोग उपजता है लोहाको चुरानेसे वर्वर संज्ञक रोग-को प्राप्त होता है क्षारको चोरनेंवालाके अतिमूत्ररोग उपजता है ॥ २४ ॥ घृतको चोरनेंसे आंतरोग होता है तेलको चोरनेसे खाजरोग उपजता है दूसरोंमें छिद्रको काढनेंवाला नेत्रोंसे काणा होता है और टेढा बोलनेंवाला टेढे नेत्रोंवाला होता है ॥ २५ ॥ दोषवालाके काले दंत होते हैं दुष्टकर्मको करनेंवाला कुष्ठरोगी होता है रसको नाशनेंवाला जीभरोगी होता है गोत्रके मनुष्योंको नाशनेंवाला भूत और घावसे पीडित होता है ॥२६॥ ये सब महादोष हैं इसवास्ते इन्होंकी निष्कृतिको कहताहूं जिस कृच्छ्रसे ये पापरूपी रोग सिद्ध होते हैं ॥ २७ ॥

अथ पापदोषप्रतिकार ॥

गोदानं भूमिदानञ्च स्वर्णदानं सुरार्चनम् ॥ कृत्वा पश्चात्प्रतीकारं कुर्य्यात्पाण्डूपशान्तये ॥ २८ ॥ महापापेषु सर्वस्वं तदर्द्धमुपदोषजे ॥ आत्रेयाद्दशषष्ठांशात्कल्प्यं व्याधिबलाबलम् ॥ २९ ॥ नवषष्टिकृतं कर्म कुष्ठरोगोपशान्तये ॥ गोहिरण्यप्रदानञ्च तथा मिष्टान्नभोजनम् ॥ ३० ॥ चतुर्विधं दानमिदं दत्त्वा कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ कदाचिदपि सिध्येत आयुषश्च बलक्रियाम्॥ ३१॥मेहे सुवर्णदानञ्च शूले श्वासे भगन्दरे ॥ अश्वानडुहदानेन श्वासकासाद्विमुच्यते ॥३२॥ ज्वरे चेश्वरपूजा च रुद्रजाप्यं समाचरेत् ॥ अतिपानान्नदानञ्च शस्त्रदानं भ्रमातुरे ॥ ३३ ॥ अग्निहोमं चाग्निमान्द्ये कन्यादानञ्च गुल्मके ॥ मेहाश्मरीविनाशाय लवणञ्च प्रदीयते ॥ ३४ ॥ बहुभोजनदानेन शूलरोगाद्विमुच्यते ॥ महाज्वरे शान्तिकञ्च सहस्रं गण्डुकं शिवम् ॥ ३५ ॥ स्नापयेत्तेन सिद्धिः स्याज्ज्वररोगाद्विमुच्यते ॥ घृतमधुप्रदानेन रक्तपित्तं प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥ वनस्पतिसिञ्चनेन विसर्पात्परिमुच्यते ॥ विटपिसिञ्चनेनाऽथ नात्र याति बहुव्रणः॥ ३७ ॥चतुर्विधेन दानेन साध्यः स्याद्ग्रहणीगदः ॥ सुवर्णदानात्कुनखी श्यावदन्तः सुखी भवेत् ॥ ३८ ॥ रौप्यदानाच्चित्रकुष्ठं साध्यं वापि प्रदिश्यते ॥ सिध्मले त्रपुदानञ्च वर्वरे लोहदानकम् ॥ ३९ ॥ मुख

व्रणे नागदानं गोदानं बहुपुत्रके ॥ नेत्ररोगे घृतं दद्यात्सुगन्धं नासिकाग दे ॥ ४० ॥ तैलदानञ्च कण्डूके रसदानञ्च जिह्वके ॥ श्यावदन्तेन देवानां सत्कृतिः प्रविधीयते ॥ ओष्ठरोगेऽपि तद्वच्च लूतारोगे ददेत गाः ॥ ४१ ॥

गोदान, पृथिवीदान, सोनादान, देवतोंकी पूजा इन्होंको करकै पीछे पांडुरोगकी शांतिक लिये चिकित्साको करै ॥ २८ ॥ महापापोंमें सर्वस्वका दान करै और उपदोषमें घरके धनसे आधा दान करै आत्रेयके मतसे व्याधिके बल और अलबको देख घरके धनसे सोलहवां हिस्सा दानको करै ॥ २९ ॥ कुष्ठरोगकी शांतिके लिये उनहत्तर ६९ प्रकारका कर्म्म करना लिखा है परंतु गाय और सोनाका दान और मिष्टअन्नका भोजन ॥ ३० ॥ इन चार प्रकारके दानोंको देकर पीछे कुष्ठकी चिकित्सा करनी क्योंकि आयुकी शेषतासे कदाचित् चिकित्सा सिद्धभी होजाती है ॥ ३१ ॥ प्रमेह, श्वासरोग, खांसी, भगंदर, इनरोगोंमें सोनाका दान करना घोडा और बैलके दानको करनेंसे मनुष्य श्वासरोग और खांसीसे छुटजाता है ॥ ३२ ॥ ज्वररोगमें महादेवकी पूजा और महादेवके स्तोत्रका पाठ करावै और भ्रमरोगमें पानीका और अन्नका दान श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ मंदाग्निमें अग्निका होमकरै गुल्मरोगमें कन्याकादान करै और प्रमेह—तथा पथरीरोगको दूर करनेंके लिये नमकका दानकरना॥३४॥ बहुतसे भोजनका दान करनेंसे मनुष्य शूलरोगसे मुक्त होता है महाज्वरमें शांतिकर्म करावै और हजारधारावाले कलशेसे शिवको स्नान करावै ॥ ३५ ॥ तिस्से सिद्धि होती है और महाज्वर दूर होता है घृत और शहदके दानसे रक्तपित्त दूर होता है ॥ ३६ ॥ वनस्पतिको सीचनेंसे विसर्परोग दूर होता है वृक्षको सींचनेंसे घावरोग दूर होजाता है ॥ ३७ ॥ च्यार प्रकारका दानसे ग्रहणीरोग साध्य होजाता है सोनाके दानसे कुनखी और काले दंतोंवाले सुखी होता है ३८ ॥ चांदीके दानसे श्वित्र कुष्ठ साध्य कहा है सींपरोगमें रांगका दान और वर्वररोगमें लोहाका दान श्रेष्ठ है ॥ ३९ ॥ मुखके घावमें हस्तीका दान हित है और पापडीरोगमें गौका दान हित है नेत्ररोगमें घृतको देवै नासिकाके रोगमें सुगंधका दान करना॥४०॥ खाजमें तेलका दान और जीभके रोगमें रसका दान करना कालेदंतोंके रोगमें देवतोंका सत्कार करना और ओष्ठरोगमेंभी यहीविधि है और लूतारोगमें गाका दानै देना ॥ ४१ ॥

अथ अन्य २ रोगोंका कारण ॥

अन्यांश्च कथयिष्यामि मनुष्याणां शरीरगान् ॥ लज्जितः परनिन्दायां परतर्केण काणगः ॥ ४२ ॥ खुरहा स्याद्वक्रनासः पक्षाघातेन पक्षहा ॥ वामनः स्वप्रशंसायां परद्वेष्टातिपिङ्गलः ॥ ४३ ॥ परस्य कृत्यकर्त्ता च

जायते विकृतात्मकः ॥ एते महागदाश्चान्ये जायन्ते पापसम्भवाः ॥ ॥ ४४ ॥ यदिवात्र न सिध्येत्तु परभावो भवेन्न च ॥ अतो हि प्रायश्चित्तं तु कारयेद्भिषजां वरः॥४५॥ भूयो जन्मान्तरे यावत्पापं रोग्यथ भुञ्जति ॥ प्रायश्चित्ते कृत्ते वापि न पुनर्जायते भवे॥४६॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

मनुष्योंके शरीरमें प्राप्तहुये अन्य रोगोंकोंभी कहूंगा पराई निंदा करनेंवाला मनुष्य लाजवाला होता है दूसरेको तर्क करनेवाला मनुष्य काणा होता है ॥ ४२ ॥ गधाको मारनेंवाला टेढी नासिकासे संयुक्त होता है दूसरेके पक्षको काटनेंवाला मनुष्य अर्धांग रोगसे पीडित होता है अपनी प्रशंसा करनेंमें मनुष्य वामनाकी योनीको प्राप्त होता है दूसरोंसे वैर करनेंवाला मनुष्य अतिपिंग शरीरवाला होता है ॥ ४३ ॥ दूसरेके कृत्यको करनेंवाला मनुष्य विकृत शरीरवाला होता है ये सब औरभी अन्य महारोग पापसे उपजनेंवाले है॥४४॥ जो रोग सिद्ध नहीं होवै तो वैद्यवरनें प्रायश्चित्त कराना उचित है ॥ ४५ ॥ किये हुये पापको दूसरे जन्ममेंभी रोगी भोगता है परंतु प्रायश्चित्तके करनेंमें फिर वह पापरूपी रोग नहीं उपजता है ॥ ४६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ स्वप्नाध्यायका वर्णन ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र ! समासेन यथा वत्स ! प्रकाश्यते ॥ तथारिष्टपरिज्ञानं भेषजं संप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते है—हे पुत्र ! विस्तारसे सुन जैसे प्रकाशितकिया जाता है और अरिष्टके परिज्ञानको और औषधको कहूंगा ॥ १ ॥

अथ वर्ज्य स्वप्न ॥

वातिकः पैत्तकश्चैव भयाद्धीनबलादपि ॥
मूत्रान्विष्टे सपित्ते च षट्स्वप्नानि च वर्जयेत् ॥ २ ॥

वात, पित्त, भय, हीनबल, मूत्रकी शंका, पित्तका संयोग--इन्होंके संयोगसे उपजे ये छः स्वप्न वार्जित हैं ॥ २ ॥

अथ कालसें स्वप्नफल ॥

संवत्सरेण फलदो हि भवेन्निशायां यामे तु दृष्टप्रथमे फलदः शुभस्य ॥ स्याद्वत्सरार्द्धमतियाममथ द्वितीये मासत्रयेण फलदो भवति तृतीये ॥३॥ निशावसाने प्रवदन्ति किञ्चिद्दशाहकः स्यात्फलदो मनुष्ये ॥ वर्षादिनं स्यात्तमुशन्ति शान्ताः षाण्मासिको मध्यदिने प्रदिष्टः ॥ ४ ॥

रात्रिमें आयाहुआ स्वप्न एकवर्षमें फलको देता है रात्रिके प्रथम पहरमें आया स्वप्न शुभफलको देता है और दूसरे पहरमें आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है और तीसरे पहरमें आया स्वप्न तीन महीनोंमें फलको देता है ॥ ३ ॥ रात्रिके अंतमें आया स्वप्न दश दिनमें फलको देता है और दुपहरीके समय आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है वर्षाके दिनमें आया स्वप्न शांतिको करता है और स्वप्नमें देखेहुये सफेद चीज शुभ कहे हैं ॥ ४ ॥

अथ स्वप्नमें शुभद्रव्य ॥

स्वप्नेषु शुभ्राणि शुभानि धीराः सर्वाणि चेमानि विवर्जयित्वा ॥ कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं कुर्य्यान्नराणां विपदं रुजं वा ॥ ५ ॥

इन सब अच्छे पदार्थोंके वर्ज्जकर कपास, भस्म, हड्डी, खोपरी, इन्होंका दर्शन स्वप्नमें होवै तो मनुष्योंके दुःख अथवा रोग उपजता है ॥ ५ ॥

अथ अशुभद्रव्य ॥

सर्वाणि कृष्णानि विनिन्दितानि स्वप्ने नराणां विपदं रुजं वा ॥ कुर्वन्ति चैतानि हि वर्ज्जयित्वा गोवाजिराजद्विजहस्तिमत्स्यान् ॥ ६ ॥

और स्वप्नमें सब प्रकारकी काली चीज निंदित है जो स्वप्नमें काली चीज दीखजावै तो मनुष्योंको दुःख अथवा रोग उपजता है ॥ ६ ॥

अथ शुभ स्वप्नोंका वर्णन ॥

मुकुरकुसुमभृङ्गारातपत्रं ध्वजं वा दधि फलमथ वस्त्रं चान्नताम्बूलवस्त्रम् ॥ कमलकलशशङ्खं भूषणं काञ्चनस्य भवति सकलसंपच्छ्रेयसे रोगिणाञ्च ॥ ७ ॥

गाय, घोडा, राजा, पंडित, हस्ती, मछली, शीशा, फूल, सोनाका पात्र, छत्र, ध्वजा, दही फल, वस्त्र, अन्न, नागरपान कमल, कलश, शंख, सोनाका गहना, इन्होंको स्वप्नमें देखना सब प्रकारका सुख और रोगियोंको कल्याण प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

अथ शुभस्वप्न ॥

दिनकरनिशिनाथं मण्डलं तारकस्य विकचकमलकुञ्जैः पूर्णपद्माकरं वा ॥ तरति सलिलराशिप्रौढनद्याश्च पारं घनसुखविभवाप्तिर्व्याधिनां रोगमुक्तिः ॥ ८ ॥ देवो द्विजो वा पितरो नृपो वा स्वप्नेषु वाक्यं वदते यथैव ॥ तथैव नान्यच्च भवेन्मनुष्ये यद्यस्य सौख्यं विपदो रुजो वा ॥ ९ ॥ गोवाजिकुञ्जरनृपाः सुमनः प्रशस्तं स्वप्नेषु पश्यति नरः सरुजः सुखाय ॥ रोगान्वितश्च रुजनाशनसम्भवाय बद्धोऽपि वै सपदि बन्धविमोचनाय ॥ १० ॥ यो भूषणं पश्यति मन्दिरं वा कन्यां दधि मीनकुमारकं वा ॥ सपुष्पवल्लीपलितं द्रुमं वा स्वस्थे धनाप्तिं रुजनाशनाय ॥ ११ ॥ स्वप्ने पयःपानमतिप्रशस्तं पानं सुराया अजभोजनं वा ॥ घृतं यवागूःकृसरोदनं वा क्षैरेयिकं भोजनकं सुखाय ॥ १२ ॥ सितो भुजङ्गो दशति कराग्रे नरस्य सुप्तस्य शरीरकेषु ॥ पुत्रस्य लाभं वदते धनं वा नाशं विदध्यादचिराद्रुजां वा ॥ १३ ॥ सश्वेतवस्त्रां रमणीं सुरम्यां स्वप्ने समालिङ्गति यो मनुष्यः ॥ तस्य प्रकर्षेण सुखं श्रियः स्यात्सुपुत्रलाभश्च रुजां विनाशः ॥ १४ ॥ यो धान्यपुञ्जं तिलतण्डुलानां गोधूमसिद्धार्थयवादिकानाम् ॥ धान्याप्तिरस्यामयनाशहेतुः स्वप्नेषु शीघ्रं मनुजे सुखाय ॥ १५ ॥ सफले धनसम्पत्तिर्दीप्ते रोगविनाशनम् ॥ सुखञ्च पुष्पिते ज्ञेयं सम्पूर्णे वाञ्छितं फलम् ॥ १६ ॥

और सूर्य, चंद्रमा, तारागण, इन्होंके मंडलको देखै और खिलेहुये कमलोंके समूहसे पूरितहुआ तलावको देखै और पानीके समूहसे भरीहुई नदीको तिरै और ज्यादै सुखको तथा विभवको प्राप्त होवै ऐसे स्वप्ने आवैं तो रोगको गया जानना ॥ ८ ॥ देवता, पंडित, पितर, राजा, ये सब स्वप्नमें वाक्यको कहदेवैं तैसेही मनुष्यको होता है चाहै सुख हो चाहै दुःख हो या रोग हो ॥ ९ ॥ गौ, घोडा, हस्ती, राजा, फूल, इन्होंको जो मनुष्य स्वप्नमें देखता है तिसरोगीको सुख होता है और इसस्वप्नको देखनेसे बंधमें प्राप्तहुआ मनुष्य

शीघ्र छूट जाता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य स्वप्नमें गहनाको और मंदिरको देखता है अथवा कन्या, दही, मछली, बालक, इन्होंको देखता है अथवा फूल औव वेलसे फलित हुये वृक्षको देखै ये स्वप्न स्वस्थ मनुष्यको आवै तो धनकी प्राप्ति होवै और रोगी-मनुष्यके रोगका नाश होवै ॥ ११ ॥ स्वप्नामें दूधका पीना अतिश्रेष्ठ है मदिराका पीना अ-थवा बकराके मांसका भोजन, घृत, गुडयाणी, खीचडी, चावल, दूधका भोजन इन्होंको स्वप्नामें देखै तो सुखकी प्राप्ति होवै ॥ १२ ॥ मनुष्यका दाहिने हाथके अग्रभागको अथवा शरीरको सफेद सर्प सोतेहुये मनुष्यको डशता है ऐसा स्वप्नासे पुत्रका और धनका लाभ होता है अथवा शीघ्रही रोगका नाश होता है ॥ १३ ॥ सफेद वस्त्रोंवाली और मणीक और सुंदर ऐसी स्त्रीसे जो मनुष्य मिलाप करता है तिसको अत्यंत सुख और धनकी प्राप्ति होती है और पुत्रका लाभ तथा धनकी प्राप्ति होती है और रोगोंका नाश होता है ॥१४॥ जो मनुष्य तील, चावल, गेहूं, सरसों, जव, अन्नका समूह इन्होंको स्वप्नामें देखता है तिसको अन्नकी प्राप्ति और रोगका नाश होता है और सुखभी मिलता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य स्व-प्नामें फलकरिकै सहित वृक्षको देखै, तौं उसकूं धनसंपत्ति प्राप्त होती है. और जलताहुआ देखे, तौं रोगका नाश होता है. पुष्पकरिकै युक्त वृक्षको देखैं, तौं सुख होता है. और पत्र, पुष्प, फल और शाखा आदिकोंकरिकै युक्त वृक्षको देखैं तौं मनवांछित फल मिलता है॥१६॥

अथ अशुभस्वप्नोंका वर्णन ॥

काकैः कङ्कैः करभभुजगैः सूकरोलूकगृध्रैर्जम्बूकैर्वा वृकखरमहिष्या तिरक्षैः श्वभिश्च ॥ व्याघ्रैर्ग्राहैर्मकरकपिभिर्भक्ष्यमाणं स्वकायं पश्येद्योऽसौ भजति नितरां हानिमापद्रुजं वा ॥ १७ ॥ योऽभ्यञ्जितं स्वं मनुजः प्रपश्येत्सर्पिर्वसातैलविशेषणेन ॥ शीघ्रं रुजाप्तिर्भवतीह तस्य वदन्ति धीरा निपुणं विधेयम् ॥ १८ ॥ व्याघ्रोष्ट्रखरसंयुक्ते रथे सौरभसंयुते ॥ उह्यमानो दिशं याम्यां गच्छेच्च स मृतिं भजेत् ॥ १९ ॥ रक्तवस्त्रां कृष्णवस्त्रां मुक्तकेशां विसर्पिणीम् ॥ याम्यां स्थितां रुदन्तीं वा गायन्तीमथ पश्यति ॥ २० ॥ अथाह्वयति संक्रुद्धां समालिङ्गति चर्वति ॥ यः पश्यति सुखी स स्याद्व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ २१ ॥ यस्य स्वप्ने च निष्कुष्ठदन्तपातः प्रदृश्यते ॥ शीर्य्यन्ते केशरोमाणि स सुखी चापदं व्रजेत् ॥ २२ ॥ यस्य खट्वा प्रभज्येत तोमरादिप्रहारतः ॥ रक्तश्च दृश्यते देहे स स्वस्थो व्याधिमृच्छति ॥ २३ ॥ शून्यागारं पश्यति यो मनुष्यः प्रासा

दं वा देवहीनञ्च पश्येत् ॥ तापश्चान्द्रे पुष्पितानां द्रुमाणां तस्यानिष्टं मृत्युमाशु प्रपद्येत् ॥ २४ ॥ नरः पश्येद्भिन्नदेवं घटं वा भग्नशाखं तरुं मन्दिरं वा ॥ विशीर्णं विपश्येत्सुखी व्याधिं प्रपद्येद्रुजायस्त आशु ॥ २५ ॥ यस्याह्वयन्ति पितरो दिशि दक्षिणस्यामाश्रित्य चाशु तनुते मनुजस्य मृत्युम् ॥ यस्यास्ति शूललकुटोद्यतपाशपाणिराह्वयति स मृतिमाशु तनोति कष्टम् ॥ २६ ॥ कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं चक्रञ्च पाशञ्च स्वप्ने प्रपश्येत् ॥ तस्यापदो रोगधनक्षयौ वा रोगी मृतिं वा तनुतेऽतिकष्टम् ॥ २७ ॥ इति प्रदिष्टानि शुभानि तानि निशासु सुप्ते मनुजे विशेषात्॥ तथाशु विज्ञाय महामते ! त्वं गदस्य नाशाय विधेहि मन्त्रम् ॥२८॥ स्नानञ्च दानञ्च सुरार्चनञ्च होमं तथा भाग्यविधानतश्च ॥ दुःस्वप्नमेतेषु विनाशमेति शुभञ्च सौख्यञ्च तनोति शीघ्रम् ॥ २९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

काक, कंक,उंट, सर्प, सूकर, उल्लू,गीध, गीदड, भेडिया, गधा, भैंसा, तिरखू, कुत्ता, भगेरा, ग्राह, मच्छ,वानर, इन्होंसे भक्षित हुये अपनें शरीरको देखै तिसको हानि,दुःख, रोग,इन्होंकी प्राप्ति होती है ॥१७॥ जो मनुष्य अपनें शरीरको घृत, वसा, तेल, इनआदिसे भीजाहुआ देखै तिसको रोगकी प्राप्ति शीघ्र होती है ऐसे वैद्योंनें कहा है वहांअरिष्टनाशकशांति वगैरह करै ॥१८॥ सिंह, उंट,गधा, बैल—इन्होंसे जुडेहुये रथमें बैठकै जो मनुष्य दक्षिणदिशाको गमन करै तिसको मृत्यु जानना ॥ १९ ॥ रक्तवस्त्रोंको पहननेंवाली और कृष्णवस्त्रोंको पहननेंवाली और छुटेहुये वालोंवाली और दौडतीहुई और दक्षिणदिशामें स्थित हुई और रोती हुई ऐसी स्त्रीको जो देखता है ॥ २० ॥ और क्रोधको प्राप्तहुई तिस स्त्रीको बुलाता है अथवा तिस्से मिलता है ऐसा स्वप्न सुखीको आवै तो रोगकी उत्पत्ति होती और रोगीको आवै तो वह रोगी मरजाता है ॥ २१ ॥ स्वप्नमें जिस सुखी मनुष्यके दंत, बाल, रोम, ये गिर पडें तिसके रोगकी उत्पत्ति होती है ॥ २२ ॥ जिस सुखी मनुष्यकी स्वप्नमें शय्या टूटजावै और भालाआदि शस्त्रके प्रहारसे देहमें रक्त दिखै वह मनुष्य व्याधिको प्राप्त होता है॥२३॥ शून्य हुये स्थानको और देवतासे रहित मंदिरको जो स्वप्नमें देखै और जो स्वप्नमें चंद्रमामें तापको और फूले हुये वृक्षोंमें तापको देखै तिस मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु कही ॥ २४ ॥ जो मनुष्य स्वप्नमें देवतासे रहित मंदिरको और पानीसे रहित कलशेको और टूटीहुई शाखाओं-

वाले वृक्षको देखै अथवा स्थानके नाशको देखै तब रोगी मनुष्यकी मृत्यु होजाय और सुखी मनुष्य रोगको प्राप्त होवै ॥ २५ ॥ स्वप्नमें जिसको दक्षिणदिशामें आश्रितहुये पितर बुलातेहों तब तिस मनुष्यकी मृत्यु जानो और जिसको स्वप्नमें शूल, लाठी, फांसी, इन्होंको हाथमें धारनेवाला मनुष्य बुलाता है तब तिसकी शीघ्र मृत्यु जाननी ॥ २६ ॥ जो स्वप्नमें कपास, हड्डी, भस्म, खोपरी, शूल, चक्र, फांसी, इन्होंको देखै तिस मनुष्यकै रोग, दुःख, धनका नाश—ये उपजते हैं और ऐसा स्वप्न रोगीको आवै तो मृत्यु अथवा अत्यंत कष्ट होता है ॥ २७ ॥ रात्रीमें सोते हुये मनुष्यको विशेषकरकै ऐसे अशुभ स्वप्नभी कहे हे महामते! तैसेही जानकै रोगका नाशके लिये मंत्रविधिको करना उचित है ॥ २८ ॥ स्नान, दान, देवताकी पूजा, होम, इन्होंसे भाग्यके विधान करकै दुःस्वप्न नाशको प्राप्त होता है शुभ और सुख शीघ्र प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहितायां द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ स्वास्थ्यारिष्टम् ॥

आत्रेय उवाच ॥

शृणु पुत्र! महाप्राज्ञ! सर्वदेहार्थसाधकम् ॥
वैद्यशास्त्रस्य सारं यत्स्वास्थ्यारिष्टञ्च मानवे ॥ १ ॥

अथ स्वस्थमनुष्यको अरिष्टवर्णन—आत्रेयजी कहते है—हे महाप्राज्ञ! हे पुत्र! संपूर्ण देहके प्रयोजनको साधनेवाला और वैद्यकशास्त्रका सार ऐसे स्वस्थमनुष्यकै अरिष्टको सुन ॥ १ ॥

अथ ध्रुवादिक न देखनेका अरिष्ट.

यो न पश्येद् ध्रुवं सम्यक्स्वर्णं वा मनुजो बुधः ॥
तस्य षण्मासमध्ये तु मृतिश्चैवोपपद्यते ॥ २ ॥

जो मनुष्य ध्रुवताराको अथवा ध्रुव अर्थात् नासिकाके अग्रभागको और सोनाको अच्छी तरह नहीं देखता है तिसका छः महीनोंके मध्यमें मृत्यु होता है ॥ २ ॥

अथ द्वितीयाचंद्रका अदर्शनका अरिष्ट.

यो वै द्वितीयां हिमधामलेखां नरो न पश्येद्विजहानिरस्य ॥
मासत्रयं प्राप्य शरीरमाशु जीवो व्रजेत्तस्य यमस्य लोकम् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य किरनोंसे व्याप्तहुआ द्वितीयाका चंद्र नहीं देखै और जिसके दंत गिर पडैं तिस मनुष्यका तीन महीनोंमें मृत्यु जानना ॥ ३ ॥

अथ कर्णघोष न सुननेका अरिष्ट ॥

यः कर्णघोषं न शृणोति दृप्ता मृताश्च यूकाः प्रपतन्ति लाभात् ॥
यो वैपरीत्यं विशृणोति शब्दं मासद्वयं प्राप्य जहाति जीवम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य कानमें शब्दको नसुनै और गर्वितहुई और मृतहुई जूम और लीख शरीरमें पडजावै और जो विपरीतपनेसे शब्दको विशेष करकै सुनै वह दो महीनोंमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

अथ मुखश्वासादिकका अरिष्ट ॥

यः स्वस्थदेहः श्वसते मुखेन नेत्रेऽरुणे श्यावमथैव वक्त्रम् ॥
जिह्वा विशीर्णा दशनाश्च कृष्णाः स्वस्थोऽपि शीघ्रं यमलोकगन्ता॥५॥

जो स्वस्थ शरीरवाला मनुष्य मुख करकै श्वासको लेवै और लालनेत्र होजावै और कालामुख हो जावै और फटीहुई जीभ होजावै और काले दंत होजावै ऐसा स्वस्थ मनुष्यभी मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ प्रभातमें मस्तकशूलका अरिष्ट ॥

यस्य प्रभाते च शिरोव्यथा स्याद्दीपे परीवेषमवेक्ष्यमाणः॥
विपश्यते यः पटलञ्च रेणोः स वै मृतिं याति न दीर्घमायुः ॥ ६ ॥

जिसके प्रभातमें शिरमें पीडाहो और जो दीपककी ज्योतिमें मंडलको देखै और जो आकाशमें धूलीके समूहको विशेष करकै देखै वह शीघ्र मरजाता है ॥ ६ ॥

अथ सूर्यबिंबादिकके दर्शनका अरिष्ट ॥

यः सूर्य्यबिम्बे शशिनं प्रपश्येद् विना परीवेषमवेक्ष्यमाणः ॥
धूमावृतं वा रविमण्डलञ्च प्रपश्यते शीघ्रमृतिं स गन्ता ॥ ७ ॥

जो सूर्य्यके बिंबमें चंद्रमाको देखै और विनाचंद्रहुयेही मंडलको देखै और धूमासे आच्छादितहुआ सूर्यका मंडल दीखै तिसकी शीघ्र मृत्यु जानना ॥ ७ ॥

अथ इंद्रधनुष्य देखनेका अरिष्ट ॥

स्वस्थे निरभ्रे गगने च पश्येद्यः शक्रचापं विदिशादिशासु॥
तथैव विद्यान्नयनायतो यः स शीघ्रमेव यमलोकगन्ता ॥८॥

जो स्वस्थ और वादलोंसे रहितहुये आकाशमें और दिशा तथा विदिशाओंमें इंद्रके धनुषको देखै अथवा नेत्रोंके आगे इंद्रके धनुषको देखै वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

अथ विपरीत देखनें सुननेंका अरिष्ट ॥

यो नेत्रे मीलितेऽपि द्युतिमथ चपलां पश्यते यः पुरस्तात्कर्णे रन्ध्रं निरुध्याद्ध्वनिमथ मनुजो न शृणोति कथञ्चित् ॥ ९ ॥ तिक्तादीनां रसानां कथमपि रसनास्वादमात्रं न वेत्ति रौद्रं वैवस्वतस्य प्रतिगमनमथो पश्यते मानुषश्च ॥ १० ॥

जो मीलेहुये नेत्रोंमेंभी अपनें आगे चपलरूपी ज्योतिको देखै और जो कानके छिद्रको रोकलेवै और जो कदाचित् ध्वनिको नसुनै और जो कडुआ आदि रसोंके स्वादमात्रको नहीं जानै वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ जिस मनुष्यका शरीर अत्यंत गर्म और शीतल और कोलसेसे संयुक्त ऐसा होजावै और शीतको जानै नहीं और शीतलपानीके छिडके देनेमें रोमहर्ष होवै नहीं वह मनुष्य मरजाता है ॥ १० ॥

अथ शरीरके स्पर्शसें अरिष्टकथन ॥

यस्यात्युष्णं शरीरं शिशिरमथ मनुजस्य यस्याविलञ्च शीतं नो चेति यस्य हिमजलसिक्ते रोमहर्षो न यस्य ॥ दण्डाघातेन राजा न भवति स पुनः श्राद्धदेवस्य लोके लोकानां दर्शनाय द्रुतमतिरुचिरां स्वस्थतां न प्रयाति ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यका शरीर अतिशय गरम होय, और तुरतही ठंढा होजाय, जो पुरुष ठंढीको और गर्मीको जानसक्ता नहीं, जिस मनुष्यके शरीरको शीतलजलके बिंदुओंका या ठंढेवालूरेतका स्पर्श होनेसें रोमांच नहीं खडे रहते हैं. वह पुरुष यमराजके डंडेसें माराजाता है, अर्थात् मृत्युको प्राप्त होता है. यमराजके लोककों देखनेके वास्तै जलदी करता है. और अत्यंत सुंदर ऐसे स्वस्थताको वह पुरुष प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अथ प्रतिबिंब नदेखनेसें अरिष्ट ॥

तैले जले दर्पणके घृते वा परस्य नेत्रे प्रतिबिम्बमात्मनः॥पश्येन्न योऽसौ यमलोकगन्ता जानीहि तं जीवविहीनमेव ॥ १२ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वास्थ्यारिष्टं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य तेल, पानी, शोशा, दूसरोंके नेत्र, इन्होंमें अपनें प्रतिबिंबको नहीं देखता

है तिसकी मृत्यु जाननो ॥ १२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां स्वास्थ्यारिष्टं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ व्याध्यरिष्टका लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ उपद्रवैश्च ये पुष्टा व्याधयो यान्ति वार्य्यताम् ॥
रसायनादिना वत्स ! तान्ममैकमनाः शृणु ॥ १ ॥

उपद्रवोंसे युक्तहुये रोग रसायनआदिसे निवारण कियेजाते हैं हे पुत्र ! तिन रोगोंको एकमनवाला होकै सुन ॥ १ ॥

अथ अष्टमहाव्याधियोंका नाम.

वातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगन्दरम् ॥ अश्मरी मूढगर्भश्च तथा चोदरमष्टमम् ॥ २ ॥ अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या महागदाः ॥ ३ ॥

वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, बवासीर, भगंदर, पथरी, मूढगर्भ, आठमां उदररोग ॥ २ ॥ ये आठों प्रकृति करकै महारोग दुश्चिकित्स्य है ॥ ३ ॥

अथ आठमहारोगोंके उपद्रव.

प्राणमांसक्षयश्वासतृष्णाशोषवमिज्वरैः ॥ मूर्च्छातिसारहिक्काभिः पुनरेतैरुपद्रुताः ॥ ४ ॥ वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥ ५ ॥

बलक्षय, मांसक्षय, श्वासरोग, तृषा, शोष, छार्दि, ज्वर, मूर्च्छा, अतीसार, हिचकी, इन उपद्रवोंसे युक्तहुये पूर्वोक्त महारोग ॥ ४ ॥ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यनें वर्ज्जनें चाहिये ॥ ५ ॥

अथ ज्वररोगीके अरिष्ट ॥

यस्य जिह्वा भवेत्तीव्रा पीता वा नीलसम्भवा ॥ श्वासो भवत्यतीवोष्णः शरीरं पुलकाङ्कितम् ॥ ६ ॥ नीलनेत्रेऽरुणे पीते कण्ठो घुरघुरायते ॥ न जीवति ज्वरार्त्तस्तु लक्षणं यस्य चेदृशम् ॥ ७ ॥ मुखे श्वासो भवेद्यस्य श्यावा दन्तावली पुनः ॥ स्तब्धनेत्रो बलाढ्यः स्याज्ज्वरार्तो नैव जीवति ॥ ८ ॥ बहुमूत्री बहुश्वासी क्षामोऽरोचकपीडितः ॥ हतप्रभेन्द्रियो

यश्च ज्वरी शीघ्रं विनश्यति ॥ ९ ॥ यस्यास्ये श्रयते रक्तं शिरोर्त्तिर्यस्य दृश्यते ॥ अन्तर्दाहो बहिःशीतो ज्वरस्तु मृत्युमृच्छति ॥ १० ॥ यस्ताम्यति विसञ्ज्ञस्तु शेते विपतितोऽपि वा॥शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ११ ॥ यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि सञ्जातशूलवान् ॥ नित्यञ्च वक्त्रेणोच्छ्वासः स ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ १२ ॥ हिक्काश्वासपिपासार्त्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् ॥ सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः॥१३॥ आविलाक्षं प्रताम्यञ्च तन्द्रायुक्तमतीव च ॥ क्षीणशोणितमांसञ्च नरं नाशयति ज्वरः ॥ १४ ॥ घनं निष्ठीवनं नेत्रं प्लावारोचकपीडितम् ॥ अन्तर्दाहोऽसिता जिह्वा शीघ्रं नाशयति ज्वरः ॥ १५ ॥

जिसकी तीक्ष्ण और पीली और नीली ऐसी जीभ हो जावै और अत्यंत गर्म श्वास आवै और हर्षित हुये रोमांकरकै युक्त शरीर हो ॥ ६ ॥ नीले और लाल और पीले नेत्र होजावै और कंठ घुर्घुर करै ये लक्षण जिस ज्वररोगीके होवैं तिसका जीवना नहीं है ॥ ७ ॥ जिसके मुखमें शीघ्र श्वास आवैं और दंतोंकी पंक्ति काली होजावै और गर्वसें युक्त नेत्र होजावै और बलसे युक्त होजावै ऐसा ज्वरसे पीडित रोगी नहीं जीवता है ॥ ८ ॥ बहुत मूत्रको करनेंवाला और बहुतश्वासको लेनेंवाला और कृश और अरुचिसे पीडित और नष्ट हुई इंद्रियोंकी कांतिवाला ऐसा ज्वररोगी शीघ्र मरजाता है ॥ ९ ॥ जिसके मुखमें रक्त झिरै और जिसके शिरमें पीडा होवै और भीतर दाह और बाहिर शीत लगै ऐसे ज्वरवाला मरजाता है ॥१०॥ जो मोहको प्राप्तहोवै और संज्ञासे रहितहुआ सोवै अथवा निरंतर पतितहुआ जावै और बाहिर शीतसे और भीतर गर्मीसे पीडितहोवै ऐसा मनुष्य ज्वरसे मरजाता है ॥ ११ ॥ जो हर्षितहुये रोमोंवाला हो और लालनेत्रोंवाला हो और हृदयमें दारुण शूलवाला हो और निरंतर मुखसे ऊंचे श्वासको लेता हो ऐसा ज्वररोगी मरजाता है ॥ १२ ॥ हिचकी और श्वाससे पीडित और मूढ और विशेष करकै भ्रमते हुये नेत्रोंवाला और निरंतर ऊंचे श्वासको लेनेवाला और क्षीण—ऐसे रोगीको ज्वर मारदेता है ॥ १३ ॥ डूंघे अथवा धूम्रवर्णवाले नेत्रोंवाला और मोहको प्राप्तहुआ और तंद्रासे अत्यंत युक्तहुआ क्षीणहुये रक्त और मांसवाला ऐसे मनुष्यको ज्वर मार देता है ॥ १४ ॥ बहुत छर्दिवाला और नेत्रोंसे पानीको झिरानेंवाला और अरोचकसे पीडित और भीतर दाह तथा काली जीभसे युक्त ऐसे मनुष्यको ज्वर शीघ्र मारदेता है ॥ १५ ॥

अथ दारुण उपद्रवका अरिष्ट ॥

यश्चैकोपद्रवस्यार्त्तः शाम्यता नोपदृश्यते ॥ दारुणोपद्रवाश्चान्ये भूयिष्ठं

बहुरूपवान् ॥१६॥ तेन मृत्योर्वशं याति सिद्धिं नेच्छति दारुणः ॥१७॥

जिसके एक उपद्रवभी शांत नहींहोवे किंतु अन्यभी बहुतसे उपद्रव उपजते रहै और बहुतसे रूपोंको धारण करै ॥ १६ ॥ ऐसा मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ १७ ॥

अथ अतीसारका अरिष्ट ॥

यस्यादौ दृश्यते चैवाप्यतीसारस्तथापरः ॥ श्वासः शोषश्च यस्य स्यात्सोऽपि शीघ्रं मृतिं व्रजेत् ॥ १८ ॥ श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥ विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १९ ॥ यस्यातिसारशोफाः स्युस्तथारोचकशूलवान् ॥ सोऽपि शीघ्रं मृतिं याति बहुभिः प्रतिकर्मभिः ॥ २० ॥

जिसके आदिमें अतीसार उपजे पीछे श्वास और शोष उपजे वह मनुष्य शीघ्र मरजाता है ॥ १८ ॥ श्वास, शूल, तृष्णा, इनकरिकै पीडित, क्षीण, ज्वरसें त्रास पायाहुआ ऐसे वृद्धमनुष्यको विशेषकरकै अतीसारसे अनिष्टकर देता है ॥ १९ ॥ जिसके अतीसार, शोजा, अरुचि, शूल, ये उपजैं तिस मनुष्यकी बहुतसी चिकित्सा करनेसेभी मृत्यु होजाती है ॥२०॥

अथ सूजनका अरिष्ट ॥

बालस्य चातिवृद्धस्य विकलस्य नरस्य च ॥
सर्वाङ्गे जायते शोफः शोफी स म्रियते ध्रुवम् ॥ २१ ॥

बालक, अतिवृद्ध, विकल, ऐसे मनुष्योंके संपूर्ण अंगमें शोजा उपजै तो वह निश्चय मरजाता है ॥ २१ ॥

अथ शूलका अरिष्ट ॥

यस्याध्मानश्च शूलश्च श्वासस्तृष्णा विमूर्छना ॥
शिरोऽर्त्तिर्यस्य दृश्येत शूली मृत्युमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

जिसके अफारा, शूल, श्वासरोग, तृषा, मूर्च्छा, शिरमें पीडा ये उपजै तिसकी मृत्यु होजाती है ॥ २२ ॥

पांडुरोगीका अरिष्ट ॥

पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च मानवः ॥ पाण्डुसङ्घातवांश्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ २३ ॥ पाण्डुत्वक्पाण्डुनेत्रे च मूत्रं वा पाण्डुरं भवेत् ॥ पाण्डुसङ्घातवांश्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ २४ ॥

पीले दंत और नखोंवाला और पीले नेत्रोंवाला और पीलेपनको सब जगह देखै ऐसा पांडुरोगी नष्ट होजाता है ॥ २३ ॥ पीली खाल होवै पीले नेत्रहोवैं और मूत्रभी पीलाही होवै और पीलेपनको सब जगह देखै ऐसा पांडुरोगी मरजाता है ॥ २४ ॥

अथ क्षयरोगका अरिष्ट ॥

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम्॥कृच्छ्रेण बहुमेहंतं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ २५ ॥ धातुहीनो भवेद्यस्तु शोफश्वासैर्निपीडितः ॥ बहुभोज्यो घृणावांश्च राजयक्ष्मी विनश्यति ॥ २६ ॥

सफेदनेत्रोंवाला और अन्नसे वैर करनेंवाला और ऊंचे श्वाससे निरंतर पीडितहुआ और कष्टसे बहुतवार मूत्रको करताहुआ ऐसा राजरोगी मरजाता है ॥ २५ ॥ धातुओंसे हीन हुआ शोजा और श्वाससे पीडितहुआ और बहुतसे भोजनको करताहुआ और दयावाला ऐसा राजरोगी मरजाता है ॥ २६ ॥

अथ श्वासरोगका अरिष्ट ॥

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारस्योष्णता भवेत् ॥ शीघ्रनाडी न निर्वाहः शीघ्रं याति यमालयम् ॥ २७ ॥ अङ्गकम्पो गतेर्भङ्गो मुखं वा कुङ्कुमप्रभम् ॥ उच्चारे च भवेद्वायुः स च याति यमालयम् ॥ २८ ॥

जिसके मुखसे हाके निकसनेमें शीतलता होवै और फूत्कारमें गरमाईपना होवै और नाडी शीघ्र चलै चलनेकी सामर्थ्य नहीं होवै ऐसा रोगी शीघ्र मरजाता है ॥ २७ ॥ जिसके अंग कांपें और चलाजावै नहीं और केसरके समान मुख होजावै और दस्तजानेंके समय वायु निसरै वह मरजाता है ॥ २८ ॥

अथ बहोतदिनतकके रोगका अरिष्ट ॥

चिरं प्रवृद्धरोगस्तु भोजनेऽप्यसमर्थकम् ॥ भग्नगात्रमुपेक्षेत भेषजोऽप्यरहस्यकम् ॥ एतादृशं नरं ज्ञात्वोपचारः क्रियते बुधैः ॥ २९ ॥

बहुत दिनोंसे बढेहुये रोगवाला और भोजनको नहीं करनेवाला और भग्नहुये अंगोंको देखनेवाला और औषधको नहीं लेनेंवाला ऐसे रोगीके जानिकै उपचार करना ॥ २९ ॥

अथ उदररोगका अरिष्ट॥

विध्वंसश्वासशोफाच्च तथा ज्वरनिपीडनात् ॥
गम्भीरं सघनं तस्य तदुरः क्षयत नरम् ॥ ३० ॥

विष्ठाके क्षयसे, श्वास और शोजासे तथा ज्वरकी पीडासे गंभीर और कठिनहुई छाती तिसको मारदेती है ॥ ३० ॥

अथ गुल्मरोगका अरिष्ट॥

श्वासशूलपिपासार्त्तिर्विद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥
भवति दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः ॥ ३१ ॥

श्वास, शूल, अत्यंततृषा, ये उपजैं और अन्नमें वैर रहै और गाढ तथा मूढपनाहों और दुर्बलपनाहो ऐसा गुल्मरोगी मरजाता है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तपित्तका अरिष्ट ॥

नेत्रे जिह्वाधरौ यस्य रक्तौ वा रुधिरं वमेत् ॥ रक्तमूत्री रक्तसारी रक्त पित्ती विनश्यति ॥ ३२ ॥ लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥ रक्तानाञ्च दिशां द्रष्टा रक्तपित्ती विनश्यति ॥ ३३ ॥

जिसके जीभ, दोनोंओष्ठ, नेत्र, ये लाल होजावैं अथवा रक्तको झिरावे ऐसा रक्तमूत्रवाला और रक्तातीसारवाला और रक्तपित्तवाला मनुष्य मरजाता है ॥३२॥ जो लोहूकी छर्दि करै और बहुत करकै लालनेत्रोंवालाहो और लालरूपसे संयुक्तहुई दिशाओंको देखै ऐसा रक्तपित्तरोगी मरजाता है ॥ ३३ ॥

अथ बवासीररोगका अरिष्ट ॥

मुखशोफो भवेद्यस्य भ्रमारोचकपीडितः ॥
विबन्धोदरशूली च उदयाच्च विनश्यति ॥ ३४ ॥

जिसके मुखपर शोजाहो भ्रम और अरुचिसे पीडितहो बंधा और उदरशूलसे संयुक्तहो ऐसा रोगी मरजाता है ॥ ३४ ॥

अथ विद्रधिरोगका अरिष्ट ॥

आध्मानबद्धनिष्पन्दं छर्दिहिक्कारुगन्वितम् ॥
रुजाश्वाससमाविष्टं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ ३५ ॥

जो अफारा और नहीं करकनेंसे संयुक्तहो और छर्दि, हिचकी, शूल, इन्होंसे समन्वितहो और श्वासरोगसे संयुक्तहो ऐसे मनुष्यको विद्रधिरोग नाशता है ॥ ३५ ॥

अथ भ्रमरोगका अरिष्ट ॥

यस्य तृष्णा भवेद्घोरा दाहो वापि वमिर्भवेत् ॥

भ्रमोपपन्नो भवति न स जीवति मानवः॥ ३६ ॥

जिसके दारुणतृषा और दाह तथा छर्दि उपजै और भ्रमसे संपन्नहो वह रोगी जीवता नहीं हैं॥ ३६ ॥

अथ आर्तवका अरिष्ट ॥

अपूर्णे दिवसे नारी ज्वरार्त्ता पुष्पमाप्नुयात् ॥
सा न जीवेन्महाप्राज्ञ! यस्या हि सारणो भवेत् ॥ ३७ ॥

जो ज्वरसे पीडितहुई नारी नहीं पूर्णहुये दिनमें पुष्प अर्थात् योनिसे रक्तके वहनेको प्राप्तहोवै हे महाप्राज्ञ! जो वह रक्तझिरताही रहै तो वह नारी जीवै नहीं ॥ ३७ ॥

अथ कामला और पांडुरोगका अरिष्ट ॥

यः शोफश्वाससंयुक्तस्तृष्णायुक्तोऽथ शूलवान् ॥
कामलापाण्डुरोगार्त्तो नरश्च स विपद्यते ॥ ३८ ॥

जो शोजा और श्वाससे पीडितहो तृषा और शूलसे संयुक्तहो कामला और पांडुरोगसे संयुक्तहो वह मनुष्य जीवतानहीं है॥ ३८ ॥

अथ भगंदरका अरिष्ट ॥

वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ॥
भगन्दरात्प्रस्रवन्ति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

जिसके भगंदरके घावसे अधोवात, मूत्र, विष्ठा, कीडे, वीर्य्य, ये झिरतेहों तिस रोगीको असाध्य जानो ॥ ३९ ॥

अथ अश्मरीरोगका अरिष्ट ॥

प्रसूननाभिवृषणं रुद्धमूत्रं रुगन्वितम् ॥
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकताशर्करान्विता ॥ ४० ॥

नाभि और पोतोंपर शोजासे संयुक्तहो मूत्र रुकजावै शूल चलै ऐसे मनुष्यको पथरी, सिकता, शर्करा, ये रोग मारदेते हैं॥ ४० ॥

अथ मूढगर्भका अरिष्ट ॥

गर्भकोषसमापन्नो मकुष्टो योनिसङ्गतः ॥
हन्ति स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ४१ ॥

गर्भकोषमें समापन्नहुआ बालक योनिके छिद्रको बंधकरै और यथोक्त सब उपद्रवभी उपजै तब मूढगर्भ स्त्रीको मारदेता है ॥ ४१ ॥

अथ अपस्माररोगका अरिष्ट ॥

पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् ॥ बहुशोऽपस्मरन्तन्तु क्षीणञ्च वलितभ्रुवम्॥४२॥नेत्राभ्याञ्च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ४३ ॥

पसलीका भंग, अन्नसे वैर, शोजा, अतीसार–इन्होंसे पीडितहुआ और बहुतवार विस्मरणको प्राप्तहुआ और क्षीण और टेढीभ्रुकुटियोंवाला ॥ ४२ ॥ और नेत्रोंसे विकारको करताहुआ ऐसे मनुष्यको मृगीरोग मारदेता है ॥ ४३ ॥

अथ वातव्याधिका अरिष्ट ॥

शूलं सुप्तत्वचं भग्नमाध्मानेन निपीडितम् ॥
रुजार्त्तिमन्तञ्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ४४ ॥

शूल और सोतीहुई खालसे संयुक्तहो और भग्नहो और अफारासे निरंतर पीडितहो और दुःखसे संयुक्तहो ऐसे मनुष्यको वातव्याधि नाशता है ॥ ४४ ॥

अथ प्रमेहका अरिष्ट ॥

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ॥
पिडकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ ४५ ॥

यथोक्त उपद्रवोंसे व्याप्तहो और अत्यंत झिरताहुआहो और फुन्सियोंसे अत्यंत पीडितहो ऐसे मनुष्यको प्रमेहरोग नाशता है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठरोगका अरिष्ट ॥

प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ४६ ॥

प्रभिन्नहुआ और झिरतेहुये अंगोंवाला और लालनेत्रोंवाला और नष्टहुआ स्वरवाला और वमन, विरेचन, नस्य, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति, इनपंचकर्मोंके गुणोंसे वर्जित ऐसे कुष्ठिको कुष्ठरोग मारदेता है ॥ ४६ ॥

अथ उन्मादरोगका अरिष्ट ॥

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलोत्तरः ॥ जागरूकस्त्वसन्देहमुन्मा

देन विनश्यति ॥ ४७ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नीचेको मुख रखनेंवाला अथवा उपरको मुख रखनेंवाला और क्षीणहुये मांसवाला और बलसे युक्तहुआ और दिनरात जागनेंवाला ऐसा उन्मादरोगी निश्चय मरजाता है ॥ ४७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चेन्द्रियविकारवर्णन ॥

आत्रेय उवाच ॥ यः शीलवान्क्रोधनतामुपैति यः क्रोधवाञ्छीलगुणञ्च धत्ते ॥ द्वावेव मृत्युं तनुतो विधिज्ञ! स्थूलो नरः शीघ्रतरं कृशाङ्गः॥१॥

आत्रेयजी कहते हैं–जो शीलवान् मनुष्य क्रोधपनेको प्राप्तहोवै और जो क्रोधी मनुष्य शीलपनेको धारण करै हे विधिज्ञ! ये दोनों मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते है और जो मोठा मनुष्य शीघ्र माड़ा होजावे और माडा मनुष्य शीघ्र मोठा होजावे येभी दोनों मृत्युको प्राप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

यो धर्मशीलो भवतीह पापी पापात्मको धर्मरतो यदि स्यात् ॥
स मृत्युभाजी भवतीह शीघ्रं यश्च प्रकृत्या विकृतिं प्रयाति ॥ २ ॥

जो धर्मशील मनुष्य पापी होजावै और जो पापी धर्मको करनेंलग जावै और जो प्रकृतिकरकै विकारको प्राप्तहोजावै ये मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते है ॥ २ ॥

यो गौरवर्णो विदधाति कार्ष्ण्यं कृष्णोऽतिगौरत्वमुपैति यश्च ॥ तथा
मृतिं याति नरः प्रकृत्या शीघ्रं विकृत्या भजते वियोगम् ॥ ३ ॥

जो गौरवर्णवाला मनुष्य कालावर्णको प्राप्त होजावे और जो कालावर्णका मनुष्य गौरपनेको प्राप्त होजावे और जो अपनी प्रकृतिको शीघ्र त्यागदेवै ऐसे मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यो वैपरीतं श्रवणेऽपि शब्दं गृह्णाति वा न शृणुते स शीघ्रम् ॥ स
वै मृतिं पश्यति यो न पश्येच्छायां स्वकीयां धरणीप्रपन्नाम् ॥ ४ ॥

जो शब्दको विपरीतपनेसे ग्रहण करै अथवा शब्दको नहीं सुनै और जो पृथिवीमें प्राप्त हुई अपनी छायाको नहीं देखै वे मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते है ॥४ ॥

यो वेन्द्रियैः प्रतिहतः कृशतां प्रयाति स्थूलोऽतिनिष्प्रभवपुर्मरणं विपश्येत्॥ यो विस्रगन्धिश्च रसश्च कंचिन्न वेत्ति स वै मृतिं प्रियतमां भजते मनुष्यः॥५॥

जो इंद्रियोंसे प्रतिहतहुआ कृशपनेको प्राप्त होजावै और जो कृशमनुष्य अत्यंत मोटेपनको प्राप्त होवै वह जिसका शरीर कृशपनेको प्राप्त होवै जो दुर्गंधको और रसको कहींभी नहीं जानै वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

यस्यास्यगन्धमाघ्राय भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ नासिकायां शरीरे वा स चैव यमलोकगः ॥ ६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने पञ्चेन्द्रियविकारो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिसका मुखके गंधको सूंघकै नीलमक्षिका अर्थात् भौंरे नासिकामें अथवा शरीरमें वास करनें लगजावै तिसकी मृत्यु होती है ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां द्वितीयस्थाने पंचेंद्रियविकारो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ नक्षत्रज्ञानवर्णन ॥

आत्रेय उवाच ॥ अथ नक्षत्रयोगेन व्याधिर्यस्य प्रजायते ॥ साध्यासाध्यश्च याप्यं च वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–जिसके नक्षत्रके योगसे व्याधि उपजै तिसको साध्य, असाध्य, इनभेदोंसे कहताहूं हे पुत्र ! सुन ॥ १ ॥

अथ मृत्युयोगोंका वर्णन ॥

आदित्ययोगेन मघा विशाखा चन्द्रेण युक्ता कुज आर्द्रया तु ॥ मूलं प्रबुद्धे गुरुकृत्तिका च शुक्रेण रोहिण्यसितेन हस्तः ॥ २ ॥ एतान्वदन्ति निपुणा यमघण्टयोगान्व्याधिप्रपन्नमनुजो यदि पुण्ययोगात् ॥ जीवे यदा कथमसौ घनदत्तयन्त्रघोरान्तरेण तपनेन कथं सुखं स्यात् ॥ ३ ॥

आदित्येनानुराधा वसति हिमरुचिश्चोत्तरासंप्रयुक्तो भौमः पितृषियुक्तो बुध इति तुरगीयुक्त एतत्सुखं न ॥ तस्माज्जीवेन युक्तो मृगशिरसहितोऽश्लेषया भार्गसूनुः संयुक्तो हस्तसंज्ञैर्न तु वदति शुभं शास्त्रविद्योगयुक्तः ॥ ४ ॥

रविवारसे युक्त मघानक्षत्र और सोमवारसे युक्त विशाखानक्षत्र और मंगलवारसे युक्त आर्द्रानक्षत्र और बुधवारसे युक्त मूलनक्षत्र और बृहस्पतिवारसे संयुक्त कृत्तिकानक्षत्र और शुक्रवारसे युक्त रोहिणी और शनिवारसे युक्त हस्तनक्षत्र ॥ २ ॥ इन्होंको पंडित यमघंट योग कहते हैं. इन्होंमें रोगको प्राप्तहुआ मनुष्य पुण्यके योगसे कदाचित् जीवता है अन्यथा सुखकी प्राप्ति नहीं है ॥ ३ ॥ रविवारसे संयुक्त अनुराधा और चंद्रवारसे संयुक्त उत्तरानक्षत्र और मंगलवारसे युक्त मघा और बुधवारसे युक्त अश्विनी और बृहस्पतिवारसे युक्त मृगशिर और शुक्रवारसे युक्त आश्लेषा और शनिवारसे संयुक्त हस्तनक्षत्र ये मृत्युयोग हैं इन्होंमें रोगकी उत्पत्ति होवै तो शुभ नहीं होताहै ॥ ४ ॥

अथ अमृतयोगकथन ॥

दिनकरकरयुक्तः सोमसौम्येन वापि तुरगसहितभौमः सोमपुत्रोऽनुराधा ॥
सुरगुरुरपि पुष्ये रेवती शुक्रवारे दिनकरसुतयुक्ता रोहिणी सौख्यहेतुः॥५॥

रविवारसे युक्त हस्त और सोमवारसे युक्तमृगशिर और मंगलवारसे संयुक्त अश्विनी और बुधवारसे संयुक्त अनुराधा और बृहस्पतिवारसे युक्त पुष्य और शुक्रवारसे युक्त रेवती और शनिवारसे युक्त रोहिणी ये शुभयोग हैं इन्होंमें रोग उपजै तो सुख होता है ॥ ५ ॥

अथ क्रूरयोगवर्णन ॥

शूले वज्रेऽतिगण्डे वा व्याघाते व्यतिपातके ॥ विष्कम्भयोगयुक्ते च नक्षत्रे क्रूरदैवते ॥ ६ ॥ एतैरसाध्या ज्वरिणस्तस्माद्योगान् परीक्षयेत् ॥
योगे ऋक्षे तथा वारे क्रूरे प्राप्ते न जीवति ॥ ७ ॥

शूल, वज्र, अतिगंड, व्याघात, व्यतीपात, विष्कंभ, इन योगोंमें जब क्रूरदेवतोंवाले अर्थात् आश्लेषा मघाआदिनक्षत्र होवै तिन्होंको क्रूरयोग कहते हैं ॥ ६ ॥ इन्होंमें ज्वर उपजै तो रोगी असाध्य होजाते हैं इसवास्ते योगोंकी परीक्षा करनी और यह क्रूरयोगभी हो और तिसमें क्रूरवारहो तब रोग उपजे तो रोगी जीवता नहीं ॥ ७ ॥

अथ योगविज्ञान ॥

सिद्धिः शुक्लः शुभः प्रीतिर्वायुष्मान्सौभगश्चवै ॥
धृतिर्वृद्धिर्ध्रुवो हर्षः सुखसाध्या इमे स्मृताः ॥ ८ ॥

सिद्धि, शुक्ल, शुभ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, धृति, वृद्धि, ध्रुव, हर्ष, ये योग सुखसाध्य कहे हैं ॥ ८ ॥

अथ विशेषवर्णन ॥

मघा विशाखा भरणी तथार्द्रा मूलं तथा कृत्तिकहस्ततिष्याः ॥
एते न शस्ता मुनयो वदन्ति वारक्रमेणैव विचिन्तनीयाः ॥ ९ ॥

मघा, विशाखा, भरणी, आर्द्रा, मूल, कृत्तिका, हस्त, पुष्य, ये रोगकी उत्पत्तिमें श्रेष्ठ नहीं हैं ये सब वारके क्रमसे चिंतमन करनें चाहिये ॥ ९ ॥

अथ असाध्य नक्षत्र ॥

मघाभरणिहस्तेषु मूले वा ज्वरितोऽपि वा ॥
मृत्युमापद्यते सोऽपि नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १० ॥

मघा, भरणी, हस्त, मूल, इन नक्षत्रोंमें ज्वरितहुआ मनुष्य मरजाता है इसमें विचार नहीं ॥ १० ॥

अथ साध्य नक्षत्र ॥

अश्विनीरोहिणीपुष्यमृगज्येष्ठाः पुनर्वसू ॥
एते साध्याश्च विज्ञेया ज्वरिणाञ्च विशेषतः ॥ ११ ॥

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, ये इननक्षत्रोंमें हुआरोग साध्य कहा है और इन्हींमें उपजा ज्वर विशेषकरकै साध्य है ॥ ११ ॥

अथ कष्टसाध्य नक्षत्र ॥

पूर्वात्रयं स्वातिरथापि चित्रा तथा त्रयार्द्राश्रवणाधनिष्टाः ॥ मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिः सार्प्योऽनुराधा सह ज्येष्ठया च ॥ १२ ॥ एते सकाष्ठा रुजपीडितानां तिष्या सुयाप्या कुरुते नरस्य ॥ तस्मात्तु विज्ञाय बुधाश्च सम्यग् रुजां विनाशं प्रतिकर्मणा च ॥ १३ ॥

तीनोंपूर्वा, स्वाती, चित्रा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका,

आश्लेषा, अनुराधा, ज्येष्ठा॥१२॥इन्होंमें उपजा रोग कष्टको देता है और इन्होंमेंसे पुष्यनक्षत्रमें उपजा रोग कष्टसाध्य कहा है तिसकारणसे जान चिकित्सासे रोगको दूर करना ॥ १३॥

अथ नक्षत्रोंके पीडाकी मर्यादा ॥

अश्विन्याश्चैकरात्रन्तु भरण्यां मृत्युमीक्षते ॥ नवरात्रं कृत्तिकायां रोहिण्यान्तु दिनत्रयम् ॥ १४ ॥ मृगेण बहुपीडा स्यादार्द्रायां मृत्युरेव च ॥ पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रन्तु पीड्यते ॥ १५ ॥ नवरात्रं तथाश्लेषा मघा चैति यमालयम्॥ पूर्वा मासत्रयं ज्ञेयमुत्तरा पञ्चकत्रयम्॥१६॥ पूर्वात्रये त्रयोंऽशाश्च शुभा ज्ञेया मनीषिभिः ॥ एतेषां तुर्य्यगे चान्ते यदि रोगस्तदा मृतिः ॥ १७ ॥ हस्तेन प्राप्यते सौख्यं चित्रा पञ्चदशाहकम् ॥ स्वातिः षोडशरात्रन्तु विशाखा विंशरात्रकम् ॥ १८ ॥ अनुराधा पक्षमेकं ज्येष्ठा दशदिनानि तु ॥ मूलेन मृत्युमाप्नोति आषाढासु त्रिपञ्चकम् ॥ १९ ॥ उत्तरा विंशरात्रेण श्रवणे मासकद्वयम् ॥ मासद्वयं धनिष्ठा स्याच्छतर्क्षे दिनविंशतिः ॥ २० ॥ नवरात्रं भवेत्पूर्वा उत्तरा पञ्चकत्रयम्॥ दशाहं रेवती पीडा मुच्यते व्याधिभिस्ततः॥ २१ ॥

अश्विनीमें रोग उपजै तो एकरात्रिमें आरामहो, भरणीमें रोग उपजै तो रोगी मरजाता है, कृत्तिकामें रोग उपजै तो नवरात्रीमें आराम होता है रोहिणीमें रोग उपजै तो तीनदिनोंमें आराम होता है ॥ १४ ॥ मृगशिरमें रोग उपजै तो बहुतसी पीडा रहती है आर्द्रामें रोग उपजै तो रोगी मरजाता है पुनर्वसुमें और पुष्यमें रोग उपजै तो सातरात्रितक पीडा रहती है ॥ १५ ॥ आश्लेषामें रोग उपजै तो नवरात्रितक पीडा रहती है मघामें रोगहो तो रोगी मरजाता है पूर्वाफाल्गुनीमें रोगहो तो तीनमहीनोंतक पीडा रहती है उत्तराफाल्गुनीमें रोगहो तो पंदरह दिनोंतक पीडा रहती है॥ १६ ॥और तीनों पूर्वा अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद इन्होंके पहले तीनभाग शुभ है और अंतका एकभाग बुरा है तिसमें रोग हो तो रोगी मरजाता है ॥ १७ ॥ हस्तमें रोग हो तो शीघ्र आराम होजाता है चित्रामें रोग हो तो पंदरह दिनोंमें आराम होजाता है स्वातीमें रोग हो तो सोलहरात्रिमें सुख होजाता है विशाखामें रोग हो तो बीस रात्रिमें आराम होजाता है॥१८॥ अनुराधामें रोग हो तो पंदरहदिनमें आराम होता है ज्येष्ठामें रोग हो तो दशदिनमें आराम होजाता है मूलमें रोग हो तो रोगी मरजाता है पूर्वाषाढमें रोग हो तो पंदरहदिनोंमें आराम होता है ॥ १९ ॥ उत्तराषाढमें रोग उपजै तो

बीसरात्रिमें आराम होता है श्रवणमें रोग उपजै तो दो महीनोंमें आराम होता है धनिष्ठामें रोग उपजै तो दो महीनोंमें आराम होता है शतभिषामें रोग उपजै तो बीसदिनोंमें आराम होता है ॥ २० ॥ पूर्वाभाद्रपदमें रोग उपजै तो नवरात्रिमें आराम होता है उत्तराभाद्रपदमें रोग उपजै तो पंदरहदिनोंमें आराम होता है रेवतीमें रोग उपजै तो दशदिनमें आराम होता है ऐसे रोगकी निवृत्ति कही है ॥ २१ ॥

अथ नक्षत्रोंके भागानुसार रोगोंकी मर्यादा ॥

कृत्तिका नक्षत्र॥

कृत्तिकासु ज्वरस्तीव्रो व्याधिर्भवति पैत्तिकः ॥ दिनानि दश प्रथमे चरणे च विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥ दशैव द्वितीये भागे तृतीये दिनपञ्चकम् ॥

कृत्तिकानक्षत्रमें दारुण ज्वर और पित्तकी व्याधि उपजती है और कृत्तिकाके प्रथम भागमें रोग उपजै तो दशदिन पीडा रहती है ॥ २२ ॥ और दूसरेभागमें रोग उपजै तोभी दशदिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें रोग उपजै तो पांचदिन पीडा रहती है ॥

अथ रोहिणी नक्षत्र ॥

रोहिण्यां नवरात्रन्तु प्रथमेंऽशे प्रकीर्त्तितम् ॥ २३ ॥ द्वितीये द्विगुणं प्रोक्तं तृतीये दशरात्रकम् ॥

रोहिणीके प्रथमभागमें रोग उपजै तो नवरात्रि पीडा रहती है ॥ २३ ॥ और दूसरेभागमें अठारह दिन और तीसरेभागमें दशदिन पीडा रहती है ॥

अथ मृग नक्षत्र ॥

नक्षत्रे चन्द्रदैवत्ये पीडा वै जायते ध्रुवम् ॥ २४ ॥ प्रथमांशे पञ्चरात्रं मध्ये द्वादशवासरान् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्यर्मासादनन्तरम् ॥२५॥

मृगशिरके प्रथमभागमें रोग उपजै तो पांचरात्री पीडा रहती है ॥ २४ ॥ और दूसरेभागमें बारहदिन और तीसरेभागमें १ महीनातक पीडा रहके पीछे मृत्यु होजाता है ॥ २५ ॥

अथ आर्द्रा नक्षत्र ॥

नक्षत्रे रुद्रदैवत्ये पक्षं स्यात्प्रथमेंऽशके ॥
द्वादशाहं द्वितीये च तृतीयांशे न जीवति ॥ २६ ॥

आर्द्रानक्षत्रके प्रथम अंशमें रोग उपजै तौं वह रोग एक पखवाडेतक रहता है. दूसरे अंशमें हुआ व्याधि बारह दिनतक रहता है. तीसरे अंशमें रोग उत्पन्न हुआ होय तौं वह मनुष्य जीता नहीं ॥ २६ ॥

अथ पुनर्वसु नक्षत्र ॥

पुनर्वसौ ज्वरं विद्यात्प्रथमांशे त्रिपक्षकम् ॥
मध्यमे दिवसान्सप्त तृतीये पंचविंशतिम् ॥ २७ ॥

पुनर्वसुनक्षत्रके प्रथम अंशमें आयाहुआ ज्वर तीन पखवाडेतक रहता है. दूसरे अंशमें सातदिन रहता है. और तीसरे अंशमें आयाहुआ ज्वर पच्चीस दिनतक रहता है ॥ २७ ॥

अथ पुष्य नक्षत्र ॥

पुष्ये स्यात्प्रथमे सप्त द्विके विंशतिवासरान् ॥
तृतीयांशे तथा विंद्याद्दिवसानेकविंशतिम् ॥ २८ ॥

पुष्यनक्षत्रके प्रथम अंशमें आयाहुआ रोग सातदिनतक रहता है. दूसरे अंशमें वीस दिनतक रहता है. और तीसरे अंशमें इक्कीसदिनतक रहता है ॥ २८ ॥

अथ आश्लेषा नक्षत्र ॥

आश्लेषायां च नक्षत्रे यस्य संभवति ज्वरः॥मासत्रयेण प्रागंशे कष्टाज्जीवति मानवः ॥२९॥ द्वितीये च तृतीये च मृत्युरेव न संशयः ॥

जिस मनुष्यकूं आश्लेषानक्षत्रमें ज्वर उत्पन्न होता है उसकूं प्रथम अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेंसें वह मनुष्य बडे कष्टसें जीता है ॥२९ ॥ और दूसरे तथा तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेंसें उसमनुष्यकूं मृत्युही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ॥

अथ मघा नक्षत्र ॥

नक्षत्रे पितृदैवत्ये रोगो यस्य प्रवर्तते ॥ ३० ॥ प्रथमेंशे सप्तरात्रिं द्वितीये धिष्ण्यतुल्यताम् ॥ विंशत्तृतीये दिवसान्पीड्यते कर्मणो बलात् ॥ ३१ ॥

मघानक्षत्रमें जिस मनुष्यकूं रोग उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥ उसका रोग प्रथम अंशमें सातरात्रितक रहता है. दूसरे अंशमें उत्पन्न होवे तौं वरसरीखा हमेशां बनाही रहता है. और तीसरे अंशमें होवे तौं वह मनुष्य अपने कर्मके बलसें वीस दिनतक बहोत पीडाको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

अथ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र ॥

नक्षत्रे भगदैवत्ये यस्य संजायते ज्वरः॥ ३२ ॥प्रथमेंशे पंचरात्रिं मध्ये द्वादशवासरान् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मासादनंतरम् ॥ ३३ ॥

पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमें जिसकूं ज्वर उत्पन्न होवे ॥ ३२ ॥ उस मनुष्यका ज्वर प्रथम अं-

शमें पांच रात्रितक रहता है. दूसरे अंशमें बारह दिनतक रहता है. और तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होवे, उस मनुष्यका एक महीनेके पीछे मृत्यु होगा ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

अथ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र ॥

उत्तराया आद्यभागे वासराणि चतुर्दश ॥
द्वितीये सप्तरात्रन्तु तृतीये दिवसान्नव ॥ ३४ ॥

उत्तराके प्रथमभागमें रोग उपजै तो चौदहदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें सात रात्रि और तीसरेभागमें नव दिन पीडा रहती है ॥ ३४ ॥

अथ हस्त नक्षत्र ॥

यदि हस्ते भवेद्रोगः प्रथमे सप्तरात्रकम् ॥
चत्वार्य्यहानि द्वितीये तृतीये दिनपञ्चकम् ॥ ३५ ॥

हस्तके प्रथमभागमें रोग उपजै तो सात रात्री पीडा रहती है और दूसरेभागमें च्यार दिन और तीसरेभागमें पांच दिन पीडा रहती है ॥ ३५ ॥

अथ चित्रा नक्षत्र ॥

मृत्युं विद्यात्तथा पूर्वे त्वाष्ट्रो यस्य भवेज्ज्वरः ॥ त्रिभिर्मासैर्द्वितीयांशे रोगो भवति दारुणः ॥ ३६ ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं वासराणि त्रयोदश ॥

चित्राके प्रथमभागमें जिसके ज्वर उपजै तिसका मृत्यु होजाता है और दूसरेभागमें रोग दारुणरूपी होके तीन महीनोंमें दूर होता है ॥ ३६ ॥ और तीसरेभागमें तेरहदिन पीडा रहती है ॥

अथ स्वाती नक्षत्र ॥

वायव्ये प्राक् सप्तदश द्वितीये चैकविंशतिः ॥ ३७ ॥ अस्यैव तु तृतीयांशे मृत्युमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३८ ॥

स्वातीके प्रथमभागमें रोग उपजै तो सतरह दिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो इक्कीसदिन पीडा रहती है॥ ३७॥ और तीसरेभागमें रोग उपजै तो मृत्युही जानना॥ ३८॥

अथ विशाखा नक्षत्र ॥

प्रथमांशे विशाखायां त्रिगुणाः षोडश स्मृताः॥
द्वितीये द्वादश प्रोक्तास्तृतीयेऽपि तथैव च ॥ ३९ ॥

विशाखाके प्रथमभागमें रोग उपजै तो अठतालीस ४८ दिन पीडा रहती है और दूसरे-

भागमें रोग उपजै तो बारह दिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें रोग उपजै तोभी बारह दिन पीडा रहती है ॥ ३९ ॥

अथ अनुराधा नक्षत्र ॥

मैत्रांशे प्रथमे सप्त द्वितीये पक्षमादिशेत् ॥
तृतीयांशे चतुःषष्टिर्वासराणां महामुने! ॥ ४० ॥

अनुराधाके प्रथमभागमें रोग उपजै तो सात दिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो पंदरह दिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें पीडा उपजै तो हे महामुने! चौंसठ६४ दिन पीडा रहती है ॥ ४० ॥

अथ ज्येष्ठा नक्षत्र ॥

त्रिपक्षमैन्द्रे प्रथमे द्वित्रिभागे च षोडश ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठाके प्रथम, भागमें रोग उपजे तौं ४५ दिन पीडा रहती है. द्वितीय, और तृतीय, इन भागोंमें रोग उपजै तो सोलह दिन पीडा रहती है ॥ ४१ ॥

अथ मूल नक्षत्र ॥

मूलेंऽशे तृतीये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥
आद्ये पूर्वत्रयो मासा मध्यमेऽह्नानि षोडश ॥ ४२ ॥

और मूलके तीसरेभागमें रोग उपजै तो पंदरहदिन पीडा रहती है और मूलके प्रथमभागमें रोग उपजै तो तीन महीनें पीडा रहती है और मूलके दूसरेभागमें रोग उपजै तो सोलह दिन पीडा रहती है ॥ ४२ ॥

अथ पूर्वा नक्षत्र ॥

पूर्वांऽशे द्वितये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥
तृतीयांशे पुनर्मृत्युरतीरात्रात् प्रजायते ॥ ४३ ॥

पूर्वाषाढके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजै तो पंदरह दिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें रोग उपजै तो रोगी मरजाता है ॥ ४३ ॥

अथ उत्तराषाढा नक्षत्र ॥

विश्वेशे प्रथमे पक्षे मध्ये द्वादशरात्रिकम् ॥
दिनानां विंशतिः प्रोक्ता तृतीयांशे महामुने ! ॥ ४४ ॥

उत्तराषाढके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजै तो बारह रात्रि पीडा रहती है हे महामुने! उत्तराषाढके तीसरेभागमें रोग उपजै तो बीस दिन पीडा रहती है ॥ ४४ ॥

अथ श्रवण नक्षत्र ॥

समाहमादौ श्रवणे विंशतिर्मध्यमे मता ॥
षोडशाहं तृतीयांशे सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४५ ॥

श्रवणके प्रथमभागमें रोग उपजै तो सातदिन पीडा रहती है और द्वितीयभागमें रोग उपजै तो बीसदिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें रोग उपजै तो सोलहदिन पीडा रहती है यह मैं सत्य कहताहुं ॥ ४५ ॥

अथ धनिष्ठा नक्षत्र ॥

विंशतिर्वासवे पूर्वं मध्यमे मासयुग्मकम् ॥
मासस्तृतीये विज्ञेयो दैवज्ञैश्च निवेदितम् ॥ ४६ ॥

धनिष्ठाके प्रथमभागमें रोग उपजै तो बीसदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो दोनमहीने पीडा रहती है और तीसरेभागमें रोग उपजै तो एकमहीना पीडा रहती है ऐसा ज्योतिषीओंनें कहा है ॥ ४६ ॥

अथ पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र ॥

वारुणे दारुणो रोगस्त्रिपक्षं प्रथमांशके ॥
द्वितीये मासषट्कं तु षोडशाहं तृतीयके ॥ ४७ ॥

पूर्वाभाद्रपदाके प्रथमभागमें दारुण रोग उपजै तो पहतालीसदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो छःमहीनें और तीसरेभागमें रोग उपजै तो सोलहदिन पीडा रहती है ॥ ४७ ॥

अथ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र ॥

अहिर्बुध्न्ये पक्षमादौ मध्ये मासं विनिर्दिशेत् ॥
अन्तेऽष्टाविंशतिर्ज्ञेया पीडात्स्यापापकर्मणि ॥ ४८ ॥

उत्तराभाद्रके प्रथमभागमें रोग उपजै तो पंदरहदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो एक महीना पीडा रहती है और तीसरेभागमें रोग उपजै तो अठाईसदिन पीडा रहती है ॥ ४८ ॥

अथ रेवती नक्षत्र ॥

रेवत्याः प्रथमे चाष्टौ द्विभागे तु च षोडश ॥
अन्ते त्रिंशद्दिनान्येवं प्रोक्तानि पूर्वसूरिभिः ॥ ४९ ॥

रेवतीके प्रथमभागमें रोग उपजै तो आठदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें सोलह-दिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें रोगी मरजाता है अथवा तीसदिन पीडा रहती है॥४९॥

अथ अश्विनी नक्षत्र ॥

अश्विन्याः प्रथमे भागे दिनमेकं प्रकीर्त्तितम् ॥
द्वितीये पञ्चरात्रन्तु तृतीये सप्तकं तथा ॥ ५० ॥

अश्विनीके प्रथमभागमें एक दिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें पांचरात्रि और तीसरेभागमें सातरात्रि पीडा रहती है ॥ ५० ॥

अथ भरणी नक्षत्र ॥

भरण्याः प्रथमे चांशे सप्तवासरमेव च ॥
मध्ये मृत्युस्तथा चान्ते रोगो मासत्रयावधिः ॥ ५१ ॥

भरणीके प्रथमभागमें सातदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें मृत्यु और तीसरेभागमें तीनमहीनें पीडा रहती है ॥ ५१ ॥

अथ नक्षत्रारिष्टोंका उपसंहार ॥

एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक्कुर्य्यात्प्रशमनक्रियाम् ॥ नक्षत्रस्य त्रयो भागा आत्रेयेण प्रकाशिताः ॥ ५२ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऐसे जानकै कुशलवैद्य रोगको शांत करनेंकी क्रियाको करै नक्षत्रोंके तीनभाग आत्रेयजीनें प्रकाशित किये हैं ॥ ५२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ होमकी विधि ॥

आत्रेय उवाच ॥ अर्कः खदिरपालाशबदर्य्यः पारिभद्रकः ॥ दूर्वा शमी कुशः काशः पिप्पलो वटभूरुहः ॥ १ ॥ जम्ब्वाम्रौ करहाटश्च सोमवृक्षः कलिद्रुमः ॥ रक्तसारश्चन्दनश्च जयन्ती गुरुवृक्षकम् ॥ २ ॥ सहचरी सितावर्षा सर्वौषधिनिशायुगम् ॥ समिद्वर्गः समस्तोऽपि समिद्धोमः प्रकाशितः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—आक, खैर, पलाश, बडबेरी, पारिभद्र, दूब, जांठी, कुशा, कांस, पीपलवृक्ष, बडवृक्ष, ॥ १ ॥ जामनवृक्ष, आंबवृक्ष, पद्मकंद, श्वेतखैर, बहेडा, लालखैर, चंदन, अरनी, सीसमवृक्ष, ॥ २ ॥ पीलाकुरंटा, सफेदसांठी, सर्वौषधी, अर्थात् कूट, छालछलीरा, हलदी, बच, लोबान, मुरामांसी, चंदन, कपूर, नागरमोथा, और हलदी, दारुहलदी, यह समिद्वर्ग है इस्से समिद्धोम होता है ॥ ३ ॥

अथ शांतिप्रकार ॥

चन्दनं रक्तचन्दनं गोरोचना हरिद्रा गैरिकनिम्बबिल्वं कदम्बं कुंकुममिश्रितकस्तूरिका घनसारं श्रीपर्णं सुरदारु हरिचन्दनं पद्मकं हरिद्राद्वयं कालीयकागुरु शिंशपा रक्तगोरोचना पलाश इति गन्धानि, पद्मबिल्वसुरसादूर्वांकुशजयन्तीशमीपत्रार्ककिंशुककर्णिकारगिरिकर्णिकासहचरालूषपुष्पाणि जम्बाम्रपल्लवानि काञ्चनारपाटलावर्वरी अगस्तिः काककाह्वारी अशोकपुष्पमिति धूपदीपादिभिरलङ्कारैरलङ्कृतं वास्तुमण्डलं कृत्वा ईशानदिक्क्रमेण नक्षत्रमण्डलं चार्चयेत्॥ तन्मण्डलकमध्ये आदित्यादीन् ग्रहान् समभ्यर्च्य क्रमेण समिद्भिर्होमं कुर्य्यात् ॥ तस्मात्पुनर्दधिमधुधृताक्ताभिः समिद्भिरश्विन्यादिक्रमेण जुहुयात् ॥ आकृष्णेति अर्कसमिद्भिरिदं अश्विन्यै विष्णोरराटमसीति पलाशेन इदं भरण्यै मधुमाध्वीति बदरीसद्भिरिदं कृत्तिकायै काण्डात्काण्डेति पारिभद्रकपूर्वकुशसमिद्भिः रोहिणीमृगशिरःपुनर्वस्वादीन् काण्डेति होमयेत् ॥ इदं देव इति पिप्पलसमिद्भिरिदं पुष्याय समत्यग्निमन्त्रेण चूतसमिद्भिरिदं सार्प्यै अग्निर्मूर्द्धादिवइति जम्बूसमिद्भिर्मघां होमयेत्॥सद्योजाताभिः करहाटकसमित्पूर्वसमिद्भिर्होमयेत् ॥ तत्पुरुषाय विद्महे इति सोमवल्लीसमिद्भिरुत्तरात्रयं नमो घोराय विभीतकसमिद्भिर्हस्तं होमयेत् ॥ नमो ज्योतिष्पतये रक्तसारसमिद्भिश्चित्रां होमयेत् ॥ नमो देवाय नमो ज्येष्ठायेति चन्दनसमिद्भिः स्वात्यै होमं कुर्य्यात् ॥ उदुम्बरजयन्तीसमिद्भिर्विशाखां होमयेत् ॥ बृहते इति यदुपतये गुरुवृक्षकसमिद्भिरनुराधां होमयेत् ॥ एतज्ज्योतिःसहचरीसमिद्भिर्ज्येष्ठां काण्डात्काण्डेति शतावरीसमिद्भिर्मूलमिष्टं स्तौति ॥ निशायुगसमिद्भिः पूर्वाषाढामुत्तराषाढां मधुवा

तेति उदुम्बरसमिद्धिः श्रवणं त्र्यम्बकमिति बिल्वसमिद्भिर्वासवप्रभृतीनि होमयेत् ॥ घृतेन पूर्णाहुतिं दद्यात् ॥ नवग्रहस्थापनं चतुरस्रेण होमकुण्डे होमयेत् ॥ तस्मादभिषेकस्नानमाचरेत् ॥ शुक्लवस्त्रोपवीतं यज्ञोपवीतसहितं रोगिणं कृत्वा वेदादिभिराशिष्य गोभूवस्त्रहिरण्यादिदानं कुर्य्यात् ॥ इति विधाने कृते सम्यक् शान्तिर्भवति ॥ ४ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

चंदन, लालचंदन, गोरोचन, हलदी, गेरू, तीवकी छाल, बेलगिरी, कदंब, केशर, कस्तूरी कपूर, कमल, देवदार, हरिचंदन, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, कालाअगर, अगर, शीसम, गोरोचन, पलाश, अर्थात् ढाका ये सब गंध हैं श्वेतकमल, बेलगिरी, तुलशी, दूब, कुशा, गारनी, जांटीके पत्ते, आक, केशू, अमलताश विशेष, विष्णुक्रांता, नीलाकुरंटा, शतावरी, इन्होंके फूल, जामन और आंबके पत्ते और कचनार, पाडल, रानतुलशी, अगस्तिवृक्ष, काकजंघा, अशोक, इन्होंके फूल, धूपदीपआदिसे अलंकृतकिये वास्तुमंडलको कर ईशानआदिके क्रमसे नक्षत्रमंडलकी पूजा करनी तिस मंडलके मध्यमें सूर्य्यआदिग्रहोंकी अच्छीतरह पूजाकर क्रमसे पूर्वोक्त समिधोंसे होमको करै तिस्से पीछे फिर दही, शहद, घृत, इन्होंसे भिगोईहुई पूर्वोक्त समिध अर्थात् लकडियोंसे अश्विनीआदिनक्षत्रोंके क्रमकरकै होम करै 'आकृष्णेन रजसा' इसमंत्रसे और आककी लकडीसे अश्विनीकेलिये होम करै पीछे इदं अश्विन्यै ऐसे कहै 'विष्णोरराट' इसमंत्रसे ढाककी लकडियोंकरकै भरणीका होम करै अंतमें इदं भरण्यै ऐसे कहै 'मधुमाध्वी' इसमंत्रसे और बडबेरीकी लकडियोंसे कृत्तिकाका होम करै 'कांडात्कांडे' ति इसमंत्रसे और पारिभद्रकुशा इन्होंकरकै रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, इनआदिका होम करै 'इदंदेव' इसमंत्रसे और पीपलकी लकडियोंकरकै पुष्यका होम करै 'सप्तत्यग्नि' इसमंत्रसे और आंबकी लकडियोंकरकै आश्लेषाका होम करै 'अग्निर्मूर्द्धा' इसमंत्रसे और जामनकी लकडियोंकरकै मघाका होम करै 'सद्योजाताभि०' इसमंत्रसे और श्वेतखैरकी लकडियोंकरकै पूर्वाका होम करै 'तत्पुरुषाय विद्महे' इसमंत्रसे और लालखैरकी लकडियोंकरकै तीनों उत्तराओंका होम करै 'नमो घोराय' इसमंत्रसे और बहेडाकी लकडीकरकै हस्तका होम करै 'नमो ज्योतिष्पतये' इसमंत्रसे और लालशीसमकी लकडियों करकै चित्राका होम करै 'नमो देवाय नमो ज्येष्ठाय' इसमंत्रसे और चंदनकी लकडियों करकै स्वातीका होम करै और इसीमंत्रसे तथा गूलर और अरनीकी लकडियों ९ करकै विशाखाका होम करै 'बृहते इतियदुपतये०' इसमंत्रसे और शीसमकी लकडियोंकरकै अनुराधाका होम करै 'एतज्ज्योति०' इसमंत्रसे और पीलाकुरंटाकी लकडियोंकरकै ज्येष्ठाका

होम करै 'कांडात्कांडे'ति इसमंत्रसे और शतावरीकी लकडियोंकरकै मूलका होम करै नामरूपमंत्रसे और हलदी तथा दारुहलदीकी लकडियोंसे पूर्वाषाढ और उत्तराषाढका होम करै 'मधुवाता' इसमंत्रसे और गूलरकी लकडियोंसे श्रवणका होम करै त्र्यंबकमंत्रसे और बेलपत्रकी लकडियोंसे धनिष्ठाआदि और रेवतीतकके नक्षत्रोंका होम करै घृतकरकै पूर्णाहुतीको देवै नवग्रहोंको चौकुंडीवेदीपै स्थापनकर पीछे होमके कुंडमें होमको करै तिस्से पीछे अभिषेकस्नानको करै सफेदवस्त्रोंको पहनेंहुये और यज्ञोपवीत अर्थात् जनेहुको धारण किये ऐसे रोगीको बना और वेदआदिके मंत्रोंसे आशीर्वाद दे पीछे रोगी गौ, पृथिवी, सोना, इनआदि दानको करै ऐसे विधानकरनेंसे अच्छीतरह शांति होती है इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां द्वितीयस्थाने होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ दूतकी परीक्षाका लक्षण ॥

आत्रेय उवाच॥अथातो गदग्रस्तानां दूतारिष्टं भिषग्वर! ॥ शुभं वाशुभमेवान्यत्समासेन प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ आतुरस्योपकारार्थं दूतो याति भिषग्गृहे ॥ तस्य परीक्षणं कार्य्यं येन संलक्ष्यते गदः ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे वैद्यवर! अब रोगोंसे ग्रस्तहुये मनुष्योंका दूतारिष्टको विस्तारसे कहताहूं जो शुभ और अशुभ होता है ॥ १ ॥ रोगीका उपकारके लिये जो दूत वैद्यके घरको जाता है तिसका परीक्षा करनी चाहिये जिस्से रोगका शुभाशुभ मालूम होवै ॥ २ ॥

अथ वर्ज्यदूतके लक्षण ॥

खञ्जान्धमूकबधिरं रुजपीडितं वा बालं स्त्रियञ्च विकलं तृषितं विजीर्णम् ॥ श्रान्तं क्षुधातुरमपि भ्रमितञ्च दीनं दूतं न शस्तमिह वेदविदो वदन्ति ॥ ३ ॥ कषायकृष्णार्द्रकवाससा च तथैव वस्त्रावृतमस्तकेन ॥ अश्रुप्लुतैर्वा नयनैश्च युक्ताः केशैस्तथा मुण्डितमस्तकश्च ॥ ४ ॥ समर्कटाक्षोर्ध्वशिरोरुहश्च खर्वस्तथा वामनकृत्तनासः ॥ एतान्न शंसन्ति विदो

मुनीन्द्रा दूतान्नराणां रुजनाशनाय ॥ ५ ॥ यः कर्कशः क्रोधनपाश पाणिर्भिषग्विदूषी तमसावृतश्च ॥ एते न शस्ताः प्रवदन्ति धीरा दूता विकारञ्च प्रवर्द्धयन्ति ॥ ६ ॥ यः काष्ठहस्तोद्धतपाशपाणिस्तथातुरो दीनवचो हि रोदिति ॥ प्रक्लिन्ननेत्रो गमनोत्सुकोऽपि वर्ज्यो रुगार्त्तोऽशु भकारिदूतः ॥ ७ ॥ यो रज्जुहस्तोद्धतपाशपाणिर्याम्यां दिशञ्च परिभूय तूर्णम् ॥ यो वावदीति प्रबलं सरोषस्तथा समागम्य वदेच्च दूतः ॥ ८ ॥ लगुडं हस्तेऽवष्टभ्य वक्रपादेन तिष्ठति ॥ तस्मादाकुलवादी यो न शस्तो वैद्यकर्मसु ॥ ९ ॥ पथा गच्छति शीघ्रेण आविश्योत्थाय मुह्यति ॥ पादौ प्रसार्य्य विशति मस्तके विन्यसेत्करम् ॥ १० ॥ भिनत्ति लोहका ष्ठञ्च तृणं वा स्फोटते क्वचित् ॥ एतानि स्पृशते नासां स्तनं वा स्पृशति पुनः ॥ ११ ॥ भूमिं लिखति पादेन रेखां वापि करोति यः ॥ निद्रां वा कुरुते यस्तु स दूतोऽनिष्टकारकः ॥ १२ ॥

लंगडा, अंधा, गुंगा, बहिरा, रोगसे पीडित, बालक, स्त्री, विकल, तृषावाला, अतिवृद्ध, परीश्रमको प्राप्तहुआ, भूखसे पीडित और भ्रमवाला और दीन ऐसे दूतको वैद्य श्रेष्ठ नहीं कहते है ॥ ३ ॥ रंगाहुआ और काला और गीला वस्त्रसे युक्त और वस्त्रसे आवृतहुये मस्तकवाला और आंशुओंसे भीजेहुये नेत्रोंवाला और जटाजूटहुआ और मुंडायेंहुये शिरके वालोंवाला ॥ ४ ॥ और वानरकेसे नेत्रोंवाला और ऊपरको खुलेहुये वालोंवाला और ढींगना तथा कटीहुई नासिकावाला ऐसे दूतोंको मुनींद्र रोगका नाशकेलिये श्रेष्ठ नहीं कहते हैं ॥ ५ ॥ जो कठोरहो, क्रोधीहो और फांसीको हाथमें लेनेंवाला और वैद्यको दोष लगानेंवाला और तमोगुणसे संयुक्त ऐसे दूत अच्छे नहीं है किंतु ये दूत विकारको बढाते हैं ॥ ६ ॥ जो काष्ठ-को हाथमें लियेहो और ऊपरको हाथकिये फांसीको ग्रहण करनेंवालाहो, रोगीहो और दीनवचनको बोलके रोताहुआ है और भीजेहुये नेत्रोंवाला हो और गमन करनेंकी इच्छावा-ला हो ऐसा अशुभको करनेंवाला दूत वर्ज्जना चाहिये ॥ ७ ॥ जो रज्जुको हाथमें लेके उप-रको लियेहुयें हो और फांसीको हाथमें लियेहुये हो और जो दक्षिणदिशामें प्राप्तहोके क्रोध-से वारंवार बोले और वैद्यकसेभी दक्षिणदिशामें स्थितहोके बोले ऐसा दूत श्रेष्ठ नहीं है॥ ८ ॥ जो लकडीको हाथमें लेकें डेढेपैरसे स्थितहोवै और बुरे वचनको बोलै ऐसा दूत वैद्यकर्म्ममें श्रेष्ठ नहीं है ॥ ९ ॥ जो मार्गमें शीघ्र गमनको करै बैठता और उठताहुआ मोहको प्राप्त और

पैरोंको पसारकै प्रवेश करै और मस्तकपै हाथको स्थापित करै ॥ १० ॥ लोहा, काठ, तृण, इन्होंमेंसे एककोईसेको भेदित करै अथवा इन्होंको छुहै नासिका और चूंचीको छुहै ॥११॥ पृथिवीको पैरसे खोदै अथवा पृथिवीमें रेखाको करै अथवा नींदको प्राप्तहुआ हो वह दूत बुरा कहा है ॥ १२ ॥

शुभदूतके लक्षण ॥

यः श्वेतवस्त्रावृतपूर्णपाणिः सम्पूर्णताम्बूलमुखः प्रशस्तः॥द्विजस्तथा माण वकः सुशीलः प्रज्ञाधिकश्चाह्वयते सुखाय ॥१३॥ कुसुममुकुरवक्त्रं यस्य स्यात्सर्वदापि श्रमविकचसरोजपद्मकिञ्जल्कपुष्पम्॥ करतलवरवस्त्रं पुष्प पूगाङ्गरागं करतलधृतमेतत्सौख्यकर्त्ता हि दूतः॥१४॥ आगत्योदीच्यपूर्वा मथवरुणदिशमैशीमाश्रित्य शान्तो दृष्ट्वा वैद्यं प्रहस्य प्रवदति निपुणं नातिनीचं नचोच्चम्॥उत्तिष्ठ त्वं प्रसादं कुरु पवन इदं सौख्यवाक्यं तनोति प्राज्ञैःस्वार्थं प्रकृष्टं सुखमगदकरं रोगिणां वैद्यलाभः ॥ १५ ॥ पूर्वां दिशं समासाद्य प्रशान्तः शान्तया गिरा ॥ वैद्यं वदति लाभाय रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥ १६ ॥ यश्चागत्योपविष्टोऽपि श्लोकं वाथ सुभाषितम् ॥ वदते शान्तया वाचा सोऽपि लाभाय शान्तये ॥ १७ ॥ अभिवाद्यस्य वैद्यस्य क्षेमं पृच्छति यः पुनः ॥ फलं ददाति पुष्पं वा रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥ १८ ॥

जो सफेद वस्त्रोंको पहनेंहुये और किसीचीजको हाथमें लियेहुये और नागरपानको मुखमें धारणकिये और ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, इनवर्णोंमें उपजाहुआ और बालक तथा शीलस्वभाव-वाला और बुद्धिमान ऐसा दूत वैद्यको बुलानेंमें सुखको देता है ॥ १३ ॥ जिसका मुख फूल तथा शीसाके समान स्वच्छ सबकालमें रहै और श्रमसे खिलेहुये कमलोंकी केसर और पुष्पों-वालाहो और हस्तोंके तलुओंपरभी वस्त्रको धारणकियेंहो अनेकप्रकारके फूल और सुपारी-करकै रंजितकिये अंगोंवालाहो अथवा फूल और सुपारीको हाथमें धारणकियेंहो ऐसा दूत सुखको देनेंवाला है ॥ १४ ॥ जो आकै उत्तरको, व पूर्वको, व पश्चिमकों, व ईशानदिशामें बैठ और वैद्यको देख हसताहुआ न ज्यादै ऊंचेप्रकारसे और न ज्यादै नीचेप्रकारसे बोलै कि हेवैद्यराज ! उठकै प्रसन्नता करो ऐसे शुभवचनको कहै ऐसा दूत रोगियोंके रोगको नाशनेंके लियें शुभ कहा है॥१५॥जो पूर्वदिशामें आश्रित होकै प्रशांतहुवा दूत शांतवाणीसे वैद्यको बोलता है वह दूत वैद्योंको सुखका देनेंवाला कहा है ॥१६॥ जो आकै श्लोकको अथवा सुंदर वच-

नको शांतवाणीसे बोलै वहभी दूत शुभ कहा है ॥१७॥ जो दूत वैद्यको प्रणामकर फिर कुश-लको पूछ फलको अथवा फूलको देता है वह रोगियोंके सुखका देनेंवाला है ॥ १८ ॥

अथ दूतलक्षणोंका उपसंहार ॥

यस्य सौख्यं सुखं सिद्धिस्तस्य दूता इदं विदुः ॥ किमत्र बहुनोक्तेन दूतो नरसुखावहः ॥ १९ ॥ न हितमस्त्रीपुरुषं तस्मात्तु परिवर्जयेत् ॥ एवं जानाति यो वैद्यस्तस्य सिद्धिः सुखं श्रियः ॥ २० ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने दूतपरीक्षणलक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥

जिसरोगीको सुख और सिद्धिकी प्राप्ति होनेंवाली है तिसके दूत इस पूर्वोक्त वचनको बोलते है ज्यादे कहनेंसे क्याहै दूतही मनुष्यको सुखका देनेंवाला है॥१९॥ हीजडादूत कर्ममें हित नहीं है तिस्से इसको वर्ज्जै ऐसे जो वैद्य जानता है तिसको सिद्धि, सुख, लक्ष्मी, इन्होंकी प्राप्ति होती है ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारी-तसंहिताभाषायां द्वितीयस्थाने दूतपरीक्षालक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ शकुनवर्णन ॥

आत्रेय उवाच ॥ इदानीं निर्गमे पुत्र ! प्रवेशे वा गृहस्य च ॥
शुभाशुभानि सर्वाणि वक्ष्यामि शकुनानि च ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! अब वैद्यके चलनेंमें और रोगीके घरमें प्रवेश करनेंमें शुभ और अशुभ जो शकुन हैं तिन्होंको कहताहूं ॥ १ ॥

अथ शुभ शकुन ॥

राजा गजो द्विजमयूरकखञ्जरीटाश्वाषः शकुन्तरजकः सितवस्त्रयुक्तः ॥ पुत्रान्विता च युवती गणिका च कन्या श्रेयःसुखाय यशसे प्रतिदर्शयन्ति ॥ २॥ लट्वा श्येनो भासहारीतचक्रो भारद्वाजश्छिक्करश्छागसंज्ञः ॥ एते श्रेष्ठा दक्षिणे सव्यवामे वैद्यावेशे निर्गमे श्रेयसे च ॥ ३ ॥

राजा, हस्ती, ब्राह्मण, मोर, खंजना, पपैय्या, सफेदवस्त्रोंवाला, धोबी, पुत्रसे युक्तहुई स्त्री, वेश्या, कन्या, प्रथम देखेहुये ये शकुन यशको और सुखको देते हैं॥ २ ॥ गाममें रहनेंवाली चिडिया, शिकरा, भासपक्षी, तिलगिरुपक्षी, चकुवा, मुर्गाविशेष, छिक्कर, बकरा, ये सब वैद्यके चलनें और प्रवेश करनेंमें दाहिने और वामें श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

अथ दुष्ट शकुन ॥

सर्पोलूको वानरः सूकरश्च गोधा ऋक्षः कृकलासः शशश्च ॥ एतेऽरिष्टा निर्गमे वा प्रवेशे कार्य्ये निर्घातोपकारेषु शस्ताः ॥ ४ ॥

सर्प, उल्लू, वानर, शूकर, गोह, रीछ, किरलिया शशा, ये सब वैद्यके गमन और प्रवेशमें अच्छे नहीं है और घात करनेंके कार्य्यमें येभी शकुन अच्छे हैं ॥ ४ ॥

अथ मृगादिकोंका शकुन ॥

मृगो वा पिङ्गलो वापि प्रशस्तो दक्षिणे सदा ॥
निर्गमे वा प्रवेशे च दक्षिणे शुभदायकः ॥ ५ ॥

मृग अथवा उल्लू सबकालमें दाहिनें श्रेष्ठ है और वैद्यके गमनमें तथा प्रवेशमेंभी दाहिनेंही शुभको देते हैं ॥ ५ ॥

अथ मृगोंके संख्याका शकुन ॥

एको वा त्रयो वा पञ्च सप्त वा नवसंख्यया ॥
भाग्यकाले नराणान्तु मृगा यान्ति प्रदक्षिणाः ॥ ६ ॥

एक अथवा तीन अथवा पांच अथवा सात अथवा नव ऐसी संख्याके मृग मनुष्योंके भाग्यकालमें दाहिनें गमन करनेंवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

अथ मोरआदिकोंका शकुन ॥

शिखी च भवनगोधा रासभो भृङ्गराजः पिकभषणकपोताः पोतकी सूकरी वा ॥ तदनु विहगराजो दीर्घकण्ठादयः स्युर्वदति शकुनवेत्ता वामतो निर्गमे वा ॥ ७ ॥ तित्तिरः क्रकरः क्रौञ्चसारसा भाससूकराः ॥ खगः किरीटी वामे तु सदा शुभतरा मताः ॥ ८ ॥ भवन्ति निर्गमे चैते सर्वकार्य्यसुसिद्धये ॥ ९ ॥

मोर, घरमें रहनेंवाली गोह, गधा, धूम्याटपक्षी, कोयल, कुत्ता, कबूतर, कालीचिडी, शूरी, नीलटांच, अथवा गीध, बगला इनआदि वैद्यके गमनमें वामें श्रेष्ठ हैं ऐसे शकुनको जाननेंवाले कहते हैं ॥ ७ ॥ तीतर, करढौकपक्षी, कुंज, सारस, भास, शूर, चील, किरीटी, ये पक्षी सबकालमें वामें श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥ ये सब वैद्यके गमनमें सर्वकार्यसिद्धिकेवास्ते श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥

अथ काकशकुन ॥

काको दक्षिणतः श्रेष्ठो निर्गमे शुभदायकः ॥
प्रवेशे गदितः श्रेष्ठो वामतः कृष्णवायसः ॥ १० ॥

वैद्यके गमन करनेंमें काक दाहिनें श्रेष्ठ और शुभदायक है और वैद्यके प्रवेशमें काला-काग बामे श्रेष्ठ कहा है ॥ १० ॥

अथ जाहशशाआदिकोंका शकुन ॥

जाहकोऽपि शशकोऽपि मर्कटःकीर्त्तनञ्च गदितं न सुखाय ॥ न वै नाम न च दर्शनमेषां सर्पगोधाकृकलासबिडालाः ॥ ११ ॥ दर्शनं हितकरं प्रवदन्ति खञ्जरीटकमरालछिक्कराः ॥ नामतः शुभकराः प्रवदन्ति दार्वघाटचरटकौ शुकश्च ॥ १२ ॥

जहा, शशा, वानर, और इन्होंका कीर्तन करना, बोलना, और सर्प, गोह, किरलिया, बिलाव, इन्होंका नाम और देखनाभी हित नहीं है ॥ ११ ॥ खंजना, राजहंस, खातीचिडा, गांधीलमाखी, तोता, इन्होंके नाम और दर्शन वैद्यको श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

अथ गमनसमयके विविधपदार्थदर्शनशकुन ॥

निर्गमे विविधकार्य्यसिद्धये भृङ्गराजरजतं पयो जलम् ॥ मत्स्यमांसरुधिरं मृतकं वा धौतवासमुकुरं पिधानकम् ॥१३॥ मार्गं छिन्दन्ति मार्जाराः सर्पा वा कृकलासकाः ॥ गोधा वापि प्रवेशे च पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥१४॥ प्रस्खलन्ति पादशिरसो वसनानि स्खलन्ति वा ॥ विक्रुष्टं वचनं श्रुत्वा पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥ १५ ॥ गृहाणां ज्वलनं दृष्ट्वा भिद्यते सजलं घटम् ॥ पतनं भूरुहाणाञ्च दृष्ट्वा कुर्य्यान्न चङ्क्रमम् ॥ १६ ॥ आक्रोशवचनं श्रुत्वा मार्जाराणां रुतं तथा ॥ कलहं गृहलोकस्य दृष्ट्वा चङ्क्रमणं न च ॥ १७ ॥ कनककङ्कणमेव विभूषणं सफलपुष्पमथासववारुणी॥ फलमशोककरं ज्वरिणां तदा शुभकरो हि भवति भिषक् सदा ॥ १८ ॥

वैद्यके गमनमें अनेक कार्योंकी सिद्धिके लिये भोरा, चांदी, दूध, पानी, मछली, मांस, रक्त, मुरदा, धोयाहुआ वस्त्र, आच्छादितहुआ शीशा, इन्होंको देखना हित है ॥ १३॥ वैद्यके प्रवेश करनेंमें बिलाव, सर्प, किरलिया, गोह, ये मार्गको छेदितकरैं तब एकपैरभी नहीं चलना

॥ १४ ॥ पैर और शिथिल होजावै अथवा कपडे ढीले होजावैं और बुराबचन, सुनाजावै तब एकडंघभी गमन नहीं करना ॥ १५ ॥ गमनकरनेंमें जलताहुआ घर दीखै और पानीसे भराहुआ कलशा फूटजावै और वृक्ष गिरपडै इन्होंको देखकर गमन नहीं करना ॥ १६ ॥ क्रोधके वचनको और बिलावके रोदनको और मनुष्योंके कलह अर्थात् लडाईको देखकर गमन नहीं करना ॥ १७ ॥ सोनाका कंकणआदि गहना, फल, फूल, आसव, मदिरा, सुखको देनेंवाला, फल इन्होंको जो वैद्य गमनमें देखै तो ज्वर रोगियोंको सुख होता है ॥ १८ ॥

अथ शकुनाध्यायका उपसंहार ॥

एवं ज्ञात्वा परमनिपुणं पानमन्नादिकानां वीर्य्यं चैषां गुणमपि तथा कोपनं कोपवेगम् ॥ आदानं वा पुनरपि चयं कोपनस्योपचारं वैद्यो विद्वान्भवति भवने पूजितो राजलोकैः ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने शकुनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९॥ द्वितीयं स्थानं समाप्तम् ॥ २ ॥

ऐसे परमनिपुण पानको और अन्नआदिके वीर्य तथा गुणको और कोपको और कोपके वेगको और आदान और चयको और कोपनके उपचारको जानकै वैद्य स्थानमें राजालोगोंसे पूजाके योग्य होता है ॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां द्वितीयस्थाने शकुनकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां द्वितीयस्थान समाप्तहुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्थानम् ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः॥१॥

अथ औषधपरिज्ञानविधान ॥

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि रोगसङ्करकारणम् ॥ श्रमाद्वा यामरोधाद्वा चिन्ताशोकभयादपि ॥ १ ॥ क्रोधादौषधगन्धेन क्षयाद्धातो र्विशेषतः ॥ उदीर्य्य कोष्ठादग्निश्च रक्तपित्तं तथा बहिः ॥ त्वचाश्रितश्च स म्भूय ज्वरं तस्मात्करोति हि ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–अब रोगोंके मिलापके कारणको कहताहूं परिश्रमसे और कसरतको नही करनेंसे और चिंता, शोक, भय, इन्होंसे ॥ १ ॥ और क्रोधसे और ओषधीके गंधसे और विशेषकरकै धातुके क्षयसे कोष्ठके अग्निको बढाकै और खालके बाहिर आश्रितहुये रक्तपित्तको तिरस्कृतकर बस्तिसे ज्वरको करता है ॥ २ ॥

अथ ज्वरसें उत्पन्न होनेंवाले रोग ॥

उक्तहेतुर्ज्वरो वापि ज्वरान्मन्दज्वरो भवेत् ॥ ३ ॥ मन्दान्मन्दतमो ज्ञेयस्त स्मादम्लातिसेवनात् ॥ जायते कामलस्तस्मात्प्ररूढे स्याद्धलीमकम् ॥ ४ ॥ हलीमकाद्भवेत्पाण्डुस्तस्माद्यस्मात्प्रकीर्त्तिताः ॥ यक्ष्मणो जा यते शोफः शोफादुदरमेव च ॥ ५ ॥ तस्माद्गुल्मश्च वाताद्यं गुल्माच्छ्वा सोऽथ शूलिना ॥ मन्दाग्नित्वं भवेत्तस्मात्स्वरभेदोऽथ रोधनः ॥ ६ ॥ एतेषां सर्वरोगाणामुत्पत्तिः स्याज्ज्वरेण तु ॥ ज्वरेण मृत्युर्विज्ञेयो न मृत्युः स्याज्ज्वरं विना ॥ ७ ॥

ऐसे कहेहुये कारणवाला ज्वर है तिस ज्वरसे मंदज्वरभी होता है ॥ ३ ॥ और मंदज्वरसे अतिमंदज्वर होता है तब खट्टे पदार्थको अत्यंत सेवनेसे कामलारोग उपजता है और तिस्से हलीमकरोग उपजता है ॥ ४ ॥ और हलीमकसे पांडुरोग उपजता है राजरोगसे शोजारोग उपजता है और शोजारोगसे उदररोग उपजता है ॥ ५ ॥ तिस उदररोगसे वातका गुल्मरोग उपजता है और गुल्मसे श्वासरोग और शूल उपजता है तिस शूलसे मंदाग्निरोग और मंदा-

ग्निसे स्वरभेदरोग उपजता है ॥ ६ ॥ ज्वरसे सब रोगोंकी उत्पत्ति होती है ज्वरसे मृत्यु होता है विशेषकरकै ज्वरकेबिना मरण नहीं होता है ॥ ७ ॥

अथ ज्वरसें उत्पन्न होनेंवाले अन्यप्रकारके रोग ॥

शृणु भेषजरोगज्ञ ! द्वितीयं रोगसङ्करम् ॥ मन्दज्वरो भवेन्नॄणामतीसारस्ततो ज्वरः ॥ ८ ॥ तेन चापि भवेद्धिक्का शोषो मोहो भ्रमोऽरुचिः ॥ एतेषां शोफतो मृत्युस्तृतीयः कथ्यतेऽधुना ॥ ९ ॥

हे औषध और रोगको जाननेंवाले! दूसरे रोगसंकरको सुन मनुष्योंके मंदज्वर होता है तिस्से अतीसार उपजता है ॥ ८ ॥ और तिस्से हिचकी, शोष, मोह, भ्रम, अरुचि, ये रोग उपजते हैं इनसबोंकी शोजासे मृत्यु होता है अब तिसरा रोगसंकर कहाजाता है ॥ ९ ॥

अथ दिनमें शयनकरनेसे होनेवाले रोग ॥

दिवास्वप्नादिदोषैर्वा प्रतिश्यायश्च जायते॥ तस्मात्कासः समुद्दिष्टः कासात्पीनस एव च ॥ १० ॥ तस्मात्क्षयः क्षयाच्छोफो शोफेनाऽपि मृतिं व्रजेत् ॥

दिनमें शयन करनेंआदिसे जुखाम उपजता है तिस जुखामसे खांसी और खांसीसे पीनस उपजता है ॥ १० ॥ और पीनससे क्षय और क्षयसे शोजा उपजता है और शोजासे मरजाता है.

अथ महाभयंकर रोग ॥

ज्वरः क्षयश्च यक्ष्मा च कुष्ठगुल्मार्शःसंग्रहाः ॥ ११ ॥ शर्करा मेह उन्माद अपस्मारो भगन्दरः॥एते महाघोरतरा याप्यं कुर्वन्ति मानवम्॥१२॥

और ज्वर, क्षय, राजरोग, कुष्ठ, गुल्म, ववासीर, ॥ ११ ॥ शर्करा, प्रमेह, उन्माद, मृगीरोग, भगंदर, ये अत्यंतमहाघोर रोग है ये मनुष्यको कष्टसाध्य करदेते हैं ॥ १२ ॥

अथ सर्वव्याधियोंका हेतु ॥

वातपित्तादयो दोषास्तथा श्लेष्मसमुद्भवाः ॥
जायन्ते व्याधयः सर्वे तेषां वक्ष्याम्युपक्रमम् ॥ १३ ॥

वात और पित्तसे तथा कफसे उपजे सब रोग होते हैं तिन्होंके उपचारको कहताहूं॥१३॥

अथ वातादिदोषोंका पाचनकाल ॥

वातः पचति सप्ताहात्त्रिरात्रात्पित्तमेव च ॥ श्लेष्मा सार्द्धदिनेनापि विपचेद्भिषजां वर ! ॥ १४ ॥ द्वन्द्वजं वातपित्तञ्च नवरात्रेण पच्यते ॥ श्ले

ष्मवातौ दशाहेन पञ्चाहात्पित्तश्लैष्मिकम् ॥ १५ ॥ शमनाय च द्वन्द्वानां तुर्य्याहात्पाचनं तथा ॥ त्रिदोषस्य च घोरस्य पाचनं द्वादशे दिने ॥ १६ ॥ सन्निपातश्च पचति चतुर्दशदिनैरपि ॥

वातदोष सातदिनमें पकता है पित्तदोष तीनदिनमें पकता है हे वैद्यवर! कफदोष डेढदिनमें पकजाता है॥१४॥ मिलेहुये वात पित्त ९नवदिनोंमें पकते हैं मिलेहुये कफ और वात दशदिनमें पकते हैं मिलेहुये पित्त और कफ पांचदिनमें पकते हैं ॥ १५ ॥ मिलेहुये दो दोषोंकी शांतिके लिये च्यार दिनमें पाचन हित है और घोररूपत्रिदोषमें बारमेंदिन पाचन हित है ॥ १६ ॥ चौदहदिनोंकरकै सन्निपात पकता है.

अथ पाचनादिक्रियांका समय ॥

ज्ञात्वा दोषबलं पक्कं तस्माद्देयन्तु पाचनम् ॥ १७ ॥
युक्तं निदानलक्षैस्तु तस्मात्संशमनक्रिया ॥

सो दोषका पाकके बलको जान पीछे पाचन देना चाहिये ॥ १७ ॥ निदानके लक्षणोंसे युक्तहुयेको जान पीछे संशमनक्रिया करनी.

अथ धातुगतदोषोंका पाचनकाल ॥

सप्ताहेनापि पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः ॥ १८ ॥ चिरादपिहि पच्यन्ते सन्निपातज्वरे मलाः ॥ विरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ न भवेत्सप्तमेऽहनि विरामज्वरकारणम् ॥ १९ ॥

और सातधातुओंमें प्राप्तहुये दोष सातदिनोंमें पकजाते हैं ॥ १८ ॥ विशेषकरकै आठमेंदिन ज्वरका विराम होता है कारण सातमेंदिन ज्वरकी शांतिका कारण नहीं होता॥१९॥

अथ अपक्कदोषमें औषधका निषेध॥

विचार्य्य भेषजं दद्यादजीर्णे मतिमान्भिषक् ॥
मन्दो हि सुतरामग्निर्भैषजं न विपाचयेत् ॥ २० ॥

तब विचारकर बुद्धिमान् वैद्य औषधको नवीनज्वरमेंही देवै क्योंकि अतिमंदहुआ तिन्होंके अग्नि औषधको नहीं पकाता है ॥ २० ॥

अथ लङ्घनका उपचार॥

सर्वेषु दोषशामेषु पाचनं लङ्घनं स्मृतम् ॥

इसवास्ते सबप्रकारसे दोषको शांतकरनेंके लिये पाचनही लंघन कहा है ॥

अथ लंघनप्रकरण ॥

लङ्घितं मध्यलङ्घितं स्यादतिलङ्घितमेव च ॥ २१ ॥
लक्षणं वक्ष्यते चैषां मनुष्याणां शृणुष्वहि ॥ २२ ॥

मनुष्योंके लंघन, मध्यलंघन, अतिलंघन, इनभेदोंसे लंघन, तीनप्रकारका है ॥ २१ ॥ इन्होंके लक्षण कहेजाते है वे मेरेसे सुन ॥ २२ ॥

अथ शुद्धलंघितका लक्षण ॥

गतक्लमो रुचिर्म्लानिरिन्द्रियाणां प्रसन्नता ॥
लङ्घने दोषपाकस्तु शुद्धलङ्घितलक्षणम् ॥ २३ ॥

ग्लानि जातीरहै रुचि उपजै और इंद्रियोंकी प्रसन्नता रहै और लंघनमें दोष पकजावै ये शुद्धलंघनके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

अथ मध्यमलंघितका लक्षण ॥

किञ्चित्क्लमो रुचिर्ग्लानिरिन्द्रियाणां विवर्णता ॥ बहुतृष्णाल्पक्षुच्चापि श्रमश्चैव भिषग्वर ! ॥ २४ ॥ किञ्चित्संस्निग्धता गात्रे रुचिबाधातिबन्धता ॥ मध्यपाकी च दोषः स्यान्मध्यलङ्घितलक्षणम् ॥ २५ ॥

कछुक ग्लानि रहै रुचिभी अल्पहो इंद्रियोंका वर्ण बदलजावै बहुत तृषा लगै और भूख लगै नहीं और परीश्रम उपजै ॥ २४ ॥ और शरीरमें कछुक चिकनाईपना उपजै रुचिकी पीडा हो और बंधापडजावै और दोषभी कछुक पकै और कछुक नहीं पकै ये मध्यलंघितके लक्षण है ॥ २५ ॥

अथ अतिलङ्घितका लक्षण ॥

वैकल्यं जायते तन्द्रा विड्भेदश्च विनिद्रता ॥ वेपथुश्च शिरोऽर्त्तिश्च क्षुत्क्षामं शूलमेव च ॥ २६ ॥ श्यावास्यं प्लावनं नेत्रे मूर्च्छामोहश्रमातुरम् ॥ अतिलङ्घितमेतैस्तु लक्षणं संविभावयेत् ॥ २७ ॥

विकलपना, तंद्रा, विष्ठाका पतलापन, ये उपजैं और नींद आवै नहीं, कांपै और पैरमें दर्दहो अल्प भूख लगै और शूल उपजै ॥ २६ ॥ कालामुख होजावै और नेत्रोंसे पानी-झिरै, और मूर्च्छा, मोह, परिश्रम, इन्होंसे पीडितहो ये सब लक्षण अतिलंघनके हैं ॥ २७ ॥

अथ लंघितकरनेंमें अयोग्य रोगी ॥

वेलाज्वरे भूतज्वरे तथा पितज्वरेऽपि च ॥ आयासे क्रोधजे वापि भय कामज्वरेऽपि च ॥ २८॥ एतेषां लङ्घनं नैव कारयेद्भिषगुत्तमः ॥ २९ ॥ बालं वृद्धं कृशं क्षीणमतीसारव्रणातुरम् ॥ गुर्विणीं सुकुमारञ्च न लङ्घये त्कदाचन ॥ ३० ॥

वेलाज्वर, भूतज्वर, पित्तज्वर, परिश्रमका ज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर, कामज्वर, ॥ २८ ॥ इन्होंमें वैद्य लंघन नहीं करावै ॥ २९ ॥ बालक, वृद्ध, कृश, क्षीण, अतीसाररोगी, घावरोगी, गर्भवाली स्त्री, कोमल मनुष्य, इन्होंको कभीभी लंघन नहीं कराना ॥ ३० ॥

अथ लंघनकरनेंयोग्य रोगी ॥

सामे मन्दज्वरे तीव्रे रुचिविड्बन्धकेऽपि च ॥ अजीर्णे तु प्रशस्तञ्च लङ्घनं मात्रयान्वितम् ॥ ३१ ॥ स्निग्धत्वञ्चातिगात्राणामुदरं गर्जयेद्भृशम् ॥ शिरोऽर्त्तिर्जठराध्मानः प्रततं कण्ठकूजनम् ॥३२ ॥ अरुचिः पीतता मूत्रे निद्रातन्द्रातुरं नरम् ॥ आमज्वरञ्च विज्ञाय लङ्घयेद्भिषगुत्तमः ॥ ३३ ॥

आमसहित मंदज्वर, तीक्ष्णज्वर, अरुचि, विष्ठाका बंधा, अजीर्ण, इन्होंमेंभी उनमानसे लंघन कराना श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ शरीरके अंग अत्यंत चिकने होजावै और पेट अत्यंत बोलै शिरमें पीडाहो और पेटपै अफारा उपजै और निरंतर कंठ बोलता रहै ॥ ३२ ॥ और अरुचि हो नेत्रोंमें पीलापन उपजै नींद और तंद्रासे रोगी पीडित होवै ये आमज्वरके लक्षण हैं इस रोगवालाको कुशल वैद्य लंघन करवावै ॥ ३३ ॥

अथ छःप्रकारके लंघन ॥

अनशनवमनविरेचनरक्तस्रुतितप्ततोयपानैः ॥
स्वेदनकर्मसहितैः षड्विधं लङ्घनं गदितम् ॥ ३४ ॥

नहींखाना, वमन, जुलाब, रक्तका निकासना, गर्मपानीको पीना, स्वेद अर्थात् पसीनाका देना इनभेदोंसे लंघन छःप्रकारका कहा है ॥ ३४ ॥

अथ विरतज्वरलक्षण ॥

क्षुत्क्षामं श्रमशैथिल्यं भ्रमवेगज्वरातुरम् ॥
अन्तर्दाहं रक्तमूत्रं विरामज्वरलक्षणम् ॥ ३५ ॥

भूख थोडी लगै श्रमसे शिथिलपनाहो और भ्रम, वेग, ज्वर, इन्होंसे रोगी पीडितहोवै और शरीरके भीतर दाह रहै और लालमूत्र उतरै ये विरामज्वरके लक्षण हैं अर्थात् ये लक्षण उपजैं तब जाननाकि ज्वर उतरनेंवाला है ॥ ३५ ॥

अथ दोषपरत्वसें लंघनकी मर्यादा ॥

वातिको लङ्घनैः षड्भिः पैत्तिकस्तु दिनत्रयम् ॥ सप्तभिः पचते श्लेष्मा दृष्ट्वा लङ्घनमाचरेत् ॥ ३६ ॥ त्रिदोषो दशरात्राणि पचते लङ्घनैस्तु सः ॥ दिने पञ्चदशे प्राप्ते पचते सान्निपातिकः॥३७॥ मुञ्चेद्वा आतुरं हन्ति भवेद्वा विषमज्वरः ॥

वातदोष छः लंघनोंसे पकता है पित्तदोष तीनदिनमें पकता है कफदोष सातलंघनोंसे पकता है ऐसे देखकै लंघनका आचरण करै ॥ ३६ ॥ त्रिदोष लंघनोंसे दशदिनकरकै पकता है और पंदरहदिनोंकरकै सन्निपातदोष पकता है ॥ ३७ ॥ इनकालोंमें ये दोष रोगीको छोडदेते हैं अथवा मारते हैं किंवा विषमज्वरको उपजाते हैं.

अथ वयपरत्वसें दोषोंके कोपका प्रकार ॥

बाल्ये रक्तमया दोषाः कफपित्तादनंतरम् ॥ ३८ ॥ षोडशे तु समे प्राप्ते त्रिदोषप्रभवा गदाः ॥ पञ्चविंशतिमे प्राप्ते ज्वरो वै सान्निपातिकः ॥३९ ॥

मनुष्यकी बालकअवस्थामें रक्तकी प्रधानतावाले दोष रहते है पीछे कफ और पित्तकी अधिकतावाले दोष होजाते हैं ॥ ३८ ॥ सोलमावर्ष प्राप्त होतेंही सन्निपातसे रोग उपजते हैं और विशेषकरकै पच्चीसवर्षतक सन्निपातसे ज्वररोग उपजता है ॥ ३९ ॥

अथ ज्वरवालेकूं क्काथ देनेंका समय ॥

वातपित्तकफैरेव रसरक्तसमुच्चयात् ॥
जायते यो ज्वरः सम्यक् पक्के क्काथं तु दापयेत् ॥ ४० ॥

वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, इन्होंके संचयसे जो ज्वर उपजै वह जब अच्छीतरह पकजावै तब क्काथको देवै ॥ ४० ॥

अथ क्काथका प्रकार ॥

क्काथः सप्तविधः प्रोक्तः पाचनः शमनस्तथा ॥
दीपनः क्लेदनः शोषी सन्तर्पणो विशेषतः ॥ ४१ ॥

पाचन, शमन, दीपन, क्लेदन, शोषण, संतर्पण इनभेदोंसे क्काथ सातप्रकारका कहाहे॥४१॥

अथ सातप्रकारसें क्वाथ देनेंका समय ॥

पाचनश्च नरे देयं निशासु प्रविजानता ॥ पूर्वाह्ने शमनो देयोऽपराह्ने दीपनः स्मृतः ॥ ४२ ॥ सन्तर्पणो भेदनश्च कल्ये पानाय दापयेत् ॥ शोषणोपि प्रभाते च क्वाथः पाने प्रकीर्त्तितः ॥ ४३ ॥

वैद्यनें पाचनक्वाथ रात्रिमें देना और शमनक्वाथ दिनके प्रथमकालमें देना और दुपहराके पश्चात् दीपनक्वाथ देना ॥ ४२ ॥ संतर्पण और भेदनक्वाथ प्रभातमें देना और शोधनक्वाथभी प्रभातमेंही देना ॥ ४३ ॥

अथ औषधादिक देनेंके समयकी संज्ञा ॥

रात्रौ यः प्रथमो यामो भूतवेला प्रकीर्त्तिता ॥ द्वितीयं निशि इत्याहुर्निशीथश्च ततः परम् ॥ ४४ ॥ गणरात्रं ततो ज्ञेयं कालमप्राप्तराशिनम् ॥ पूर्वापराह्नमध्याह्नाः परार्द्धदिनशेषकाः ॥ ४५ ॥ पूर्वे दिनावसाने च भेषजानामुपक्रमः ॥ ४६ ॥

रात्रीके प्रथम यामको भूतवेला कहते हैं और दूसरे यामको निशि कहते हैं और तिस्सेपरै निशीथ कहाता है ॥ ४४ ॥ तिस्सेपरै गणरात्र कहाता है और पूर्वाह्न, मध्यान्ह, अपराह्न, परार्द्ध, दिनशेष ऐसी संज्ञा है॥४५॥प्रभातमें और सायंकालमें ओषधियोंका उपचार है॥४६॥

अथ क्वाथके सात प्रकार ॥

पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा ॥
तर्पणः क्लेदनः शोषी क्वाथः सप्तविधः स्मृतः ॥ ४७ ॥

पाचन, दीपन, शोधन, शमन, तर्पण, क्लेदन, शोषण, ऐसे सातप्रकारके क्वाथ कहे हैं॥४७

अथ सातप्रकारके क्वाथोंका लक्षण ॥

पाचनोऽर्द्धावशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः ॥ क्लेदनश्चतुरङ्गश्च शमनोऽष्टावशेषितः ॥ ४८ ॥ दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च समांशकः ॥ विशोषी षोडशांशश्च क्वाथभेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ४९ ॥

अग्निसे उबालनेंमें आधा शेष रहा पानी पाचनक्वाथ कहाता है और जिसमें बारमा हिस्सा पानी शेष रहै वह शोधन कहाता है जिसमें चौथाहिस्सा पानी शेष रहै वह क्लेदन कहाता

है जिसमें आठमांहिस्सा पानी शेषरहै वह शमन कहाता है ॥ ४८ ॥ जिसमें दशमाहिस्सा पानी शेष रहै वह दीपन कहाता है जो उवाला मात्र जावै वह तर्पण कहाता है जिसमें सोलमाहिस्सा पानी शेष रहै वह शोषण कहाता है ऐसे काथके भेद कहे हैं ॥ ४९ ॥

अथ सातप्रकारके काथोंका कार्य ॥

पाचनः पचते दोषान्दीपनो दीप्यते मलम् ॥ शोधनो मलशोधी स्याच्छमनः शमते गदान् ॥ ५० ॥ तर्पणस्तर्पते धातून्क्लेदी हृत्क्लेदकारकः ॥ विशोषी शोषमाधत्ते तस्मात्काथं परीक्षयेत् ॥ ५१ ॥ क्लेदी विशोषी विज्ञाय वामनं कारयेन्नरम् ॥

पाचनकाथ दोषोंको पकाता है दीपनकाथ मलको प्रज्वलित करता है शोधनकाथ मलको शोधता है शमनकाथ रोगोंको शांत करता है ॥ ५० ॥ तर्पणकाथ धातुओंको तृप्त करता है क्लेदनकाथ हृदयमें क्लेदको करता है शोषणकाथ शोषको करता है तिसवास्ते काथकी परीक्षा करनी ॥ ५१ ॥ मनुष्यको क्लेदवाला और विशेषकरकै शोषवाला जानकै वमन कराना चाहिये

अथ काथरक्षणका उपदेश ॥

न लङ्घयेत्काथकृतं नान्तराणि च चालयेत् ॥ ५२ ॥ न शोषयेत्पुनः स्थाप्यो नाशुचौ न चकासते ॥ स च काथो न शस्तः स्याद्रोगसङ्करकारणम् ॥ ५३ ॥ न शोषयेत्पुनः काथं न च भूमिगतं पुनः ॥ दोषसंशमनेनैते प्रशस्ता गदकर्मणि ॥ ५४ ॥

और बनतेहुये काथको त्याजै नहीं और बीचमें चलावै नहीं किंतु यथायोग्य पकावै ॥ ५२ ॥ स्थापित किये काथको फिर शोषित करै नहीं और अशुद्ध जगहमें काथको बनावै नहीं क्योंकि अयोग्य काथ अच्छा नहीं होता किंतु रोगोंके मिलापका कारण होता है ॥ ५३ ॥ काथको फिर शोषित नहीं करै और पृथिवीमें प्राप्तहुये काथको फिर नहीं ग्रहण करै क्योंकि रोगके नाशमें दोषको शांत करनेंकरकै काथ श्रेष्ठ है ॥ ५४ ॥

अथ काथसंबंधी अनिष्ट लक्षण ॥

विदीर्य्यते पततेऽपि स्फुटते काथतो जनः ॥
एतेऽनिष्टकराः काथा न दोषशमनाय च ॥ ५५ ॥

बुरे काथसे रोगी विदीर्ण होजाता है गिरजाता है और फटजाता है ये बुरे काथ दुःखको देते है और दोषको शांत नहीं करते ॥ ५५ ॥

अथ हीनक्काथके लक्षण ॥

एतैर्हिलक्षणैर्हीनं क्काथं दृष्ट्वा परीक्षयेत् ॥ ५६ ॥ कृष्णं नीलं घनं रक्तं पिच्छिलं शिथिलञ्च यत् ॥ दग्धं कुणपगन्धञ्च विस्रगन्धं विवर्जयेत् ॥ ५७ ॥ एतैरसाध्यं जानीयाद्रोगिणां नात्र संशयः ॥

इनपूर्वोक्तलक्षणोंसे हीनहुये क्काथकी परीक्षा करनी ॥ ५६ ॥ काला, नीला, कठिन, लाल, झांगोंवाला, शिथिल, दग्धहुआ, मुर्दोंकेसी गंधवाला, कच्ची गंधवाला, ऐसे क्काथको वर्ज्ज देवै ॥ ५७ ॥ इसतरहके क्काथोंसे रोगी असाध्य होजाता है इसमें संशय नहीं ॥

अथ उत्तमक्काथका लक्षण ॥

द्रव्यगुणानुवर्णेन द्रव्यगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ५८ ॥
तद्वद्विशुद्धं संच्छायं कषायममृतोपमम् ॥

द्रव्यके गुणका अनुबंधसे द्रव्यके गंधको कहै ॥ ५८ ॥ विशेषकरकै शुद्ध और सुंदर कांतिवाला क्काथ अमृतके समान होता है.

अथ वातज्वरमें पाचनका विधि ॥

वातज्वरे लङ्घनान्ते दत्त्वा चान्नं तथोपरि ॥
निशासु पाचनं देयं ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ ५९ ॥

वातज्वरमें लंघनके अंतमें अन्नको देवै और तिसके ऊपर क्काथको देवै परंतु दोषके बल और अबलको देखै ॥ ५९ ॥

अथ पित्तज्वर और कफज्वरमें पाचनका विधि ॥

त्रिरात्रे पैत्तिके देयं श्लैष्मिके प्रथमेऽहनि ॥

पित्तके ज्वरमें तीसरेदिन और कफज्वरमें प्रथमदिन पाचन देना.

अथ पाचनका निषेध ॥

अविज्ञाते च दोषे च पाचनं न प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

और बिनाजानेदोषमें पाचन नहीं देना ॥ ६० ॥

अथ ज्वरकी मर्यादा ॥

सप्तरात्राद्धि मर्य्यादा ज्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥
तस्मान्नवज्वरे पीतं दोषकृन्न च दोषहृत् ॥ ६१ ॥

ज्वरकी मर्यादा सातदिनकी प्रसिद्ध है तिसवास्ते नवीनज्वरमें पानकिया पाचनरूपी ओषध दोषको करता है किंतु दोषको हरता नहीं है ॥ ६१ ॥

अथ ज्वरमें पाचनादिदेनेंकी मर्यादा ॥

तस्मादादौ प्रदेयन्तु पाचनञ्च दिनत्रयम् ॥ शमनीयं प्रदेयन्तु पञ्चरात्रं ततः परम् ॥ ६२ ॥ शोधनं दीपनीयन्तु एकरात्रं प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥

तिस्से आदिमें तीनदिन पाचनको देवै तिस्सेपीछै पांचरात शमनक्काथको देवै ॥ ६२ ॥ शोधन और दीपनक्काथको एकदिन देवै ॥ ६३ ॥

अथ क्काथके विपत्तिका प्रकार ॥

क्काथपाने क्लमो मूर्च्छा वैक्लव्यञ्च प्रदृश्यते ॥
वमनञ्च यदा प्रोक्तं शमनं पथ्यकेऽपि वा ॥ ६४ ॥

जो क्काथके पीनेंमे ग्लानि, मूर्च्छा, विकलपना, ये उपजै तब वमनसंज्ञक ओषध देना और पथ्यमें शमनक्काथ देना ॥ ६४ ॥

अथ पथ्यकी आवश्यकता ॥

सदा पथ्यं प्रयोक्तव्यं नापथ्येन स सिध्यति ॥ औषधेन विना पथ्यैः सिध्यते भिषगुत्तमैः॥६५॥विना पथ्यं न साध्यः स्यादौषधानां शतैरपि॥

सबकालमें पथ्य देना चाहिये क्योंकि अपथ्यसे कोईभी रोग सिद्ध नहीं होता किंतु ओषधके बिनाभी पथ्योंकरकै रोग शांत हो जाता है ॥ ६५ ॥ सैंकडों ओषधोंको सेवतेहुयेभी पथ्यके बिना रोग शांत नहीं होता.

अथ ज्वरितको पथ्यभोजनका उपदेश ॥

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ ६६ ॥ अन्नकालेष्वभुञ्जानो हीयते म्रियतेऽपि वा ॥ स क्षीणः कृच्छ्रतां याति यात्यसाध्यत्वमेव च ॥ ६७ ॥ तस्माद्रक्षेद्बलं पुंसां बलशान्तिर्हि जीवितम् ॥

और ज्वरवाला रोगी पथ्यको सेवै जो इसकी अरुचिभी हो तबभी ॥ ६६ ॥ अन्नकालमें नहीं भोजन करताहुआ ज्वररोगी क्षीण होजाता है अथवा मरजाता है और क्षीणहुआ वह कष्टपनेंको प्राप्त होके पीछे असाध्यपनेंको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ तिसकारणसे मनुष्योंके बलकी रक्षा करनी क्योंकि बलकी शांतिही जीवन कहा है.

लङ्घिते चैव दोषे च यवागूपानमाचरेत् ॥ ६८ ॥

शालिषष्टिकमुद्गश्च यूषं शस्तं वदन्ति हि ॥ ६९ ॥

लंघनके करनेमें और दोषमें यवागूको पीता रहै ॥ ६८ ॥ शालिचावल, सांठी चावल, मूंग, इन्होंके यूषको लंघनमें श्रेष्ठ कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथ मध्यलंघितको अन्नविधि ॥

पञ्चकोलकसंसिद्धा यवागूर्मध्यलङ्घिते ॥
भवेत्प्रशस्ता सततं तस्य सन्तर्पणं हितम् ॥ ७० ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, चव्य और सोंठ इन पांचों मूलकूं कूटकर क्काथ बनावे, इसक्काथमें तंदूलकी या मूगकी यवागू बनावे और पकावे, फिर सिद्धहुई यह यवागू मध्यलंघितकूं प्रशस्त है, और रोगीको तृप्त रखती है ॥ ७० ॥

अथ क्लमशांतिका विधि ॥

आजं दुग्धं गुडोपेतं पानाय ज्वरशान्तये ॥
तेन क्लमविनाशः स्यात्सुखमाशु प्रपद्यते ॥ ७१ ॥

बकरीके दूधमें गुडमिला पीवै इस्से ज्वरकी शांति होती है तब ग्लानिका नाश और तत्काल सुख उपजता है ॥ ७१ ॥

अथ क्काथपीनेंका विधि ॥

उदीच्यां वा पूर्वस्यां वाऽभिमुखश्चोपवेशयेत् ॥ पाययेत्क्काथपानञ्च कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ७२ ॥ पानपात्रमधः कृत्वा शयीताज्ञानमेव च ॥ पीत्वा चैव तृषार्त्तोऽपि न जलं पाययेत्क्षणम् ॥ ७३ ॥ गतक्लमं नरं दृष्ट्वा तदा संपद्यते सुखम् ॥ ७४ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भेषजपरिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उत्तरको अथवा पूर्वको मुखकरा रोगीको बैठावै पीछे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करा क्काथको पान करावै ॥ ७२ ॥ पीछे पीनेंके पात्रको अधोमुख स्थापित कर जागताहुआ शयन करै और क्काथका पान करकै तृषावालाभी दो घडीतक पानीको नहीं पीवै ॥ ७३ ॥ जब रोगीकी ग्लानि दूर होजावै तब रोगी सुखको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने औषधपरिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ ज्वरचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ अनभिज्ञश्चिकित्सायां शास्त्राणां पठनेन किम् ॥ यथा पलालं बीजैस्तु रहितं निष्प्रयोजकम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–जो वैद्य चिकित्साकर्ममें कुशल नहींहो और वैद्यकशास्त्रके पठनमें कुशलहो तिसको क्या फल होता है अर्थात् कुछ नहीं जैसे अन्नसे रहित तुष निष्फल होता है तैसे ॥ १ ॥

अथ कुवैद्यनिंदा ॥

वरमाशीविषविषं क्वथितं ताम्रमेव च ॥ पीतमत्यग्निसन्तप्ता भक्षिता वाप्ययोगुडाः ॥ २ ॥ न तु श्रुतवतां वेशं बिभ्रति शरणागताः ॥ गृहीतुमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥ ३ ॥

सर्पआदिका विष, उबालाहुआ तांबा, अत्यंत अग्निमें तप्त किये लोहाके गोले इनसबोंको सेवनाभी हित है ॥ २ ॥ परंतु वैद्योंके वेशको धारण करनेंवाले और रोगियोंसे अन्न, पान, धन, इन्होंको हरनेंवाले ऐसे वैद्योंकी औषधको नहीं खावै ॥ ३ ॥

अथ वैद्यका लक्षण ॥

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय जायते ॥
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यो विमोक्षयेत् ॥ ४ ॥

जो आरोग्यको करता है वही योग्य ओषध है और जो रोगोंसे छुटावै वह ही उत्तम वैद्य कहाता है ॥ ४ ॥

अथ वैद्यकशास्त्रपठनकी आवश्यकता ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोगवारणहेतुना ॥ युक्ता निदानलक्षैस्तु संहितोपायसंयुता ॥ ५ ॥ पठितव्या समासेन संहिताज्ञानहेतवे ॥ ज्ञात्वा रोगप्रतीकारं ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ६ ॥

तिसकारणसे रोगको निवारण करनेंवाले कारणसे संयुक्त सब जतन करके निदानके लक्षण और रोगोंसे तथा रोगप्रतीकारकी चिकित्सासें अन्वित हुई वैद्यकसंहिता ॥ ५ ॥ विस्तार करकै पठितकरनी योग्य है संहिताका ज्ञानके लिये और रोगको दूर करनेंके उपायको जान पीछे चिकित्साको करै ॥ ६ ॥

रोग नहींजाननेंसे हानि ॥

अविज्ञाय रुजं सम्यङ्मोहादारभते क्रियाः ॥
विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञो न तत्सिद्धिः प्रजायते ॥ ७ ॥

जो वैद्य रोगको नहीं जानकै क्रियाका आरंभ करता है वह विधानको और शास्त्रको जाननेंवालाभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

अथ वैद्यशास्त्रज्ञताको फल ॥

निदानं रोगविज्ञानं भेषजानां गुणागुणम् ॥
विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥ ८ ॥

निदान और रोगका जानना, ओषधियोंके गुण और दोष इन्होंको जानकै जो वैद्य क्रियाको करता है तिसको शीघ्र सिद्धि होती है ॥ ८ ॥

रोगादिक जाननेकी आवश्यकता ॥

आदावेव रुजां ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ॥
याप्यं सर्वरुजाश्चैव ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ९ ॥

आदिमें वैद्य रोगके ज्ञानको और साध्य और असाध्यरूपको तथा कष्टसाध्यपनेंको जान पीछे क्रियाको करै ॥ ९ ॥

अथ देशकालआदिक जाननेंकी आवश्यकता ॥

देशं कालं वयो वह्निसात्म्यं प्रकृतिभेषजम् ॥
एवं विज्ञाय सद्वैद्यस्ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १० ॥

देश, काल, अवस्था, अग्नि, स्वभाव, प्रकृति, इन्होंको जानकै कुशल वैद्य चिकित्साको करै ॥ १० ॥

अथ रोगहेतु वातादि दोष ॥

नास्ति रोगो विना दोषैर्दोषा वातादयः स्मृताः ॥
ज्वरादयः स्मृता रोगास्तान्सम्यक्परिलक्षयेत् ॥ ११ ॥

दोषोंके विना रोग नहीं होता और वे दोष वातआदि कहाते हैं और ज्वरआदि रोग हैं तिनसबोंकी अच्छीतरह परीक्षा करै ॥ ११ ॥

अथ रोगपरीक्षाके प्रकार ॥

आम्नानाच्चोपदेशेन प्रत्यक्षीकरणेन च॥ आतुरादिदशा स्पर्शाच्छीतादिश्च

श्नतः परम् ॥ १२ ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नै रोगज्ञानं त्रिधा मतम् ॥ मुखाक्षि दर्शनात्स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतः परम् ॥ १३ ॥

वैद्योंके उपदेशसे और प्रत्यक्षीकरणसे और वैद्यआदिकी दृष्टिसे और स्पर्शसे और शीतआदिके पूछनेंसे रोगका ज्ञान करै ॥ १२ ॥ दर्शन, स्पर्श, और प्रश्न इनभेदोंसें रोगोंका तीनप्रकारका ज्ञान होता है तहां मुख और नेत्र इन्होंके दर्शनसें, अंगके शीत उष्ण आदिक स्पर्शसें और कैसा है क्या क्या होता है इत्यादिक प्रश्नसें तीनप्रकारका रोगज्ञान होता है ॥ १३ ॥

अथ साध्यासाध्यका लक्षण ॥

कृच्छ्रयाप्यसुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते ॥
असाध्यो द्विविधो ज्ञेयः कृच्छ्रः कृच्छ्रतमोऽपरः ॥ १४ ॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य इनभेदोंसे साध्य दो प्रकारका है और कष्टसाध्य और अतिकष्टसाध्य इनभेदोंसे असाध्यभी दो प्रकारका है ॥ १४ ॥

अथ साध्यादिकहोनेका कारण ॥

याप्याः केचित्प्रकृत्यैव याप्याः साध्या उपेक्षया ॥ स्वभावाद्व्याधयः साध्याः केचित्साध्या उपेक्षिताः ॥ १५ ॥ साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा ॥ घ्नन्ति प्राणांश्च साध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥ १६ ॥

कितनेक रोग स्वभावसेही कष्टसाध्य होते हैं और कितनेंक साध्यरोग चिकित्साके अभावसे कष्टसाध्य होते हैं और कितनेंक रोग स्वभावसे साध्य होते हैं और कितनेंक नहीं चिकित्सित किये रोग साध्य होते हैं ॥ १५ ॥ साध्यरोग कष्टसाध्यपनेको प्राप्त होते है और कष्टसाध्यरोग असाध्यपनेंको प्राप्त होते हैं इस्से क्रियाको नहीं करनेंवाले मनुष्योंको साध्यरोगभी मारदेते है ॥ १६ ॥

उपद्रवका लक्षण ॥

व्याधेरुपरि यो व्याधिः सोपद्रव उदाहृतः ॥ सोपद्रवा न जीवन्ति जीवन्ति निरुपद्रवाः ॥ १७ ॥ ज्ञात्वाल्पकोऽपि भिषग्भिः परिचिन्तनीयो नोपेक्षणीय इति रोगगणो ह्यसाध्यः ॥ स्वल्पोऽपि शत्रुर्विषवह्निसमानरूप आश्वाबलं न शमतामुपयाति काले॥१८॥ शत्रुः स्थानबलं प्राप्य विक्रमं कुरुते बली ॥ तथा धात्वन्तरं प्राप्य विक्रमं कुरुते गदः ॥१९॥

रोगकेऊपर जो रोग उपजै वह उपद्रवसहित रोग कहाता है उपद्रवसहित रोगवाले नहीं जीवते हैं और उपद्रवसे रहित रोगवाले जीवते हैं ॥ १७ ॥ अल्परोगभी वैद्योंनें चिंतवन करना चाहिये किंतु असाध्य रोग छोडना नहीं चाहिये जैसे छोटासाभी वैरी विष और अग्निके समानहोंके और बलको प्राप्तहो समयमें शांतिको नहीं प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जैसे बली शत्रु स्थानको और बलको प्राप्तहो पराक्रमको करता है तैसे धातुओंके अंतरमें प्राप्तहुआ रोग पराक्रमको करता है ॥ १९ ॥

रोग निर्मूल करनेंकी आज्ञा ॥

बहुविधपरिकर्मणापि नीतं शमं यत्कृशमपि हि न धार्य्यं रोगमूलं विधिज्ञ ! ॥ कथमपि बहुपथ्यैर्व्यावृतो वा बलिष्ठो न शमयति हि रोगं बाल्यमात्रेण सम्यक् ॥ २० ॥

हे विधिज्ञ! बहुतसे कर्मोंसे शांतकियेभी रोगका स्वल्पभागकोभी धारण नहीं करना और बहुतसे अपथ्योंकरकें व्यावृतहुआ अत्यंत बलवान् रोग शांतिको प्राप्त नहीं होता ॥ २० ॥

सूक्ष्मभी रोग शत्रुसमान है ॥

**यथा स्वल्पं विषं तीव्रं यथा स्वल्पो भुजङ्गमः ॥
यथा स्वल्पतरश्चाग्निस्तथा सूक्ष्मोऽपि रुग्रिपुः ॥ २१ ॥**

जैसे स्वल्प विष तीक्ष्ण होता है जैसे छोटासा सर्प बुरा होता है जैसे अत्यंत स्वल्पभी अग्नि बढजाता है तैसे सूक्ष्म रोगभी वैरी होता है ॥ २१ ॥

रोगके फैलनेके प्रथमही प्रतीकार करना ॥

**यावत्स्थानं समाश्रित्य विकारं कुरुते गदः ॥
तावत्तस्य प्रतीकारः स्थानत्यागाद्बलीयसः ॥ २२ ॥**

जबतक स्थानमें आश्रित होकै रोग विकारको करता है जबतक वह तिसस्थानको नहीं त्यागै तबतक तिस बलवाले रोगकी क्रिया करता रहै ॥ २२ ॥

व्याधियोंका प्रकार ॥

**कर्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ॥
सहजाः कथिताश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधा मताः ॥ २३ ॥**

कितनेंक रोग कर्मसे उपजते हैं और कितनेंक रोग दोषसे उपजते हैं और कितनेंक रोग शरीरके साथ उपजते हैं ऐसे तीनप्रकारके रोग कहे हैं ॥ २३ ॥

तीनप्रकारके व्याधियोंका लक्षण ॥

बहुभिरुपचारैस्तु ये न यान्ति शमं ततः ॥ ते कर्मजाः समुद्दिष्टा व्याधयो दारुणाः पुनः॥२४॥दोषजा वातपित्ताद्याः सहजाः क्षुत्तृषादयः॥२५॥

जो बहुतसी चिकित्साके करनेसे शांतिको प्राप्त नहीं होते तिन्होंको कर्मसे उपजे रोग जानना ये दारुण हैं ॥ २४ ॥ वातपित्तआदिसे उपजे रोग दोषज कहाते हैं भूख और तृषाआदि शरीरके साथ उपजते हैं ॥ २५ ॥

ज्वरकी व्यापकता ॥

तस्माद्वक्ष्यामि चादौ ज्वरमतुलगदं वाजिनां कुञ्जराणां मानुष्याणां पशूनां मृगमहिषखरोष्ट्रादिवानस्पतीनाम् ॥ वल्लीनामोषधीनां क्षितिधरफणिनां पत्रिणां मूषिकाणामेष प्राणापहारी ज्वर इति गदितो दुर्निवारो हि लोके।२६

तिस्से आदिमें घोडा, हस्ती, मनुष्य, गाय आदि पशू, मृग, भैंसा, ऊंट आदि जीव, वनस्पति, बेल, ओषधी, सर्प, पक्षी, मूषा इन्होंके ज्वरको मैं कहताहूं यह ज्वर प्राणोंको हरता है और संसारमें दुःखसे दूर होता है ॥ २६ ॥

अथ जातिपरत्वमें ज्वरकी असाध्यता ॥

असाध्योऽयं ज्वरो व्याधिर्गोमहिष्यश्वकुञ्जरे ॥
किञ्चित्कृच्छ्रतमो नृणामन्येषां जीवघातकः ॥ २७ ॥

गाय, भैंसा, हस्ती, इन्होंमें ज्वर असाध्य कहा है और मनुष्योंके ज्वर कष्टसाध्य कहा है और शेषरहे जीवोंको ज्वर मारता है ॥ २७ ॥

अथ ज्वरकी बलिष्ठता ॥

यथा मृगाणां मृगयुर्बलिष्ठस्तथा गदानां प्रबलो ज्वरोऽयम् ॥ नान्योऽपि शक्तो मनुजं विहाय सोढुं भुवि प्राणभृतः सुराद्याः ॥ २८ ॥

जैसे मृगोंमें भगेरा अत्यंत बलवान् होता है तैसे रोगोंमें ज्वररोग बलवान् कहा है मनुष्यके विना ज्वरको सहनेंकेलिये कोईभी जीव समर्थ नहीं है ॥ २८ ॥

अथ मनुष्यज्वर सहसक्ताहै तिस्का कारण ॥

कर्मणा लभते यस्माद्देवत्वं मानुषो दिवि ॥ ततश्चैवच्युतः स्वर्गान्मानुष्यमपि वर्त्तते ॥ २९ ॥ तस्मात्स देवभावात्तु सहते मानुषो ज्वरम् ॥ शेषाः सर्वे विपद्यन्ते पशुवर्गा ज्वरार्दिताः ॥ ३० ॥

कर्मसे मनुष्य स्वर्गमें जाके देवताके शरीरको प्राप्त होता है पीछे स्वर्गसे भ्रष्टहुआ मनुष्य शरीरको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इसकारणसे देवभावकरके मनुष्य ज्वरको सहते हैं शेषरहे पशुओंके समूह ज्वरसे मरजाते हैं ॥ ३० ॥

अथ सर्वरोगोंमें ज्वरकी श्रेष्ठता ॥

रोगाणां रोगराजोऽयं यथा मृगपतिर्मृगे ॥ दाहात्मसु यथा वह्निस्तथा रोगो ज्वरोऽधिकः ॥ रुद्रक्रोधाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः ॥ ३१ ॥

जैसे वनमें पशुओंका राजा सिंह है तैसे शरीरमें रोगोंका राजा ज्वर है जैसे दाह करनेंवालोंमें अग्नि अधिक है तैसेही ज्वरभी अधिक है महादेवका क्रोधरूपी अग्निसे उपजनेंवाला और सबजीवोंको तपानेंवाला ऐसा ज्वर है ॥ ३१ ॥

अथ पृथक् प्राणिभेदसे ज्वरके नामांतर ॥

पातकः स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम् ॥ गवामीश्वरसंज्ञस्तु मानवानां ज्वरो मतः ॥ ३२ ॥ दारिद्रो महिषीणान्तु मृगरोगो मृगेषु च ॥ अजावीनां प्रलापाख्यः करभेष्वलसो भवेत् ॥ ३३ ॥ शुनोऽलर्कः समाख्यातो मत्स्येष्विन्द्रमतो मतः ॥ पक्षिणामभिघातस्तु व्यालेष्वक्षितसंज्ञितः ॥ ३४ ॥ जलस्य नीलिका प्रायो भूमिषूषरनामतः ॥ वृक्षस्य कोटराक्षस्तु ज्वरः सर्वत्र दृश्यते ॥ ३५ ॥

हस्तियोंके पातकनामवाला ज्वर होता है घोडोंके अभितापनामवाला ज्वर होता है गायोंके ईश्वरनामवाला ज्वर होता है मनुष्योंके ज्वरनामसेही प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ भैंसोंके दारिद्रनामसे ज्वर होता है मृगोंमें ज्वर मृगरोगनामसे प्रसिद्ध है बकरी और भेडोंके ज्वर प्रलापाख्यनामसे होता है उंटोंमें ज्वर अलसनामसे होता है ॥ ३३ ॥ कुत्ताके ज्वर अलर्कनामसे और मछलियोंमें ज्वर इंद्रमतनामसे उपजता है पक्षियोंके ज्वर अभिघातनामसे सर्पोंमें कांचलोनामसे ज्वर उपजता है ॥ ३४ ॥ और जलके ज्वर सिवालनामसे उपजता है पृथिवीमें ऊषरनामसे ज्वर उपजता है वृक्षके कोटराक्षनामसे ज्वर उपजता है ऐसे सब जगह ज्वर दीखता है ॥ ३५ ॥

अथ ज्वरके स्वरूपका लक्षण ॥

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलोज्वलविग्रहः ३६ ॥ पिङ्गेक्षणो ह्रस्वजङ्घो विमत्स्यो बलवानयम् ॥ पुरुषो

लोकनाशाय चासौ ज्वर इति स्मृतः ॥ ३७ ॥ दग्धेन्धनो यथा वह्नि र्धातून्हत्वा यथा विषम्॥ कृतकृत्यो व्रजेच्छान्तिं देहं हत्वा तथा ज्वरः३८

तीनपैरोंवाला, भस्मको धारण करनेंवाला, तीनशिरोंवाला, सुंदर बडापेटवाला, सिंहका चामके वस्त्रोंको पहननेंवाला, कपिलवर्णवाला और प्रकाशित शरीरवाला ॥ ३६ ॥ पीलेनेत्रोंवाला, ठींगनी जांघोंवाला और बलवान् ऐसा पुरुष लोकका नाशके लिये उपजा है वह ज्वर कहाता है ॥ ३७ ॥ जैसे इंधनको दग्ध करकै अग्नि और धातुओंको दग्ध करकै विष कृतकृत्य होकै शांत होजाता है तैसे देहका नाशकर ज्वर शांत होजाता है ॥ ३८ ॥

अथ ज्वरकी उत्पत्ति ॥

तस्मात्तस्य समुत्पत्तिं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक! ॥ चतुर्विधो महाघोरो जातो येन तु चाष्टधा ॥ ३९ ॥ दक्षाद्वरः प्रशमनः कुपितो हि महेश्वरः ॥ श्वासं मुमोच दयिताविधुरश्च तीव्रं तेन ज्वरोऽष्टविधसम्भवतोऽष्टधा स्यात् ॥ ४० ॥

तिसकारणसे हे पुत्र! तिसकी उत्पत्तिको कहता हूं सुन च्यारप्रकारका महाघोररूपी ज्वर है फिर जिसकरकै आठ प्रकारका हुआ है ॥ ३९ ॥ सो दक्षप्रजापतीसे कुपित हुआ महेश्वर सतीजीकेवास्ते आठवार श्वासको छोडता भया है तिस्से ज्वर आठप्रकारका हुआ है ॥ ४० ॥

अथ ज्वरकी निदानसहित संप्राप्ति ॥

वातादिपित्तकफशोणितसन्निधानात्स्वेच्छान्नपाननिरतादृतुवैपरीत्यात् ॥ दोषा मलाशयगता जठराग्निबाह्याः संप्रेरयन्ति रुधिराश्रितवह्निपातम् ॥ ४१ ॥ तेषां ततो हि दधते ज्वरनाम सिद्धम् ॥—

वात, पित्त, कफ, रक्त, इन्होंके सन्निधानसे और अपनी इच्छापूर्वक अन्न और पानके सेवनेंसे और ऋतुके विपरीतपनेंसे मलाशयमें प्राप्तहुये पेटके अग्निको बाहिरहुये दोष रक्तसे आश्रितहुये अग्निके पातको प्रेरते है ॥ ४१ ॥ तिसको ज्वर कहते है

अथ ज्वरके हेतु ॥

व्यायामक्रोधजननाच्छीतसम्भवत्वात् ॥ ४२ ॥ विरुद्धान्नविशेषेण पाननिर्झरवारिणा ॥ कूपोदकेन सन्तुष्टस्तिग्मतीव्रांशुरश्मिभिः ॥ ४३ ॥ गन्धवातेन दोषाणामभिघाताभिशापतः ॥ ज्वरो नाम महाघोरो जायते मनुजे भृशम् ॥ ४४ ॥

और कसरत, भोजनके ऊपर भोजन, क्रोध, इनके उपजनेंसे और शीतके संभवपनेंसेभी ज्वर उपजता है ॥ ४२ ॥ विरुद्ध अन्नआदिके खानेंसे झिरतेहुये अथवा कूवाके पानीसे और तेजसूर्य्यके किरणोंकी गरमाईसे ॥ ४३ ॥ बुरे गंधसे, वात आदि दोषोंसे, चोटके लगनेंसे और ब्राह्मणके शापसे मनुष्यके देहमें महाघोररूपी ज्वरनाम उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥

अथ प्रकटहुये ज्वरका लक्षण ॥

श्रमो जडत्वं नयनप्लवः स्याद्रोमोद्गमो घुर्घुरकश्च जृम्भा ॥ वैवर्णता द्वेषसशोषतास्ये ज्वरस्य च व्यक्तकलक्षणानि ॥ ४५ ॥

शरीरमें थकाव और जडपना नेत्रोंमांहसे पानी झिरै रोमावली खडी होवै कंठमें घुर्घरपना और जंभाई आवै, वर्ण बदलजावै, अन्नसे बैर होवै, मुखमें शोष उपजै ये प्रकट हुआ ज्वरके लक्षण हैं ॥ ४५ ॥

अथ ज्वरकी विशेषता ॥

समीरणे च वै जृम्भा कफाद्दैन्यं निषीदति ॥ पित्तान्नयनसन्तापः सर्वं वै सान्निपातिके ॥ तस्माद्वक्ष्ये प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥ ४६ ॥

वातकी अधिकतासें जंभाई आवै, कफसे दीनपना उपजै और शिथिल होजावै, पित्तसे नेत्रोंमें संतापहो, सन्निपातमें सब लक्षण मिलैं तिसवास्तै जिसकरिकै सुख उत्पन्न होय, ऐसा उपाय करनासो कहूंगा ॥ ४६ ॥

अथ वातज्वरमें पाचन ॥

वचा यवानी धनिका सविश्वा पिबेत्कषायं निशि सोष्णमेवम् ॥ स वातिके वातरुजे ज्वराणां सम्पाचके स्यान्मनुजे सुखाय ॥ ४७ ॥

वच, अजमान, धनियां, सूंठ, इन्होंके गर्मक्वाथको रात्रिमें पीवै यह पाचन वातज्वरमें और वातकी पीडामें मनुष्यको सुख देता है ॥ ४७ ॥

अथ पित्तज्वरका पाचन ॥

निशा सनिम्बा मृतवल्लिका च धान्यं च विश्वा सगुडः कषायः ॥ निशासु च क्षीरसकोलमिश्रं पानं सपित्तज्वरपाचनाय ॥ ४८ ॥

हलदी, नींबकी छाल, गिलोय,धनियां, सूंठ, इन्होंका क्वाथ बना तिसमें गुडमिला पीवै अथवा दूधमें गजपीपलके चूर्णको मिला पीवै यह पाचन पित्तज्वरमें मनुष्यको सुख देता है।४८।

अथ कफज्वरमें पाचन ॥

वचा यवानी त्रिफला सविश्वा क्वाथो निशायां कफजे ज्वरे वा ॥

सपाचनं स्यान्मनुजस्य दोषे शूले प्रतिश्यायकपीनसेषु ॥ ४९ ॥

वच, अजमान, हरडे, बहेडा, आंवला, सूंठ, इन्होंका क्वाथ कफसे उपजे ज्वरमें और शूल, खेहर, पीनस, इन्होंमें देना ॥ ४९ ॥

अथ संनिपातज्वरमें पाचन ॥

शठीवचानागरकाफलानां वत्सादनीधन्वयवासकानाम् ॥ क्काथो
हितः सर्वभवे ज्वरे च सम्पाचनं स्यान्मनुजत्रिदोषे ॥ ५० ॥

कचूर, वच, सूंठ, हरडे, बहेडा, आंवला, गिलोय, जवासा, इन्होंका क्वाथ सबप्रकारके ज्वरमें और मनुष्योंके त्रिदोषज ज्वरमें यह पाचन हित है ॥ ५० ॥

अथ ज्वरमें पथ्य ॥

रात्रौ सुखोष्णतोयेन प्रचुरेण च धीमताम् ॥
अङ्गसंमर्दनं पथ्यं निद्राव्यायामवर्जितम् ॥ ५१ ॥

रात्रीमें सुखपूर्वक गर्म पानीकरके अतिशयसे मनुष्योंके अंगोंका मर्दन पथ्य है परंतु नींद और कसरतको वर्जना ॥ ५१ ॥

अथ वातज्वरका निदान और चिकित्सा ॥

वेपथुर्विषमवेगशोषणं कण्ठतालुवदने विरस्यता ॥ रूक्षता चाक्षिषु बन्धः
कुक्षयोर्जृम्भणं शिरसि रुग्विनिद्रता ॥ ५२ ॥ कृष्णता कररुहां प्रलाप
को गात्रभङ्गबलवान् बिभत्स्यति ॥ भीतवत्स्वपिति जाग्रतो नरो लक्षणे
र्भवति वातकृज्ज्वरः ॥ ५३ ॥

शरीर कांपै, ज्वरका विषमवेगहो, कंठ,तालु, मुख, इन्होंमें शोष उपजै,मुखमें विरसपनाहो, नेत्रोंमें रूखापनहो,कुक्षि बंध होजावै,जंभाई आवै और शिरमें शूलउपजै और नींद आवैनहीं५२ नख काले होजावैं, बकवादकरै, शरीरका भंगहोवै और बलवान् रहै और भयकी इच्छा-करै और भयभीत हुआकी तरह सोवै परंतु जागताही रहै ये लक्षण वातज्वरके हैं ॥ ५३ ॥

अथ वातज्वरका पाचन ॥

नागरं सुरतरुश्च धान्यकं कुण्डली बृहतिका युग्मनिशम्॥
सप्तमे निशि प्रशस्यते ज्वरे चाष्टमांशगतको हि अष्टवान् ॥ ५४ ॥

सर्वज्वरेषु नागरादिपाचनं देयम् ॥

सूंठ, देवदारु, धनियां,गिलोय, दोनोंकटेली, हलदी, दारुहलदी, इन्होंका पाचनसंज्ञक क्वाथ बना ज्वरमें सातमीरात्रीको देना॥५४॥ यह शुंठयादिपाचन सबप्रकारके ज्वरोंमें देना चाहिये.

अथ अन्नहीन औषधका गुण ॥

वीर्य्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव ॥

अन्नसे हीनहुआ औषध अधिक वीर्यवाला होजाता है और रोगको निश्चय नाशता है.

अथ और ओषधका विशेष वर्णन ॥

तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पित्ती ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयञ्च॥५५

बालक, वृद्ध, युवतिस्त्री, कोमल पदार्थ, इन्होंकरकैभी पित्तज्वर शांत होता है परंतु पित्तज्वरवाला परमग्लानिको और बलक्षयको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

अथ पाचनहुये औषधका लक्षण ॥

इन्द्रियाणां लघुत्वञ्च नेत्रास्यस्य प्रसादता ॥
सोद्गारमुष्णता कोष्ठे जीर्णभेषजलक्षणम् ॥ ५६ ॥

इंद्रियोंका हलकापनहो नेत्र और मुखकी प्रसन्नता रहै, डकार आवै, कोष्ठमें गर्माई रहै ये जीर्णहुये ओषधके लक्षण है ॥ ५६ ॥

अथ उछलनेंवाले औषधका लक्षण ॥

क्लमहृल्लाससदनं शिरोरुग्भ्रंशमेव च ॥
उत्क्लेदो जायते यस्य विद्यादुत्क्रामभौषधम् ॥ ५७ ॥

ग्लानि और थुकथुकीहो, शरीर शिथिल होजावै शिरमें भूल और नाश उपजै और वमनसा आनेकीतरह होवै ये नहीं जीर्ण हुआ ओषधके लक्षण हैं ॥ ५७ ॥

अथ पाचनहोनेंमें शेषरहे औषधका लक्षण ॥

दाहाङ्गसदनं मूर्च्छा शिरोरुक् क्लमदीनता ॥ भ्रमो रतिविशेषेण सविशेषौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥ तस्मादौषधशेषे तु न दोषशमनं क्वचित् ॥ कोपन्त्यनेकधा दोषा न देयं पाचनं विना ॥ ५९ ॥

दाहहो, अंग शिथिलहोजावै, मूर्च्छा, शिरमें शूल, ग्लानि, दीनपना, ये उपजैं, भ्रमहो, और विशेषकरकै अरतीहो ये लक्षण ज्यादे लिये औषधके हैं ॥ ५८ ॥ तिसकारणसे ओषधिके शेषमें कहींभी दोषका शमन नहीं है क्योंकि पाचनके विना दोष अनेकप्रकारसे कुपित होते हैं ॥ ५९ ॥

अथ भोजनके उपरांत देनेंके औषधका गुण ॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं निहन्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ॥

प्राग्भुक्तसेवितमहौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ ६० ॥

अन्नसे आवृतहुआ ओषध शीघ्र पकजाता है और बलको नाशता है और वारंवार मुखसे नहीं निकसता है इसलिये प्रभातका भोजनके साथ सेवित किया ओषध वृद्ध, बालक, डरपोक, स्त्री, इन्होंकों सुख देता है ॥ ६० ॥

अथ वातज्वरमें पंचमूलका क्काथ ॥

बिल्वाग्निमन्थशुकनासकपाटलीनां कुम्भारिकाप्रयुतकं क्वथितं कषायम् ॥ दन्तान्विशोधयति वारयते समीरं नाशं करोति मरुतज्वरमाशु पुंसाम् ॥ ६१ ॥ किरातमुस्तमृतवल्लिकणासविञ्यो गोकण्टको बृहतियुग्ममुदीच्यतिक्ताः ॥ स्याच्छालिपर्णिकलशीक्वथितः समन्तात्क्काथः समीरणभवं ज्वरमाशु हन्ति ॥ ६२ ॥ गुडूची शतपुष्पा च प्लक्षी रास्ना पुनर्नवा ॥ त्रायमाणककाथश्च गुडैर्वातज्वरापहः ॥ ६३॥

बेलगिरी, अरनी, शोनापाठा, पाडल, कोहला, इन्होंका क्काथ बना पीवै यह दंतोंको शोधता है और वातको दूर करता है मनुष्योंके वातज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ६१ ॥ चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पीपल, लालआक, गोखरू, दोनोंकटेली, नेत्रवाला, कुटकी, पिठवन, चौलाई, इन्होंका क्काथ वातज्वरको अच्छीतरह नाशता है ॥ ६२ ॥ गिलोय, सौंफ, पिठवन, रायशन, सांठी, त्रायमाण, इन्होंके क्काथमें गुडमिला पीवै यह वातज्वरको हरता है ॥६३॥

अथ पित्तज्वरके निदान और चिकित्सा ॥

मूर्च्छा दाहो भ्रममदतृषावेगतीक्ष्णोऽतिसारस्तन्द्रालस्यं प्रलयनवमीपाकतापश्च वक्रे ॥ स्वेदः श्वासो भवति कटुकं विह्वलत्वं क्षुधा वा एतैर्लिङ्गैर्भवति मनुजे पैत्तिको वै ज्वरस्तु ॥ ६४ ॥

मूर्च्छा और दाह उपजै भ्रम, मद, तृषा येभी होवैं और ज्वरका तीक्ष्णवेगहो अतीसारहो तंद्रा और आलस्यहो और बकवादकरै और छर्दिआवै और मुखमें पाक और दाहहो पसीना और श्वास उपजै मुख कडुआ होजावै विव्हलपना और भूखभी होवै ये सब लक्षण होवैं तब पित्तज्वर जानना ॥ ६४ ॥

अथ रोध्रादि क्काथ ॥

रोध्रोत्पलामृतलताकमलं सिताढ्यं तत्सारिवासहितमेव हि पाचनेषु ॥ निष्काथ्य क्काथमति चाशु निहन्ति पित्तं पित्तज्वरप्रशमनं प्रकरोति पुंसाम् ॥ ६५ ॥

लोध, नीलाकमल, गिलोय, श्वेतकमल, अनंतमूल, सारिवा, इन्होंका पाचनक्काथ बना तिसमें मिश्री डाल पीवै यह पित्तको शीघ्र शांत करता है और मनुष्योंके पित्तज्वरकोभी नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शक्राह्वादि क्काथ ॥

क्कथितं तण्डुलपयसा शक्राह्वंकटुरोहिणीसहितम् ॥
क्काथं यष्टीमधुना विनाशनं पित्तज्वराणान्तु ॥ ६६ ॥

इंद्रयव, कुटकी, मुलहटी इन्होंका क्काथ चावलोंके पानीमें बना पीवै यह पित्तज्वरको नाशता है ॥ ६६ ॥

दुरालभादि क्काथ ॥

दुरालभावासकपर्पटानां प्रियङ्गुनिम्बकटुरोहिणीनाम् ॥ किराततिक्तं क्कथितं कषायं सशर्कराढ्यं क्कथितञ्च पाचनम् ॥ ६७ ॥ सदाहपित्तज्वरमाशु हन्ति तृष्णाभ्रमं शोषविकारयुक्तम् ॥ ६८ ॥

जवासा, वांसा, पित्तपापडा, कांगनी, नींबकी छाल, कटकी, चिरायता, इन्होंका क्काथ बना खांडसे संयुक्तकर पीवै ॥ ६७ ॥ यह दाह, पित्तज्वर, तृषा, भ्रम, शोषरोग, इन्होंको नाशता है ॥ ६८ ॥

अथ पित्तपापडाका क्काथ ॥

एकोऽपि वै पर्पटको वरिष्ठः पित्तज्वराणां शमनाय योग्यः ॥ तस्मात्पुनर्नागरवालकाढ्यः सिंहो यथा कङ्कटकप्रवृत्तः ॥ ६९ ॥

अकेला पित्तपापडाका क्काथभी पित्तज्वरको शांत करनेंके लिये योग्य और अति उत्तम है फिर सूंठ और नेत्रवालासे युक्तकिये पित्तपापडाका क्काथ पित्तज्वरको ऐसे नाशता है जैसे हींसके विडेमें प्राप्तहुआ सिंह वनके पशुको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ शुंठ्यादि क्काथ ॥

नागरोशीरमुस्ता च चन्दनं कटुरोहिणी ॥
धान्यकानां तु क्काथश्च पित्तज्वरविनाशनः ॥ ७० ॥

सूंठ, खस, नागरमोथा, रक्तचंदन, कुटकी, धनियां, इन्होंका क्काथ पित्तज्वरको नाशता है ७०

अथ गुडूच्यादिक्काथ ॥

अमृतं पर्पटो धात्री क्काथः पित्तज्वरं हरेत् ॥ ७१ ॥

गिलोय, पित्तपापडा, आंवला, इन्होंका क्काथ पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ द्राक्षादि क्काथ ॥

द्राक्षापर्पटकतिक्तापथ्यारग्वधमुस्तकैः ॥
क्काथस्तृषाभ्रमदाहयुक्तपित्तज्वरापहः ॥ ७२ ॥

दाख, पित्तपापडा, कुटकी, हरडै, अमलताश, नागरमोथा, इन्होंका क्काथ तृषा, भ्रम, दाह, इन्होंसे युक्तहुये पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७२ ॥

अथ दाहतृषामूर्च्छाके ऊपर विदार्यादिकोंका उपचार ॥

विदारिकारोध्रदधित्थकानां स्यान्मातुलुङ्गस्य च दाडिमानाम् ॥
यथानुलाभेन च तालुलेपो निहन्ति दाहं तृषामूर्च्छनञ्च ॥ ७३ ॥

विदारीकंद, लोध, कैथ, विजोरा, अनार, इन्होंमेंसे जितनोंके जड और पत्ते मिलैं तिन्होंका लेप बना तालुके ऊपर लगावे यह दाह, तृषा, मूर्च्छा, इन्होंको नाशता है ॥ ७३ ॥

अथ दाहज्वरका उपाय ॥

उत्तानस्य प्रसुप्तस्य कांस्ये वा ताम्रभाजने ॥
नाभौ निधाय धारां नु शीतदाहं निवारयेत् ॥ ७४ ॥

रोगीको सीधा शयन कराकै तिसकी नाभीपर कांसीके अथवा तांबाके पात्रमें पानीकी धारा देनी यह दाहको नाशती है ॥ ७४ ॥

रम्यारामाकुचभरनमितालिङ्गनं चेष्टसङ्गाद्द्राक्षापानं निगदितमथो शीतलं सेवनं स्यात् ॥ शुभ्राम्भोजञ्च मलयजलासिक्तसंशीतवासो मुक्ताहारो विशदतुहिनं कौमुदीयामुखाय ॥७५॥ एभिर्हन्ति द्रुततरमिभं मानुषाणां तु पित्तं दाहं शोषं क्लममपि तथा तृड्भ्रमं मूर्च्छनाञ्च ॥ एतैर्योगैर्भवति नितरां पित्तदाहस्य शान्तिर्योग्या चैवं भवति सततंतत्क्रियाश्रीमताञ्च॥७६॥

सुंदर और रमणीक चूंचियोंके भारसे नम्रहुई स्त्रीका आलिंगन करै परंतु मैथुनको नहीं करै और दाखके रस सेवनकरै. शीतलपदार्थको सेवता रहै सफेद कमल और मलयागिरि चंदनके पानीसे भिगोयाहुआ शीतलवस्त्रको धारै और मोतियोंकी मालाको पहनै और सुंदर शीतल हवा और चांदनी ये सब पित्तज्वरीको सुख देते है ॥ ७५ ॥ इन्होंसे मनुष्योंके पित्त, दाह, शोजा, ग्लानि, तृषा,भ्रम, मूर्च्छा, ये शांत होजाते हैं और पित्तका दाह दूर होजाता है मनुष्योंके वास्ते यह क्रिया निरंतर योग्य है ॥ ७६ ॥

अथ ज्वरशोषका उपाय ॥

यदि जिह्वागलतालुशोषश्चेन्मनुजस्य च ॥ केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ पेष्यमाणं तालुलेपे सद्यः पित्तज्वरापहम्॥७७॥

और जो मनुष्यके जीभ, गल, तालु, इन्होंमें शोष उपजै तो बिजोराका केसर ले तिसमें शहद और सैंधानमक मिला पीसकर तालूपै लेप करै यह शीघ्र पित्तज्वरको नाशता है॥७७॥

अथ कफज्वरका निदान और चिकित्सा ॥

स्तैमित्यं मधुरास्यता च जडता तन्द्रा भृशञ्च तथा गात्राणां गुरुतारुचिर्विरमता रोमोद्गमः शीतता ॥ प्रस्वेदाः श्रुतिरोधनञ्च कुरुते नेत्रे च पाण्डुच्छवी विष्टब्धमलवृत्तिकासवमनं श्लेष्मज्वरे ते विदुः ॥ ७८ ॥

शरीरका गीलापन हो, मुख मीठा रहै, जडपना, अत्यंत तंद्रा, शरीरका भारीपन, अरुचि, ग्लानि रोमोंका खडा होना, शीतलपना ये उपजैं और पसीना आवै और कानोंका छिद्र रुक जावै और आधा पीला और आधा सफेद ऐसे वर्णकी कांतिसे संयुक्त नेत्र होजावैं मलकी प्रवृत्ति बंधी हो खांसी और छर्दि आवै ये सब लक्षण हों तब कफज्वर जानना ॥७८॥

अथ कफज्वरका पाचन पिप्पल्यादिकल्क ॥

पिप्पलादिककल्कं तु कफजे पाचनं हितम् ॥७९॥

पिप्पलादि गणके ओषधोंका कल्क कफके ज्वरमें सुंदर पाचन है ॥ ७९ ॥

अथ व्याघ्र्यादिकल्क ॥

तद्वद्व्याघ्री च सिंही च रोध्रं कुष्ठपटोलकम् ॥
ज्वरे कफात्मजे चैतत्पाचनं स्यात्तदुत्तमम् ॥ ८० ॥

कटेली, वांसा, लोध, कूट, परवल, इन्होंका पाचन कफज्वरमें हित है ॥ ८० ॥

अथ वासादिक्काथ॥

वासा गुडूची त्रिफला पटोली शठी च तिक्ता मधुनी कषायम्॥ श्लेष्मप्रभूतेषु रुजेषु सम्यग् ज्वरं निहन्यात्कफजञ्च शीघ्रम् ॥ ८१ ॥

वासा, गिलोय, हरडे, बहेडा आंवला, परवल, कचूर, कुटकी, इन्होंके क्काथमें शहद मिला पीवै यह कफके ज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ८१ ॥

अथ आमलक्यादिक्काथ ॥

आमलक्यभया कृष्णा षड्ग्रन्था त्रिवृकन्तथा ॥
मलभेदी कफान्तको ज्वरनाशनदीपनः ॥ ८२ ॥

आंवला, हरडै, पीपल, वच, सूंठ, मिरच, पीपल, हरडे, बहेडा, आंवला, दालचिनी, इलायची, तेजपात, इन्होंका क्वाथ मलको पतला करता है कफको हरता है ज्वरको नाशता है और अग्निको जगाता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पल्यादिक्काथ ॥

पिप्पली शृङ्गवेरञ्च षड्ग्रन्था वत्सकं फलम् ॥
क्काथो मधुप्रगाढः स्याच्छ्लेष्मज्वरविनाशनः ॥ ८३ ॥

पीपल, अदरक, वच, इंद्रयव, इन्होंका क्वाथ बना तिसमें शहद मिला पीनेंसे कफज्वरका नाश होता है ॥ ८३ ॥

अथ पिप्पलीका अवलेह ॥

क्षौद्रेण पिप्पलीचूर्णं लिह्याच्छ्लेष्मज्वरापहम् ॥
प्लीहानाहविषं हन्ति कासश्वासाममर्दनम् ॥ ८४ ॥

पीपलके चूर्णको शहदमें मिला चाटनसे कफज्वर, तिल्ली रोग, अफारा, विष, खांसी श्वासरोग, आम, इन्होंका नाश होता है ॥ ८४ ॥

अथ वातपित्तज्वरका निदान और चिकित्सा ॥

तृष्णा मूर्च्छा वमिरथ कटुकमानने रूक्षता स्यादन्तर्दाहो वपुषि नयने रक्तता कण्ठशोषः॥निद्रानाशः श्वसनशिरसो रुक्प्रभेदोऽङ्गभङ्गो रोमोद्धर्ष स्तमकमिति चेद्वातपित्तज्वरः स्यात् ॥ ८५ ॥

तृषा, मूर्च्छा, छर्दि ये उपजैं और मुखमें कडुआपनहो और शरीर रूखा होजावै, शरीरके भीतर दाहहो और लालनेत्र होजावैं और कंठमें शोषहोवै और नींदका नाशहो श्वास और शिरमें शूलहो और अंगडाई टूटै रोमावली खडीहो और अंधेरी आवै ये सब लक्षण हों तब वातपित्तज्वर जानना ॥ ८५ ॥

अथ वातपित्तज्वरका पाचन त्रिफलादि क्काथ ॥

संसृष्टदोषैर्विहितञ्च सम्यग्विपाचनं पित्तमरुज्ज्वरे च ॥ फलत्रिकं शाल्मलिसंप्रयुक्तं रास्नाकिरातस्य पिबेत्कषायम् ॥ ८६ ॥

मिलेहुये दोषोंसे युक्तज्वरमें योग्यपाचनको वातपित्तज्वरमें देवै और हरडै,बहेडा, आंवला, शंभलकी छाल, रायशन, चिरायता, इन्होंके क्काथको पीवै ॥ ८६ ॥

अथ शालिपर्ण्यादिकल्क ॥

द्विपञ्चमूली सह नागरेण गुडूचिभूनिम्बघनैः समेता ॥ कल्कः

प्रशस्तः सगुडो मरुत्सु स पित्तवातज्वरनाशहेतुः ॥ ८७ ॥

दशमूल, सूंठ, गिलोय, चिरायता, नागरमोथा इन्होंके कल्कमें गुडमिला खावै यह वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८७ ॥

अथ किरातादि क्वाथ ॥

किराततिक्तामलकीशठीनां द्राक्षोषणानागरकामृतानाम् ॥ क्वाथः
सुशीतो गुडसंयुतः स्यात्स पित्तवातज्वरनाशहेतुः ॥ ८८ ॥

चिरायता, आंवला, कचूर,मुनक्का दाख,मिरच, सूंठ,गिलोय, इन्होंके क्वाथमें गुड मिला पीवै यह वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८८ ॥

अथ पंचभद्रक्वाथ ॥

अमृतमुस्तकवासापर्पटविश्वाजलेन क्वाथः ॥
पानं पित्तमरुत्सु ज्वरं निहन्याच्च भद्रमुञः ॥ ८९ ॥

गिलोय, नागरमोथा, वांसा, पित्तपापडा, सूंठ, इन्होंका पानीमें क्वाथ बनावै यह पंचभद्रक्वाथ वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८९ ॥

अथ पित्तकफज्वरका निदान और चिकित्सा ॥

निद्रागौरवकासस्सन्धिशिररुक्कार्त्तिस्तथा पर्वणां भेदो मध्यमवेगमत्र न
यने वातान्विते श्लेष्मणि ॥ सन्तापः श्वसनं रुचिः श्रुतिपथे कण्ठे च
शुष्कात्यतिस्तन्द्रामोहमरोचकभ्रममथ श्लेष्मज्वरे पित्तले ॥ ९० ॥

नींद बहुत आवै संधि और शिरमें शूल चलै और संधि टूटै और स्वरका वेग मध्यहोवै नेत्रोंमें संतापहो श्वासहो सुननेंमें रुचिहो और कंठमें सूखापनहो और तंद्रा, मोह, अरोचक, भ्रम, येभी उपजैं, ये सब लक्षण होवैं तब पित्तकफज्वर, जानना ॥ ९० ॥

अथ पित्तकफज्वरका पाचन शुंठ्यादि क्वाथ ॥

नागरं भद्रमुस्ता वा गुडूच्यामलकाह्वयम् ॥ पाठामृणालोदीच्याश्च क्वा
थः पित्तज्वरे कफे ॥ ९१॥ पाचनो दीपनीयः स्याद्रक्तशोषनिवारणः॥ ९२॥

सूंठ, नागरमोथा, गिलोय, आंवला, पाठा, कमलकी डंडी, नेत्रवाला, इन्होंका क्वाथ पित्तकफज्वरमें हित है ॥ ९१ ॥ और पाचन है अग्निको जगाता है रक्तको और शोषको दूर करता है ॥ ९२ ॥

अथ द्राक्षादि क्वाथ ॥

द्राक्षामृतावासकरिष्टकाश्च भूनिम्बतिक्तेन्द्रयवाः पटोलम् ॥ मुस्ता सभार्गी क्वथितः कषायः पित्तकफस्य ज्वरनाशनाय ॥ ९३ ॥

मुनक्का दाख, गिलोय, वांसा, नींबकी छाल, चिरायता, कुटकी, इंद्रयव, परवल, नागरमोथा, भारंगी, इन्होंका क्वाथ पित्तकफज्वरको नाशता है ॥ ९३ ॥

गुडूच्यादि क्वाथ ॥

गुडूचिका निम्बदलानि शुण्ठी मुस्तश्च कुस्तुम्बुरुचन्दनानि ॥ क्वाथं विदध्यात्कफपित्तवातज्वरं निहन्याच्च गुडूचिकाद्यः ॥ ९४ ॥ एष सर्व ज्वरान्हन्ति हृल्लासाद्यानरोचकान् ॥ प्रतिश्यायपिपासाघ्नः शोषदाहनिवारणः ॥ ९५ ॥

गिलोय, नींबके कोंपल, सूंठ, नागरमोथा, धनियां, रक्तचंदन, गिलोय, इन्होंका क्वाथ पित्तकफज्वरको हरता है ॥ ९४ ॥ और यही क्वाथ सबप्रकारके ज्वर, थुकथुकी, अरोचक, खेहर, पिपासा, शोष, दाह, इन्होंको नाशता है ॥ ९५ ॥

अथ अन्यगुडूच्यादि क्वाथ ॥

गुडूचीनिम्बचक्रवासकश्च शठी किरातं मगधाष्टहल्यौ ॥ दार्वी पटोलं क्वथितं कषायं पिबेन्नरः पित्तकफे ज्वरे च ॥ ९६ ॥

गिलोय, नींबकी छाल, तगर, वांसा, कचूर, चिरायता, पीपल, अष्टहली, दारुहलदी परवल, इन्होंका क्वाथको पीवै यह पित्तकफज्वरमें हित है ॥ ९६ ॥

अथ पटोलादि क्वाथ ॥

पटोली चन्दनं तिक्ता मूर्वा पाठामृतागणः ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूनिवारणः ॥ ९७ ॥

परवल, रक्तचंदन, कुटकी, मरोडफली, पाठा, गिलोयआदि गणके ओषध, इन्होंका क्वाथ पित्तकफज्वर, छर्दि, दाह, खाज, इन्होंको दूर करता है ॥ ९७ ॥

अथ अन्यपटोलादि क्वाथ ॥

पटोलवासापिचुमन्दकस्य मूलानि यष्टीमधुकं धना च ॥ कषायमेतत्प्रतिसाधितन्तु ज्वरे कफे पित्तभवे प्रशस्तः॥९८॥ सन्दीपनो पित्तकफात्मके च तथैव पित्तासृजसम्भवे च ॥ ज्वरे मलानां प्रतिभेदनः स्यात्पटोलधान्याश्रितकः प्रशस्तः ॥ ९९ ॥

परवल, वांसा, नींबकी छाल, मुलहटी, धनियां, इन्होंका क्काथ पित्तकफज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ ९८ ॥ यह क्काथ अग्निको जगाता है पित्त कफज्वरमें हित है पित्तरक्तके ज्वरमें हित है और मलोंको पतला करता है ॥ ९९ ॥

अथ वातकफज्वरका निदान और चिकित्सा ॥

शीतं वेपथुपर्वभङ्गवमथुर्गात्रे जडत्वं रुजां मन्दोष्मारुचिबन्धनं परुषता कासस्तमः शूलवान् ॥ तन्द्रा कूजनमात्मलौल्यमथवा स्तैमित्यजृम्भारुचिः प्रस्वेदमलमूत्ररोधसहितः स्याच्छ्लेष्मवातज्वरः ॥ १०० ॥

शीत लगै और शरीर कांपै—और संधियें टूटैं—और शरीरमें जडपना, शूल, मंदाग्नि, अरुचि, बंधना, कठोरपना, खांसी, शूल, ये उपजैं तंद्राहो शब्दको करै और शरीरमें चंचलपना हो और शरीरका गीलापन, जंभाई, अरुचि, ये उपजैं और पसीना आवै मल और मूत्र रुकजावै ये सब लक्षण होवैं तब वातकफज्वर जानना ॥ १०० ॥

अथ आरग्वधपंचक ॥

आरग्वधस्तिक्तकरोहिणी च हरीतकी पिप्पलिमूलमुस्ता ॥ निष्क्काथ्य कल्कः कफवातयुक्ते ज्वरे सशूले हितपाचनोऽयम् ॥ १०१ ॥

आरग्वध, कुटकी, हरड, पीपलामूल, नागरमोथा, इन्होंका, क्काथकरकै कल्क करै, यह कल्क कफवातसें उत्पन्न शूलकरिकै युक्त ज्वरमें हितकारक और पाचन है ॥ १०१ ॥

अथ क्षुद्रादिपाचन ॥

क्षुद्रा गुडूची सह नागरेण वासाजलं पर्पटकश्च पथ्याः ॥ मुस्ता च दुःस्पर्शयुतः कषायः पानो हितो वातकफज्वरस्य ॥ १०२ ॥

कटैली, गिलोय, सूंठ, वांसा, नेत्रवाला, पित्तपापडा, हरडै, नागरमोथा, जवासा, इन्होंका क्काथ वातकफज्वरको नाशता है ॥ १०२ ॥

अथ पर्पटादि क्काथ ॥

पर्पटनागाख्यवचातन्तुककट्फलैलाभयाविश्वभूतिके ॥ क्काथो हिङ्गुमधुयुतः कफवाते सहिक्कारोगे सगलग्रहे च ॥ १०३ ॥

पित्तपापडा, नागकेसर, वच, रोहिषतृण, कायफल, इलायची, हरडै, सूंठ, करंजुवा, इन्होंके क्काथमें हींग और शहद मिला पीवै यह कफ वातज्वर, हिचकी रोग, गलग्रह इन्होंमें हित है ॥ १०३ ॥

अथ दशमूल क्वाथ ॥

द्विपञ्चमूलकः क्वाथः कणाचूर्णेन भावितः ॥
देयो वातकफे शूले ज्वरे श्वासे च पीनसे ॥ १०४ ॥

दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवै यह वातकफज्वर, शूल, श्वास, पीनस, इन्होंमें हित है ॥१०४॥

अथ त्रिदोषजज्वरका निदान और चिकित्सा ॥

तन्द्रालस्यं मुखमधुरता ष्ठीवनं कण्ठशोषो निद्रानाशः श्वसनविकलो मूर्च्छना शोचना च ॥ जिह्वाजाड्यं परुषमथवा पृष्ठशीर्षे व्यथा स्यादन्तर्दाहो भवति यदि वा विद्धि दोषं त्रिदोषम् ॥ १०५ ॥

तंद्रा और आलस्य आवै मुखमें मधुरपना रहै और वारंवार थूकै कंठमें शोष उपजै नींदका नाशहो श्वाससे विकल होजावै मूर्च्छा और शोचहो जीभमें जडपनाहो अथवा करडी जीभ होजावै पृष्ठभागमें और शिरमें पीडाहो और शरीरके भीतर दाहहो ये सब लक्षणहों तब त्रिदोषजज्वर जानना ॥ १०५ ॥

त्रिदोषज्वरकी यशःप्रापक चिकित्सा ॥

दृष्ट्वा त्रिदोषजं घोरं ज्वरं प्राणापहारकम् ॥ तस्मादादौ कफस्यास्य शोषणं परिकीर्त्तितम्॥१०६॥न कुर्य्यापित्तशमनं यदीच्छेदात्मनो यशः ॥ कफवातैर्बलवतः सद्यो हन्ति रुजातुरम् ॥ १०७ ॥ लङ्घनं वमनं वापि ष्ठीवनं स्यात्त्रिदोषजे ॥ त्रिरात्रं पंचरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ॥१०८॥ लङ्घनञ्च समुद्दिष्टं ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ कफं विशोषितं ज्ञात्वा ततो वातनिवारणम् ॥ १०९ ॥ पित्तसंशमनं कार्य्यं ज्ञात्वा पित्तस्य कोपनम् ॥ शोषणीयौ वातकफौ न तु पित्तं विनाशयेत् ॥ ११० ॥

प्राणोंके हरनेंवाला और घोररूप ऐसे त्रिदोषजज्वरको देखकर प्रथम कफको शोषनेंका उपाय कहा है ॥ १०६ ॥ जो वैद्य अपनें यशकी इच्छा चाहै तो त्रिदोषजज्वरमें पित्तको शांत नहींकरै क्योंकि कफ और वातकी अधिकतावाले त्रिदोषजरोगीको ज्वर मारदेता है ॥ १०७ ॥ त्रिदोषजज्वरमें लंघन, वमन ष्ठीवन ये हित हैं और इस रोगमें तीनरात्रि, पांचरात्रि, सातरात्रितक ॥१०८॥ दोषके बल और अबलको जान लंघन करना चाहिये जब कफके शोषको जानले तब वातको निवारण करै॥१०९॥पित्तके कोपको जानकर पित्तकीभी शांति करनी और वात तथा कफको जरूर शोषै और पित्तको कभीभी नहीं नष्टकरै॥११०॥

अथ सन्निपातज्वरका लक्षण और चिकित्सा ॥

तृष्णा च शूलशोषः श्वसनमथ निशाजागरो वासरैस्तु तन्द्रा मोहश्च शोषो भवति च बदने घ्राणजिह्वाधराणाम् ॥ पाकं निष्ठीवते यः कृशतनुश्च भवेन्मण्डलानाञ्च देहे सम्भूतिः श्यावनेत्राधरवदनमदस्वेद आध्मानशोषः ॥ १११ ॥ क्षुन्नाशो वा भ्रमणमपि तथा शिरसो लोडनं वा शिरोऽर्त्तिः स्रोतोरोधो वमिर्वा गलकघुरघुराशूलकैर्वा वृतस्तु ॥ एतैर्लिङ्गैः प्रयुक्तः प्रभवति च नृणां सन्निपातेतिसंज्ञा रोगाणामाशुकारी ज्वर अतिदुःखदो वाजिनां वा द्विपानाम् ॥ ११२ ॥

तृषा, शूल, शोष, श्वास, रात्रिका जागना दिनमें तंद्रा, मोह, मुखमें शोष ये उपजैं और नासिका, जीभ, ओष्ठ, इन्होंका पाकहोवै और वारंवार थूकै और कृशशरीर होजावै और शरीरमें मंडलोंकी उत्पत्तिहो और कालेनेत्र होजावैं मुख काला होजावै मद और पसीना उपजै अफारा और शोषभीहो ॥ १११ ॥ भूख जातीरहै शिरभ्रमै अथवा शिरको हिलावै और शिरमें पीडाहो स्रोत रुकजावै अथवा छर्दिहो और गलेमें घुर्घरशब्द और शूल उपजै ये सब लक्षणहोवैं तब मनुष्यकै सन्निपातज्वर जानना यह रोगोंको शीघ्रकरता है घोडोंको तथा हाथियोंकोभी अतिदुःख देता है ॥ ११२ ॥

अथ संनिपातज्वरकी चिकित्सा ॥

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्य्याद्वातकफापहम् ॥ पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे निरामे पित्तमारुतौ ॥११३॥ सन्निपातज्वरे यत्नं कृत्वा तन्द्रां जयेत्पराम् ॥ उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणाञ्च विशेषतः ॥११४॥ पथ्ये कारयते यस्तु रोगिणां कफपूरितम्॥ स एवास्य शत्रुः स्यान्न पथ्यं नच भेषजम्॥११५॥

सन्निपातज्वरमें प्रथम वातकफको नाशनेंवाली क्रियाको करै जब कफका क्षय होजावै तब वात और पित्त आपही शांत होजाते हैं ॥ ११३ ॥ सन्निपातज्वरमें यतनसे तंद्राको दूरकरै यह सन्निपात अत्यंत उपद्रव है और ज्वरोंके मध्यमें विशेषकरकै सन्निपात बुराहै ॥ ११४ ॥ सन्निपातज्वरमें जो वैद्य कफसे पूरितहुये रोगीको पथ्यदेवै वही वैद्य तिसरोगीका वैरी जानना इसवास्तै पथ्यको और ऐसेतैसे ओषधकोभी नहीं देना ॥ ११५ ॥

अथ दशाङ्ग क्वाथ ॥

शठी द्विपञ्चमूलकं दुरालभा चाकोदजम् ॥ पटोलं पौष्करं वाथ युक्ता

भार्गवी पिप्पली॥११६॥निहन्ति सान्निपातिकज्वराग्निमाद्यन्दशाङ्गः ११७

कचूर, दशमूल, जवासा, पिस्ते, परवल, पोहकरमूल, श्वेतदूब, पीपल, इन्होंका क्वाथ ॥ ११६ ॥ सन्निपातज्वर और मंदाग्निका नाश करता है ॥ ११७ ॥

अथ भूनिंबादि क्वाथ ॥

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकभद्रकण्टकणाकषायः॥तन्द्राप्रलापभ्रमतृषारुचिदाहमोहश्वासाग्निमान्द्ययुक्तमथज्वरमाशु हन्ति ११८

चिरायता, देवदार, दशमूल सूंठ, कुटकी इंद्रजव, धनियां, गोखरू, पीपल, इन्होंका क्वाथ तंद्रा प्रलाप भ्रम तृषा अरुचि, दाह, मोह, श्वासरोग, मंदाग्निज्वर इन्होंको नाशता है ॥११८॥

अथ शुंठ्यादि क्वाथ ॥

शुण्ठीघनागजकणासुरदारुधान्यातिक्ताकलिङ्गदशमूलसमोऽपि कल्कः॥
श्रेष्ठस्त्रिदोषजनितज्वरनाशनाय श्वासभ्रमारुचिविबन्धहृदामयघ्नः॥११९॥

सूंठ, नागरमोथा, देवदारु, गजपीपल, धनियां, कुटकी, इंद्रयव, दशमूल, ये सब समान भागले कल्क बनावै यह त्रिदोषजज्वरको नाशता है और श्वासरोग, भ्रम, अरुचि, विबंध, हृद्रोग इन्होंको नाशता है ॥ ११९ ॥

अथ मुस्तादि क्वाथ ॥

मुस्तोशीरनिशाविशालमधुकं पाठा बला रोहिणी नीली धन्वयबास
कट्वरशठी शुण्ठी समङ्गा त्रिवृत्॥ यष्टीपिप्पलिमूलपर्पटफला पिप्पल्य
कं दारु च श्यामाहेमगुडूचिकासमपयःक्वाथो ज्वरान्तः स्मृतः ॥ १२० ॥

नागरमोथा, खस, हलदी, सुंदरमुलहटी, सोनापाठा, खरैंहटी, हरडै, नीलजवासा, टेंभुर्नी, कचूर, सूंठ, मजीठ, निशोत, मुलहटी, पीपलामूल, पित्तपापडा, पीपल, देवदार, कालीनिशोत, कचनार, गिलोय, इन्होंकी समान पानीमें क्वाथ बनावै यह ज्वरको नाशता है ॥१२०॥

अथ बृहत्यादि क्वाथ ॥

द्वे बृहत्यौ शठी भृङ्गी किरातं कटुरोहिणी ॥ पटोलं पौष्करं भार्ङ्गी वत्स
कश्च दुरालभा ॥ १२१ ॥ एतद्बृहत्यादिकपाचनं स्यात्कासादिकोपद्र
वनाशनश्च॥शीघ्रं निहन्ति ज्वरसन्निपातं शूलार्त्तितन्द्राशमने प्रशस्तम् १२२

दोनों कटेहली, कचूर, भांग, चिरायता, कुटकी, परवल, पोहकरमूल, भारंगी, इंद्रयव, ज-

वासा इन्होंका क्वाथ बनावै ॥ १२१ ॥ यह कटेलीआदि पाचन है खांसी आदि उपद्रवको और सन्निपातज्वरको शीघ्र नाशता है शूल और तंद्राको शांत करनेमें अतिश्रेष्ठ है॥१२२॥

अथ शठ्यादि पाचन ॥

शठी किरातं कटुका विशाला गुडूचिभृङ्गी बृहतीद्वयञ्च ॥ महौषधं पौष्करधन्वयासरास्नासुराह्वा गजपिप्पली च ॥ १२३ ॥ पीतन्तु निष्काथ्य हितं नराणां शठ्यादिचातुर्दशकं प्रशस्तम् ॥ जघान तन्द्राश्वसनं शिरोऽर्त्तिजाड्यं सशूलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ १२४ ॥

कचूर, चिरायता, कुटकी, इंद्रायन, गिलोय, भांग, दोनोंकटेली, सूंठी, पोहकरमूल, जवासा, रायशन, देवदारु, गजपीपल, ॥१२३॥ इन्होंका क्वाथ बना पीवै यह चौदह औषधोंका क्वाथ हित है और तंद्रा, श्वास, शिरका रोग, जडपना, शूल, ज्वर, इन्होंको शीघ्र नाशत है॥

अथ भूनिंबादि क्वाथ ॥

भूनिम्बःसुरदारुनागरघनातिक्ताकलिङ्गानि च तद्वद्धस्तिकणाद्विपञ्चकगणैर्युक्तः कषायो हितः ॥ पीतः सर्वरुजां विनाशनकरः स्यात्सन्निपातज्वरं हन्ति श्वासविशोषवक्षसिरुजं तन्द्रां जघान द्रुतम् ॥ १२५ ॥

चिरायता, देवदारु, सूंठ, नागरमोथा, कुटकी, इंद्रयव, गजपीपल, दशमूल, इन्होंका क्वाथ बना पीना यह सब प्रकारके रोगोंको और सन्निपातज्वरको नाशता है और श्वासरोग शोषरोग, छातीकी, पीडा, तंद्रा, इन्होंको शीघ्र नाशता है ॥ १२५ ॥

अथ बृहद्रास्नादि क्वाथ ॥

रास्ना गुडूचिधनपर्पटकं पटोली भूनिम्बवत्सकशठीयुतनागराणाम् ॥ तिक्तासुराह्वगजमागधिकायवासावासाबलागजबलाकथितः समांशः ॥ १२६ ॥ क्वाथो निहन्ति मरुतप्रभवामयानां सश्वासकासजठरार्त्तिविषूचिकानाम् ॥ श्रेष्ठो नृणां भुवि च पाचनसन्निपाते रोगेऽथवा कफसमीरणके प्रदेयः ॥ १२७ ॥

रायशन, गिलोय, नागरमोथा, पित्तपापडा, परवल, चिरायता, इंद्रयव, कचूर, सूंठ, कुटकी, देवदारु, गजपीपल, जवासा, वांसा, खरैंहटी, बडीखरैंहटी, ये सब समानभागले क्वाथ बनावै ॥१२६॥ यह क्वाथ वातसे उपजे रोग, श्वासरोग, खांसी, पेटरोग, विषूचिका, इन्होंको नाशता है यह पाचन मनुष्योंको संसारमें श्रेष्ठ है अथवा कफवातके रोगमें देना चाहिये १२७

अथ लघुरास्नादि ॥

रास्नात्रिकण्टकशतमौषधीनान्तथा भार्ङ्गी सपुष्करघना सुरदारुधान्याः ॥
क्वाथो हितः सकलमारुतजिज्ज्वरेषु स्यात्सन्निपातप्रभवेष्वतिदारुणेषु १२८

रायशन, गोखरू, शतावरी, भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, देवदारु, धनियां, इन्होंका क्वाथ दारुणरूपी सन्निपातज्वरोंमें हित है ॥ १२८ ॥

अथ त्रिवृतादि मलभेदन ॥

त्रिवृद्विशाला च तथा सुराह्वमारग्वधस्तिक्तकरोहिणी च ॥
क्वाथो भवेद्भेदनको मलानां स्याद्वातशूले नयतो भयघ्नः ॥ १२९ ॥

निशोत, इंद्रायनकी जड, देवदारु, अमलताश, कुटकी, इन्होंका क्वाथ मलको पतला करता है और वातशूलको करता है ॥ १२९ ॥

अथ सन्निपातस्वेदहर ॥

वचा यवानी च महौषधश्च शुष्कश्च चूर्णं तनुलेपनाय ॥ शस्तं वदन्ति ज्वरघर्मशान्तिं करोति नूनं परिमर्दनश्च ॥ १३० ॥ मागधी च सुरदारु तथा च विश्वकं तिक्ता च दीप्यकयुतं तनुलेपनाय ॥ चूर्णं प्रशस्तमपि वारयते शरीरे स्वेदश्च शीतलतनुर्भवेदाशु नूनम् ॥ १३१ ॥

वच, अजमान, सूंठ, इन्होंका सूखा चूर्ण बना शरीरपै मालिसकरै यह ज्वरको और पसीनाको शांत करता है ॥ १३० ॥ पीपल, देवदार, सूंठ, कुटकी, अजमान, इन्होंका चूर्ण बना शरीरपै मालिस करनेंसे पसीने दूर होते हैं और शीतल शरीर होजाता है ॥ १३१ ॥

अथ नस्यविधान ॥

मधूकसारं समहौषधेन वचोषणा सैन्धवसंयुता च ॥ मूत्रेण वा चोष्ण जलेन पिष्टं प्रनष्टज्ञानप्रतिबोधनाय ॥ १३२ ॥ शोभाञ्जनकमूलस्य रसं समरिचान्वितम् ॥ विसञ्ज्ञितानां नस्यं स्याद्बोधनं चाशु रोगिणाम् ॥ १३३ ॥

महुआका सार, सूंठ, वच, मिरच, सेंधानमक, इन्होंको गोमूत्रमें अथवा गर्मपानीमें पीस नाकमें चढावै यह नस्य मूर्च्छाको प्राप्तहुयेको जगाता है ॥ १३२ ॥ सहौंजनाकी जडका रसमें मिरचोंका चूर्ण मिला नासिकामें चढानेंसे संज्ञासे रहित मनुष्योंको शीघ्र ज्ञान होजाता है १३३ ॥

अथ प्रधमनविधि ॥

एकं बृहत्याः फलपिप्पलीकं शुण्ठीयुतं चूर्णमिदं प्रशस्तम् ॥ प्रधाम

येद्घ्राणपुटे तु संज्ञाचेष्टां करोति क्षवथुप्रबोधः ॥ १३४ ॥

बडीकटेलीका एक फल, पीपल, सूंठ, इन्होंका चूर्ण बना पुटलीकें द्वारा नासिकामें चढानेंसे छीक आती है और चेष्टा होजाती है ॥ १३४ ॥

अथ अंजनविधि ॥

शिरीषबीजं मरिचोपकुल्या मूत्रेण घृष्टं सह सैन्धवेन ॥ नेत्राञ्जनं स्यान्नयने नराणां प्रनष्टसंज्ञां प्रकरोति बोधः ॥१३५॥ त्रिकटु तथा च करञ्जबीजं त्रिफला सुरदारु सैन्धवम् ॥ तुलसी वर्त्ति नयनाञ्जनकं तन्द्रानाशं करोति नयनानाम् ॥ १३६ ॥

शिरसके बीज, मिरच, पीपल, सेंधानमक, इन्होंको गोमूत्रमें पीस नेत्रोंमें आंजै यह अंजन नष्टहुई संज्ञाको फिर उपजाता है ॥१३५॥ सूंठ, मिरच, पीपल, करंजुवाके बीज, हरडै, बहेडा, आंवला, देवदार, सेंधानमक, तुलशी, इन्होंको पीस बत्ती बना नेत्रोंमें आंजै यह आंजन तंद्राको नाशता है ॥ १३६ ॥

अथ निष्ठीवनविधि ॥

केसरं मातुलुङ्गस्य शृङ्गवेरं ससैन्धवम् ॥ त्रिकटुसंयुतं कृत्वा आकण्ठाद्धारयेन्मुखे ॥ १३७॥ दन्तजिह्वामुखं तालुघर्षणं कारयेद्बुधः ॥ कुर्य्यान्निष्ठीवनं सर्वं वारंवारं विधानतः ॥ १३८ ॥ तेन कण्ठविशुद्धिः स्याच्छ्लेष्माणं चापकर्षति ॥ जिह्वापटुत्वरुचिकृत्कासः श्वासश्च शाम्यति ॥ १३९ ॥ त्रिकटुचव्यकापथ्याचूर्णं सैन्धवसंयुतम् । तेन दन्तांस्तथा जिह्वां घर्षयेत्तालुकामलम् ॥ १४० ॥ निष्ठीवनं गलशुद्धिरुचिकृत्कफसूदनम् ॥ हृल्लासो नाशमाप्नोति पटुत्वं कुरुते भृशम् ॥ १४१ ॥

बिजौराकी केसर, आदरक, सेंधानमक, सूंठ, मिरच, पीपल इन्होंको मिला मुखमें धारै ॥१३७॥पीछे दंत, जीभ, मुख, ताल इन्होंको घिसै पीछे विधानसे वारंवार थूकताजावै।१३८॥ इस्से कंठकी शुद्धि होतीहै और कफ दूर होजाता है और जीभ साफ होजाती है और रुचि उपजती है खांसी और श्वास शांत होजाता है ॥१३९॥ सूंठ, मिरच, पीपल, चव्य, हरडै, सेंधानमक, इन्होंके चूर्णसे दंत, जीभ, तालु, इन्होंको घिसै ॥ १४० ॥ यह निष्ठीवनकर्म गलकी शुद्धि और रुचिको करता है कफको दूर करता है थुकथुकीको नाशता है और अत्यंत स्वादको उपजाता है ॥ १४१ ॥

अथ सन्निपातमें विशेषता ॥

यदि वा शीतगात्रे च तदा स्वेदो विधीयते ॥ स्वेदास्त्रयोदश ज्ञेयाः स्वेद वारणकारणाः ॥ १४२ ॥ सङ्करः प्रस्तुतो नाडीपरिषेकोऽपगाहनः ॥ आतङ्कोऽस्मयनः कर्षः कूटी भूकुम्भिरेव च ॥ १४३ ॥ कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदश ॥ १४४ ॥ कालस्वेदं घटीस्वेदं वालुकास्वेदमेव च ॥ कारयेद्धस्तपादाभ्यां तथा शिरसि चातुरे ॥ एवं नो शान्तिर्यदि वा दहेल्लोहशलाकया ॥ १४५ ॥ पादौ दग्धे न चेच्छैत्यं दहेद्वाङ्गुष्ठमूलके ॥ तथा च मणिबन्धे च हृदि मूर्ध्नि तथापि वा ॥ १४६ ॥ स्वेदो ललाटे हिमो वा नरस्य शीतार्दितस्यापि सपिच्छलस्य ॥ कण्ठस्थितो यस्य न याति वक्षो नूनं समभ्येति गृहं हि मृत्युः ॥ १४७ ॥ सप्ताहे वा दशाहे वा द्वादशाहेऽथवा पुनः ॥ त्रयोदशे पञ्चदशे प्रशमं याति हन्ति वा ॥ १४८ ॥ अथ पञ्चदशाहे वा हन्ति रक्षति मानवम् ॥ सन्निपातो महाघोरो ज्वरः कालाग्निसन्निभः ॥ १४९ ॥ एषा त्रिदोषमर्य्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ सन्निपातस्य दोषस्य नरस्यास्य भिषग्वर! ॥ १५० ॥ सन्निपातेऽन्तर्दाहे मनुजं यः शीतवारिणा सिञ्चेत् ॥ आतुरः कथमपि जीवेद्वैद्यश्चासौ कथं पूज्यः ॥ १५१ ॥ यः सन्निपातजलधौ पतितं मनुष्यं वैद्यः समुद्धरति किन्न कृतं नु तेन ॥ धर्मेण वाथ यशसा विनयेन युक्तः पूजां च कां भुवितले न लभेत्तु वैद्यः ॥ १५२ ॥

जो शीतल शरीरहो तब पसीनादेना चाहिये दुःखको दूर करनेंके कारणरूपी स्वेद अर्थात् पसीनें तेरह जानने ॥ १४२ ॥ संकर, नाडीपरिषेक, अपगाहन, आतंक, अस्मयन, कर्ष, कूटी, भूकुंभि ॥ १४३ ॥ कूप, होलाक, कालस्वेद, घटीस्वेद, वालुकास्वेद, ये तेरह प्रकारके स्वेद मनुष्यके पसीनाको लाते है ॥ १४४ ॥ इन्होंसे रोगीका हाथ, पैर, शिर इन्होंपै पसीनाको देवै जो ऐसे शांति नहींहो तब लोहाकी शलाईसे दागदेवै ॥ १४५ ॥ जो पैरपै दागदियेंसेभी शीतलता नहीं उपजै तब अंगूठाके मूलमें दग्धकरै अथवा मणिबंध अर्थात् पहुंचा, हृदय, मस्तक, इन्होंमें दग्धकरै ॥ १४६ ॥ जिसके मस्तकपै पसीना आवै और सब शरीर शीतल होवै शीतसे पीडित और कफकी अधिकतावाला ऐसे मनुष्यकै कंठमें स्थित हुआ श्वास आदि छातीमें नहीं प्राप्तहोवै वह मनुष्य निश्चय मृत्युको प्राप्त होता है ॥१४७॥

सातमा, अथवा दशमां अथवा बारमां, तेरमां, पंदरमां, इनदिनोंमें सन्निपातज्वर शांत होजाता है अथवा रोगीको मारदेता है ॥ १४८ ॥ और पंद्रहमेंदिन निश्चय सन्निपातज्वर शांत होता है अथवा रोगीको मारता है यह सन्निपातज्वर महाघोररूप है काल और अग्निके समान कांतिवाला है ॥ १४९ ॥ सन्निपातकी शांत होनेंकी अथवा मारनेंकी यह मर्यादा है ॥ १५० ॥ सन्निपातमें जो शरीरमें दाह उपजै तब वैद्य शीतलपानीके छिडके दिवाता है तब रोगी नहीं जीवता और वह वैद्य पूजाको प्राप्त नहीं होसक्ता ॥ १५१ ॥ संनिपातरूपी समुद्रमें पडेहुए रोगीमनुष्यकूं जो वैद्य उद्धार करता है उसमनुष्यनें क्या नहीं किया, और धर्म, यश, तथा विनयकरकै युक्त वह वैद्य इस भूतलमें कोनसी पूजाको नहीं पाता है ? अर्थात् सर्वत्र पूज्य होता है ॥ १५२ ॥

अथ कर्णमूल (शोजा) का निदान और चिकित्सा ॥

वातपित्तकफैस्त्रिभिर्युक्तस्तथा त्रिदोषजः ॥ स च रक्तेन संयुक्तो ज्वरः स्यात्सान्निपातिकः ॥ १५३ ॥ न रक्तेन विना विद्धि ज्वरं वै सान्निपातिकम् ॥ क्वाथैः पाचनकैर्दोषाः प्रशमं यान्ति मानवे॥१५४॥ तस्मात्प्रशमिते दोषे रक्तं नैव विलीयते ॥ तेनैव जायते शोफः कर्णमूले तु दारुणः ॥ १५५ ॥ तस्मात्तस्य प्रतीकारं कुर्य्याद्रक्तविरेचनम् ॥ जलौकालाबुभृङ्गैस्तु ततश्च लेपनं हितम् ॥ १५६ ॥

वात, पित्त, कफ, इनतीनोंसे युक्त त्रिदोषजज्वर होता है और रक्तसें संयुक्तहुआ यही ज्वर सन्निपात कहाता है ॥ १५३ ॥ रक्तके विना सन्निपातज्वरको नहीं जानना क्वाथ और पाचनसंज्ञक क्वाथोंसे मनुष्यके दोष शांत होजाते हैं ॥ १५४ ॥ तिसकारणसे दोष शांतभी होजाते हैं परंतु रक्त नहीं शांत होता तिसकरकै कानके जडमें भयंकर शोजा उपजता है ॥१५५॥ तिस्से तिसकी चिकित्सा रक्तका निकासना है जोक, तुंबी, शींगी, इन्होंसे रक्तको निकासे पीछे लेप कराना ॥१५६॥

अथ कर्णशोथ ऊपर लेप ॥

बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थस्तथैव च ॥
आलेपनमिदं चास्य कर्णमूलस्य नाशनम् ॥ १५७ ॥

बिजोराकी जड, अरनी, इन्होंको पानीमें पीस लेप करना यह लेप कर्णमूलको नाशता है

अथ दूसरा लेप ॥

आगारधूपरजनीसुमहौषधेन सिद्धार्थसैन्धववचापयसा विमर्द्य ॥ लेपो

हितोरक्तविनाशकारी शोफव्रणस्य शमनो मनुजस्य कर्णे ॥ १५८ ॥

घरका धुवा (श्रीवेष्टधूप), हलदी, सूंठ, सरसों, सेंधानमक, वच, इन्होंको दूधसे पीस कर्णमूलपर लेपकरना यह लेप रक्तके विकारको नाशता है शोजा और घावको शांत करताहै

अथ व्रणरोपण औषध ॥

यदा पाको भवेत्तस्य कार्य्या तत्र प्रतिक्रिया ॥ धवार्जुनकदम्बत्वग्लेपनं व्रणरोहणम् ॥ १५९ ॥ निम्बारग्वधमूलानां निशायुक्तं प्रलेपनम् ॥ स्रावणं पूयगन्धानां रोहणं स्याद्व्रणेषु च ॥ १६० ॥

जो कानकी जडमें शोजा पकजावै तहां जो क्रिया करनी चाहिये वह कहीजाती है धवकी छाल, अर्जुनवृक्षकी छाल, कदंबकी छाल, इन्होंको पीस लेप करनेंसे घावपै अंकुर आजाता है ॥१५९॥ नींबकी छाल, अमलताशकी छाल, हलदी, इन्होंका लेप राद और दुर्गंधको झिराता है और घावोंपर अंकुरको लाता है ॥ १६० ॥

अथ कर्णशोथवालेकूं पथ्य ॥

वर्जयेच्च दिवास्वप्नं योषित्सङ्गं बहूदकम् ॥ शीतांबु जागृतिं रात्रौ व्यायामं शोचनं तथा ॥ १६१ ॥ माषांश्च यवगोधूमतिलपर्णीकमेव च ॥ मसूरत्रिपुटांश्चैतांस्तैलञ्च दूरतस्त्यजेत् ॥ १६२ ॥ मासमेकं व्यवायं च पक्षैकं चातिभोजनम् ॥ वर्जयेत्कर्णमूलञ्च सुखं तेनोपपद्यते ॥ १६३ ॥ षष्टिकान्नं पुराणं वा बाल्यं सूपस्तथाढकी ॥ कुलत्थामुद्गयूषं वा भोजने च प्रशस्यते ॥ १६४ ॥ वार्त्ताकञ्च पलाण्डुं च कन्दशाकान्परित्यजेत् ॥ एतेन सुखमाप्नोति शीघ्रं रोगाद्विमुच्यते ॥ १६५ ॥

इस कर्ण मूलमें दिनका सोना, स्त्रीसंग बहुतपानीका पीना, शीतलपानी, रात्रिका जागना, कसरत, शोच, ॥ १६१ ॥ उडद, यव, गेहूं, तिलका पदार्थ, मसूर, मठर, तेल, इन्होंको दूरसे वर्जै ॥ १६२ ॥ और एकमहीनातक मैथुनको और पंदरहदिनोंतक अत्यंत भोजनको वर्जै तब सुख होता है ॥ १६३ ॥ साठीचावल, पुरानाअन्न, अरहरकी दाल, कुलथी और मूंगोंका यूष ये सब भोजनमें श्रेष्ठ हैं ॥ १६४ ॥ वार्ताकु, प्याज, कंदशाक इन्होंको त्यागै ऐसे करनेसे सुखको प्राप्त होता है और शीघ्र रोगसे छुटता है ॥ १६५ ॥

अथ अंतर्दाहका कारण ॥

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्बाह्ये श्लेष्मसमीरणौ ॥
तदान्तर्दाहशोषः स्याद्बाह्ये सस्वेदशीतता ॥ १६६ ॥

जब शरीरके भीतर पित्त स्थित होजाता है और शरीरके बाहिर कफ और वात स्थित होता है तब शरीरके भीतर दाह और शोष उपजता है और शरीरके बाहिर पसीना और शीतलता होती है ॥ १६६ ॥

अथ अंतर्दाहकी चिकित्सा ॥

तस्यामृतापयःक्काथं मधुपिप्पलिसंयुतम् ॥ पाययेदाशु मुच्येत ज्वराद्वै सान्निपातिकात् ॥ १६७ ॥ अथवातिविषा वालं नागरं घनपर्पटम् ॥ क्काथो वा शर्करायुक्त अन्तर्दाहोपशान्तये ॥ १६८ ॥

तिसकों गिलोयके क्काथमें शहद और पीपलका चूर्ण मिला पानकरावै तब शीघ्रही सन्निपानज्वरसे छुटजाता है ॥ १६७ ॥ अथवा अतीश, नेत्रवाला, सूंठ, नागरमोथा, पित्तपापडा, इन्होंका क्काथ बना तिसमें खांड मिला पीवै तब शरीरका भीतरकी दाह शांत होती है ॥ १६८ ॥

अंतर्दाहका पुनःकारण और चिकित्सा ॥

बाह्ये पित्तं यदा तिष्ठेदन्ते वा कफमारुतौ ॥ तेनोष्णत्वं शरीरस्य अन्ते शैत्यं च जायते॥१६९॥तस्यशठ्यादिकं क्काथं प्रयुञ्जीयात्कफापहम्॥१७०

जब शरीरके बाहिर पित्त स्थितहो और शरीरके भीतर कफ और वात स्थितहोवै तब शरीर गर्म होताहै हाथ और पैरोंमें शीतलता होतीहै ॥ १६९ ॥ तिसको कचूरआदि पूर्वोक्त क्काथका पान कराना यह कफको शांत करता है ॥ १७० ॥

अथ शरीर शीतल और अर्धा गर्म होय तहां कारण और चिकित्सा॥

यस्योर्ध्वाङ्गे वातकफावधोगं पित्तमेव च ॥ तेनार्द्धं शीतलं गात्रमर्द्धं चोष्णं च जायते ॥ १७१ ॥ तस्य रास्नादिकं क्काथं प्रयुञ्जीयात्तथोष्णकम् ॥१७२ ॥ यस्योर्ध्वं रक्तपित्तञ्च मध्ये वातकफावुभौ॥ तेनोर्ध्वं जायते चोष्णमधः शीतं प्रजायते ॥ १७३ ॥ तस्य नागरादिकाथं युञ्जीयाद्भिषगुत्तमः ॥ १७४ ॥

जिसके ऊपरके अंगोंमें वात और कफकी स्थितिहो और नीचाके अंगमें पित्तकी स्थितिहो तिसकरके आधा शरीर गर्म रहता है और आधा शरीर शीतल रहता है ॥१७१ ॥ तिसको पूर्वोक्त गर्मगर्म रास्नादि क्काथका पान कराना ॥ १७२ ॥ जिसके ऊपरले अंगोंमें रक्त और पित्तहो और मध्यमें वात और कफहो तिस्से ऊपरला शरीर गर्म रहता है और नीचरला शरीर शीतल रहता है ॥ १७३ ॥ तिसको पूर्वोक्त संठआदि क्काथका पान कराना ॥ १७४ ॥

यस्योष्मा दृश्यते चापि मन्दस्तृष्टा च जायते॥बाह्यवेगं विजानीयाज्ज्वरः साध्यो विजानता ॥ १७५ ॥ यस्यान्ते जायते चोष्मा तृष्णा दाहः शिरोव्यथा ॥ गम्भीरवेगं जानीयात्कृच्छ्रसाध्यो नृणामपि ॥ १७६ ॥ तस्य कुर्यात्प्रतीकारं योगोऽष्टादशको नृणाम् ॥ १७७ ॥

जिसके गरमाईहो और ज्वरका मंदवेगहो तिसको बाह्यवेगज्वर कहते हैं यह ज्वर साध्य होता है ॥ १७५ ॥ तिसके हाथ और पैरमें गर्माईहो और तृषा, दाह, शिरमें पीडा ये उपजै तिसको गंभीरवेगज्वर कहते हैं यह मनुष्योंके कष्टसाध्य होताहै ॥ १७६ ॥ तिसके लिये अष्टादशांग क्वाथ काफी है ॥ १७७ ॥

अथ शीतलअंगमें गरमकरनेंकी चिकित्सा ॥

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्देहे वातकफावुभौ ॥ तेन शैत्यं शरीरस्य उष्णत्वं करपादयोः ॥१७८ ॥ तस्य रास्नादिकः क्वाथः प्रदेयः पिप्पलीयुतः १७९

जब हाथ और पैरमें पित्तकी स्थितिहो और शरीरमें वात और कफकी स्थितिहो तिसकरकै शरीर शीतल रहता है हाथ और पैरोंमें गर्माई जाननी ॥ १७८ ॥ तिसको रास्नादि क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिला पान कराना ॥ १७९ ॥

अथ गर्मीका उपचार ॥

देहे पित्तं यदा तिष्ठेद्वाते वातकफावुभौ ॥ तस्योपजायते देहे शीतत्वं करपादयोः ॥ १८० ॥ तस्य द्राक्षादिकः क्वाथः प्रदेयो गुडकान्वितः १८१

जिसके देहमें पित्त स्थितहो हाथ और पैरोंमें वात कफ स्थितहोवै तिसका देह गर्म रहताहै हाथ और पैर शीतल रहतेहैं ॥१८०॥ तिसको द्राक्षादिक्वाथमें गुडमिला पानकराना॥१८१॥

अथ शीतत्वका उपचार ॥

यत्र यत्र भवेच्छैत्यं तत्र स्वेदो विधीयते ॥
नात्युष्णे स्वेदनं कार्यं ज्वरस्यास्य विजानता ॥ १८२ ॥

और जहां जहां शीतलता होवै तहां २ पसीना देना चाहिये इस सन्निपात ज्वरको जाननेंवालेनें अत्यंत गर्माईमें पसीना नहीं देना ॥ १८२ ॥

ज्वरादिकोंका कारण वायु है ॥

कफपित्तेन निश्चेष्टो भवत्येवानिलः सदा ॥
तस्मादेवानिलाद्रोगाः सम्भवन्ति ज्वरादयः ॥ १८३ ॥

कफ और पित्तसे चेष्टा करकै रहितहुआ वात सबकालमें रहता है तिसकारणकरकै वातसेही ज्वरआदि सब रोग उपजते हैं ॥ १८३ ॥

अथ ज्वरमुक्तिका लक्षण ॥

भ्रमः शैत्यं विह्वलता कम्पा विड्भेदनं क्लमः ॥
श्रमः स्वेदो जल्पनश्च ज्वरमोक्षे भवन्ति च ॥ १८४ ॥

भ्रम, शीतलता, विव्हलपना, कंप, विष्ठाका पतलापन, ग्लानि, परिश्रम, पसीना, बोलना, ये सब ज्वरको दूरहोनेंके समय होते हैं ॥ १८४ ॥

अथ ज्वरउतरनेंका लक्षण ॥

प्रस्वेदकण्डू च शिरा च पुष्टा तथा मुखेषु क्षवथुर्लघुत्वम् ॥ अन्नाभिलाषो विपुलेन्द्रियश्च गतक्लमो गतरुजो मनुष्यः ॥ १८५ ॥

पसीना आवै खाज चलै और नाडी पुष्ट होजावै और मुखमें छींक आवै और शरीरका हलकापनहो और अन्नकी इच्छाहो और इंद्रियें प्रसन्न होजावैं ग्लानि और पीडा जातीरहै तब जानों ज्वर उतरा ॥ १८५ ॥

अथ ज्वर नहीं उतरनेंका और लौट आनेंका लक्षण ॥

विमुक्तस्यापि हि शिरोगुरुत्वं नैव मुञ्चति ॥
अविमुक्तं विजानीयाज्ज्वरः पुनरुपैति तम् ॥ १८६ ॥

ज्वरसे मुक्तहुआ मनुष्य भारीपनको नहीं छोडै तब जानों कि तिस मनुष्यकै फिर ज्वर उपजैगा ॥ १८६ ॥

अथ विषमज्वरका लक्षण और चिकित्सा ॥

यदि धातुगतश्चैव ज्वरो देहे प्रपद्यते ॥ विषमज्वरं जानीयात्स च ज्ञेयश्चतुर्विधः॥१८७॥एकाहिको द्व्याहिकश्च त्र्याहिकश्च तथापरः ॥ वेलाज्वरश्चतुर्थोऽपि विजानीयाद्विचक्षणः ॥ १८८ ॥

जो देहके धातुओंमें ज्वर प्राप्तहोवै तिसको विषमज्वर जानना वह च्यार प्रकारका है ॥ १८७ ॥ एकाहिक अर्थात् दिनमें एकवार आनेंवाला, द्व्याहिक अर्थात् दूसरे दिन आनेंवाला, त्र्याहिक अर्थात् तीसरेदिन आनेंवाला और समयपै चौथेदिन आनेंवाला ऐसे ज्वर वैद्योंको जानना ॥ १८८ ॥

अथ एकाहिकज्वरका लक्षण ॥

शीतश्च पूर्वं भवति पश्चादुष्णश्च जायते ॥ स साध्यो मनुजे प्रोक्तः शी

ग्रं सिध्यति भेषजैः ॥ १८९ ॥ पश्चाच्च दाहमाप्नोति ज्वरो भवति दारुणः ॥ सोऽपि न मुच्यते शीघ्रं ज्वरो धातुक्षयङ्करः ॥ १९० ॥

जिसमें प्रथम शीत उपजै और पीछे गर्माई उपजै वह साध्यज्वर जानना यह औषधोंसे शीघ्र जाता रहता है ॥ १८९ ॥ भयंकर ज्वर होकै पीछे दाहसे संयुक्त हो वह शीघ्र नहीं जाता है यह ज्वर धातुओंको क्षय करता है ॥ १९० ॥

अथ तृतीयज्वरलक्षण ॥

त्रिकोरुकट्यां रुजवातपित्तं स्याच्च पित्तं मस्तके रुग्भ्रमश्च ॥ पृष्ठे तनुश्लेष्मरुजाकरं स्यात्त्रिधा तृतीयज्वरलक्षणं तत् ॥ १९१ ॥ कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥ वातपित्तशिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ १९२ ॥

कटिप्रांत, जांघ, कटि, इन्होंसें वात और पित्तसे पीडा हो और मस्तकमें पित्तसे पीडाहो और भ्रम उपजै और पृष्ठभागमें सूक्ष्म कफ पीडाको करताहो ऐसे तृतीयज्वरका लक्षण तीन प्रकारका है ॥ १९१ ॥ वात और कफसे उपजा तृतीयकज्वर प्रथम कटिप्रांतमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है वात और कफसे उपजा तृतीयकज्वर प्रथम पृष्ठ नितंब स्थानमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है वात और पित्तसे प्रथम शिरमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है ऐसे तृतीयकज्वर तीनप्रकारका है ॥ १९२ ॥

अथ चातुर्थिकज्वरलक्षण ॥

चतुर्थो द्विविधो ज्ञेयो वातश्लेष्मात्मको ज्वरः ॥ जङ्घाभ्यां श्लेष्मको ज्ञेयः शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ १९३ ॥ एवं विज्ञाय सद्वैद्यः कुर्यात्तत्र प्रतिक्रियाम् ॥ १९४ ॥

वात और कफसे उपजा चातुर्थिकज्वर दो प्रकारका है कफका चातुर्थिकज्वर प्रथम जंघाओंसे उपजता है और वातका चातुर्थिकज्वर प्रथम शिरसे उपजता है ॥ १९३ ॥ ऐसे जानकै कुशल वैद्य तहां क्रियाको करै ॥ १९४ ॥

अथ वेलाज्वरादिकका लक्षण ॥

वेलाज्वरो रसगते रक्ते चैकाहिकस्तथा ॥ मांसगोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थोऽस्थिसमाश्रितः ॥ सर्वधातुगतो ज्ञेयो जीर्णो धातुक्षयङ्करः ॥ १९५ ॥

वेलाज्वरका स्थान रसमें होता है एकाहिकज्वरका स्थान रक्तमें होता है तृतीयज्वरका स्थान मांसमें होता है और हड्डियोंमें चातुर्थिकज्वरका स्थान होता है सब धातुओंमें गमन करनेवाला जीर्णज्वर धातुओंको नष्ट करता है ॥ १९५ ॥

अथ भूतादिकसें उपजे रोग ॥

भूतजे भूतविद्या स्याद्वधाति शमताडनम् ॥ अभिशापाज्वरो यस्य तस्य शान्तिः प्रतिक्रिया ॥ १९६ ॥ कामजे कामला पित्तैर्नयेच्च श्वसनं हितम् ॥ १९७ ॥ क्रोधजे पित्तजे वापि सद्वाक्यैरुपशामयेत् ॥ ओषधीगन्धजैर्मूर्च्छा कारयेत्सेवनं हितम् ॥ १९८ ॥

भूतजज्वरमें भूतविद्यासें शांतकरना, ताडनादेनी ये हित हैं और ब्राह्मणके शापसे उपजेज्वरमें शांतिकरानी हित है ॥ १९६ ॥ कामजज्वरमें कामला और पित्तकी चिकित्साकरके आश्वासन करना हित है ॥ १९७ ॥ क्रोधसे और पित्तसे उपजे ज्वरमें श्रेष्ठवाक्योंसे शांति करना हित है ओषधीका गंधसे उपजे ज्वरमें मूर्च्छाको दूरकरनेंकेलिये पदार्थको सेवै १९८

अथ निदिग्धिकादि क्काथ ॥

निदिग्धिकानागरिकामृतानां क्काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥
जीर्णज्वरारोचनकासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १९९ ॥

कटेली, सूंठ, गिलोय, इन्होंके क्काथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवै यह जीर्णज्वर, अरोचक, खांसी, शूल, श्वासरोग, मंदाग्नि, अर्दितरोग, पीनस, इन्होंको नाशता है ॥ १९९ ॥

अथ गुडपिप्पली ॥

कासाजीर्णे श्वासहृत्पाण्डुरोगे मन्दे वाग्नौ कामलारोचके च ॥ तेषां शस्ता पिप्पली स्याद्गुडेन हन्ति नृणां जीर्णमाशु ज्वरश्च ॥ २०० ॥

गुडमें संयुक्तकरी पीपली, खांसी, अजीर्ण, श्वासरोग, पांडुरोग, मंदाग्नि, कामला अरोचक, जीर्णज्वर इन्होंको शीघ्र हरती है ॥ २०० ॥

अथ लघुपंचमूलक्काथ ॥

लघुपञ्चमूलीक्कथितः कषायश्छिन्नोद्भवायाः सह पिप्पलीभिः ॥ जीर्णज्वरे श्वासकफामयघ्नो मन्दाग्निशूलारुचिपीनसानाम् ॥ २०१ ॥

शालपर्णी, पिठवन, छोटी कटेली, बडीकटेली, गोखरू, इन्होंके क्काथको अथवा गिलोयके क्काथमें पीपलका चूर्ण मिलापीवै तो जीर्णज्वर, श्वास, कफका रोग, मंदाग्नि, शूल, अरुची, पीनस, इन्होंका नाश होता है ॥ २०१ ॥

अथ जीर्णज्वरपर पटोलादि क्काथ ॥

पटोलपाठाकटुरोहिणीनां फलत्रयं वत्सकनिम्बमोक्षाः ॥ द्राक्षा

मृताचन्दननागराणां क्वाथः पुराणज्वरनाशनाय ॥ २०२ ॥

परवल, सोनापाठा, कुटकी, हरडै, बहेडा, आंवला, इंद्रजव, नींबकी छाल, मोखावृक्ष, दाख, गिलोय, चंदन, सूंठ, इन्होंका क्वाथ पुरानेंज्वरको नाशता है ॥ २०२ ॥

अथ विषमज्वरका औषध ॥

सजीरकं गुडं भक्षेत्सगुडां वा हरीतकीम् ॥ सगुडान्वा तिलान्भक्षेज्ज्वरे च विषमानुगे ॥ २०३ ॥ गुडार्द्रकं वा संभक्षेत्सगुडं त्रिफलाक्काथम् ॥ क्काथोऽपि विषमाणान्तु ज्वराणां नाशकारकः ॥ २०४ ॥

गुडसहित जीराको अथवा गुडसहित हरडैको अथवा गुडसहित तिलोंको खावै यह विषमज्वरको नाशता है ॥ २०३ ॥ गुडसहित आदरक अथवा गुडसहित त्रिफलाके क्काथको पीवै यह विषमज्वरोंको नाशता है ॥ २०४ ॥

अथ चातुर्थिकज्वरका उपाय ॥

वासाधात्रीफलदारुपथ्यानागरसाधितः ॥
मधुना संयुतः क्काथश्चातुर्थिकनिवारणः ॥ २०५ ॥

वांसा, आंवला, देवदार, हरडै, सूंठ, इन्होंके क्काथमें शहद डाल पीवै यह चातुर्थिकज्वरको नाशता है ॥ २०५ ॥

अथ चातुर्थिकपर नस्य ॥

अगस्तिपत्रं स्वरसैर्निहन्ति नस्ये च चातुर्थिकरोगमुग्रम् ॥ कासं भ्रमं चापि शिरोरुजाश्च नाशश्च नस्यं च हितं नराणाम् ॥ २०६ ॥

अगस्तिवृक्षके स्वरसको नाकमें चढानेंसे भयंकरभी चातुर्थिकज्वर नाशको प्राप्त होता है और खांसी, भ्रम, शिरकी पीडा, इन्होंकाभी नाश होता है ॥ २०६ ॥

अथ विषमज्वरपर लशुनकल्क ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः ॥ विमुच्यतेऽसौ विषमज्वरेभ्यो वातामयैश्चाप्यतिघोररूपैः ॥ २०७ ॥

जो विषमज्वरसे पीडितहुआ मनुष्य तिलोंके तेलसे युक्तकिये ल्हसनके कल्कको नित्य खातारहता है वह विषमज्वर और अत्यंत भयंकर वातके रोगोंसे मुक्तहोताहै ॥ २०७ ॥

अथ विषमज्वरपर अष्टांगधूप ॥

पलञ्च निम्बस्य दलानि कुष्ठं वचा गुडं गुग्गुलुसर्षपानाम् ॥ हरी

तक्री सर्पियुतं च धूपं विनाशनं वै विषमज्वराणाम् ॥ २०८ ॥

नींबके पत्ते ४ तोले और कूट, वच, गुड, सरसों, हरडै, गूगल, ये सब उनमानसे मिला महीनपीस घृतसे युक्तकर धूप देनेंसे विषमज्वरोंका नाश होता है ॥ २०८ ॥

अथ वेलाज्वरआदिकोंका उपाय ॥

स्वरसो मूलमाहृत्य हस्ते बद्धः शुभे दिने ॥ वेलाज्वरादिकान् हन्ति भूतज्वरनिवारणः ॥ २०९ ॥ मुस्तामृतामलक्यश्च नागरं कण्टकारिका ॥ कणाचूर्णान्वितः क्वाथस्तथा मधुसमन्वितः ॥ २१० ॥ एकाहिकं वा वेलाद्यं ज्वरं जातं व्यपोहति ॥ २११ ॥ रसोनबीजं विहाय खण्डं कृत्वा निशासु च ॥ तक्रमध्ये विनिक्षिप्य प्रभाते घृतसंयुतम् ॥ २१२ ॥ सेवितश्च ज्वरान्हन्ति वेलाद्यान्देहधातुगान् ॥ २१३ ॥ पिप्पलीवर्द्धमानश्च पिबेत्क्षीरं रसायनम् ॥ महौषधं नागरश्च धान्यं चन्दनवालुकम्२१४ गुडूचिकापयः पिबेत्तृतीयकज्वरापहम् ॥ अपामार्गस्य मूलञ्च नीलीमूलमथापि वा ॥ २१५ ॥ लोहितेन तु सूत्रेण आमस्तकप्रमाणतः ॥ वामकर्णे कटीं बद्धा ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ २१६ ॥ वानरेन्द्रमुखं दिव्यं तरुणादित्यतेजसम् ॥ ज्वरमेकाहिकं घोरं तत्क्षणादेव नश्यति॥२१७॥

तुलसीकी जडको शुभदिनमें लाके हाथपर बांधै तब वेलाज्वर और भूतज्वरआदि नाशको प्राप्तहोते हैं ॥ २०९ ॥ नागरमोथा, गिलोय, आंवला, सूंठ, कटेली, इन्होंके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और शहद मिला पीवै ॥ २१० ॥ इस्से एकाहिकज्वर, वेलाआदिज्वर दूरहोता है ॥ २११ ॥ लस्सनके बीजोको त्याग और रात्रीमें टुकडे बना तक्रके बीचमें स्थापितकर पीछे प्रभातमें घृतसे संयुक्तकर ॥ २१२ ॥ सेवै यह वेलाआदि और देहके धातुगत आदि ज्वरोंको नाशता है ॥ २१३ ॥ वर्द्धमानपीपल, दूध, रसायन औषध, इन्होंको पीवै और सूंठ, सफेद लस्सन, धनियां, चंदन, नेत्रवाला, इन्होंको अलग२सेवै ये विषमज्वरको नाशते है ॥ २१४ ॥ गिलोयका रस तृतीयज्वरको नाशता है ऊंगाकी जडको अथवा नीलकी जडको ॥ २१५ ॥ शिरके प्रमाण लालसूत्रमें बांध पीछे वामेकानमें और कटीपर बांधनेंसे तृतीयकज्वरका नाशहोता है ॥ २१६ ॥ तरुणसूर्यका तेजके समान तेजवाला सुग्रीवनामक वानरोंका राजाके दिव्यमुखको देख घोररूपी एकाहिकज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥२१७॥

अथ ज्वरनाशकहनुमान्का पूजन ॥

वानराकृतिमालिख्य खटिकायाः पुनः शृणु ॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैरर्चयन्ति भिषग्वराः ॥ २१८ ॥

खडियासे वानरकी आकृतिको लिख गंध, पुष्प, चावलोंके अक्षत इन्होंसे वैद्यवर रक्षा करते है ॥ २१८ ॥

अथ ज्वरनाशक मन्त्र ॥

ओं ह्रां ह्रीं क्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्य्यपुत्रायामिततेजसे एकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिकमहाज्वरभूतज्वरभयज्वरक्रोधज्वरवेलाज्वरप्रभृतिज्वराणां दह दह पच पच अवत अवत वानरराज ज्वराणां बन्ध बन्ध ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा । नास्ति ज्वरः । ज्वरापगमनसमर्थ ज्वरस्त्रास्यते ॥ २१९ ॥

(मंत्र) "ओंह्रांह्रींक्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्यपुत्रायामिततेजसे एकाहिकद्व्याहिक त्र्याहिक चातुर्थिक महाज्वर भूतज्वर भयज्वर क्रोधज्वर प्रभृतिज्वराणां दहदह पचपच अवत अवत वानरराज ज्वराणां बंधबंध ह्रांह्रींह्रूं फट्स्वाहा नास्तिज्वरः ज्वरापगमनसमर्थ ज्वर स्त्रास्यते " इसमंत्रसे विषमज्वर दूर होजाता है ॥ २१९ ॥

अथ च्यारवर्णवाले ज्वरोंके चिह्न ॥

पुनश्चात्र प्रवक्ष्यामि ज्वराणां रूपलक्षणम् ॥ २२० ॥

ज्वरोंके रूप और लक्षणको फिर कहताहूं ॥ २२० ॥

अथ ब्राह्मण ज्वर ॥

संतप्तकाञ्चनाभासो हुताशनसमप्रभः ॥
उड्डीनयज्ञोपवीती च रौद्रो ब्राह्मणरूपकः ॥ २२१ ॥

अच्छीतरह तपायाहुआ सोनाके समान कांतिवाला और अग्निके समान प्रकाशित और भयंकर यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊवाला ऐसा रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाला ज्वर होताहै ॥२२१॥

अथ क्षत्रिय ज्वर ॥

जपाकुसुमसङ्काशो रौद्रदंष्ट्रान्वितस्तथा ॥
खड्गहस्तो महारौद्रो माहेन्द्रः क्षत्रियो मतः ॥ २२२ ॥

जास्वंदका फूलके समान प्रकाशवाला और भयंकर डाढोंसे अन्वित और तलवारको हाथमें लियेहुये और महादारुण ऐसा माहेंद्रसंज्ञक ज्वर क्षत्रियवर्णवाला होता है ॥२२२ ॥

अथ वैश्य ज्वर ॥

पञ्चकप्रसवाभासतप्तकाञ्चनभूषितः ॥
दण्डहस्तो मध्यवेगी वैश्यो ज्वरेश्वरो मतः ॥ २२३ ॥

पांच प्रकारके फूलोंके समान आकृतिवाला और तपायेहुये सोनासे भूषित हुआ दंडको हाथमें लेनेंवाला और मध्यमवेगवाला ऐसा ज्वरेश्वरसंज्ञक ज्वर वैश्यवर्णवाला कहाताहै२२३

अथ शूद्र ज्वर ॥

कृष्णमेघाञ्जनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ॥
त्रिनेत्रो ज्वलनप्रभः कालः शूद्रो मतस्तथा ॥ २२४ ॥

कालमेघ और पर्वतके समान आकृतिवाला और तीक्ष्णडाढोंसे प्रकाशित मुखवाला और तीन नेत्रोंवाला और अग्नीके समान कांतिवाला और कालरूप ऐसा ज्वर शूद्रवर्णवाला होताहै

अथ ब्राह्मणज्वरका लक्षण और शांति ॥

तीक्ष्णवेगः क्षुधायुक्तः शुचिर्द्वेष्टा व्रतप्रियः ॥ मूत्रञ्च किंशुकाभासं पाठशीलोऽतिजल्पकः ॥ २२५ ॥ बहुश्वासी तृषाक्रान्तो रौद्रब्राह्मणपीडितः ॥ तस्य स्नानं जपं होमं कृत्वा शान्तिः प्रपद्यते ॥ २२६ ॥

तीक्ष्णवेगवाला और भूखसे युक्त और पवित्र और वैरको करनेंवाला और व्रतमें प्यार करनेंवाला और केशूका रंगके समान मूत्रको उतारनेंवाला और पाठमें अभ्यासवाला और अत्यंत बोलनेंवाला ॥ २२५ ॥ बहुत श्वासोंको लेनेंवाला और तृषासे आक्रांतहुआ ऐसा मनुष्य रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना ॥ २२६ ॥

अथ क्षत्रियज्वरका लक्षण और शांति ॥

तीक्ष्णज्वरोऽतितृष्णश्च रक्तमूत्रञ्च मुञ्चते॥कुरुते युद्धवार्त्तांञ्च उत्तिष्ठति बलातुरः ॥ २२७ ॥ तप्तनेत्रो महाश्वासः क्षुधया पीडितस्तथा ॥ मधुगन्धो मुखे स्वेदो माहेन्द्रक्षत्रियार्दितः ॥ २२८ ॥ तस्यादौ ग्रहहोमं तु देवतास्तवनं शुचिः॥दानजपादिभिः कार्य्यैः प्राप्यते सिद्धिसङ्गमः२२९

तिसकी शांति, स्नान, जप, होम, इन्होंके करनेंसे होती है तीक्ष्णज्वरहो, अत्यंत तृषा लगै और लालमूत्र उतरै और युद्धकी बातको करै और बलसे पीडितहुआभी उठखडाहो॥२२७॥ गर्वितनेत्रोंवालाहो और महाश्वाससे संयुक्तहो सबकालमें क्षुधासे पीडितहो और मधुसरीखे गंधसे युक्तहो और मुखपर पसीनासे संयुक्तहो ऐसा मनुष्य माहेंद्रसंज्ञक क्षत्रियवर्णवाले ज्वर-

से पीडित जानना ॥ २२८ ॥ इसकी शांतिके लिये आदिमें ग्रहोंका होम, देवताकी स्तुति, दान, जप, इन्होंका होना जरुरी है ॥ २२९ ॥

अथ वैश्वज्वरका लक्षण और शांति ॥

मध्यवेगः पीतगात्रः स्वप्नशीलोऽरुचिस्तथा ॥ शीतपवनहृदुष्णः कण्ठ स्वेदोऽतिविह्वलः ॥२३०॥ बहुमूत्री भक्तियुक्तो मौनी पीतान्तलोचनः॥ नातितृष्णातुरः स्निग्धः स विज्ञेयो ज्वरेश्वरः॥२३१॥ तत्र स्वस्त्ययनातिथ्यं द्विजदैवतपूजनम्॥ जपहोमादिकं सर्वं कर्त्तव्यं शान्तिहेतुना॥२३२॥

मध्यमवेगवाला, पीले शरीरवाला, और शयनको करनेंवाला और अरुचिसे युतहुआ, शीतलपवनको वर्जनेंवाला, गर्मस्वभाववाला, कंठमें पसीनासे संयुक्तहुआ और अत्यंत विह्वलहुआ ॥ २३० ॥ बहुतसे मूत्रको उतारनेवाला, भक्तिसे युक्त और मौनी और नेत्रोंके अंतमें पीलेपनसे संयुक्त और अत्यंत तृषासे नहीं पीडितहुआ और चिकना शरीरवाला ऐसा मनुष्य ज्वरेश्वरसंज्ञक वैश्यवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना ॥ २३१ ॥ इसमें शांतिके लिये कल्याणके कर्म अतिथिकी सेवा, ब्राह्मण और देवतोंकी पूजा, जप, होम, इन सबोंका करना जरुरा है ॥ २३२ ॥

अथ शूद्रज्वरका लक्षण और शांति ॥

हृच्छूलश्चातिसारी वा मत्स्यगन्धाङ्गलेपनः ॥ उन्मादी चातितृप्ताक्षो र तेषु विकलेन्द्रियः ॥ २३३ ॥ प्रणयी त्वध्वनो भीरुर्ग्रासं नैवाभिकाङ्क्षया ॥ कालभृङ्गारकेणापि शूद्रे सिद्धिर्न जायते ॥ २३४ ॥

हृदयमें शूलवाला, अतीसारसे संयुक्तहुआ और मछलीके गंधके समान गंधवाला और अंगोंपर लेप करनेंवाला, उन्मादसे संयुक्त और अतितृप्तहुये नेत्रोंवाला और भोगमें विकलहुई इंद्रियोंवाला ॥ २३३ ॥ नम्रतासे युक्तहुआ और रस्तामें चलनेंसे डरनेवाला और इच्छासे ग्रासको नहीं लेनेंवाला और भंगरा सरीखे रूपवाला ऐसा मनुष्य शूद्रज्वरसे पीडित होताहै इसमें सिद्धि होती नहीं ॥ २३४ ॥

अथ सर्वरोगोंपर उपचार ॥

स्नानं दानजपं सुरार्चनविधिर्होमादयः प्रीतता भूतानाञ्च विशेषणेन बहुधा तृप्तिं च कुर्य्यात्ततः ॥ गोभूमिं कनकान्नपानविधिना दानेन शान्तिर्भवेत्सर्वेषां च रुजां विनाशनमिदं शंसन्ति सत्यव्रताः ॥ २३५ ॥

इसज्वरकी शांतिके लिये स्नान, दान, जप, देवतोंकी पूजा, होम आदिको करना और मनुष्योंको प्रसन्नता और भोजनसे तृप्त करना, गाय, पृथिवी, सोना, अन्न, पानी, इन्हों-का दान करना, ऐसे करनेंसे सबरोगोंकी शांति होतीहै ऐसे सत्यव्रतवाले मुनि कहतेहैं॥२३५॥

अथ ज्वरवालेकूं पथ्यआहारादि ॥

वेगं कृत्वा विषं यद्वदाशये लीयते बलम् ॥ कुप्यते प्रबलं भूयः काले दोषो विषं तथा ॥ २३६ ॥ शालिषष्टिकभक्तानां यूषं मुद्गाढकीषु च ॥ पूर्वोक्तानि च शाकानि वातघ्नानि भवन्ति हि ॥ २३७ ॥ शतपुष्पा च जीवन्ती तण्डुलीयकवास्तुकम् ॥ घृतेन भाजिका सिद्धा शाकपत्रा णीमानि च ॥ २३८ ॥ लावतित्तिरमांसादिवार्त्ताकानां तथातुरे ॥ मृग छिक्करिकाद्यानि जाङ्गलानि प्रयोजयेत् ॥ २३९ ॥ कोशातकी पटोलं च शुण्ठीकं च हितं भवेत् ॥

जैसे विषवेगको करकै आशयमें लीनहोकै फिर समयपर अत्यंत कुपित होता है तैसेही दोषभी समयपर फिर कुपित होताहै ॥ २३६ ॥ शालिचावल, सांठीचावल, मूंग और अरहरका यूष और पूर्वोक्त शाक ये सब वातको नाशते हैं ॥२३७ ॥ सौंप, जीवंती, चौलाई वथुवा, इन्होंकी भाजीको घृतमें सिद्धकर प्रयुक्तकरै ॥ २३८ ॥ लावा, तीतर, वत्तक, मृग छिक्कर इन आदि जांगलदेशके जीवोंके मांसोंकोभी रोगीको देवै ॥ २३९ ॥ तोरी परवल, सूंठ, येभी हितहै.

अथ ज्वरवालेकूं अपथ्य ॥

वर्जयेद्विदलान्नानि विदाहीनि गुरूणि च ॥२४०॥ न पिच्छलानि तैला नि तथाम्लानि च वर्जयेत् ॥ दधिमस्तुविशालानि क्षुद्रान्नानि भिषग्वरः ॥ २४१ ॥ बहूदकञ्च ताम्बूलं घृतं वापि सुरामपि ॥ २४२ ॥ क्रोधं शो कञ्च त्यक्त्वा वै सदा सौख्यं विभुञ्जते॥न कुर्य्याज्जागरं रात्रौ दिवास्वमञ्च वर्जयेत्॥२४३॥शाकटवाजिकरिद्विपिवाहनं प्रबलं परिवर्जयेत्तु सततम्॥ ज्वरिणमाशु सुखं बुभुजे सुधीः शुभविधाननिधान उपस्थितः ॥२४४॥

विदलसंज्ञक और दाहको करनेंवाले और भारे ऐसे अन्नोंको त्यागै ॥ २४० ॥ कफकारी तेल सेवतेहुये और खट्टे ऐसे शाकोंकोभी वर्जै. दही, दहीका पानी,रसाला, क्षुद्रअन्न॥२४१॥ बहुतपानी, नागरपान, वृत, मदिरा ॥ २४२ ॥ क्रोध, शोक, इन्होंको त्यागकै रोगी सबका-

लमें सुखको प्राप्तहोता है रात्रिमें जागै नहीं और दिनमें सोवै नहीं ॥ २४३ ॥ गाडी, घोडा, हस्ती, गेंडा इन्होंकी सवारीको रोगी निरंतर त्यागै ऐसे त्यागनेंसे ज्वरवालेको सुख उपजता है ॥ २४४ ॥

अथ ज्वरमुक्तोका वर्तना ॥

व्यायामं च व्यवायं च अशनं रात्रिजागरम् ॥ ज्वरमुक्तो न सेवेत तदा सम्पद्यते सुखम् ॥ २४५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ज्वरसे मुक्तहुआ मनुष्य कसरत स्त्रीसंग, दिनमें सोना रात्रिको जागना इन्होंको नहीं सेवै तब सुखको प्राप्तहोता है ॥२४५॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथातीसारचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच॥अथातीसारविज्ञानं भेषजं शृणु पुत्रक !॥ ज्वरजो वातिसारश्च भेषजमुपदिश्यते ॥ १ ॥ भेषजं त्रिविधं प्रोक्तं किञ्चिच्च धातुदूषणम् ॥ स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चिद्द्रव्यं त्रिविधमुच्यते ॥ २ ॥ तच्च दैवपथाश्रयं युक्तिपथाश्रयं सत्त्वावजयश्च ॥ मन्त्रौषधमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिधानादीति दैवपथाश्रयम् ॥ आहारव्यवहारौषधद्रव्याणां योजनेति युक्तिपथाश्रयम् ॥ अहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रह इति सत्त्वावजयश्च ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र! अतीसारविज्ञाननामक ओषधको सुन ज्वरातिसारहो अथवा अतीसारहो तहां ओषधका उपदेश कियाजाता है ॥ १ ॥ दोषको शमन करनेंवाला कोईक ओषध है और धातुको दूषित करनेंवाला कोईक ओषध है और स्वस्थवृत्तिमें कोईक ओषध माना है ऐसे ओषध तीन प्रकारका है ॥ २ ॥ और दैवपथाश्रय युक्तिपथाश्रय सत्त्वावजय, ऐसेभी ओषध तीन प्रकारका है मंत्र, ओषध, मणि, मंगल, बलि, भेट, होम, नियम, प्रायश्चित्त, वृत्त, स्वस्त्ययन, प्रणिधान, इन आदि दैवपथाश्रय अर्थात् दैवके मार्गसे आश्रितहुआ ओषध कहाता है आहार, व्यवहार, ओषध, इन्होंकी योजना कीजावै वह युक्ति-

पथाश्रय अर्थात् युक्तिके मार्गसे आश्रितहुआ औषध कहाता है अहित अर्थोंसे मनका निग्रह होना यह सत्वावजय औषध कहाता है ॥ ३ ॥

अथ अतिसारका लक्षण ॥

स्निग्धातिशीतगुरुशीतलपिच्छलान्नं दुष्टाशनातिविषमाशनपानभक्ष्यम्॥ अद्यादजीर्णमथ शोकविषैर्भयैर्वा शोकार्त्तिदुष्टपयसा तु विपर्य्ययेषु ॥ ४ ॥ दौर्बल्यतां विषमभोजनकेन चाप्सु संभिद्यते मलमजीर्णं निहन्ति चाग्निः ॥ सञ्जायते हि मनुजस्य तदातिसारो हत्वोदराग्निं मनुजस्य तदातिसारः ॥ ५ ॥ सञ्जायते स तु पुनर्बहलो मलेन स्यात्पञ्चधा निगदितो मुनिभिर्विधिज्ञैः॥ रक्ष्ये समासत उदीर्णरुजस्य नाशः क्वाथादिकैर्भवति पाचनकैश्च पूर्वम् ॥ ६ ॥

चिकना, अत्यंत शीतल, भारा, शीतल कफकारी, दुष्ट, ऐसे भोजन और अत्यंत भोजन विषम भोजन और विषमपान और अजीर्णमें भोजन इन्होंसे और शोक, विष, भय, इन्होंसे और शोककरिकै दुष्टहुये दूधसे अथवा शयनआदिके विपरीतपनेंसे ॥ ४ ॥ मनुष्योंके शरीरमें जलधातु बढके उदरकी अग्नीको शांतकरै और वह जल पवनका प्रेरित विष्ठासे मिल गुदाके मार्गसे पतला होकर नीचे अधिक उतरै उसको अतिसार कहते है ॥ ५ ॥ वह मलसे अत्यंत बढा होता है और विधिको जाननेंवाले मुनियोंनें पांच प्रकारका कहा है बढेहुये रोगके नाशको प्रथम क्वाथआदि और पाचनकरकै रक्षित करना ॥ ६ ॥

अथ ज्वरातिसार ॥

युगपज्जायते यस्य ज्वरश्चैवातिसारकैः ॥ ज्वरातिसारो घोरोऽसौ कष्टसाध्यो मनीषिणाम् ॥ ७ ॥ न पित्तेन विना सोपि जायते शृणु पुत्रक ! ॥ तस्य नो लङ्घनं प्रोक्तं ज्वरे चैवातिसारके ॥ ८ ॥

जिसरोगीके एककालमें ज्वर और अतीसार उपजै वह घोररूप ज्वरातीसार कहाता है यह बुद्धिमानोंकोभी कष्टसाध्य है ॥७॥ हे पुत्र ! सुन पित्तके विना ज्वरातिसार नहीं होता है इसवास्ते ज्वरातीसारमें लंघन नहीं कहा है ॥ ८ ॥

अथ अतीसारकी चिकित्सा ॥

सुवर्चलमतिविषाहिङ्गुपथ्याकलिङ्गकैः ॥ शुण्ठी वामातिसारघ्नी शूलघ्नी ग्राहिपाचनी ॥ ९ ॥ पथ्यादारुवचामुस्तानागरातिविषायुतैः ॥ आमातिसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः ॥ १० ॥

कालानमक, अतीस, हींग, हरडे, इंद्रजव, सूंठ, इन्होंकी, गोली आमातीसार, शूल, इनको नाशती है पाचन है और कबजको करती है ॥ ९ ॥ हरडै, देवदार, वच, नागरमोथा, सूंठ, अतीस, इन्होंका क्वाथ आमातीसारको नाशता है ॥ १० ॥

अथ ज्वरातिसारकेपर उत्पलषट्क ॥

उत्पलं धान्यकं शुण्ठी पृश्निपर्णी बलायुतम् ॥ बालबिल्वं गवां तक्रेणा त्युष्णेन च पेषयेत् ॥ ११ ॥ तेन लाजाकृतं मण्डं देयमानीय शीतलम् ॥ ज्वरातिसारशमनं हुताशनबलप्रदम् ॥ १२ ॥

नीलाकमल, धनियां, सूंठ, पिठवन, खरैंहटी, बेलगिरीका गूदा इन्होंको गायके तक्रसे पीसै ॥ ११ ॥ पीछे तिसमें धानकी खीलोंका मंड बना शीतलकर पीवै यह ज्वरातीसारको शांत करता है और जठराग्निको बल देता है ॥ १२ ॥

अथ शुण्ठ्यादि क्वाथ ॥

शुण्ठीविषानलधरामृतवत्सकानां तिक्ताह्वयं कनकशीतलकः कषायः ॥ पाने विधेयमधुना प्रतिसाधितस्तु ज्वरातिसारशमनाय सदा प्रदेयः ॥ १३॥

सूंठ, अतीस, कलोंजी, जीरा,गिलोय, इंद्रजव, कुटकी, पीलाकमल, चंदन इन्होंका क्वाथ पीना यह सब कालमें ज्वरातीसारको नाशता है ॥ १३ ॥

अथ पाठादि क्वाथ ॥

पाठेन्द्रभूनिम्बघनामृतानां सपर्प्पटः क्वाथ इह प्रशस्तः ॥ आमातिसारञ्च जयेद्द्रुतं वा ज्वरेण युक्तं सहजञ्च तीव्रम् ॥ १४ ॥

सोनापाठा, इंद्रजव, चिरायता,नागरमोथा, गिलोय, पित्तपापडा, इन्होंका क्वाथ आमातीसारको और ज्वरातीसारको जीतता है इसवास्तै श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

अथ शुंठ्यादि पाचन ॥

**शुण्ठी बालकमुस्ता बिल्वं पाठाविषा च धान्यानि ॥
पाचनमरुचौ छर्दिज्वरातिसारं विनाशयन्ति ॥ १५ ॥**

सूंठ, नेत्रवाला, नागरमोथा, बेलगिरी, सोनापाठा, अतीस, धनियां, इन्होका पाचनरूपी क्वाथ अरुचि, छर्दि, ज्वरातीसार, इन्होंको नाशता है ॥ १५॥

अथ वत्सकादि क्वाथ ॥

वत्सकश्च सुरदारुरोहिणीधान्यबिल्वमगधात्रिकण्टकम् ॥ नि

म्बबीजगजपिप्पलीवृकीकाथ एवमतिसारस्यौषधम् ॥ १६ ॥

इन्द्रजव, देवदार, हरडे, धनियां, बेलगिरि, पीपल, निंबोली, गजपीपल, काश्मीरीपाठा इन्होंका क्वाथ अतिसारमें अति उत्तम ओषध है ॥ १६ ॥

अथ पञ्चमूलीक्वाथ ॥

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः॥ पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलै र्भृतः ॥१७ ॥ इति सर्वानतीसारान्वमिश्वासज्वरार्दितान् ॥ सशूलोपद्रवां श्वासौ हन्याच्चासुरदारुणम् ॥ १८ ॥ पञ्चमूल्यतिसामान्या योज्या पित्ते कनीयसी ॥ महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मज्वरे हिता ॥ १९ ॥

पञ्चमूल, खरैंहटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सूंठ, सोनापाठा, चिरायता, नेत्रवाला, कूडाकी छाल, इन्द्रजव, इन्होंका क्वाथ ॥ १७ ॥ सबप्रकारके अतीसार, छर्दि, श्वासरोग, ज्वर, शूल, इन्होंको नाशताहै ॥ १८ ॥ पित्तदोषमें लघुपञ्चमूल वर्तना वात और कफ-दोषमें बृहत्पञ्चमूल वर्तना ॥ १९ ॥

अथ उत्पलादिपाचन ॥

उत्पलं दाडिमं त्वक्क केशरं तथा मधु पद्मकम् ॥
धात्री पिष्टा तण्डुलतोयैः पाचनं ज्वरातिसारघ्नम् ॥ २० ॥

नीलाकमल, अनारकी छाल, केशर, कमल, आंवला इन्होंको चावलोंके पानीसे पीस शहद मिला पीवै यह पाचन ज्वरातीसारको नाशता है ॥ २० ॥

अथ उशीरादि क्वाथ॥

उशीरं धान्यकं मुस्तं सबिल्वं बालकं बला ॥ तथा च धातकीपुष्पं कषायस्य प्रशस्यते ॥२१॥ ज्वरातिसारशमनं सहशोणितपैत्तिकम् ॥ निहन्ति शोफं सकलं रुचिप्रदविपाचनम् ॥ २२ ॥

खश, धनियां, नागरमोथा, बेलगिरी, नेत्रवाला, खरैंहटी, धवके फूल इन्होंका क्वाथ श्रेष्ठ है॥ २१॥ ज्वरातिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, सबप्रकारका शोजा, इन्होंको शांत करता है और रुचीको देता है और पाचन है ॥ २२ ॥

बिगतामातिसारं चिरोत्थितं रक्तसहितमतिवृद्धम् ॥
मधुना सहितः शमयत्यरलुः पुटपाकनिर्य्यासितः ॥ २३ ॥

सोनापाठाको पुटपाककी विधिसे पकाके रसको निचोड तिसमें शहद मिला पीवै यह पक्कातिसार और पुराना अतीसार और बढाहुआ रक्तातिसारकोभी नाशता है ॥ २३ ॥

जंब्वादिस्वरस ॥

जम्बूवटोदुम्बरप्लक्षको हि नागश्च प्रपौण्डरिकं शमी च ॥ गुन्द्रः सचूतोऽम्बुदजीविकाया आसां हि पुञ्जश्च सदा विदध्यात् ॥२४॥ प्रस्थद्वयेन प्रविवेद्धि तावद्यावद्विशेषांशमिदं प्रजायते ॥ पुनः कटाहे विपचेच्च सम्यग्दार्वीप्रलेपः स्वरसश्च यावत् ॥ २५ ॥ उत्तार्य्य नूनं भिषगुत्तमेन क्षौद्रेण मिश्रं हरतेऽतिसारम् ॥ २६ ॥

जामनवड, गूलर, पिलखन, नागकेशर, कमल, जाती, मोथा, तृण, आंब, नागरमोथा, जीवंती, इन्होंके फूलोंको सबकालमें लेवै ॥ २४ ॥ पीछे १२८ तोले पानीमें पकावै जब चौथाईभाग शेष रहै तब फिर कढाईमें घालि फिर पकावै जब कडछीपर चेपनेंलगै ॥२५॥ तब उतार उत्तमवैद्यनें निश्चय शहद मिला रोगीको देना चाहिये यह अतीसारको हरता है॥२६॥

काकमाचीका प्रयोग ॥

हारीतेन तथा प्रोक्ता काकमाची सुपूजिता ॥ आलोक्यानेकशास्त्राणि आत्रेयेणापि पूजिता ॥ २७ ॥

जैसे अनेक शास्त्रोंको देख आत्रेयजीने काकमाची अर्थात् भोलणीनामसें प्रसिद्ध मकोह-विशेष ओषधी पूजित कीहै तैसेही हारीतनेंभी यही ओषधी पूजी है ॥ २७ ॥

जंबूत्वगादिका अवलेह ॥

जम्बूत्वचं वत्सकवल्ककल्कं च निष्क्वाथ्य नूनं सलिले समीरणम् ॥ चतुर्विभागेष्वपि शेषितेषु उत्तार्य्य वस्त्रेष्वथ गालयेच्च ॥ २८ ॥ पुनः कटाहे विपचेच्च सम्यग्दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ उत्तार्य्य शीते मधुना विमिश्रं लीढं हरेदप्यतिसारमुग्रम् ॥ २९ ॥

जामनकी छाल, कुडाकी छाल, इन्होंका पानीमें क्काथ बना जब चौथाई भाग शेष रहै तब उतारि वस्त्रसे लेवै ॥ २८ ॥ छान फिर कडाहीमें घाल अच्छीतरह पकावै जब कडछीपै चिपनेलगे और स्वरसरूप रहै तबतक अग्निसे उतार शीतलकर शहद मिलाचाटै यह दारुण अतीसारको हरता है ॥ २९ ॥

अतिसारका पूर्वरूप ॥

कुक्षोदरे वक्षसि नाभिदेशे पायुप्रदेशे सततं निरुद्धे ॥ वातस्य रोधश्च शकृद्विभङ्गो भवन्ति सर्वेष्वतिसारकेषु ॥ ३० ॥

अतीसाररोगमें कुक्षि, उदर, छाति, नाभिदेश, गुदामंडल, ये सब स्थान रूककर अधोवायुका रोध और विष्ठाका भंग होता है ॥ ३० ॥

अथ वातातिसारका लक्षण और चिकित्सा ॥

सफेनिलं पिच्छलमेव रूक्षमल्पं सकृदामसशब्दशूलम् ॥ कृष्णं भवेद्गात्रविचेष्टनञ्च वातातिसारे प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३१ ॥ तस्यादौ लङ्घनं चैकमल्पे वा नैव लङ्घनम् ॥ तस्माद्देयं कषायं तु पानभोजनमेव च ॥ ३२ ॥

झागोंसे मिलाहुआ और रूखा मल उतरै और थोडा वारंवार आमसहित आवै और दिशाजानेंके समय शब्द और शूलको उपजावै और शरीरआदि कृष्णवर्ण होजावे तिसको वातातीसार कहते हैं ॥ ३१ ॥ तिसकी आदिमें एक लंघन करना और अल्परूप वातातिसारमें लंघन नही करना तिस्से क्काथ, पान, भोजन, ये देने चाहिये ॥ ३२ ॥

अतिसारका पाचक कल्क ॥

उदीच्यधान्यस्य जलेन कल्कं पाने हितं पाचयतेऽतिसारम् ॥ तृष्णापहं दाहविनाशनञ्च सशूलहिक्कासुविनाशनं स्यात् ॥ ३३ ॥

नेत्रवाला, धनियां, इन्होंका पानीमें पीस कल्क बना खानेसे अतीसारको पकाता है और तृषा, दाह, शूल, हिचकी, इन्होंको नाशता है ॥ ३३ ॥

वालकादि कल्क ॥

वालकद्वयमोचहरीतकीपर्पटेन सहितं जलेन च ॥ क्काथपानमिदमेवातिसारे नाशमाशु कुरुते च विट्छान्तिम् ॥ ३४ ॥

नेत्रवाला, खश, मोचरस, हरडै, पित्तपापडा, इन्होंका पानीमें क्काथ बना अतीसार रोगी पीवै यह विष्ठाको शांत करता है ॥ ३४ ॥

शालिपर्ण्यादिपानक ॥

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ॥ बालाश्वदंष्ट्रा बिल्वानि पाठा नागरधान्यकम् ॥ ३५ ॥ एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥

शालवन, पिठवन, बडीकटेहली, छोटीकटेहली, नेत्रवाला, गोखरू, बेलगिरी, सोनापाठा, सूंठ, धनियां ॥ ३५ ॥ यह द्रव्य भोजनके संयोगमें अतीसार रोगियोंको हित हैं.

तिंदुकादिरसपानक ॥

तिन्दुकत्वचमाहृत्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् ॥ ३६ ॥ मृदा विलिप्य विधि बद्दहेन्मृद्वग्निना भिषक् ॥ रसं गृहीत्वा मधुसंयुतं पानं सर्वातिसारघ्नञ्च॥ ३७॥

और तेंदुआवृक्षकी छालिको ले कंभारीके पत्तोंसे वेष्टितकरै ॥ ३६॥ पीछे माटीसे विधिपूर्वक लीपा कोमल अग्निसे दग्धकरै पीछे रस निकाल शहदसे संयुक्तकर पीवै यह सबप्रकारके अतीसारोंको नाशता है ॥ ३७ ॥

कुटजपुटपाक ॥

तुलामथार्द्रगिरिमल्लिकायाः संकुट्य कर्षञ्च समादधीत ॥ तस्मिन्सपूते पलसंसितञ्च देयञ्च पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ३८ ॥ पाठा समङ्गातिविषा समुस्ता बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥ प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद्दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ ३९ ॥ पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाजापयसाऽथवापि ॥ निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकञ्च ॥ ४० ॥ दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तपित्तं तथार्शांसि स शोणितानि ॥ असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ४१

कूडाकी गीली छालको ४०० तोले भरले और कूट पानीमें अग्निपै पकावै जब चौथाईभाग शेष रहै तब वस्त्रमांहके छान फिर अग्निपै धर मोचरस ॥ ३८ ॥ सोनापाठा, मंजीठ, अतीश, नागरमोथा, बेलगिरी, धवके फूल, ये सब चारचारतोलेभर ले पूर्वोक्तमें मिलाके पकावै जब कडछीपै चिपनेलगे और स्वरसही हो तब उतारै ॥ ३९ ॥ पीछे कालको जाननेवाले रोगीनें पीनी, मंड, बकरीका दूध, इन्होंके संग पीना यह कृष्ण, सफेद, लाल, पीला, ऐसेवर्णसे सब अतिसारोंको नाशता है ॥ ४० ॥ और ग्रहणीदोष अनेक प्रकारका रक्तकी ववासीर और असाध्यरूप प्रदररोग इन्होंको निश्चय हरता है इसको कुटजाष्टक कहते हैं॥ ४१ ॥

अथ पित्तातिसारका लक्षण और चिकित्सा ॥

घर्मेण चोष्णान्नविभोजनेन घर्मेण तप्तोदकसेवनेन ॥ शोकेन तापेन रुषा कटुत्वे क्षारेण पित्तास्रकसारकः स्यात् ॥ ४२ ॥ तेनारुणं पीतमथा

तिनीलं दुर्गन्धशोषज्वरपाण्डुयुक्तम् ॥ भ्रमार्त्तिमूर्च्छा च तृषाङ्गदाहः पित्तातिसारस्य च लक्षणानि ॥ ४३ ॥

घामसे और गरम अन्नके भोजनसे और घामसे तप्तहुआको जलके सेवनेसे शोक और तापसे क्रोधसे कडुआ और खारारसको सेवनेसे पित्तातीसार उपजता है ॥ ४२ ॥ लाल, पीला, अत्यंतनीला, ऐसा मल उतरै और दुर्गंध, शोष, ज्वर, पांडुरोग, भ्रम, मूर्च्छा, तृषा, ये उपजै और अंगोंमें दाहहो तिसको पित्तातीसार जानियें ॥ ४३ ॥

अथ शालिपर्ण्यादिपान ॥

शालिपर्णीपृश्निपर्णीबलाबिल्वैस्तु साधितः ॥
दाडिमाम्लो हितः पेयः पित्तातीसारशान्तये ॥ ४४ ॥

शालवन, पिठवन, खैरेंहटी, बेलगिरी, इन्होंसे साधितकरी अनारकी कांजीको पीना यह पित्तातीसारकी शांतिमें हित है ॥ ४४ ॥

अथ दशमूलका क्वाथ ॥

कुशकाशेक्षुमूलानां शालीनलभवैर्जलैः ॥
मूलानां क्वाथमाहृत्य शस्तं पित्तातिसारिणाम् ॥ ४५ ॥

डाभ, कांस, ईख, इन्होंकी जडोंका चावल और कमलके पानीमें क्वाथ बना पीवै यह पित्तातीसारियोंके श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥

अथ धान्यपञ्चकादिक्काथ ॥

धान्यपञ्चकमूलानां क्वाथः पित्तातिसारिणाम् ॥ ४६ ॥

धनियां, और पंचमूलका क्वाथ पित्तातिसारियोंको हित है ॥ ४६ ॥

अथ शाल्मलीमूलकल्क॥

शाल्मलीमूलत्वग्गुडदुग्धपेषितं च ॥
पानं पित्तातिशमनं सरक्तदाहशोषहरम् ॥ ४७ ॥

संभलकी जड और छाल, गुड इन्होंको दूधमें पीसपीवै यह पित्तातिसार, रक्त, दाह, शोष, इन्होंको हरता है ॥ ४७ ॥

अथ कफातिसारलक्षण ॥

दुःस्वमादिश्रमाद्वै सहजजडतया शीतसंसेवनेन स्निग्धाहारातिभोज्यात्स

तिलपलगुडैश्चेक्षुखण्डैर्गुरूणाम् ॥ शीतातिस्नानलौल्यात्पयसि दधियुता हारसंसेवनाच्च जातः श्लेष्मातिसारो जठरहुतभुग्हृदयस्तु पुंसामपाकः ॥ ४८ ॥ तेन श्लेष्मा शुष्कभेदारुचिः स्यात्सान्द्रं विस्रं जाड्यता रोम हर्षः ॥ मन्दाग्नित्वं मन्दवेगो विशिष्टः सालस्योऽपि विद्धि सारः कफोत्थः ४९

दुःस्वप्न अर्थात् बुरीतरह शयन करना आदिसे परीश्रमसे, जडपनेसे, शीतलपदार्थको सेवनेसे चिकना भोजनको और अत्यंतभोजनको करनेसे और तिल, गुड, मांस, ईखकाअन्न, भारापदार्थ इन्होंको सेवनेसे और शीतलपानीमें अत्यंत स्नान और चंचलता करनेसे, और दहीसे युक्तहुये भोजनको दूधमें मिलाके सेवनेसे कफातीसार उपजता है और जो आप नहीं पक्ता है वह पेटकी अग्निको नाशता है ॥ ४८॥ जिसका मल चिकना और सफेद गाढा दुर्गंधिलिये शीतल थोडी पीडासहित उतरै और शरीर भारी रहे और भोजनमें अरुचिहों तिसको कफातिसार कहते है ॥ ४९ ॥

अथ कफातिसारकी चिकित्सा ॥

तस्यादौ लङ्घनं प्रोक्तं ज्ञात्वा देहबलाबलम् ॥
पाचनं च विधातव्यं त्र्यूषणाद्यं भिषग्वर ! ॥ ५० ॥

तिसकी आदिमें देहके बल और अबलको जानकै वक्ष्यमाण पाचनको देवै ॥ ५० ॥

अथ त्र्यूषणादिक पाचन ॥

त्र्यूषणमभया हिङ्गु चातिविषा रुचकं वचायुक्तम् ॥
मधुसहितं लेहनं नृणां गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ५१ ॥

सूंठ, मिरच, पीपल, हरडैं, हींग, अतीश, कालानमक, वच, इन्होंके चूर्णमें शहद मिलाचाटै, यह मनुष्योंके गंगाके समान वहतेहुये अतीसारको रोकता है ॥ ५१ ॥

अथ कालिंगादि कल्क॥

कालिङ्गपाठातिविषा बला च सोदीच्यमुस्तामरिचानि शुण्ठी ॥ गुडेन क्षौद्रेण प्रशस्तकल्को रक्तातिसारे कफजे शमाय ॥ ५२ ॥

इन्द्रयव, सोनापाठा, अतीश, खैरैंहटी, नेत्रवाला, नागरमोथा, मिरच, सूंठ, इन्होंके कल्कमें गुड और शहद मिला खावै यह रक्तातिसारमें और कफातिसारमें हित है ॥ ५२॥

अथ वत्सकादि क्वाथ ॥

वत्सकातिविषबिल्वमुस्तकं वालकेन सहितं जलेन तु॥ क्वाथपानमतिशूलरक्तपूयनाशनं ज्वरयुतेऽतिसारके ॥ ५३ ॥

कूडा, अतीश, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, इन्होंका पानीमें क्वाथ बना पीवै यह अत्यंतशूल, रक्त, राद, ज्वर, कफ, इन्होंसे युक्तहुये अतिसारमें हित है ॥ ५३ ॥

अथ रक्तातिसारका लक्षण ॥

यस्तु रक्तं च शुद्धं विरेचने शोषदाहमतिरिञ्चेत् ॥
रक्तातिसार इति ज्ञेयो वैद्यैर्महामतिभिः ॥ ५४ ॥

जो मल उतरनेके समय शोष और दाहसें युक्तहुआ शुद्ध रक्त गुदाके द्वारा अत्यंत पडै तिसको कुशलवैद्य रक्तातिसार कहते है ॥ ५४ ॥

अथ धान्यादिक्वाथ ॥

धान्यनागरमुस्ता च वालकं बालबिल्वकम् ॥
बला नागबला चेति क्वाथो रक्तातिसारिणाम् ॥ ५५ ॥

धनियां, सूंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, कच्चिबेलगिरी, खरैंहटी, बडी खरैंहटी इन्हेंका क्वाथ रक्तातिसारवालोंको हित है ॥ ५५ ॥

अथ दाडिमादिक्वाथ ॥

दाडिमं च कपित्थं च पथ्याजंम्बाम्रपल्लवान् ॥
पिष्ट्वा देया मस्तुयुक्ता रक्तातिसारवारणाः ॥ ५६ ॥

अनार, कैंथ, हरडें, जामन और आंबके पत्ते, इन्होंको दहीके पानीमें पीस देवै यह रक्तातिसारको नाशता है ॥ ५६ ॥

अथ गुडबिल्वादियोग ॥

गुडेन पक्कं दातव्यं बिल्वं रक्तातिसारिणे ॥
मनुजे पथ्या वा मधुयुक्ता वा दध्ना रक्तातिसारघ्ना ॥ ५७ ॥

पकाहुआ बेलगिरीका फल गुडके साथ रक्तातिसारवालेकू देना अथवा सूंठ शहदके अथवा दहीके साथ देना इससें रक्तातिसारका नाश होता है ॥ ५७ ॥

अथ वत्सकावलेह ॥

वत्सकातिविषानागराभया पिषितं च मस्तुसंयुतम् ॥ लेहस्तु
शस्तो मधुनापि मानुजे रक्तवाहमतिवारयत्यपि ॥ ५८ ॥

कूडा, अतीश, सूंठ, हरडें, इन्होंको पीस शहद और दहीका पानीमें मिलापीवै यह रक्तातिसारको दूर करता है ॥ ५८ ॥

अथ कुटजादिचूर्ण ॥

कुटजत्वक्क पाठा च विश्वं बिल्वं च धातकी ॥
मधुना सहितं चूर्णं देयं रक्तातिसारघ्नम् ॥ ५९ ॥

कूडाकी छाल, पाठा, सूंठ, बेलगिरी, धवके फूल, इन्होंके चूर्णको शहदमें मिला देवै यह रक्तातिसारको हरता है ॥ ५९ ॥

अथ सन्निपातके अतिसारका लक्षण और चिकित्सा ॥

वराहवासासदृशं तिलाभं मांसधावनाभासम्॥
पक्कजम्बूफलसदृशं सन्निपातः प्रवहताम् ॥ ६० ॥

शूरकी वसाके समान और तिलोंके समान कांतिवाला और मांसका धोवनके समान प्रकाशित और पकाहुआ जामनका फलके समान ऐसा मल उतरै तिसको सन्निपातका अतीसार जानिये ॥ ६० ॥

अथ कुटजाष्टक ॥

तुलामथार्द्रागिरिमल्लिकायाः संकुट्य पक्का रसमाददीत ॥ तस्मिन्सुपूते पलसंमिते च देयंच पिष्टा सह शाल्मलेन ॥६१॥ पाठा समङ्गातिविषा समुस्ता बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम्॥प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च ता वद्दार्वीप्रलेपः सरसस्तु यावत् ॥ ६२ ॥ पीतस्ततः कालविदा जलेन म ण्डेन च क्षौद्रयुतेन वापि ॥ निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लो हितपीतकं च ॥६३॥ दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तं पित्तस्य चार्शांसि स शोणितानि ॥ असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम्६४

सपेद कूडाका गीला फूल अथवा छाल एक तुलाभरले कूटकर उसका रस निकालकर छान ले फिर उसमें मोचरस ॥ ६१ ॥ सोनापाठा, मजीठ, अतीश, नागरमोथा, बेलगिरी, धायको फूल, इन औषधोंकों डारके चुल्हीपर पकावे, जब कडछाको लेपहोनेंलगे, तब उतारर-खे ॥ ६२ ॥ जब पीनेंका समय आवे, तब पानीके साथ अथवा मंडके साथ, किंवा शहदके साथ, पिलावे यह कुटजावलेह भयंकरकाला, सपेद, लाल, पीला ऐसे अतिसारको नष्ट करताहै ॥ ६३॥ तथा ग्रहणीके अनेक दोष, रक्त, पित्त, रक्तके ववासीर, और असाध्य असृग्दर इन रोगोंकूं अवश्य नष्ट करदेता है ॥ ६४ ॥

अथ अमृतवटक ॥

पथ्यापञ्चमूलक्काथश्चतुर्भागावशेषितः ॥ तत्र क्काथे पुनश्चूर्णमिमानि वौ

षधानि तु ॥ ६५ ॥ शृङ्गवेरं तथा लाक्षा पिप्पली कटुरोहिणी ॥ दाडि मफलत्वक्चूर्णं दार्वी सवत्सकं विषम् ॥ ६६ ॥ आटरूषकचूर्णानि सं क्षिप्यात्र निघट्टयेत्॥ आजं दुग्धं तदर्द्धेन घृतं चाष्टांशकं क्षिपेत्॥६७॥ दार्व्या विलेपितं ज्ञात्वा गुडस्य षोडशानि तु॥पलानि मिश्रितं तत्र देयम प्रातराशने ॥ ६८ ॥ त्रिदोषः सन्निपातोत्थ अतिसारश्च दारुणः ॥ शूल मूर्च्छाभ्रमानाहकामलानां विपाचनः ॥ ६९ ॥ क्षतक्षीणक्षयाणां तु हि तोऽयममृतो वटः ॥ ७० ॥

हरडैं, शालवन, पिठवन, छोटी कटेहली, बडीकटेहली, गोखरू, इन्होंको पानीमें उबाल चौथा हिस्सा शेष रहे ऐसा क्वाथ बनावै ॥ ६५ ॥ पीछे अदरक, लाख, पीपल, कुटकी, अनारदाना, अनारकी छाल, दारूहलदी, कूडाकी छाल, अतीश ॥ ६६ ॥ वांसा, इनसबोंका चूर्ण बना पूर्वोक्तमें मिलावै और क्वाथसें आधा हिस्सा बकरीका दूध और आठमें हिस्से घृतको मिला पकावै ॥ ६७ ॥ जब कडछीपै चिपनेलगे तबजान १६ तोले गुड मिलाय सायंकालके भोजनमें देवै ॥ ६८ ॥ इस्से सन्निपातका दारुण अतिसार, शूल, मूर्छा, भ्रम, अफारा, कामला, ये शांत होतेहैं ॥ ६९ ॥ क्षतक्षीण, और क्षयरोगी इन्होंको यह अमृतबटक हित है ॥ ७० ॥

अथ बिल्वादिचूर्ण ॥

एकबिल्वागुरुरोध्रचूर्णं मध्वादियोजितम् ॥ रक्तातिसारशमनं बालानां क्षीणधातुकम् ॥ ७१ ॥

एक १ बेलगिरी, अगर, लोद, इन्होंके चूर्णमें शहदमिला बालको चटावै यह धातुओंको क्षीण करनेवाले रक्तातिसारको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ गुदाके निकसनेको बंधकरनेकी चिकित्सा

यदा गुह्यं निरस्येत्तु तदा कुर्य्यात्क्रियामिमाम् ॥ सहचर्य्या बलानां च रसो ग्राह्यो घृतं पुनः ॥ ७२ ॥ पक्वघृतेन लेपः स्यात्तस्य चेदं प्रश स्यते ॥ अरणीपल्लवक्काथो वाप्यं लोष्टं सचन्दनम् ॥७३ ॥ प्रतप्तमथवा ग्निनिभं तथा नरस्य निर्वाप्य काञ्जिकमथ विदधीत तद्वत् ॥ सौख्यं च सम्यग्गुदसेचनकं प्रशस्तं संवेश्य मध्यतो गुदं दृढबन्धनं स्यात् ॥ ७४ ॥

जब गुदाकी कांच निकसै तब यह क्रिया करनी पीला कुरंटा और खरैंहटीके रसमें

वृतको पका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७२ ॥ अरनीके पत्तोंके क्काथमें चुल्हाकी माटी और चंदनको गर्मकर बुझावै अथवा इसीरीतिसे कांजीको बनावै इन्होंसे अछीतरह गुदाको सेचै ॥ ७३ ॥ और कांचको गुदाके बीचमें प्रवेशकर दृढबंधन करना ॥ ७४ ॥

अथ अतिसारविशेषता॥

लशुनकुणपगन्धं पूयगन्धं घनं वा पललजलसमानं पक्कजम्बूनिभं वा॥ घृतमधुपयसाभं तैलशैवालनीलं सघनदधिसवर्णं वर्जयित्वातिसारम्७५ भ्रममदनमकार्शं शूलमूर्च्छाविदाहं श्वसनमतिविवर्णं छर्दिमूर्च्छातृडार्त्तम् ॥ विकलमतिशयेन सौख्यशोफज्वरार्त्तिः स परिहरतु दूरं सद्धिधाता न दृष्टः ॥ ७६ ॥ शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥ छर्दिमूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ दृष्ट्वा शोफं तथाध्मानं हिक्कां छर्दिमरोचकम्॥ तथा च पाण्डुरोगार्त्तमतिसारयुतं त्यजेत्॥७८॥

लस्सनकी गंधके समान गंधवाला और मुरदाके समान गंधवाला और रादके गंधकी समान गंधवाला कठिन, और मांसके पानीके समान तेल और शिवालके समान नीला और करडी दहीके समान वर्णवाला ऐसे अतिसारको वर्जै ॥ ७५ ॥ भ्रम , उन्माद, ववासीर, शूल, मूर्छा, दाह,श्वास, इन्होंसे संयुक्त छर्दि और तृषासे पीडित अतिशय करके विकल शोजा और ज्वरसे पीडित ऐसा अतिसार वर्जदेना॥७६॥शोजा, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, हिचकी इन्होंसे संयुक्त हुये अतिसाररोगीको त्यागै ॥ ७७ ॥ और शोजा, अफारा, हिचकी, छर्दि, अरुचि, पांडुरोग, इन्होंसे पीडितहुये अतिसाररोगीको त्यागै ॥७८॥

अथ अतिसारका भेद संग्रहणीरोगका निदान और चिकित्सा

यदल्पमल्पं क्रमशो निषेवितं मलं भगाधारगतं च नित्यम् ॥ हत्वान्तराग्निं कुरुते नरस्य विकारमाहुर्ग्रहणीति संज्ञाम् ॥ ७९ ॥ निर्वृत्ते चातिसारे शमयति दहनं भूयसा दोषितोऽपि भुक्त्वा नाश्यंमलांशं बहुदिनमनिशं सञ्चयित्वा निसर्त्ति ॥ वारं वारं विगृह्य सहजमसरलं पक्कमानं घनं वा दुर्व्याधिर्घोरो मनुजरुजकरः स्यात्तथा ग्रहणीति संज्ञा ॥ ८० ॥

जो अल्प अल्प मल नित्यप्रति उतरै और दोष शरीरकी अग्निको नष्टकर विकारको उपजावै तिसको ग्रहणीरोग कहते है ॥ ७९ ॥ अतिसारके निवृत्तहोनेके पश्चात् दोषोंसे युक्तहुई ग्रहणी पेटकी अग्निको शांत करै और भोजन करके संचितहुआ मलका अंश बहुत दिनोंतक

नित्यप्रति निसरै और वारंवार कबज करके पकाहुआ और कठिन मल उतरै तिसको ग्रहणी-दोष कहते हैं यह घोररूप दुष्टरोग है मनुष्योंको पीडा देता है ॥ ८० ॥

अथ ग्रहणीके प्रकार ॥

लक्षयेच्चातिसारे च विज्ञेयं ग्रहणीगदम् ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ८१ ॥ नैव चैकेन दोषेण जायते ग्रहणीगदः ॥ तेन संक्षीयते देहमन्तर्दाहो विपाकता ॥ ८२ ॥

अतिसारमें ग्रहणीरोगको जानना, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, ऐसे ग्रहणीरोग होता है ॥ ८१ ॥ एक दोष करके ग्रहणीरोग नहीं उपजता तिसकरके मनुष्यका शरीर छीजता है और शरीरके भीतर दाह होती है और अन्न नहीं पकता ॥ ८२ ॥

अथ ग्रहणीका उपद्रव तथा गुल्मादिकोंकी संप्राप्ति ॥

तिक्तः कषायः कटुकाम्लविदाहिरूक्षः शीताल्पभोजनपरैः श्रममैथुनैश्च॥ भाराध्वहस्तिरथवाहनधावनेन संक्रुद्धवायुहननेनलवेगमेनम् ॥ ८३ ॥

कडुआ, कसैला, चर्चरा, खट्टा, दाहकरनेवाला, रूखा, शीतल, थोडा, ऐसे भोजनोंको नित्यप्रति सेवनेसे परिश्रम और मैथुनको अत्यंत सेवनेसे और वोझ मार्गमें ज्यादै चलनासे, हस्ती, रथ, घोडा इन्होंमें बैठके भगानेसें क्रुद्धहुआ वायु अधोवातके वेगको नाशता है॥८३॥

तस्मात्तदग्रमनिलेन च छिद्यमानं रक्तेन युक्तमनिले परिपाकमेति ॥ संजायतेऽपि मनुजस्य तथा तृतीयं गुल्मेति नाम स च पञ्चविधो बभूव ॥८४॥ प्लीहा यकृज्जठरकण्डु मलस्य बन्धोऽष्ठीला क्रिमिर्जठररोगभवोऽथ षष्ठः ॥ एते भवन्ति ग्रहणीपरिवर्त्तमाना घोरास्तथा दुःखदाश्च मनुजस्य चित्ते ॥ ८५ ॥

तिस्से वायु करके छिद्यमान हुआ रक्त परिपाकको प्राप्त होता है तब मनुष्यके एक गोला उपजता है ऐसे पाचमा ग्रहणीदोष जानना ॥ ८४ ॥ तिल्लिरोग, यकृद्रोग, उदररोग, खाज, मल, बंधा, क्रमिरोग इन्होंसे संयुक्त ग्रहणीरोग छठाभी होता है ये सब घोररूप रोग मनुष्यको दुःखके देनेवाले हैं ॥ ८५ ॥

अथ गुल्मसंज्ञकग्रहणीरोगका लक्षण ॥

कण्ठस्य शोषस्तिमिरं तथा पार्श्वशूलं नाभौ तथातिकृशतातिविषूचिका च ॥ कर्णे स्वनोऽतिवमनं क्रमशूलमोहः श्वासेन गुल्ममिति लक्षणमेव

विद्धि ॥ ८६ ॥ यस्यैतानि च लिङ्गानि गुल्मिनं तं विदुर्बुधाः ॥ ग्रहणी नामसाध्यो यस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ८७ ॥

कंठका शोषहो अंधेरी आवै पशली और नाभिमें शूलहो शरीर अत्यंत कृश होजावै और अत्यंत विषूचिका रोग उपजै कानमें शब्दहो अत्यंत छर्दिआवै और ग्लानि, शूल, मोह, श्वास, गुल्मरोग ये उपजै ॥ ८६ ॥ ये जिसके लक्षणहों तिसके गुल्मसंज्ञक ग्रहणीरोग जानना ग्रहणीरोग साध्य है तिसके लक्षण कहताहूं ॥ ८७ ॥

अथ वातकी संग्रहणीका लक्षण ॥

चित्रं सशब्दं सृजतेऽत्र वर्चः शोफोऽनिलो वर्चमतीव रूक्षम् ॥
श्वासार्त्तियुक्तं तनुशैथिलं च स्रावो ग्रहण्यानिलकोपतः स्यात् ॥८८॥

चित्र और शब्दसे सहित मल उतरै और वह मल अत्यंत रूखाहो और वातसे शोजा उपजै श्वासरोग और शरीरमें शिथिलपनाहो और स्रावहो ये लक्षण उपजैं तब वातकी संग्रहणी जानिये ॥ ८८ ॥

अथ पित्तकी संग्रहणीका लक्षण ॥

विदाहि शीर्णं सरुजं तृषार्त्तं दुर्गन्धपीतारुणनीलकालम् ॥
संसृज्यते यस्य मलो विमिश्रःपित्तोद्भवा सा ग्रहणीति संज्ञा ॥ ८९॥

दाह, शूल, तृषा, दुःख, इन्होंसे युक्त रोगी होवै दुर्गंधसे मिलाहुआ और पीला, लाल, नीला, काला इनरंगोंसे मिलाहुआ मल उतरै ये लक्षण होवैं तब पित्तकी संग्रहणी जाननी ॥८९॥

अथ कफकी संग्रहणीका लक्षण ॥

हृल्लासश्छर्दिः श्वसनं च शोफः कासो जडत्वं च सशीतता च ॥
वैरस्यमास्ये गुरुगात्रता स्यादरोचकं शङ्खशकृद्ग्रहस्तु ॥ ९० ॥

थुकृथुकीहो छर्दि आवै और श्वास, शोजा, खांसी, जडपना, शीतलता ये उपजैं और मुखमें विरसपनाहो शरीरका भारीपनाहो और गुदाकी आंठीमें मलकी कब्जहो तिसको कफकी संग्रहणी जानना ॥ ९० ॥

अथ सन्निपातकी संग्रहणीका लक्षण ॥

त्रिभिः समेतं गदितं च चिह्नमेतस्य कोपो मधुरास्यता वा ॥
दाहोऽथ मूर्च्छा श्वसनं जडत्वं स सन्निपातग्रहणीगदः स्यात् ॥ ९१ ॥

ये पूर्वोक्त तीनों प्रकारकी संग्रहणियोंके लक्षण मिलैं और मुखमें मधुर स्वाद आवै और दाह, मूर्च्छा, श्वास, जडपना ये उपजैं तिसको सन्निपातकी ग्रहणी जानिये ॥ ९१ ॥

अथ वातग्रहणीका पाचन ॥

दारुनागरनिशा सवासका कुण्डली मगधजा शठी घनम् ॥
रास्ना सभार्ङ्गी सरलाह्वपुष्करं पाचनं भवति वातिकग्रहे ॥ ९२ ॥

हलद, शूंठ, हलदी, वांसा, गिलोय, पीपल, कचूर, नागरमोथा, रास्ना, भारंगी, सालवृक्ष, पोहकरमूल, तिन्होंका पाचन वातकी संग्रहणीमें हित है ॥ ९२ ॥

अथ पित्तग्रहणीका पाचन ॥

नलवेणुकुशानां च काशेक्षूणां च मूलकम् ॥
निष्क्वाथ्य पानं हितं वास्य पाचनं पैत्तिके ग्रहे ॥ ९३ ॥

नरशल, वांस, डाभ, कांश, ईख, इन्होंकी जडको पानीमें औटावै यह पाचन पित्तकी संग्रहणीमें हित है ॥ ९३ ॥

व्याघ्रीग्रन्थिकचव्यसुरसा शुण्ठी दाडिमम् ॥
रजनी घनचित्रकमेवं हिक्कामथकफग्रहणीं हन्ति ॥ ९४ ॥

कटेहली, पीपलामूल, चव्य, तुलसी, सूंठ, अनारकी छाल, हलदी, नागरमोथा, चीता, इन्होंका क्वाथ हिचकी और कफकी संग्रहणीको हरता है ॥ ९४ ॥

अथ शुण्ठ्याद्यमृतप्राशन ॥

शुण्ठी कणा द्विरजनी घनं तथा निशा योज्यः पुनः प्रतिविषं त्रिफला विडङ्गः ॥ सिन्धूत्थवह्नित्रिकटुकं त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं च ॥ ९५ ॥ कृत्वा बिडालपदमात्रकमोदकांश्च भक्षेयथा जलमपि ग्रहणीगदे च ॥ अर्शोभगन्दरमरोचकगुल्ममेहाञ्छूलाश्मरीकृमिजरोगहरं च पाण्डु ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठं रसायनमिदं वलिनाशनं स्याद्वृष्यं बलं विदधतेऽतिकृष्णदोषम् ॥ वर्णेन्द्रियसकलदीप्तिकरं रुजोघ्नं कुष्ठभ्रमापहरणं कुरुते सदैव ॥ ९७ ॥

सूंठ, पीपल, हलदी, दारूहलदी, नागरमोथा, अतीश, हरडै, बहेडा, आंवला, वायविडंग, सेंधानमक, चीता, सूंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, इन्होंके चूर्णमें घृत और गुड मिला ॥९५॥ एक एक तोलेभरकी गोलियां बनाके पानीके साथ खावै ये गोली ग्रहणीरोग, बवासीर, भगंदर, अरोचक, गुल्मरोग, प्रमेह, शूल, पथरी, कृमिरोग, पांडुरोग, इन्होंको हरती हैं ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठ और रसायन है वलियोंको नाशती है वीर्य और बलको

देती है वर्ण और इंद्रियोंको प्रकाशित करती है दुःखको नाशती है और सबकालमें कुष्ठको और भ्रमको नाशती है ॥ ९७ ॥

अथ अभयाद्यवलेह ॥

हरीतकीपञ्चशतानि धीमान् द्रोणेन गोमूत्रशतेन पाच्यम् ॥ मृद्वग्निना या वदशेषमेव मूत्रं विजीर्णे विधिवद्विधिज्ञः ॥ ९८ ॥ निर्वाप्य चूर्णं प्रति शोष्य शीतं छायाविशुष्कान् प्रविदार्य्य चाष्ठीः ॥ चूर्णं च शुण्ठीमग धाविषाश्च सुगन्धिमूर्वाचविकान्विताश्च ॥ ९९ ॥ निष्क्वाथ्य कल्कः कुटजस्य तावद्दर्व्योपलेपी भवतीति यावत् ॥ तस्यार्द्धभागेन गुडं विमिश्यात्क्षीरं तदर्द्धेन गवाजकं वा ॥ १०० ॥ निर्वापितं तं घृतभाजने च संस्थापितं प्राङ्मुदितेन तेन ॥ सिन्धूत्थवह्नित्रिकटुकं त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं च ॥ १०१ ॥ चूर्णेन तेन सकलग्रहणीयपाण्डुशोषाश्मरीं कृमिजगुल्ममथातिसारान् ॥ प्लीहयकृच्छ्वासिषु मानवेषु विषुचिकापीनसमस्तकार्त्तिम् ॥ १०२ ॥ विनाशनः सद्यस्तथा ज्वराणामध्वश्रमक्षीणबलोदराणाम् ॥ एकाहिकादिज्वरनाशनः स्याल्लेहोऽभयाद्योऽमृतवन्नराणाम् ॥ १०३ ॥ इत्यभयाद्योऽवलेहः ॥

बडीहरडोंको एक लाख दोहजार चारसौ तोले १०२४००गोमूत्रमें पकावै कोमल अग्निसे पकनेमें जब चौथाईभाग शेष रहै ॥ ९८ ॥ तब अग्निसे उतार तिन हरडोंको छायामें सुखाके चीर गुठलियोंको दूरकरै पीछे सूंठ, पीपल, अतीश, सफेद चंदन, मरोडफली, चव्य, इन्होंके चूर्णको यथायोग्य मिला ॥ ९९ ॥ फिर अग्निपै पकावै और कडछीसे चलावै जब कडछीपै चिपनेलगे तब तिस संपूर्ण औषधके समान गायका अथवा बकरीका दूध मिला ॥ १०० ॥ अग्निसे उतार घीके चिकने बर्तनमें स्थापन करै फिर सेंधानमक, चीता, सूंठ, मिरच, पीपल, दालचिनी, इलायची, तेजपात, गुड, घृत इन्होंको मिलाके खावै ॥ १०१ ॥ यह सब प्रकारकी संग्रहणी, पांडुरोग, शोषरोग, पथरीरोग, कृमिरोग, पेटका गोला, सबप्रकारके अतिसार तिल्लिरोग, जिगररोग, श्वास, हैजा, जुखाम, पीनस, मस्तकरोग, इन्होंको नाशता है ॥ १०२ ॥ और सबप्रकारके ज्वर मार्गमें गमन करनेसे क्षीण बलवाले और उदररोगियोंको हित है और एकाहिकआदि ज्वरोंको नाशता है यह अभयाद्यवलेह मनुष्योंको अमृतके समान है ॥ १०३ ॥

अथ द्राक्षादिदूध ॥

द्राक्षाक्षीरेण पक्त्वा यावद्घनं दर्व्युपलेपि च ॥ दृष्ट्वा पश्चात्तैः समालोड्य चेमान्यौषधानि मतिमान् ॥ १०४ ॥ पर्पटातिविषा मूर्वा पटोलं घनवालकम् ॥ तथाभयानां चूर्णं तु समशर्करया युतम् ॥ १०५ ॥ तेन क्षीरेण संयोज्य विदार्य्याः कन्दमेव च ॥ घृतेन नवनीतेन पिण्डं कृत्वाऽथ भक्षयेत् ॥ १०६ ॥ सपित्तग्रहणीपाण्डुकामलार्त्तितृषापहम् ॥ भ्रम मूर्च्छां तथा हिक्कां तमकोन्मादमश्मरीम् ॥ १०७ ॥ मेहपित्तास्रजं कुष्ठं नाशयत्याशु निश्चितम् ॥१०८॥ इति द्राक्षादिक्षीरम् ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अतीसारचिकित्सानामतृतीयोऽध्यायः॥३॥

दाखोंको दूधमें मिला पकावै जब करडा होके कडछीपै चिपनें लगै तब बुद्धिमान् वैद्य इन औषधोंको डाले ॥ १०४ ॥ पित्तपापडा, अतीश, मरोडफली, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, हरडै, इन्होंके चूर्णको और बराबरकी खांडको मिलावै ॥ १०५ ॥ पीछे तिस दूधमें विदारीकंद और नौंनीघृत मिला गोली बनाके खावै ॥ १०६ ॥ यह पित्तकी संग्रहणी पांडुरोग, कामला, तृषारोग, भ्रम, मूर्च्छा, हिचकी, तमक, श्वास उन्माद, पथरी ॥ १०७ ॥ प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ, इन्होंको शीघ्र नाशता है ॥ १०८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने अतीसारचिकित्सानामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा

आत्रेय उवाच ॥शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि गुल्मानां चैव लक्षणम् ॥
तस्मात्तेषां प्रतीकारमौषधानि विशेषतः ॥ १ ॥

अत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र! सुन गुल्मोंके लक्षणको कहताहूं और तिन्होंकी चिकित्सा और ओषधकोभी विशेषकर कहताहूं ॥ १ ॥

अथ गुल्मके भेद ॥

पञ्चधा संभवंत्येते गुल्मा जठरसंस्थताः ॥ हृत्कुक्षौ नाभिबस्तौ च मध्ये

च पञ्चमः स्मृतः ॥ २ ॥ हृदयस्थो यकृन्नाम कुक्षौ साष्ठीलकोच्यते ॥ मध्ये प्लीहा समाख्यातो बस्तौ चण्डविवृद्धकः॥३॥ नाभौ संलक्ष्यते ग्रन्थी नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥

उदरमें फैलेहुये गुल्म पांच प्रकारके हैं हृदयमें एक कुक्षिमें दूसरा नाभिमें तीसरा बस्तिस्थानमें चौथा मध्यभागमें पांचमा ऐसे गुल्म होते हैं ॥ २ ॥ हृदयमें उपजनेंवाले गुल्मका यकृत् नाम है कुक्षिमें होनेंवाले गुल्मका अष्ठीला नाम है मध्यभागमें प्लीहानामसे विख्यात है बस्तिस्थानमें चंडविवृद्धकनामवाला होता है ॥ ३ ॥ नाभिमें ग्रंथिनामसे लक्षित है.

अथ गुल्मके निदान ॥

अतः प्रकोपं वक्ष्यामि येन कुर्वन्ति बाधकम् ॥ ४ ॥ स्वभावात्पित्तरक्तोत्थे सेविताम्लविदाहिनम् ॥ उष्णं च क्षारमद्यं वा चोष्णपानातिसेवनात् ॥ ५ ॥ तथा शोकः श्रमोऽध्वानां शोषात्संक्षोभनादपि ॥ उच्चभाषणगानेन धनुर्ज्याकरणेन च ॥ ६ ॥ पृष्ठे मुष्ट्यभिघातेन हृदयात्ताडनेन वा ॥ भारणोद्धारणाद्वापि रक्तं शोषयते हृदि ॥ ७ ॥ तेन गुल्मेति नाम तु जायते रक्तपित्तकम् ॥ कदाचित्त्रिषु दोषेषु सम्भवश्चास्य दृश्यते ॥ ८ ॥ वातेनोदीरितश्चैव कफेन च घनीकृतम् ॥ पित्तेन पाकतां प्राप्तं त्रिदोषसंस्तृतं यकृत् ॥ ९ ॥

इन्होंके ऐसे पृथक् २ नाम हैं अब इन्होंके प्रकोपको कहताहूं जिसकरकै पीडाको करते हैं ॥ ४॥ रक्तपित्तके स्वभावसे, आम्ल और विदाही पदार्थको सेवनेंसे और गर्म पदार्थ खारा, मदिरा, इन्होंको सेवनेसे और गर्मपानको अतिसेवनेंसे ॥ ५ ॥ शोक, श्रम, मार्गमें, अत्यंत चलना, शोष, क्षोभ, ऊंचा बोलना, ऊंचा प्रकारसे गाना और धनुषकी टंकारको करनेंसे ॥ ६ ॥ पृष्ठभागमें मुक्काके लगनेंसे और हृदयमें चोट आदिके लगनेंसे बोझको उठानेंसे मनुष्यके हृदयमें रक्त सूख जाता है ॥ ७ ॥ तिस्से रक्तपित्त करकै गुलमरोग उपजता है और कभीक तीनों दोषोंसेभी गुल्म उपजता है ॥ ८ ॥ वातसे बढाहुआ और कफसे कठिन हुआ और पित्तसे पाकभावको प्राप्तहुआ यकृत् त्रिदोषसे फैलता है ॥ ९ ॥

अथ गुल्मका लक्षण ॥

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि येन तच्चापि लक्ष्यते ॥ क्षीयते येन मनुजो मृ

त्युमाशु प्रपद्यते ॥ १० ॥ वमिः क्लमस्तथोद्गारो हृल्लासः श्वसनं भ्रमः ॥ दाहोऽरुचिस्तृषा मूर्च्छा कण्ठे दाहः शिरोव्यथा ॥ ११ ॥ हृच्छूलं च प्रतिश्यायष्ष्ठीवनं कटुकैः सह ॥ सशल्यं हृदि शूलं च निद्रानाशः प्रला पतः ॥ १२ ॥ हृदये मन्यते दार्ढ्यमुदरं गर्जति भृशम् ॥ एतैर्लिङ्गैर्विजा नीयाद्यकृत्कोष्ठान्तवक्षसि ॥ १३ ॥

तिसके लक्षणको कहूंगा जिस करके वहभी लक्षित हो सक्ता है इस रोगसे मनुष्य सूखजाता है और शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ १० ॥ छर्दि आवे ग्लानि उपजै अडकार आवे थुकथुकीहो श्वास और भ्रम उपजै और दाह, अरुचि, तृषा, मूर्च्छा, येभी उपजैं कंठमें दाहहो और शिरमें पीडाहो ॥ ११ ॥ हृदयमें शूलहो जुखाम होजावे कडुआ थूकै शल्यसहित शूल हृदयमें होवै नींदका नाशहोवै बकवादको करै ॥ १२ ॥ और हृदयमें दाहको मानै और उदर अत्यंत गर्जै इन लक्षणोंसे कोष्ठके समीप छातीमें यकृत्संज्ञक गुल्म जानना ॥ १३ ॥

अथ शुंठ्यादिचूर्ण ॥

यदि साक्षात्त्रिकटुकं कुष्ठं तथा पञ्चमकं यवानीम् ॥ षष्ठं च सिन्धूत्थविमिश्रितं च सूक्ष्मं च चूर्णं सह रामठेन ॥ भक्षेच्च तस्योपरि तक्रपानं निष्क्वाथ्य तोयं च पिबेच्च वाम्लम् ॥ १४ ॥ सौवीरकं वा विनिहन्ति शीघ्रं यकृद्द्विधानुदरशूलकासान् ॥ विषूचिकाजीर्णकफामयघ्नं पाण्ड्वामयार्त्तिग्रहणीं सगुल्माम् ॥ १५ ॥ शुण्ठ्यादिचूर्णं त्वरितं निहन्ति ॥

सूंठ, मिरच, पीपल, कूट, अजमान, हींग, इन्होंका मिहीन चूर्ण बना खावे ऊपर तक्र, गर्मपानी, खट्टारस, इन्होंमांहसे एककोईसेका अनुपान करै ॥ १४ ॥ अथवा कांजीका अनुपान करै यह शुंठ्यादि चूर्ण यकृत्रोग, उदरशूल, खांसी, विषूचिका, हैजा, अजीर्ण, कफरोग, पांडु, संग्रहणी, गुल्मरोग, इन्होंको शीघ्र नाशता है ॥ १५ ॥

अथ क्षारामृत ॥

क्षारं मुष्कककिंशुकार्जुनधवापामार्गरम्भातिला जीवन्तीकनकाह्वयश्च रजनी कूष्माण्डवल्ली तथा॥वासासूरणमेव तीव्रतरदहनं प्रज्वाल्य भस्मीकृतं तोयेन प्रतिसेव्य निभृतपयःपानं विधेयं यकृत् ॥ १६ ॥ तथा शूलानाहविबन्धकफजान्रोगाञ्जयेत्कामलाग्निवृद्धीन् हृदिशूलपाण्डुग्रह

णीशोफार्शसां पीनसान् ॥ मंदाग्नीनामजीर्णकृम्यलसगुदभ्रंशमोहांस्तथा क्षतजवृद्धिस्तेन सदाहशूलकास्युद्गारता वमिः ॥ १७ ॥ पूयाभः पतते श्लेष्मा पूतिगन्धोऽतिविस्रकः ॥ रक्ताभस्तत्र सङ्काशष्ठीवते स मुहुर्मुहुः ॥ तथातिसार्य्यते रक्तं श्रमः संक्षीयते वपुः ॥ १८ ॥ क्षतजाः संस्तता गात्रे यकृद्वक्षसि संसृतः ॥ १९ ॥ श्वासस्तृषा वमिर्मोहः शोफः स्यात्करपादयोः ॥ रुचिबन्धोऽतिसारश्च यकृद्दूरे परित्यजेत् ॥ २० ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं येन संपद्यते सुखम् ॥ तस्यादौ लङ्घनं चैकं पाचनं तदनन्तरम् ॥ २१ ॥ शुण्ठ्योपकुल्या तिमिरं शठीनां यवानिकाभीरुहरीतकीनाम् ॥ काथोथकल्कपाचनके प्रशस्त आनाहगुल्मार्त्तिविषूचिकानाम् ॥२२॥ भद्रोपकुल्याभयशृङ्गवेरं पथ्या त्रिभागा च कणा चतुर्थी॥२३॥

तालमखाना, मोखावृक्ष, केशू, अर्जुनवृक्ष, धव , ऊंगा, केला, तिल, महुआ, सुहागा, हलदी, लालतुंबी, वांसा, जमीकंद, इन्होंको तेजअग्निसे जला भस्म बना पानीमें मिला खार बनावै तिसको लेनेंसे यकृतरोग ॥ १६ ॥ शूल, अफारा, बंधा, कफका रोग, कामला, विद्रधि, हृदयशूल पांडु, संग्रहणी, शोजा, ववासीर, पीनस, मंदाग्नि, अजीर्ण, कृमि, आलस्य, गुदभ्रंश, मोह, क्षतजरोग, वृद्धिरोग, दाह, शूल, खांसी, अडकार, छर्दि, इन्होंका नाश होता है ॥ १७ ॥ रादके समान कफ पडे दुर्गंधसे और कच्चे गंधसे संयुक्त और रक्तके समान वारंवार थूके और रक्तकाही अतीसार जावै शरीरमें परीश्रम होवै शरीर सूखता जावै ॥ १८ ॥ और क्षतसे उपजे रोग होवै ये लक्षण होवै तब छातीमें फैलाहुआ यकृतरोग जानना ॥ १९॥ श्वास, तृषा, छर्दि, मोह, ये उपजै हाथ और पैरोंमें शोजा होवै रुचिबंध होवै और अत्यंत प्रकाश होवै ऐसे यकृतरोगको दूरसे त्यागै ॥२० ॥ अब औषधको कहताहूं जिसकरके सुखकी प्राप्तिहो इसरोगकी आदिमें एक लंघन कर पीछे पाचन देना हित है ॥ २१ ॥ सूंठ, पीपल, लोहाका मैल, कचूर, अजमान, शतावरी, हरडैं, इन्होंका क्वाथ अथवा कल्करूपी पाचन हित है यह अफारा, गुल्म, विषूचिका, हैजा इन्होंको नाशता है ॥ २२ ॥ नागरमोथा, पीपल, हरडैं, अदरक, ये लेनें परंतु इन्होंमें तीनभाग हरडैंके लेनें और पीपल इन्होंका पाचन इसरोगको नाशता है ॥ २३ ॥

अथ यकृद्गुल्मपथ्य ॥

क्षतक्षयं यकृत्पूर्वं चोपवासं च पाचनम् ॥
न देयं हिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं हितं तदातुरे ॥ २४ ॥

जो क्षतक्षय रोगसे संयुक्त हुये यकृत् रोगमें लंघन और पाचन हित नहीं है और इसरोगवालेको हींगसें संयुक्त किया चूरन नहीं देना ॥ २४ ॥

अथ निंबादिक्काथ ॥

निम्बनीपधरवेतसं निशा काश्मरी च तुलसी च सिंहिका ॥ क्काथ एव हृदयामयापहः कफं शूलमाशु यकृदास्यनाशकृत् ॥ २५ ॥

नींबकी छाल, कदंबकी छाल, बिनोलाकी गिरी, मननामक वनकी ओषधिविशेष, हलदी, कंभारी, तुलसी, कटेहली, इन्होंका क्काथ हृदयरोग, कफ, शूल, मुखका रोग इन्होंको नाशता है ॥ २५ ॥

अथ सौराष्ट्रिकादिक्काथ ॥

सौराष्ट्रिकासीसमहौषधानि दुरालभाजातिप्रबालकं च ॥ दार्वी यवानी ककुभं समङ्गा क्काथः ससर्पिर्यकृदाशु हन्ति ॥ २६ ॥

फटकडी, कसीस, सूंठ, जवांशा, चवेलीकी कोंपल, दारूहलदी, अजमान, अर्जुनवृक्षकी छाल, मजीठ, इन्होंके क्काथमें घृत मिला पीनेसें यकृत्‌रोगका नाश होता है ॥ २६ ॥

अथ धवादिक्काथ ॥

धवार्जुनकदम्बानां शिरीषबदरीषु च ॥
निष्क्काथ्य पानमामघ्नं विषूच्याः शूलवारणम् ॥ २७ ॥

धवके फूल, अर्जुन और कदंबवृक्षकी छाल, शिरस और वडवेरकी छाल, इन्होंका क्काथ बना पीवै यह आमदोष, विषूचिका, हैजा, शूल, इन्होंको दूर करता है ॥ २७ ॥

अथ कदलीजलपानक ॥

कदलीक्षारमादाय शङ्खक्षारमथापि वा ॥ प्रस्राव्य जलपानं तु हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ २८ ॥ आमं हरति विसृष्टं शूलं चाशु नियच्छति ॥ विषूचिकानां शमनमजीर्णं जरयत्यपि ॥ २९ ॥

केलाका खार, शंखका खार, हींग, कालानमक, इन्होंको पानीमें मिला पीवै ॥२८॥ यह आमको हरता है और शूलको हरता है और विषूचिका हैजाको शांत करता है और अजीर्णको जराता है ॥ २९ ॥

अथ बिजोराआदिकपान ॥

मातुलुङ्गरसं ग्राह्यं द्विगुणं तत्र काञ्जिकम् ॥
हिङ्गु सौवर्चलयुतं पानं हन्ति विषूचिकाम् ॥ ३० ॥

बिजौराके रसमें दूनी कांजी मिलावै हींग और कालानमकसे संयुक्तकर पीवै यह विषूचिकाको हरता है ॥ ३० ॥

अथ खारका सेवन ॥

क्षारं तोयं च पानाय दाहस्योपरि पाचयेत् ॥
शूलाध्मानं निहन्त्याशु कुरुते चाग्निदीपनम् ॥ ३१ ॥

खारके पानीको अग्निपै पकाके पीवै यह शूल और अफाराको हरता है और अग्निको शीघ्र जगाता है ॥ ३१ ॥

अथ आमाजीर्णका उपाय ॥

आमेषु वमनं कुर्य्याद्विपक्के चैव लङ्घनम् ॥
विशिष्टस्वेदनं निद्रा रसशोषे विरेचनम् ॥ ३२ ॥

आमसंज्ञक अजीर्णमें वमन कराना और पकेहुये अजीर्णमें लंघन, पसीना, नींद, इन्होंको सेवै और रसशेष अजीर्णमें विरेचन हित है ॥ ३२ ॥

अथ दिवास्वापविधान ॥

उन्मत्ते चातिसारे च वमिक्रोधातुरेषु च ॥ अजीर्णे तु विषूच्यां च दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥ ३३ ॥ न हितं श्लेष्मणि चैव हृद्रोगे तु शिरोरुजि ॥ हृल्लासे च प्रतिश्याये दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

उन्माद, अतीसार, छर्दि, क्रोध, अजीर्ण, विषूचिका, हैजा इन्होंमें दिनका सोना हित है ॥ ३३ ॥ कफरोग, हृद्रोग, शिरकी पीडा, थुकूथुकी, जुखाम, इनरोगोंमें दिनके शयनको वर्जै ॥ ३४ ॥

अथ हरीतक्यादि अंजन ॥

फलत्रयं त्र्यूषकरञ्जबीजं रसं तथा दाडिममातुलुङ्ग्यः ॥
निशायुतं पेष्य कृता च वर्त्तिस्तदञ्जने हन्ति विषूचिकाञ्च ३५

हरडें, बहेडा, आंवला, सूंठ, मिरच, पीपल, करंजुआके बीज, अनार, और बिजोराका रस, और हलदी, इन्होंको पीस बत्ती बना नेत्रोंमें आंजै यह विषूचिका हैजाको हरती है ॥३५॥

अथ रास्नादिभक्षण ॥

रास्ना विशाला च सुराब्दकुष्ठं शिग्रु वचा नागरकं शताह्वम् ॥ आग्नेय पिष्टाहपुषाविदार्य्यैः खल्लीं विषूचीषु निवारयन्ति ॥ ३६ ॥

रास्ना, इन्द्रायन, देवदार, नागरमोथा, कूट, सहोंजना, वच, सूंठ, शतावरी, हाउवेर, विदारीकंद, इनसबोंको चीताके रसमें पीस खानेसे खल्लीरोग और विषूचिका हैजा दूर होता है ३६

अथ स्वेदका उपयोग ॥

स्वेदो बिधेयो घटकस्य बाष्पमैकैर्घटाभिर्वसनेन चोष्णः ॥ तथोष्ण पाणिं प्रतिसेक एवं जयेद्विषूर्ची जठरामयानाम् ॥ ३७ ॥

कलशेमें अग्निको घालि तिसकी भापोंसे अथवा गरमकिये वस्त्रसे अथवा गरमकिये हाथसे पसीना देवै तो विषूचिका हैजा और पेटको रोग दूर होता है ॥ ३७ ॥

अथ गंधकादिभक्षण ॥

गन्धकं सैन्धवं त्र्यूषं निम्बूरसविमर्दितम् ॥ आतुरो भक्षयेच्छीघ्रं विषूचीनां निवारणम् ॥ ३८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गंधक, सेंधानमक, सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंको नींबूके रसमें खलकर प्रमाणसे रोगी खावै यह विषूचिका हैजाको जलदी दूर करता है ॥ ३८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

——:o:——

अथ कृमिरोगके प्रकार और तिन्होंके भेद ॥

आत्रेय उवाच ॥ क्रिमयो द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरसम्भवाः ॥ बाह्या यूकाः प्रसिद्धाः स्युराभ्यन्तराश्च किञ्चुकाः ॥ १ ॥ सप्तविधो भवेद्बाह्यः षड्विधोऽन्तःसमुद्भवः ॥ तेषां वक्ष्यामि सम्भूतिं बाह्यानाभ्यन्तरे नृणाम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–बाह्य और आभ्यंतरभेदसे कृमि दोप्रकारके कहे हैं जूंआदि बाह्यकृमि कहाते हैं चूरनेआदि आभ्यंतर कृमि कहाते हैं ॥ १ ॥ बाह्यकृमि सात प्रकारके हैं आभ्यंतर कृमि छःप्रकारके हैं अब तिन्होंके उत्पत्तिको कहताहूं ॥ २ ॥

अथ जूंकी उत्पत्ति ॥

रौक्ष्यादतिमलात्स्वेदाच्चिन्तया शोचनादपि ॥ कफधातुसमुद्भूतास्तीक्ष्णा यू

-का भवन्ति हि॥३॥ यूकाः कृष्णाः पराः श्वेतास्तृतीया चर्मणि स्थिता॥ सूक्ष्मातिविकटा रूक्षा चर्मभा चर्मयूकिका॥ ४ ॥ चतुर्थी बिन्दुकी नाम वर्त्तुला मूत्रसम्भवा ॥ मत्कुणा स्याच्च पञ्चमी बाह्योपद्रवकारिणी ॥५॥ यूका मस्तकसंस्थाने श्वेता शिरोनिवासिनी ॥ चर्मयूका नेत्रचर्मे सूक्ष्मे रोमणि यष्टिका ॥ ६ ॥

रौक्षसे, अत्यंत मलसे, पसीनासे, चिंता और शोचसे कफ और धातु करके उपजेहुये तीक्ष्ण जूम होते हैं ॥ ३ ॥ पहली कृष्णा, दूसरी श्वेता, और चर्ममें स्थित होनेवाली और सूक्ष्म, अतिबिकट, रूखी, ऐसी ऐसी चर्मसरीखी कांतिवाली तीसरी है,॥४॥और चर्मयूकिका-नामवाली चौथी और बिंदुकी नामवाली पांचमी है और मूत्रसे उपजी वर्तुलानामवाली छठी है और शरीरके बाहर उपद्रव करनेवाली मत्कुणा सातमी हैं ॥ ५ ॥ मस्तकके स्थानमें यूका जूम होती है और सूक्ष्मरोमोंमें चर्मभी जूम होती है और नेत्रके चाममें चर्मयूका जूम होती है और सूक्ष्मरोमोंमें चर्ममेंभी जूम होती है ॥ ६ ॥

अथ कृमि उत्पन्न होनेंका कारण ॥

रूक्षान्नयवान्नगोधूमपिष्टैर्गुडेन वा क्षीरविपर्य्ययेण ॥ दिवाशयानेन सपिच्छलेन घर्मेण तापोदकसेवनेन ॥ ७ ॥ संजायते तेन मलाशयेषु क्रिमिव्रजं कोष्ठविकारकारि ॥ ८ ॥

रूखाअन्न, जव, गेहूं, पीठी, गुड, दूधका पदार्थ, दिनका सोना, कफकारी पदार्थ, घाम, गरमपानी, इन्हेंके सेवनेसे ॥ ७ ॥ मलाशयमें कृमियोंका समूह उपजता है यह कोष्ठमें विकारको करताहै ॥ ८ ॥

अथ छःप्रकारके अंतर्गतकृमि ॥

षड्विधास्ते समुद्दिष्टास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ कफकोष्ठं मलाधारं कोष्ठे सर्पन्ति सर्पवत् ॥ ९ ॥ पृथुमुण्डा भवन्त्येके केचित्किञ्चुकसन्निभाः ॥ धान्याङ्कुरनिभाः केचित्केचित्सूक्ष्मास्तथाणवः॥१०॥सूचीमुखाः परिज्ञेयाश्चान्त्राणि सीदयन्ति ते ॥ वक्ष्यामि लक्षणं तेषां चिकित्साञ्च शृणुष्व मे ॥ ११ ॥

जो छः प्रकारके बाह्यकृमि कहेहैं तिन्होंके लक्षणोंको कहताहूं मलके आधारवाले कफके कोष्ठमें आभ्यंतर कृमि सर्पकी तरह चलते हैं ॥९ ॥ कितनेक पृथुमुंडनामसे विख्यात हैं और कितनेंक चुरमोंके समान कांतिवाले होते हैं, कितनेंक अन्नका अंकुरके समान कां-

तिवाले होते हैं, कितनेंक सूक्ष्म होते हे कितनेंक अत्यंतसूक्ष्म होते हैं ॥ १० ॥ कितनेंक सूचीमुख नामसे विख्यात हैं ये आंत्रोंको शिथिल करते हैं, तिन्होंके लक्षण और चिकित्साको कहताहूं मेरेसे सुन ॥ ११ ॥

अथ कृमिरोगका लक्षण॥

ज्वरो हृद्रोगशूलं वा वमिहृत्क्लेदनं भ्रमः ॥ रुचिबन्धो विवर्णत्वमतीसारः सफेनिलः ॥ १२ ॥ गर्जनं जठरे चैव मन्दाग्नित्वं च जायते ॥ पिपासा पीतता नेत्रे किञ्चुकैः पीडितस्य च ॥ १३ ॥

ज्वरहो हृदयरोग और शूल उपजै और छर्दि हृदामें ग्लानि भ्रम ये उपजैं और रुचिबंध होजावे वर्ण बदलजावे रागोंवाले मलसे सहित अतिसार उपजै ॥१२॥ पेटमें शब्द होवै और मंदाग्नि उपजै और अत्यंत तृषा होवै और नेत्रोंमें पीलापनहो ये सब लक्षण हों तब आभ्यंतर कृमिरोग जानना ये गंडुपद कृमिरोगके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

अथ सूचीमुखकृमिका लक्षण॥

सूचीवतुद्यतेऽन्त्राणि रक्तं चैवातिसार्य्यते ॥ यकृद्वा भक्षयन्त्यन्ये रक्तं वा वमते भृशम् ॥ १४ ॥ क्लेदो मुखेऽरुचिर्जाड्यं मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ॥ क्षुत्तृष्णा च ज्वरो ज्ञेयाः सूचीमुखक्रिमीरुजः ॥ १५ ॥

सूईकी तरह आंत्रोंको पीडितकरै और रक्तको अत्यंत गुदाके द्वारा निकसैं और यकृत् स्थानको भक्षणकरै और रक्तकी अत्यंत छर्दि आवै ॥ १४ ॥ मुखमें ग्लानिहो अरुची और जडपना उपजै मंदाग्नि और कंप उपजै और भूख तृषा ज्वर येभी उपजैं ये सब लक्षणहों तब सूचीमुखकृमिरोगके लक्षण जानिये ॥ १५ ॥

अथ धान्यांकुरकृमिका लक्षण ॥

ये च धान्याङ्कुरास्तेषां वक्ष्याम्यथ च लक्षणम् ॥ मलाशयस्थाः क्रिमयो मलं जग्धन्ति ते भृशम् ॥ १६ ॥ तैस्तु संपीड्यते देहे कृशत्वविद्रधिभेदपरुषताः ॥ तेन गात्रे रुजत्वश्च हृत्क्लेदो यवक्रिमयो मताः ॥ १७ ॥

धान्यका अंकुरके समानकृमिके लक्षणको कहताहूं मलाशयमें स्थितहुये ये कृमि मलको खाते हैं ॥ १६ ॥ तिन्होंसे संपीडितहुये देहमें कृशपना, विद्रधि, हडफोड, कठोरपना, शूल ये उपजते हैं ॥ १७ ॥

हारीतका प्रश्न ॥

हारीतः संशयापन्नः पादौ संगृह्य पृच्छति ॥ कथं देहे मनुष्यस्य

मलमूत्ररसाशये ॥ १८ ॥ संभवन्ति कथं चादौ वर्द्धयन्ति कथं पुनः ॥ कथं च शीर्णेऽन्नरसे नानाहारविभक्षणे ॥ १९ ॥ जायन्ते केन क्रिमयः सूक्ष्मा वाप्यधोगामिनः ॥ नानामपक्वभक्ष्यान्नं दहते वा हुताशनः ॥ २० ॥ कथं ते क्रिमयश्चान्ते न दह्यन्तेऽन्तराग्निना॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥

संशयको प्राप्तहुआ हारीतमुनि आत्रेयजीके पैरोंको ग्रहणकर पूछता है हे भगवन्! मनुष्यके मल मूत्र रस इन्होंके स्थानोंसे संयुक्त हुये देहमें कैसे ॥ १८ ॥ आदिमें कृमि उपजते हैं और फिर कैसे बढजाते हैं और अनेक प्रकारके आहारसे उपजेहुये अन्नरसके क्षय होनेपै कृमि कैसे होते हैं ॥ १९ ॥ सूक्ष्म और नीचेको गमनकरनेवाले कृमि कैसे उपजते हैं और अनेक प्रकारके कच्चे और पक्के भोजनकिये अन्न आदिको उदरका अग्नि दग्ध करता है॥२० परंतु वे कृमि समीपमें स्थितहुयेभी तिसी अग्निसे क्योंनही दग्ध होते ऐसे पूछेहुये महा आचार्य्य और मुनियोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी कहने लगे ॥ २१ ॥

अथ आत्रेयजीका उत्तर ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र! महाबाहो! क्रिमिसम्भवकारणम् ॥ विरुद्धान्नरसैः पुत्र! रक्तं चैवास्य कुप्यति ॥ २२ ॥ कफेनैकदिनं याति शुक्रेण कारणं व्रजेत् ॥ पञ्चभूतात्मके काये ते तु जाताः सचेतनाः ॥ २३ ॥ कोष्ठाग्निना न दह्यन्ते न जीर्य्यन्ते रसानिति ॥ विषे जातो यथा कीटो न विषेण मृतिं व्रजेत् ॥ २४ ॥ तथा हुताशनोद्भूतं न हुताशेन जीर्य्यते ॥ २५ ॥ भेषजं संप्रवक्ष्यामि येन तेऽपि तरन्ति वै ॥ पतन्ति वा शमं यान्ति भेषजानि शृणुष्व मे ॥ २६ ॥

आत्रेयजी कहतेहैं—हे पुत्र! हे महाबाहो ! कृमिकी उत्पत्तिके कारणको सुन हे पुत्र! विरुद्धअन्न और रसोंकरकै मनुष्यके रक्त कुपित होता है ॥ २२ ॥ कफकरके एकदिनको प्राप्तहोते है वीर्यसे कारणको प्राप्त होते है फिर पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इन्होंसे संयुक्तहुये शरीरमें चैतन्यरूप होकै उपजतेहैं ॥ २३ ॥ कोष्ठकी अग्निसे नहीं दग्ध होते हैं और रसोंके साथ जीर्ण नहीं होते जैसे विषसे उपजा कीडा विषकरकै मृत्युको प्राप्त नहीं होता ॥ २४ ॥ तैसे अग्नि करकै उपजे कृमि अग्निसे दग्ध नहीं होते हैं ॥ २५ ॥ अब औषधको मैं कहताहूं जिसकरकै वे कीडे नहीं उपजते हैं अथवा गिर पडते हैं अथवा शांत होजाते हैं मुझसे सो सुन ॥ २६ ॥

अथ कृमिपातनका औषध ॥

वचाजमोदा क्रिमिजित्पलाशबीजं शठी रामठकं त्रिविश्वाः ॥ उष्णोदके तत्परिपिष्य पेयं पतन्ति शीघ्रं शतधार्त्तमलम् ॥ २७ ॥

वच, अजमोद, वायविडंग, केशूके बीज, कचूर, हींग, ये सब एक एक भाग और सूंठ ३ भाग इन्होंको गर्मपानीसे पीस पीवै यह सौ १०० प्रकारसे कृमियोंको निकासता है॥२७॥

अथ कृमिनष्टकरनेंके औषध ॥

शठीयवानीपिचुमन्दपुत्रान् विडङ्गकृष्णातिविषारसानाम् ॥ संपिष्य मूत्रेण त्रिवृत्प्रयुक्तं विनाशनं सर्वकृमीरुजानाम् ॥ २८ ॥ मरिचं पिप्पलिमूलं विडङ्गशिग्रुजवानिकात्रिवृतः ॥ गोमूत्रेण तु पेष्यं पानं शीघ्रं क्रिमीन् हन्ति ॥ २९ ॥ मुस्ताविशालात्रिफलासुपर्णशिग्रूसुराह्वं सलिलेन कल्कः ॥ पानं सकृष्णाक्रिमिशत्रुचूर्णं विनाशनं सर्वकृमीरुजां च ॥३०॥ सुरसा च सुरदारु मागधी विडङ्गकम्पिल्लविडङ्गदन्तिनी ॥ त्रिवृत्ताडकरसोनकं क्रिमिहृद्रोगहृत्सलिलेन सेवितम् ॥ ३१ ॥ मातुलुङ्गस्य मूलानि रसोनः क्रिमिजित्त्रिवृत् ॥ अजमोदानिम्बपत्रं गोमूत्रेण तु पेषयेत्॥३२॥ पानमेतत्प्रशंसन्ति क्रिमिदोषनिवारणम् ॥ ज्वरप्रोक्तानि पथ्यानि क्रिमिदोषे प्रदापयेत् ॥ ३३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने क्रिमिचिकित्सा नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कचूर, अजमान, निंबोली, वायविडंग, पीपल, अतीश, शोधापारा, निशोत, इन्होंको गोमूत्रमें पीस सेवनेंसे सबप्रकारके कृमिरोग नष्ट होजाते हैं ॥ २८ ॥ मिरच, पीपलामूल, वायविडंग, सहोंजना, अजमान, निशोत, इन्होंको गोमूत्रमें पीस पीवै यह कृमिरोगको शीघ्र नाशता है ॥ २९ ॥ नागरमोथा, इंद्रायन, हरडैं, बहेडा, आंवला, सांतविण, सहोंजना, देवदार, इन्होंका कल्क अथवा पीपल, और वायविडंगका चूर्ण खानेंसे सबप्रकारके कृमिरोगको नाशता है ॥ ३० ॥ वनतुलशी, देवदार, पीपल, वायविडंग, कपिला ओषध, जमालगोटाकी जड, निशोत, ताड, ल्हस्सन, इन्होंके चूर्णको पानीके साथ सेवै यह कृमिरोगको और हृद्रोगको नाशता है ॥ ३१ ॥ विजोराकी जड, ल्हस्सन, निशोत, अजमोद, नींबके पत्ते इन्होंको गोमूत्रसे पीसै ॥ ३२ ॥ कृमिदोषको दूर करनेंवाले इस पानको वैद्य सहराते हैं ज्वरमें कहेहुये पथ्योंको कृमि दोषमें प्रयुक्त करैं ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने कृमिचिकित्सानाम पंचमोऽध्यायः॥५॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ मंदाग्निआदि अग्नियोंके निदान और चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच॥अग्निश्चतुर्विधः प्रोक्तः समो विषमतीक्ष्णकः॥मन्दस्तदापरः प्रोक्तः शृणु चिह्नानि साम्प्रतम्॥ १॥वातपित्तकफसाम्यात्समः संजायतेऽनलः ॥ तैरेवं विषमं प्राप्ते विषमो जायतेऽनलः ॥ २ ॥ तीक्ष्णपित्ताधिकत्वेन जायते जठराग्निकः ॥

आत्रेयजी कहते हैं–सम विषम तीक्ष्ण मंद इन भेदोंसे अग्नि चारप्रकारका कहाहै अब तिन्होंके लक्षणोंको सुन ॥ १ ॥ वात, पित्त, कफ, ये समान होवै तब सम अग्नि होता है और येही वातआदिक दोष विषम होजावै तब विषम अग्नि होता है ॥ २ ॥ पित्त अधिक होवे तब तीक्ष्ण अग्नि होता है.

अथ चारप्रकारके अग्निका लक्षण ॥

वातश्लेष्माधिकत्वेन जायते मन्दसंज्ञकः ॥ ३ ॥ यद्भुक्तं प्रकृतिस्थं तु पाचयत्यन्नसंचयम् ॥ स समो नाम निर्दोषः सर्वधातुविवर्द्धनः ॥४॥ किञ्चित्पाचयते भक्ष्यं कदाचिद्दविपक्ककः ॥ वातेन वा न विषमं करोत्यपि विषूचिकाम् ॥ ५ ॥ प्रकृत्या चाधिकं स्नाति तृप्तिं न लभतेऽपि च॥ सदाहपीतता नेत्रे तीक्ष्णो वै क्षयकृद्बले ॥ ६ ॥ यद्भुक्तं चैव शक्नोति यत्तु श्लेष्मबलाधिकात् ॥ सोऽपि मन्दानलो नाम गुल्मोदरपरो मतः॥७॥

वात कफ ये अधिक होजावे तब मंदाग्नि होता है ॥ ३ ॥ और जो स्वभावके योग्य अन्नका भोजन कियेहुएको पकादेता है वह सम अग्नि कहाता है, सबदोषोंसे रहित है और सब धातुओंको बढाता है ॥ ४ ॥ विषमअग्नि भोजन कियेहुएको कछुक पकाता है और कभी नहीं पकाता है और वातसे विषमहुआ अग्नि विषूचिका अर्थात् हैजाविशेषको करता है ॥ ५ ॥ अपनी प्रकृतिसे अधिक भोजन करै तबभी तृप्ति नहीं होवै और सदा पीले नेत्ररहैं दाहहो, बलका नाशहो वह तीक्ष्ण अग्नि कहाता है ॥ ६ ॥ कफके अधिक बल होनेसे जो भोजन करनेको समर्थ न रहे वह मंदाग्नि कहाता है और गुल्मोदररोगको करता है॥७॥

अथ चारप्रकारके अग्निका परिणामविशेष ॥

समेन समता देहे देहधातुबलेन्द्रियैः ॥ हृष्टः संपूर्णगात्रस्तु सचेष्टो वर्त्तते नरः ॥ ८ ॥ विषमे वानिलाद्याश्च ग्रहणी चातिसारकाः ॥ प्लीहा गु

ल्मो विषूची च शूलोदावर्त्तसंज्ञकः ॥ ९ ॥ आनाहो मन्दचेष्टत्वं जाय
ते विषमाग्निना ॥ वातकफावुभौ क्षीणौ तीव्रो भवति पित्तकः ॥ १० ॥
भोजने लभते प्रीतिं भुक्ता चैव च जीर्य्यते ॥ तेन भस्मकसंज्ञस्तु जा
यते जठरानलः ॥ ११ ॥ पाण्डुः पित्तातिसारस्तु राजयक्ष्मा हलीमकः॥
भ्रमः क्लमोऽतिवैकल्यं यकृद्वापि प्रमेहकाः ॥ १२ ॥ शूलमूर्च्छा रक्त
पित्तं पित्ताम्लं मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ तेन संक्षीयते गात्रं जायतेऽन्नस्य लौ
ल्यता ॥ १३ ॥ भक्षिताः काष्ठपाषाणा जीर्य्यन्ते तस्य देहिनः ॥ इति
प्रोक्तं निदानं च नरस्याग्निप्रकोपनम् ॥ १४ ॥ बहुधापि न बोक्तं तु ग
न्थविस्तारशङ्कया ॥ १५ ॥

समान अग्नि होवे तब शरीरमें धातु बल इंद्रिय इन्होंकी समानता रहै और सदा प्रसन्न रहै शरीरकी सब चेष्टाओंसे युक्तहुआ विचरता रहै ॥ ८ ॥ विषमअग्नि होवे तब वातआदिक रोग और ग्रहणीरोग, अतीसार, प्लीहा, गुल्मरोग, विषूचिका, शूल, उदावर्त ॥ ९ ॥ अफारा, ये रोग होते हैं और मंद चेष्टा रहती है, और वात कफ ये दोनों क्षीणहों पित्त तीक्ष्णहो ॥ १० ॥ और भोजनमें प्रीति रहै भोजन कीयाहुआ जरजावे वह भस्माग्नि अर्थात् भस्मक रोग कहाता है ॥११ ॥ तिस भस्मकरोगसे, पांडुरोग, पित्तका अतिसार, राजयक्ष्मा, हलीमक, भ्रम, ग्लानि, अतिविकलपना, यकृतरोग प्रमेह ॥ १२ ॥ शूल, मूर्च्छा, रक्तपित्त, अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र, ये उपद्रव होजाते हैं और शरीर क्षीण होजावे अन्नमें अत्यंत इच्छा रहै ॥ १३ ॥ और तिस भस्मरोगवाले मनुष्यके भक्षण कियेहुए काष्ठ, पत्थरभी जरजाते हैं इसप्रकार मनुष्यके अग्निकोप होनेंके लक्षण कहे हैं ॥ १४ ॥ ग्रंथके विस्तार होनेंकी शंकासे यहां बहुतसा विस्तार नहीं कहा है ॥ १५ ॥

अथ जठराग्निकी चिकित्सा ॥

अतो वक्ष्ये समासेन भेषजानि पृथक्पृथक् ॥
पाचनं शमनं चैव दीपनञ्च तथोपरि ॥ १६ ॥

अब विस्तारसे जुदी २ औषधोंको कहते हैं पाचन, अर्थात् पकानेंवाली शमन दीपन अर्थात् अग्निको दीप्तकरनेंवाली ऐसी औषधोंको कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ विषमाग्निकी चिकित्सा ॥

रास्ना शठी प्रतिविषा सुरसा च शुण्ठी सिन्धूत्थहिङ्गु मगधा च सुव

र्चलं च ॥ चूर्णं कृतं सगुडमोदकभक्ष्यमाणं वातात्मकन्तु विषमाग्निं समीकरोति ॥ १७ ॥ शूलानजीर्णविषमाग्निविषूचिकासु वातादयःसकलगुल्मविनाशनं स्यात् ॥ भुक्तोपरि क्वथितमेव पिबेत्सुखोष्णं श्रेष्ठं तथोपरि समस्तरसानुभोज्यम् ॥ १८ ॥

रास्ना, कचूर, कालाअतीश, सौंफ, सूंठ, सेंधानमक, कालानमक हींग, पीपल इन्होंका चूर्ण बना तिसमें गुड मिला गोली बना खानेंसे वातसे उपजाहुआ विषमाग्निरोग दूर होता है ॥ १७ ॥ और शूल, अजीर्ण, विषमाग्नि, विषूचिका, इन रोगोंको तथा वातसे उपजेहुए रोगोंको और गुल्मरोगको नाशती है और इसके खानेके ऊपर औटायाहुआ सुखसे सुहाताहुआ गरम २ जलको पीवै और इसके ऊपर सबप्रकारके रस खानें श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

अथ तीक्ष्णाग्निकी चिकित्सा ॥

द्राक्षाभया तिक्तकरोहिणी च विदारिका चन्दनवासकं च ॥ मुस्ता पटोलं च किरातकानां कृष्णा बला च विकचाविषाणा ॥ १९ ॥ पलालवङ्गालसपद्मकं च योज्या च भृङ्गी धनिका समांशा ॥ चूर्णं सखर्जूरसितासमेतं घृतेन तद्वार्द्धबलप्रमाणम् ॥ २० ॥ भक्षेत्प्रभाते पयसा मनुष्यो निष्क्वाथ्य पानं सघृतं विधेयम्॥करोति तीव्राग्निसमं प्रकृष्टं कृशस्य पुष्टिं तनुतेऽपि नूनम् ॥ २१ ॥ क्लमभ्रमशोषविनाशनं स्यात्तृष्णातिलौल्यशमनं करोति ॥ सरक्तपित्तं क्षयपाण्डुरोगं हलीमकं कामलमाशु नश्येत् ॥ २२ ॥

दाख, हरडें, कुटकी, विदारीकंद, चंदन, वांसा, नागरमोथा, परवल, चिरायता, पीपल, खरैहटी, गोरखमुंडी, अतीश, ॥१९॥वालछड, लौंग, पद्माक, भंगरा, धनियां, खजूरिया, इन्होंको समानभागसे चूर्णबना तिसमें मिसरी मिला पीछे घृतके संग इस चूर्णको आधी मात्रा प्रमाण ॥२०॥ प्रातःकालमें खावे और इसके ऊपर औटायाहुआ दूधको घृतके संग पीवे. यह तीक्ष्ण अग्निको समान करता है और कृशशरीरको अत्यंत पुष्ट करता है ॥ २१ ॥ और ग्लानि भ्रम शोष इन्होंको दूर करता है और अत्यंत दाहको शांत करता है रक्तपित्त, क्षयरोग, पांडुरोग, हलीमक, कामला, इन्होंको शीघ्रही नाशता है ॥ २२ ॥

तण्डुलारक्तशालीनां भागद्वयेन धीमताम् ॥ भृष्ट्वा तिलांश्च संकुट्य तदर्द्धेन विमिश्रितान् ॥ २३॥ भृष्ट्वा तत्समसुद्गांश्च चैकीकृत्य तु साधयेत्॥

सिद्धां च कृशरां सम्यग्घृतेन सह भोजयेत् ॥ २४ ॥ एकाहान्तरितो यस्तु तीव्राग्निस्तस्य नश्यति ॥ २५ ॥

लाल चावल २ भाग, भूनेंहुये तील १ भाग इन्होंको कूटि फिर इनके बराबर भूनेंहुए मूंग मिला ॥ २३ ॥ इन्होंको पकाके खिचडी बनावे पीछे तिसको घृतके संग भोजन करे ॥२४॥ इसकों एकदिन खावै और एकदिन नहीं खावे इस क्रमसे खानेंसे तीक्ष्ण अग्नि शांत होती है२५

अथ हरीतक्यादिवटी ॥

हरीतकी हरिहरतुल्यषड्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विशालपिप्पली ॥ हुताशनं हि हुसैन्धवसंयुतं रसायनं कुरुन्नृपवह्निदीपनम् ॥ २६ ॥

हरडें ६ भाग चारभाग पीपल चारभाग गजपीपल चीता, हींग, सेंधानमक इन्होंको एक जगह पानीमें खरलकर गोली बांधलेवे यह अग्निको दीप्त करनेंमें रसायन कहाता है ॥२६॥

अथ यवानीखांडवचूर्ण ॥

दीप्यकाग्निर्हरीतकी विडङ्गो भागवृद्धि विनियोज्य चूर्णितम् ॥ अत्यम्ल वेतश्च तथा च कोलं दाडिमं तथाच तिन्तिडीकम् ॥२७॥ समानि चेमानि च कर्षमात्रं कर्षाद्विभागेष्वितरे बलानि ॥ जाजी वराङ्गं च सुवर्चलं च कणाशतैकं मरिचं तदर्द्धं ॥ २८ ॥ पलानि चत्वार्य्यपि शर्करायाः समं विचूर्ण्याथोदशान् प्रमार्ष्टि ॥ भक्षेद्यदेदं रुचिकृद्विबन्धं सप्लीहशूलं जयते सकासम् ॥ २९ ॥ श्वासं विनश्येद्धृदयामयघ्नं जिह्वाकण्ठामय शोधनं भवेत् ॥ ग्राहग्रहण्यार्शविकारमन्दानलस्य सन्दीपनमेव चूर्णम् ॥ ३० ॥ यवानिकाखंडविकाभिधानमरोचकानां शमनं प्रशस्तम्॥३१॥

अजमान १ भाग चीता, २ भाग हरडै, ३ भाग ऐसे इन्होंकों, यथोत्तर वृद्धि भाग लेके चूर्ण बनावे और अम्लवेत, वेर, अनारदाना, अमली, ॥ २७ ॥ इन सब औषधोंको समान भाग एक एक तोला प्रमाण लेवे और जीरा, दालचीनी, कालानमक, ये सब दो २ तोला प्रमाण लेवे और पीपल १०० सो काली मिरच ५० ले ॥ २८ ॥ मिसरी १६ तोले ऐसे इन सब औषधोंको ले एक जगह चूर्ण बनावे इस चूर्णके खानेंसे उदररोगोंका नाश होता है और यह रुचिको करनेंवाला है मलका बंधा, तिल्ली, शूल, खांसी ॥ २९ ॥ श्वासरोग, हृदयरोग, जिव्हारोग, कंठरोग इन्होंको दूर करता है और संग्रहणी, ववासीर इन्होंको दूर करता है मंदाग्निको दीप्तकरता है ॥ ३० ॥ यह यवानीखांडवनामवाला चूर्ण अरोचकरोगके दूर करनेंमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३१ ॥

अथ अरोचकचिकित्सा ॥

यवागूः पञ्चकोलस्य कुलत्थाढक्यपूषकम् ॥ मुद्गयूषेण वा सम्यग्भक्तानां भोजनं हितम् ॥ ३२ ॥ सहिङ्गु त्र्यूषणाढ्यं च व्यञ्जनं संप्रशस्यते ॥ अगस्तिघृतवच्छ्रेष्ठं भोजनारोचकेष्वपि ॥३३॥ कारवेल्लं पटोलञ्च पलाण्डुः सूरणं शठी ॥ लवणं धान्यकं श्रेष्ठं प्रलेहश्च कटुत्रिकम् ॥ ३४ ॥ शठी सर्षपवास्तुकं शतपुष्पा काञ्चनमाचिका ॥ तुण्डीरकस्य मूलानां शाकं श्रेष्ठं प्रशस्यते ॥ ३५ ॥ गोधूमपोलिकाः श्रेष्ठा भृष्टाङ्गारैररोचके ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजयेद्भिषगुत्तमः ॥ ३६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मन्दाग्निचिकित्सा नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पंचकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, इन्होंकी यवागूको तथा कुलथी अरहरकी दाल इन्होंके यूषको भोजन करै अथवा मूंगोंके यूषकेसंग चावलोंका भोजन करना हित है ॥ ३२ ॥ हींग, सूंठ, मिरच पीपल इन्होंसे संयुक्त कियाहुआ शाक भोजनकी अरुचिमें अगस्तिसंज्ञक घृतकी तरह श्रेष्ठ कहा है ॥ ३३ ॥ और करेला परवल, प्याज, जमीकंद, कचूर, इन्होंका शाक श्रेष्ठ है और नमक धनियां, सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंकी चटनी श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ और कचूर, सिरसम, बथुवा, सौंफ, मकोह, मींठीतोरी, मूली, इन्होंका शाक अरोचक रोगमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३५ ॥ और अंगारोपे सेकीहुई गीहुंवोंकी रोटी जांगलदेशके जीवोंका मांस इन्होंको वैद्यजन अरोचकरोगवालेको भोजन करवावै ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थानेमंदाग्निचिकित्सानाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ शूलनिदान ॥

आत्रेय उवाच ॥ व्यायामपाननिशिजागरणव्यवायशोकातिभारगतिधावनकश्रमेण ॥ वैषम्यपानशयनेन च भोजनेन शीतेन वायुः कुपितः प्रकरोति शूलम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कसरत, पान, रात्रिमें जागना, मैथुन करना, शोक, अतिबोझ उठाना, गमन करना, भाजना इन्होंके श्रमसे और विषमपान, विपरीतशयन, विपरीत भोजन, शीतल वस्तुका सेवन इन्होंसे कुपितहुआ वायु शूलको करता है ॥ १ ॥

अथ वातशूलकी उत्पत्ति ॥

विष्टम्भिरूक्षयवमाषकलायमुद्गनिष्पावकास्त्रिपुटकोद्रवका मसूरः ॥ गोधूमक्षुद्रकफरूक्षविभोजनेन चैतच्च पानमलरोधनमूत्ररोधैः ॥ २॥ वायुस्त्वधोगतपथं प्रविरुह्य मूलं वातात्मको भवति चान्तरवह्निमांश्च ॥ तस्मादिति प्रबलताकुपितः प्रकोष्ठे शूलं करोति गुदमार्गनिरोधितेऽपि ॥ ॥ ३ ॥ गात्रेऽपि तोदविरतिर्मलिनातिदीना वातार्त्तिपीडितनरस्य महामते स्यात् ॥ ४ ॥

और विष्टंभी अर्थात् मलको बंद करनेंवाला, सूखा भोजन, जव, उडद, मोठ, मूंग, मटर, कोदूधान्य, चौला, मसूर, गेहूं, कफको पैदा करनेंवाला, अन्न ऐसे भोजनोंसें और जलपान, मल, मूत्र, इन्होंके रोकनेसे ॥ २ ॥ वायु अधोमार्गके मूलमार्गको रोक देता है यह वातसे उत्पन्नहुआ शूल कहाता है और उदरके भीतर अग्निदाह करदेता है कोष्ठस्थानमें प्रबलहोके कुपितहुआ, शूलको उपजाता है और गुदाके मार्गको रोक देता है ॥ ३ ॥ और शरीरमें चभका, ग्लानि, मलीनता, दीनपना ये उपद्रव वातसे पीडितहुए मनुष्यकै उत्पन्न होते हैं ॥४॥

अथ पित्तशूलनिदान ॥

क्रोधातपादनलसेवनहेतुना च शोकाद्भयार्त्तिगतिधावनधर्मयोगात् ॥ क्षाराम्लमद्यकटुकोष्णविदाहिरूक्षसौवीरशुष्कपललेखनराजिकाभिः॥५॥ संकुप्यतेऽनिलसमीरितं तत्तु पित्तं शूलं करोति जठरे मनुजस्य तीव्रम् ॥ तेनाङ्गदाहारतिघर्मतृषार्त्तिमूर्च्छा नाभ्यन्तरे दहति शोषः सपीततास्ये६

क्रोधसे, घांम और अग्निके सेवनेसे शोक, भय, पीडा, गमनकरना, भाजना, पसीना, इन्होंके योगसे, खारा, खट्टा, मदिरा, चर्चरा, कछुकगर्म, विदाही, रूषा पदार्थ, कांजी, सूखा पदार्थ, मांस, लेखन पदार्थ, राई, ॥ ५ ॥ इन्होंके खानेंसे वायु कुपितहोके पित्तको कुपित करता है फिर वह पित्त मनुष्यके उदरमें दारुणशूल उत्पन्न करता है तिस्से अंगमें दाह, ग्लानि, पसीना, तृषा, मूर्च्छा ये उपद्रव होते हैं और नाभिकेसमीपमें दाहहो शोषहो और मुख पीला रहे ॥६॥

अथ कफशूलकी उत्पत्ति ॥

अव्यायामेऽस्निग्धसंसेवनेन लौल्याहारे चेक्षुतैलपयोभिः ॥ अल्पाहारे

निद्रया सेवनैस्तु योगैरेतैः कोपयेच्छ्लेष्मकस्तु ॥ ७ ॥ माषातिशीतलप योदधिभिः सुशीतैर्मत्स्यैस्त्वनूपपललैरतिसेवितैस्तु ॥ श्लेष्मा भृशं शमयतेऽनलमाशु शूलं कोष्ठे करोति मनुजस्य विकारमुग्रम् ॥ ८ ॥ हृल्लासकासवमिजाड्यशिरोगुरुत्वं स्तैमित्यशीतलतनूरुचिबन्धनं च ॥ भुक्तप्रसेकमधुरास्यं तथाभिरामं स्निग्धं मुखं भवति यस्य कफात्मकोऽसौ ॥ ९॥ श्लेष्मा भवत्येव भवन्ति यस्य चिह्नानि स भवति च सशूलः ॥ सपैत्तिकानीव भवन्ति यस्य तमाहुरजीर्णेऽपि नराः सशूलम् ॥ १० ॥

कसरत नहीं करना, चिकना नहीं खाना, पिच्छल भोजन करना, ईखका रस, तेल, दूध, इन्होंका भोजन करना, अल्प भोजन करना, निद्राका सेवन करना, इन योगोंकरके कफ कुपित होता है ॥७॥ और उडद, अत्यंत शीतल पदार्थ, शीतल दूध, दही, मच्छी और अनूपदेशके जीवोंका मांस इन्होंके सेवन करनेसे कफ हो जठराग्निको शांत करदेता है और शीघ्रही शूलको उत्पन्न करदेता है मनुष्यके कोष्ठस्थानमें अतिउग्र विकार करता है ॥ ८ ॥ और हल्लास अर्थात् थुकथुकी, खांसी, वमन, जडता, शिरभारा, गीलापन, शीतलशरीर होना, रुचिबंधहोनी, भोजन करेंपीछे थूकआना, मीठामुख रहै, रमण करनेकी इच्छा रहे, चिकना मुख रहै,जिसके ये उपद्रवहों वह कफसे उपजा शूल जानना ॥ ९ ॥ जिसके ये लक्षणहों वह कफका शूल होता है और जिसके पित्तके लक्षण मिलतेहो उसको वैद्यजन अजीर्णसे उपजाहुआभी शूल कहते हैं॥१०॥

अथ द्विदोषजशूलकी उत्पत्ति ॥

हृत्कण्ठपार्श्वे कफः पैत्तिकस्तु हृन्नाभिमध्ये कफपित्तशूलः ॥ बस्तौ च नाभौ दधतः प्रदेशे विलोलमानः स तु वातपित्तात् ॥ ११ ॥

कफसे उपजा शूल, हृदय, कंठ, पशली, इन्होंमें पीडा करता है और पित्तसे उपजा शूल, हृदा नाभि इन्होंमें पीडा करता है और कफपित्तसे उपजाशूल बस्तिस्थान, नाभि इन्होंमें पीडा करता है और जो सब शरीरमें पीडाहो वह वातपित्तसे उपजा शूल जानना ॥ ११ ॥

अथ दशप्रकारके शूल ॥

अथ शूलोंकी साध्यासाध्य परीक्षा ॥

एकोऽपि सुखसाध्योऽसौ द्वन्द्वः कष्टेन सिध्यति ॥
त्रिदोषजस्त्वसाध्यस्तु बहूपद्रवसंयुतः ॥ १२ ॥

एक दोषसे उत्पन्नहुआ शूल सुखसाध्य होता है, दो दोषोंसे उपजाहुआ शूल कष्टसाध्य कहाता है, त्रिदोषसे उपजाशूल असाध्य कहाता है और बहुतसे उपद्रवोंसे संयुक्त होता है १२

अथ शूलोंकी संख्या और पृथक्करण ॥

निदानैः कुपितो वायुर्वर्त्तते जठरान्तरे ॥ तेनेति संज्ञा दश स्युः शूलस्य परिगीयते ॥ १३ ॥ त्रयो वातादिका ज्ञेया द्वन्द्वजास्तु पुनस्त्रयः ॥ साम निरामकौ द्वौ च शूलाश्चाष्टाविमे स्मृताः ॥ १४ ॥ अजीर्णान्नवमः प्रोक्तो दशमः परिणामजः ॥ एवं दशप्रकारेण शूलं संभवते नृणाम् ॥ १५॥ भुक्तोपरि भवेद्यस्तु सोऽपि ज्ञेयः कफात्मकः ॥ जीर्णेऽन्ने च भवेद्यस्तु स ज्ञेयः परिणामजः ॥ १६ ॥

कारणोंसे कुपितहुआ वायु उदरके भीतर वर्त्तता है फिर तिसके कियेहुए दशप्रकारके शूल उत्पन्न होजाते हैं ॥ १३ ॥ तीन शूल वात आदिक दोषोंके और दो २ दोषोंसे मिलेहुए शूल और १ साम अर्थात् आमसहित शूल, और १ निरामशूल ऐसे आठ प्रकारके तो ये हैं ॥ १४ ॥ और नवमा ९ अजीर्णसे उपजाशूल और १०मा परिणामजशूल ऐसे मनुष्योंके दश प्रकारके शूल कहे हैं ॥ १५ ॥ जो भोजन करनेमें पीछेशूल होता है वह कफका शूल कहाता है और भोजन कियाहुआ अन्न जरजावे तब शूल उपजै वह परिणाम शूल कहाता है १६

अथ वातशूलका लक्षण ॥

आध्मानमूर्ध्वं च विबन्धनं च जृम्भा तथा वेपथुमार्जनं च ॥ उद्गीरणं स्निग्धमुखातिजिह्वा वातेन शूलं भजते विधिज्ञः ॥ १७ ॥

ऊपरले अंगोंमें अफाराहो, और मलका बंधाहो जंभाई आवे अत्यंत कांपै वमन आवे, मुख और जिव्हा चिकनीहो, ये लक्षण वातकी शूलके हैं ॥ १७ ॥

अथ पित्तशूलका लक्षण ॥

दाहो रतिर्मोहस्तथैव तृष्णा कृच्छ्रेण मूत्रं कटुकास्यता च ॥ स्वेदातिशोषो वदनं च पीतं पित्तात्मकोऽसौ प्रवदन्ति धीराः ॥ १८ ॥

और दाहहो, ग्लानिहो, मोहहो, तृषाहो,कष्टसे मूत्र उतरै, मुख कडुआ रहै, पसीना आवै, अत्यंत शोषहो, मुख पीला रहै ये लक्षणहों उसको वैद्यजन पित्तका शूल कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ कफशूलका लक्षण ॥

छर्दिस्तथा कासबलासमोह आलस्यतन्द्रा जडतातिशैत्यम् ॥

छर्दिहो, खांसी, कफ, मोह, आलस्य, तंद्रा, जडपना, अत्यंत शीतलता, ये हैं उसको कफसे उपजा शूल कहते हैं.

अथ द्वंद्वजशूलका लक्षण ॥

कफात्मकं तद्भिषजां वरिष्ठ ! शूलं भवेद्द्वन्द्वजरोगसंज्ञम् ॥ १९ ॥ त्रिभिस्तु दोषैस्तु त्रिदोषजः स्याद्रक्तेन चैकादश एवमुक्तः ॥ पित्तात्मकानि प्रभवन्ति यस्य चिह्नानि यस्यास्रगछर्दनं च ॥ २० ॥ शोषस्तृषा दाहस्तथैव कासः श्वासेन रक्तप्रभवोऽतिशूलः ॥२१॥ विना वातेन नो शूलं विना पित्तेन नो भ्रमः ॥ न कफेन विना छर्दिर्न रक्तेन विना तमः ॥ २२ ॥

और जो दोदोषोंसे उपजाहो वह द्वंद्वजशूल कहाता है॥१९॥तीनदोषोंसे उपजाहुआ त्रिदोषजशूल कहाता है और रक्तसे उत्पन्नहुआ ग्यारवां शूल होता है, जिसकें पित्तके लक्षणहों और रुधिरकी छर्दि करै ॥ २० ॥ शोषहो, तृषाहो, दाहहो, खांसीहो श्वासहो, वह रक्तसे उपजाहुआ शूल कहाता है ॥ २१ ॥ वातके विना शूल नहीं होता है और पित्तके विना भ्रम नहीं होता है कफके विना छर्दि नहींहोतीहै और रक्तके बिना अंधेरी नहीं होती है॥२२॥

अथ सब प्रकारके शूलोंकी चिकित्सा ॥

इति शूलपरिज्ञानमतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥ येन शूलार्त्तिशमनं शूली संपद्यते सुखम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा शूलं लङ्घनं पाचनं च विरेचनं वान्तिसंस्वेदनं वा॥क्षारं चूर्णं चार्पयेच्छूलशान्त्यै पानाभ्यङ्गान्कासमाने मनुष्ये ॥२४॥

इसप्रकार शूलका निदान तो कहदिया है अब इन्होंकी औषधोंको कहैंगे जिस्से शूलकी पीडा शांत होती है और शूलरोगवाला पुरुष सुखी होता है ॥ २३ ॥ वैद्यजन शूलको देखि लंघन, पाचन, विरेचन, वमन, संस्वेदन इनकर्मोंको करवावै और शूलकी शांतिकेवास्ते क्षारचूर्णको देवै और जो मनुष्यकै खांसीसहित शूलहोवे तो पान, अभ्यंग अर्थात् मालिस, इन्होंको करवावै ॥ २४ ॥

अथ शूल तथा गुल्मपर हिंग्वादिक्काथ ॥

हिङ्गु नागरशठीसुवर्चलं दारुपौष्करघनापुनर्नवाः ॥ क्काथपानमिति शूलिनां हितं पाचनं जठरगुल्मिनामपि ॥ २५ ॥

और हींग, सूंठ, कचूर, कालानमक, देवदार, पोहकरमूल, नागरमोथा, सांठी, इन्होंका क्काथ बनाके पान कराना शूलरोगवालोंको हित है और उदरगुल्मरोगवालोंको यह क्काथ पाचन है ॥ २५ ॥

अथ वातशूलपर हिंग्वादिकाथ ॥

हिङ्गु पौष्करशठीसुवर्चलं क्वाथमेवमपि शूलिनां हितम् ॥ वातशूलश
मनाय शस्यते पाचनं निगदितं च वर्त्तते ॥ २६ ॥

हींग, पोहकरमूल, कचूर, कालानमक, इन्होंका क्वाथभी शूलरोगवालोंको हित है यह क्वाथ वातशूलको शांत करनेंकेवास्ते श्रेष्ठ कहा है और यही क्वाथ पाचनभी कहा है॥ २६॥

अथ सैंधवादिचूर्ण ॥

सिन्धूत्थहिङ्गु रुचकं च शठी यवानी पथ्यायवक्षारसमं विचूर्णम्॥ देयं
सुखोष्णेन निहन्ति शूलं वातात्मकं वाप्यचिरेण शूलम् ॥ २७ ॥

और सेंधानमक, हींग, कालानमक, कचूर, अजमान, हरडें, जवखार, इन्होंको समान भागले चूर्णबना सुखसे सुहाताहुआ गरम२ जलके संग देनेंसे वातसे उपजाहुआ शूल शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ २७ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्ण ॥

हिङ्गु सौवर्चलं पथ्या यवानी सपुनर्नवा ॥ बालैरण्डो बृहत्यौ द्वे तुवरं
त्र्यूषणान्वितम् ॥ २८ ॥ क्षारसौवर्चलोपेतं क्वाथो वा चूर्णितस्तथा ॥
सद्यो वातात्मकं शूलं हन्ति सद्यो विषूचिकाम् ॥ २९ ॥

हींग, कालानमक, हरडें, अजमायन, सांठी, नेत्रवाला अरंड, दोनों कटेहली, सफेद शिरस, सूंठ, मिरच, पीपल, ॥ २८ ॥ जवाखार, कालानमक इन्होंका क्वाथ अथवा चूर्ण वातसे उपजा शूलको और विषूचिकाको शीघ्रही नाश देता है ॥ २९ ॥

अथ तुंबुरुआदि चूर्ण ॥

तुम्बुरुपौष्करहिङ्गु यवानी त्र्यूषश्च वा त्रिबृहतीगुणेन ॥
युक्तमिदं लवणाष्टकचूर्णं भवति शूलनिवारणक्षमम् ॥ ३० ॥

और धनियां, पोहकरमूल, हींग, अजमायन, सूंठ, मिरच, पीपल, तीनोंप्रकारकी कटेहली, नमक, इनसबोंको युक्तकर चूर्ण बनावे यह लवणाष्टकचूर्ण कहाता है शूलको शीघ्रही निवारण करदेता है ॥ ३० ॥

अथ एरंडादिकाथ ॥

क्वाथो निहन्ति मरुतोद्भवशूलसंघानेरण्डनागरसुवर्चलरामठेन ॥
पथ्यावचेन्द्रयवनागरतोययुक्तं हिङ्गु सुवर्चलयुतं च निहन्ति शूलम् ३१

अरंड, सूंठ, कालानमक, हींग, हरडैं, वच, इंद्रजव, सूंठ, हींग, कालानमक इन्होंका क्वाथ बना देनेंसे वातसे उपजेशूलोंके समूहोंका नाश होता है ॥३१॥

अथ बृहद्धिंगुचूर्ण ॥

हिङ्गु नागरषड्ग्रन्था यवानी अभया त्रिवृत् ॥ विडङ्गं दारु चव्यञ्च तुम्बुरुकुष्ठमुस्तकाः ॥ ३२ ॥ हपुषा कलशी रास्ना वत्सका सदुरालभा ॥ सितारवी बृहत्यौ च लांगली पञ्चजीरकम् ॥ ३३ ॥ पुष्करं तिन्तिडीकं च वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ द्वौ क्षारौ पञ्चलवणं समं चैकत्र मिश्रयेत् ॥ ३४ ॥ मूत्रेण भावनाञ्चैकां दत्वा छायाविशेषिताम् ॥ बीजपूरक तोयेन भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥ बिडालपदिकां मात्रां युञ्जीत शूलशान्तये ॥ वातेनोष्णोदकेनापि सितशर्करयान्वितः ॥ ३६ ॥ त्रिफला क्वाथो मद्येन श्लेष्मरोगे प्रशस्यते ॥ शूलानाहविबन्धानां मन्दाग्नौ गुल्म विद्रधीन् ॥ ३७ ॥ प्लीहोदराणाञ्च पाण्डुज्वरिणां च विशेषतः ॥ निहन्ति देहसङ्घातं मेघवृन्दं मरुद्यथा ॥ ३८ ॥

हींग, सूंठ, वच, अजमान, हरडैं, निशोत, वायविडंग, देवदार, चव्य, धनियां, कूट, नागमोथा ॥ ३२ ॥ हाडवेर, पिठवण, रास्ना, कूडा, जवासा, सफेदगोकर्णी, दोनोंकटेहली, कलहारी, पांचोंजीरे, ॥ ३३ ॥ पोहकरमूल, विजौरा, अम्लवेत, जवाखार, साजीखार, पांचोंनमक इनसबोंको समानभाग ले एक जगह चूर्ण बना ॥ ३४ ॥ गोमूत्रमें भावनादे छायामें सुखालेवे पीछे विजौराके रसमें तीन दिनतक भावना देवै ॥ ३५ ॥ पीछे एक तोला प्रमाण इस चूर्णको देनेंसे शूलरोग शांत होता है वातसे उपजी शूलमें गरमजलके संग देवै ॥ ३६ ॥ और कफसे उपजी शूलमें सफेद खांडमें अथवा त्रिफलाके क्वाथके संग अथवा मदिराके संग देना हित है और शूल, अफारा, मलका बंधा, मंदाग्नि, गुल्मरोग, विद्रधि॥३७॥तिल्ली, उदररोग, पांडुरोग, ज्वर, देहकामुटाया इनसब रोगोंको यह चूर्ण नाशताहै जैसें मेघोंके समूहको वायु तैसें॥३८॥

अथ पित्तशूलचिकित्सा ॥

धात्रीफलं लोहरजश्च पथ्या त्र्यूषं समांशेन विभाव्य तं तु ॥ रसेन वा दाडिममातुलुङ्ग्याश्चूर्णं सिताढ्यं च सपित्तशूले ॥ ३९ ॥

धात्रीफलादि चूर्ण आंवला, लोहका चूर्ण, हरडै, व्योष सूंठ, मिरच, पीपली इन सबोंको समानभागले अनारके रसमें अथवा विजौराके रसमें भावना देवै पीछे इसचूर्णमें मिसरी मिलादेनेंसें पित्तशूल शांत होताहै ॥ ३९ ॥

अथ दाडिमादिचूर्ण ॥

बिडालकं दाडिमपूतनां च धात्रीसमेतं विदधीत चूर्णम् ॥ तन्मा
तुलुङ्गस्य रसेन भावितं सपित्तशूलशमनाय भक्षेत् ॥ ४० ॥

अनारदाना, हरडै, आंवला, इनसबोंको एक २ तोला प्रमाणले चूर्ण बना फिर बिजौराके रसमें भावना देवै यह चूर्ण पित्तशूलको शांत करता है ॥ ४० ॥

अथ जीवंत्यादि घृत ॥

जीवन्त्याद्यं घृतं पाने क्षीरं वापि सितान्वितम् ॥
कर्त्तव्यं रेचनं नित्यं पित्तशूलनिवारणम् ॥ ४१ ॥

जीवंतीआदि औषधगणमें सिद्धकियाहुआ घृत अथवा मिसरीसे युक्त दूध इन्होंका पान करके जुलाब लेनेंसे निश्चय पित्तशूलका निवारण होता है ॥ ४१॥

अथ पित्तशूलका दूसरा उपचार ॥

शिशिरसरसतोयागाहनं चन्दनानि विशदपुटितमध्ये स्वापनं वै निशासु ॥
कनकरजतकांस्याम्भोजहैमं तुषारं कृतमिति विधिना वै पैत्तिके शूल
हेतोः ॥ ४२ ॥

और सरोवरके ठंढाजलसे स्नान करना, चंदन लगाना, उत्तम चौगरदे घेरवाला मकानमें रात्रीमें शयन करना, और सुवर्ण, चांदी, कांशी, कमल, इन्होंकी ठंढकसे शीतलता करनी ये विधि पित्तशूलमें करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अथ पित्तशूलमें भोजन॥

सितशाल्योद्भवा लाजाः सितामधुयुतं पयः ॥ दाहं पित्तज्वरं छर्दिं सद्यः
शूलं निहन्ति च ॥ ४३ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजनार्थें प्रशस्यते ॥
घृतं क्षीरं समधुरं प्रशस्तं पित्तशूलिनाम् ॥ ४४ ॥

सपेद सांठी चावलोंकी खील, मिसरी, शहद इन्होंसे युक्त दूध ये दाहको और पित्तज्वरको छर्दिको और पित्तशूलको नाशती हैं॥४३॥और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनके वास्ते श्रेष्ठ कहा है और घृत, दूध, शहद ये पित्तशूलवालोंका हित है ॥ ४४ ॥

अथ कफशूलचिकित्सा ॥

लङ्घनं वमनं चैव पाचनं श्लेष्मशूलिनाम् ॥
न घनातिमधुराणि शयनं च विधेयकम् ॥ ४५ ॥

कफशूलवालोंको लंघन कराना वमन कराना पाचनऔषध देना हित है, और करडापदार्थ, अत्यंतमीठा पदार्थ नहींदेवै और शयन नहीं करावे ॥ ४५ ॥

अथ बिल्वादिकाथ ॥

बिल्वाग्निमन्थवृषचित्रकनागराश्व एरण्डहिङ्गु सहसैन्धवकं समांशम् ॥
क्वाथो निहन्ति कफजोद्भवसद्यःशूलं सद्यो निहन्ति जठरानलवर्द्धनं च ४६

और बेलगिरी, अरणी, वांसा, चीता, सूंठ, अरंड, हींग, सेंधानमक इन्होंको समानभागले क्वाथ बना देनेंसे शीघ्रही कफसे उपजे शूलको दूर करता है और जठराग्निको बढ़ाता है ॥ ४६ ॥

अथ मातुलुंगादिरस ॥

मातुलुङ्गरसं धात्रीरसं सैन्धवसंयुतम् ॥ शोभाञ्जनकमूलस्य रसं च मरिचान्वितम् ॥ ४७ ॥ सक्षारमधुनोपेतं श्लेष्मशूलनिवारणम् ॥ क्तक्षयोद्भवं कासं नाशयत्याश्वसंशयम् ॥ ४८ ॥

बिजौराका रस आंवलाका रस इन्होंमें सेंधानमक मिला और सहौंजनाकी जडके रसमें काली मिरच मिला ॥ ४७ ॥ फिर जवाखार शहद इन्होंसे युक्तकर इनके देनेंसे कफका शूल दूर होता है और क्षयरोगसे उपजीहुई खांसीको शीघ्रही नाशता है ॥ ४८ ॥

अथ तुवरादिचूर्ण ॥

तुवरं ग्रन्थिकैरण्डा व्योषं पथ्याजमोदकम् ॥
सक्षारलवणोपेतं चूर्णं शूले कफात्मके ॥ ४९ ॥

सफेद शिरस, पीपलमूल, अरंड, सूंठ, मिरच, पीपल, हरडै, अजमोद, जवाखार, नमक, इन्होंका चूर्ण कफसे उपजे शूलको दूर करता है ॥ ४९ ॥

अथ एरंडादिकाथ ॥

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गं पाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः ॥ सक्षारहिङ्गुलवणोपेततैलमिश्रं श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनकुक्षिदेयम् ॥ ५० ॥

अरंड, बेलगिरी, दोनोंकटेहली, बिजौरा, पाषाणभेद, त्रिकटु, सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंसे कियाहुआ क्वाथमें जवाखार, हींग, नमक, तेल इन्होंको मिला फिर कटि, कंधे, लिंग, हृदा, कुक्षि, चूंची, इन स्थानोंमे इसकी मालिस करनी चाहिये ॥ ५० ॥

अथ वातपित्तशूलचिकित्सा ॥

पटोलारिष्टपत्राणि त्रिफलासंयुतानि च ॥ क्वाथमधुयुतं पानं शूले

पैत्ते समीरणे ॥ ५१ ॥ पित्तज्वरतृषादाहरक्तपित्तनिवारणम् ॥ ५२ ॥

पटोलादि क्वाथ, परवल, नींब, इन्होंके पत्ते त्रिफला इन्होंका क्वाथ बना तिसमें शहद-मिला पान कराना वातपित्तशूलको शांत करता है ॥ ५१ ॥ और पित्तज्वर, तृषा, दाह, रक्तपित्त इन्होंको निवारण करता है ॥ ५२ ॥

अथ दुरालभादिकल्क ॥

दुरालभा पर्पटकं च विश्वा पटोलनिम्बाम्बुदतिन्तिडीकम् ॥ सश
र्करं कल्कमिदं प्रयोज्यं सपित्तवातोद्भवशूलशान्त्यै ॥ ५३ ॥

और जवांसा, पित्तपापडा, सूंठ, परवल, नींब, नागरमोथा, अमली, इन्होंका कल्क बना तिसमें खांड मिला देनेंसे पित्तवातसे उपजा शूल शांत होता है ॥५३ ॥

अथ वातकफशूलचिकित्सा ॥

सौवर्चलं समशठी सहनागरा च शुण्ठीयुतेन क्वथितेन जलेन चूर्णम् ॥
पीतं निहन्ति मरुतायुतश्लैष्मिकाणां पार्श्वातिशूलजठरानलहृत्प्रशस्तम् ५४

सौवर्चलादि चूर्ण, कालानमक, कचूर, नागरमोथा, सूंठ, इन्होंका चूर्ण बना औटायाहुआ जलके संग लेनेंसे वात कफसे उपजाहुआ शूल शांत होता है और पशली, शूल, मंदाग्नि इन रोगोंके हरनेंमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ५४ ॥

अथ दार्वादिक्वाथ ॥

दारु नागरकं वासा हिङ्गु सौवर्चलान्वितम् ॥
क्वाथो वातकफे शूले आमे जीर्णे विबन्धके ॥ ५५ ॥

देवदार, सूंठ, वांसा, हींग, कालानमक, इन्होंसे उपजाहुआ क्वाथ, वातकफसे उपजा शूल, आमरोग, अजीर्ण, मलका बंधा इन्होंमें देना श्रेष्ठ है ॥ ५५ ॥

अथ त्रिदोषशूल चिकित्सा ॥

पलाशकदलीवासापामार्गकोकिलाह्वयम् ॥ गोमूत्रेण श्रितं तत्तु हिङ्गु
नागरसंयुतम् ॥ ५६ ॥ हितं त्रिदोषजे शूले कामलाविड्विबन्धके ॥ गु
ल्मोदराणां शमनं मंदाग्नीनां नियच्छति ॥ ५७ ॥

पलाशादिघृत-केशू, केला, वांसा, ऊंगा, कोलिस्ता, हींग, सूंठ, इन्होंको गोमूत्रमें पका क्वाथ बना देनेंसे ॥ ५६ ॥ त्रिदोषसे उपजा शूल, कामला, मलका बंधा, गुल्मरोग, उदररोग, मंदाग्नि, इन्होंको दूर करता है ॥ ५७ ॥

अथ सर्वशूलपर उपाय ॥

एक एव कुबेराक्षः सर्वं शूलापहारकः ॥
किं पुनः स त्रिभिर्युक्तः पथ्यारुचिकरामठैः ॥ ५८ ॥

एक अकेला सागरगोटाही सर्वशूलोंको दूर करता है, फिर उसके साथ हरडै, संचलखार और हींग होवै तौं क्या कहना अर्थात् अवश्यही शूलको दूर करता है ॥ ५८ ॥

अथ शंखक्षार ॥

शङ्खक्षारं च लवणं हिङ्गुव्योषसमन्वितम् ॥
उष्णोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ ५९ ॥

और शंखका खार, नमक, हींग, व्योष, सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंका चूर्ण गरमजलके संग पीनेंसे त्रिदोषसे उपजा शूल नाश होता है ॥ ५९ ॥

अथ सामान्यसे सबशूलोंकी चिकित्सा ॥

लङ्घनं वमनं चैव विरेकश्चानुवासनम् ॥
निरूहो बस्तिकर्माणि परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६० ॥

त्रिदोषसे उपजे परिणामशूलमें लंघन, वमन, जुलाब, अनुवासनबस्ति, निरूहबस्ति, इन कर्मोंको करवावै ॥ ६० ॥

अथ चित्रकादिमोदक ॥

चित्रकं त्रिवृता दन्ती विडङ्गं कटुकत्रयम् ॥ समं चूर्णं गुडेनाथ कारये न्मोदकान् सुधीः ॥ ६१ ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पश्चादुष्णोदकं पिबेत् ॥ परिणामोद्भवं शूलं हन्ति शूलं नरस्य च ॥ ६२ ॥

और चीता, निशोत, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंको समान भागले चूर्ण बना फिर वैद्यजन तिसकी गुडमें गोली बांधलेवे ॥ ६१ ॥ प्रातःकाल उठके इसका भक्षणकरे और ऊपरसे गरमजल पीवे यह परिणामशूलको नाशता है॥ ६२ ॥

अथ यवान्यादिचूर्ण ॥

यवानी हिङ्गु सिन्धूत्थक्षारं सौवर्चलाभया ॥
सुराभाण्डेन पातव्या परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६३ ॥

और अजमान, हींग, सेंधानमक, जवाखार, कालानमक, हरडैं, इन्होंको मदिराके संग पीनेंसे त्रिदोषसे उपजा परिणामशूल, शांत होता है ॥ ६३ ॥

अथ हिंग्वादिगुटी ॥

हिङ्गुव्योषवचाजमोदहपुषा पथ्या यवानी शठी जाजीपिप्पलीमूलदाडिमदकीचव्याग्निकं तिन्तिडी ॥ तस्माच्चाम्लसुवर्चलेपि च यवक्षारं तथा सर्जिका सिन्धूत्थं विडचूर्णकं समकृतं स्याद्वीजपूरे रसे ॥ ६४ ॥ कुर्याच्चूर्णगुटीं समक्षफलदामक्षप्रमाणामिमाम्॥कल्को वातविकारिणां प्रददतः शूलार्शसप्लीहकान् ॥ कासानाहविबन्धमेहहृदयशूलं निहन्त्याशु वै[1] ॥६५॥ एष हिङ्ग्वादिको नाम सर्वशूलार्त्तिनाशनः ॥ सर्ववातविकारघ्नः सर्वक्षयनिवारणः ॥ ६६ ॥

और हींग, सूंठ मिरच, पीपल, वच, अजमोद, हाउवेर, हरडैं, अजमान, कचूर, जीरा, पीपलामूल, अनारदाना, कस्मीरीपाठा, चव्य, चीता, आमलकी, वूका, ब्राह्मी, जवाखार,साजी, सेंधानमक मनियारीनमक इन्होंको समानभागले चूर्णबना विजौराके रसमें इसचूर्णकी तोला प्रमाण गोली बनावे अथवा इन्होंका कल्क बना देनेसें ॥ ६४ ॥ वातके विकार, शूल, ववासीर, तिल्ली, खांसी, अफारा, मलका बंधा, प्रमेह हृदयशूल इन्होंको शीघ्रही नाशता है॥६५॥ यह हिंगु आदिक नामवाला औषध संपूर्णशूलकी पीडाओंका नाश करता है और सबप्रकारके वातविकारोंको नाशता है सबप्रकारके क्षयरोगोंको निवारण करता है ॥ ६६ ॥

अथ शूलरोगके उपद्रव ॥

अतीसारस्तृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवोऽरुचिः ॥ श्वासकासौ वमिर्हिक्का शूलस्योपद्रवा दश ॥ ६७ ॥ शूलं सोपद्रवं तृष्णां भिषग् दूरे परित्यजेत् ॥ अनुपद्रवे क्रिया प्रोक्ता भिषजां सिद्धिमिच्छता॥ ६८ ॥

और अतीसार, तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारापन, अरुचि, श्वास, खांसी, वमन, हिचकी, ये दशशूलके उपद्रव हैं॥६७॥उपद्रवोंसें युक्त और तृषासे संयुक्त शूलको वैद्यजन दूरसे त्याग देवे और उपद्रवरहितशूलमें सिद्धिकी इच्छा करनेंवाले वैद्यनें चिकित्सा करनी कही है॥६८॥

शूलमें पथ्यापथ्य ॥

वर्जयेद्विदलं शूली तथा सघनशीतलम् ॥ पिच्छलं च दधि चैव दिवानिद्रां च वर्जयेत् ॥ ६९ ॥ शालिषष्टिकसिन्धूत्थहिङ्गुसौवीरकं तथा ॥ सुरा वा गुडशुण्ठी वा पाने श्रेष्ठा भिषग्वर ! ॥ ७० ॥ शतपुष्पावास्तुकं च हितं प्रोक्तं प्रशस्यते ॥ ७१ ॥ एणतित्तिरिलावाश्च क्रौञ्चशशकसार

[1] इतःपरमेकंचरणोनास्ति ।

सा: ॥ एषां मांसानि शस्तानि कथितानि भिषग्वर! ॥७२॥ इति आत्रेय भाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शूलचिकित्सा नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

शूलरोगवाला पुरुष दालको वर्ज देवै और करडा शीतल झागोंवाला ऐसा दहीको त्यागदेवै और दिनमें सोना वर्जदेवै ॥ ६९ ॥ और शालीसंज्ञक चावल, साठी चावल, सेंधानमक, हींग, कांजी, इन्होंका सेवना हित है और मदिरा, अथवा गुड, सूंठ, इन्होंका पान करना वैद्यजनोंनें हित कहा है ॥ ७० ॥ और सौंफ, वथुआका शाक, ये शूलरोगमें हित कहे है ॥७१॥ और मृग, तीतर, लावापक्षी, कूंजीपक्षी, शूसा, सारसपक्षी, इन्होंके मांस श्रेष्ठ कहे हैं ॥ ७२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने शूलचिकित्सानामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ पांडुरोगचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि पाण्डुरोगमहागदम् ॥ पञ्चैव पाण्डुरोगास्ते सम्भवन्तीह मानुषे॥१॥ वातिकः पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकः सान्निपातिकः ॥ पञ्चमो रूक्षणः प्रोक्तो वक्ष्ये चैषां तु सम्भवम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! सुन पांडुरोगकी चिकित्साको कहते है मनुष्यकूं पांचप्रकारके पांडुरोग होते हैं. ॥१॥ वातसे उपजा १ पित्तसे उपजा २ कफसे उपजा ३ सन्निपातसे उपजा ४ रूक्षणसंज्ञक ५ पांचवा ऐसे ५ हैं इन्होंकी उत्पत्तिको कहते हैं ॥ २ ॥

अथ पांडुरोगका निदान ॥

दीर्घाध्वना पीडितो वा ज्वरेण रक्तस्रावपीडितो वा व्रणेन॥ चिन्तायासाद्रोधनाद्धे मनुष्य ! अयं पाण्डुर्जायते सेवते यः ॥ ३ ॥ क्षारं चाम्लं कल्यमैरेयसेवा अव्यायामान्मैथनातिश्रमेण ॥ निद्रानाशेनातिनिद्रा दिवापि योगैश्चैतैर्मृत्तिकाभक्षणेन ॥ ४ ॥ पथि शिथिलशरीरे रोगसंपीडिते वा लवणकटुकषायासेवनाम्लेन मृद्भिः॥ अतिसुरतमजस्रं सेवनातिक्रमेण नयति रुधिरशोषं तेन वै पाण्डुरोगम् ॥ ५ ॥

अत्यंत मार्गके चलनेंसे अथवा ज्वरसे पीडित होनेंसे रक्तस्रावसे और व्रणसे पीडित

होनेंसे, चिंता होनेंसे और परिश्रम होनेंसे मलआदिकके रोकनेंसे मनुष्यके यह पांडुरोग होजाता है ॥ ३ ॥ और क्षार अम्ल अर्थात् खट्टा पदार्थ, और प्रभातमें मैरेयसंज्ञक मदिराके सेवन करनेंसे कसरत नहीं करनेंसे मैथुन करनेंसे और अत्यंत परीश्रम करनेंसे निद्राके नाश होनेंसे दिनमें अत्यंत सोनेंसे इनयोगोंकरके और मृत्तिकाके भक्षण करनेंसे ॥ ४ ॥ और मार्गमें शिथिल शरीर होजानेसे अथवा रोगसे पीडित होजानेंसे नमक, चर्चरा, कसैला, खट्टा, मृत्तिका, इन्होंके सेवननेंसे और निरंतर मैथुनके सेवनेंका अतिक्रम होनेंसे रुधिरका शोष होजाता है तिस्से पांडुरोग उत्पन्न होजाता है ॥ ५ ॥

अथ पांडुरोगका पूर्वरूप ॥

तेनाक्षकूटे श्वयथुः शरीरे पाण्डुत्वमायाति च पीतमूत्रः ॥
निष्ठीवते त्वक् प्रविदीर्य्यते च संजायते तस्य पुरःसराणि ॥ ६ ॥

तिस पांडुरोगसे आंखोंके कोणमें सोजाहो शरीर पीलाहो थुकथुकीहो त्वचा फटी जावे पांडुरोगके पूर्व होनेंलगते है ॥ ६ ॥

अथ वातपांडुका लक्षण ॥

तोदः परुषत्वशिरोगुरुत्वं त्वङ्मूत्रनेत्रे नखे पीतता स्यात् ॥
वातात्मकं तं मनुजस्य विद्धि लिङ्गैरुपेतोऽनिलपाण्डुरोगः ॥ ७ ॥

और चभकाहो कठोरपनाहो शिर भाराहो त्वचा, मूत्र, नेत्र, नख ये पीले रहैं ये लक्षणहों जिसके वातसे उपजाहुआ पांडुरोग जानना ॥ ७ ॥

अथ पित्तपांडुका लक्षण ॥

आमत्वपीतत्वकरो हि लोके बिभर्त्ति शोषं कटुतास्यतां च॥
मन्दज्वरो वै तृषामोहशोफः पीतच्छविः पित्तभवो हि पाण्डुः ॥८॥

आमपना और शरीरका पीलापन, शोष, कडुआमुख रहना, मंदज्वर, तृषा, मोह, शोफ, पीलीछवि रहै ये लक्षणहों वह पित्तसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ कफपांडुका लक्षण॥

तन्द्रालुशोफकफकासयुक्त आलस्यप्रस्वेदगुरुत्वमेवम् ॥
संजायते तस्य कफात्मकोऽसौ नरस्य पाण्डुत्वभवो विकारः ॥ ९ ॥

तंद्राहो, कफ, खांसी, शोजा, ये हों, आलस्यहो, पसीनाहो, भारापनहो, तिसमनुष्यकै कफसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ९ ॥

अथ त्रिदोषजपांडुका लक्षण ॥

तन्द्रालस्यं श्वयथुवमथू कासहृल्लासशोषा विड्भेदालस्यं परुषनयने स

ज्वरो वै क्षुधार्त्तः ॥ मोहतृष्णाक्लममथ नरस्याशु पश्येत्सुदूरं त्याज्यो वै वैर्निपुणमतिभिः सन्निपातोत्थपाण्डुः ॥ १० ॥

और तंद्रा आलस्यहो, शोजा, वमन, खांसी थुकथुकी, शोष, मल पतलाहो, आलस्य, कठोर नेत्रहों, ज्वरहो, क्षुधाकी पीडाहो, मोहहो, तृषाहो, ग्लानिहो, जिसमनुष्यके ये लक्षणहों वह सन्निपातसे उपजा पांडुरोगवाला मनुष्य उत्तमबुद्धिवाले मनुष्योंको दूरसेही त्यागदेना चाहिये ॥ १० ॥

अथ मट्टीखानेंसें हुआ पांडुका लक्षण ॥

मृत्तिकाभक्षणेनाथ शृणु पुत्र ! गदो महान् ॥ पाण्डुरोगो गरिष्ठोऽपि भवेद्धातुक्षयङ्करः ॥ ११ ॥ मृद्भक्षणाच्चैव मलं प्रकीर्य्य स्रोतांसि तुष्यन्ति तन्मृत्तिकायाः ॥ तेनैव नासृक् परिवर्त्तयन्ति न तर्पयन्ति वपुषं रसेन ॥१२ ॥ क्षारात्कषायान्मधुरस्य पानात्सकोपयत्याशु नरस्य मृत्सा ॥ श्लेष्मप्रकोपान्मधुरान्करोति मृत्सा न जग्धा हितकारिणी स्यात् ॥ ॥ १३ ॥ विकृता एव बलिष्ठा मारुताद्यास्त्रयस्तु द्युतिबलजीवनाशां नाशयन्त्याशु दोषाः ॥ भवति विकलमेवं पाण्डुरोगे शरीरं हरति जठरवह्निं मृत्तिकाभक्षणेन ॥ १४ ॥

हे पुत्र! मृत्तिकाके भक्षण करनेंसे महान् पांडुरोग होता है तिसको सुन यह बडा क्लिष्टरोग है और धातुओंका क्षय करनेंवाला है ॥ ११ ॥ मृत्तिकाके भक्षण करनेंसे मल विखर जाता है और तिस मृत्तिकासे श्रोत भरजाते हैं फिर तिसकारणसे रुधिर नहीं प्रवृत्त होता है और रससे शरीर पुष्ट नहीं होता है ॥ १२ ॥ और खारा, कसैला, मीठा, इन्होंका पान करनेंसे मनुष्यके भक्षणकीहुई मृत्तिका शीघ्रही कोप होजाती है मधुरपदार्थ सेवनेंसे वह मृत्तिका कफको कोप करती है इसवास्ते भक्षण कीहुई मृत्तिका हितको करनीवाली नहीं हैं ॥ १३ ॥ वात आदिक दोष विकारको प्राप्तहुए अत्यंत बलवाले कहाते हैं कांति, बल, जीवनेंकी आसा इन्होंको शीघ्रही नाशदेते है और मट्टीखानेंसे हुआ पांडुरोग जठराग्निका नाश करता है ॥ १४ ॥

अथ लोहचूर्णवटी ॥

गोमूत्रे लोहं मतिमान्स्थापयेत्सप्तरात्रकम् ॥
तस्माच्चूर्णं तु मधुना देयं पाण्ड्वामयापहम् ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य लोहाको सातदिनतक गोमूत्रमें स्थापितकरवै फिर तिसका चूर्ण बना शहदके संग देनेंसे पांडुरोगका नाश होता हैं ॥१५ ॥

शुण्ठ्यादिमिश्रितलोहचूर्ण ॥

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्ता विडङ्ग चित्रकं समम् ॥ १६ ॥ भागमेकं लोह चूर्णमपि वेक्षुरसेन भावयेत् ॥ सप्तकाहमलोपि खल्वितं पुनरपि प्रवरं स्यात् ॥ १७ ॥ शीलितं तु मधुनापि घृतेन पाण्डुरोगहृदयामयापहम् ॥ कामलार्शोहलीमकहारि कथितं सुमतिभिश्चपण्डितैः ॥ १८ ॥

सूंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चीता, इन्होंको समान भागले ॥ १६ ॥ एकभाग लोहाका चूर्ण इन्होंको ईखके रसमें भावना देवै अथवा इमसें लोहेका मैलको सातदिनतक खरलकर मिलावे तो अतिश्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ इस चूर्णको शहदमें अथवा घृतमें मिला खानेंसे पांडुरोग, हृदयरोग, कामला ववासीर, हलीमक रोगोंको नाशता है ऐसे उत्तमबुद्धिवाले पंडितजनोंने कहा है ॥ १८ ॥

अथ मण्डूकवटी ॥

त्र्यूषणं त्रिफलया सह चित्रकं मेघचव्यसुरदारुमाक्षिकम् ॥ ग्रन्थिकं च शिखिभृङ्गराजकं योजयेत्पलिकभागिकानिमान् ॥ १९ ॥ चूर्णिता द्विगुणमेव योजयेल्लोहचूर्णमपि कज्जलप्रभम् ॥ अष्टभागसममूत्रकल्पि तं पाचितं पुनरहो बलप्रदम् ॥ २० ॥ सेवयेद्बलमुपक्रमं तथा तत्र सं युतमिहास्ति शोभनम् ॥ नाशयेच्च कफकामलान्कृमीन्पाण्डुकुष्ठगुदजा न्हलीमकम् ॥ २१ ॥

सूंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला,चीता, नागरमोथा, देवदारु, सोनामाखी, पीपलामूल, मेथी, भंगरा, इन्होंको चार चार तोला प्रमाण लेवे ॥ १९ ॥ और इस चूर्णसे दूना २ भाग कज्जलके समान बारीक लोहेका चूर्ण मिलावे इस सब चूर्णसे आठ ८ भाग गोमूत्रमें इसचूर्णको पकावे फिर पकायाहुआ यह चूर्ण बलको देनेंवाला है ॥ २० ॥ पांडुरोगमें बलके अनुसार सेवन कियाहुआ यह चूर्ण उत्तम है और कफरोग, कामला, क्रिमिरोग, पांडु, कुष्ठ, गुदाके रोग, हलीमक, इन्होंको नाशता है ॥ २१ ॥

अथ वज्रमंडूकवटक ॥

पुनर्नवाव्योषत्रिवृत्सुराह्वयं निशाह्वयं चव्यफलत्रयं तथा ॥ घना यवा तिक्तकरोहिणी समा द्विभागिकं लोहरजो विमिश्रयेत् ॥ २२ ॥ गवां प यो वा द्विगुणं वियोज्यं दार्व्या प्रलेपं प्रणिधाय धीमान् ॥ छायाविशु ष्का गुटिका विधेया क्षौद्रेण मूत्रेण गवां च भक्षयेत् ॥ २३ ॥ ज्ञात्वा

बलं रोगबलं नरस्य पाण्डुामये कामलसर्वमेहे ॥ गुल्मोदराजीर्णविषूचिकानां शोफातिसारग्रहणीविबन्धान् ॥ शूलक्रिमीनर्शविकारहेतोः ॥२४॥

सांठी, सूंठ, मिरच, पीपल, निशोत, देवदार, हलदी, चव्य, त्रिफला, नागरमोथा, इंद्रजव, कुटकी, इन्होंको समानभागले और दोभाग लोहेका चूर्णमिला॥२२॥ फिर इस सबचूर्णसे दूना गौका दूधमें इसचूर्णको पकावे जब चलानेंकी कडछीमें चपकनें लगजावे तब उतार छायामें सुखा गोली बनालेवे फिर शहदके संग अथवा गोमूत्रके संग भक्षणकरै ॥ २३॥ मनुष्यके बलको और रोगके बलको जानके पांडुरोगमें कामलामें संपूर्ण प्रमेहरोगोंमें इसको भक्षण करै और गुल्मोदर, अजीर्ण, विषूचिका, शोजा, अतीसार, ग्रहणी, मलका बंधा, शूल, क्रिमिरोग, बवासीरके विकार, इन्होंको नाशता है ॥ २४ ॥

अथ दूसरा वज्रमंडूकवटक ॥

पञ्चकोलककटुत्रिकं घना देवदारुकृमिशत्रुकोलकम् ॥ एष भागसहितो वियोजितो मिश्रयेत्तदनु चायसं रजः ॥ २५ ॥ तत्र चाष्टगुणमूत्रमध्यतः पाचयेद्द्रवति यावदलेपिका ॥ कारयेद्बदरमात्रया पुनश्छायया पिषितश्च विशोषणम् ॥ २६ ॥ कारयेत्सुरभिमथितेन च पानकञ्च शमयेत्सकामलम् ॥ पाण्डुमर्शमतिसारमन्दभुक् शोषमेहगुदजान् क्रिमीनपि ॥ २७ ॥

(पंचकोल) पीपल १ पीपलामूल २ चव्य ३ चीता ४ सूंठ ५ कटुत्रिक अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, देवदार, वायविडंग, कंकोल, इन्होंको समानभागले मिलावे पीछे इन्होंके समान लोहेका चूर्ण मिलावे ॥ २५ ॥ फिर सबचूर्णसे आठगुने गोमूत्रमें इसचूर्णको पकावे जब पकजावे कडछीमें नहींचपके तबतक उतार छायामें सुखा फिर पीसलेवे ॥२६॥ पीछे गायके नौनीघृतमें इसका पन्ना बना सेवनकरनेंसे कामला, पांडुरोग, बवासीर, अतीसार, मंदाग्नि, शोष, प्रमेह, गुदाके कृमि इन्होंको नाशता है ॥ २७ ॥

अथ अमृतवटक ॥

धात्रीफलानां रसप्रस्थमेकं प्रस्थं तथा चेक्षुरसं विदध्यात् ॥ प्रस्थं तु कूष्माण्डरसप्रदिष्टमार्के रसं प्रस्थविमिश्रमेकम् ॥ २८ ॥ एकीकृतं मन्दहुताशनेन पाच्यं भवेद्यावदशोषमेति ॥ विमिश्रयेदौषधसंघमेतत्पलैकमात्रं विपचेच्च पश्चात् ॥ २९ ॥ भृङ्गी सुराह्वं शतपुष्पधान्यं सुगन्धशु

१ अयमेकश्चरणोऽधिकोऽस्ति.

ण्ठी मधुकं विशाला ॥ सपिप्पलीकं सकटुत्रयं च विडङ्गमुस्ता हपुषाद लानि ॥ ३० ॥ भूरिहरिद्राकटुरोहिणीनां दुरालभापौष्करवत्सकानाम् ॥ कुष्ठाजमोदासुरसादलानि चूर्णं त्वमीषां विनियोजनीयम् ॥ ३१ ॥ गुडं पुराणं द्विगुणं तु मध्ये गोघृतेन वटिकां विबन्धयेत् ॥ भक्षणाज्जयति कामलार्शसं पाण्डुरोगमतिदारुणज्वरान् ॥ ३२ ॥ शोफशोषग्रहणीं विनिघ्नति ॥ वातातिसारक्षयकासगुल्मान् ॥ ३३ ॥

आंवलोंका रस ६४ तोले और ईखका रस ६४ तोले कोहलाका रस ६४ तोले आकका रस ६४ तोले ॥ २८ ॥ इन्होंको एक जगह मिला मंद २ अग्निसे पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब इनआगे कहीहुई औषधोंको चार २ तोले प्रमाण मिलाके फिर पकावे ॥ २९ ॥ भंगरा, देवदार, सौंफ, धनियां, रोहिसतृण, सूंठ, मुलहटी, इंद्रायण, पीपली, कटुत्रय अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, नागरमोथा, हावूबेर, ॥ ३०॥ और दारुहलदी, कुटकी, जवासा, पोहकरमूल, कूडा, इन्होंके पत्ते इनसबोंको पहले कहेहुये प्रमाणके अनुसार ले चूर्ण बना मिलादेवै ॥ ३१ ॥ और इस चूर्णसे दूना पुराना गुड मिलावे फिर घृतमें गोली बांधलेवे इसके भक्षण करनेंसे कामला, बवासीर, पांडुरोग, अतिदारुणज्वर ॥ ३२ ॥ शोफ, शोष, संग्रहणी इन रोगोंका नाश होता है और वातरोग अतीसार, क्षयी, खांसी, गुल्मरोग इन्होंको नाशता है ॥ ३३ ॥

अथ पांडुरोगका पथ्यापथ्य ॥

गोधूमशालियवषष्टिकमुद्गकानां श्यामाढकीघृतयुतं पयसा सतक्रम् ॥ गाण्डीववास्तुकमथो शतपुष्पवर्त्तापथ्यं हितं निगदितं मनुजस्य पाण्डौ ॥ ३४ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजने च प्रशस्यते ॥ ३५ ॥ तिक्तानि रूक्षाणि च कटुकानि तीव्राणि दाहान्यपि काञ्जिकानि ॥ सुराम्लसौवीरकबीजपूरान् तैलानि वर्ज्यानि च पाण्डुरोगे॥३६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने पाण्डुरोगचिकित्सा नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

और गेहूं, शालीसंज्ञक चावल, जव, सांठी चावल, मूंग, शामक, अरहड इनअन्नोंको घृतके संग, अथवा दूधके संग अथवा तक्रके संग भोजन करना हित है और अर्जुनवृक्षके पत्ते, वथुवा, शौंफा, वार्त्ताकु इन्होंका शाक पांडुरोगवाले मनुष्यको हित है पथ्य है ॥ ३४ ॥ जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है ॥ ३५ ॥ और पांडुरोगमें, कडुए, रूक्षे, चर्चरे

दाहकरनेंवाले ऐसे कांजीके भेद, मदिरा, खटाई, कांजी, विजौरा, तेल, इन पदार्थोंको वर्जिदेवै ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने पांडुरोगचिकित्सानाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ क्षयरोगकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु च भिषग्वरिष्ठ ! व्याधिर्घोरो नराणां भवति विहितचेष्टो वातलप्राणिनां वै ॥ चिरनिचयकरोऽयं प्राकृतैः कर्मपाकैरिह परिभवकरो मानुषस्य क्षयोऽयम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे वैद्योंमें उत्तम! यह क्षयरोग मनुष्योंके घोर व्याधि होता है तिसको सुन वातके स्वभाववाले प्राणियोंके यह रोग होता है चेष्टाको हत करदेता है और पूर्व जन्मके कर्मविपाकसे नरकको करनेंवाला है और इस संसारमें दुःखको करनेंवाला है ॥ १ ॥

अथ क्षयरोगमें पापरूपी कारण ॥

देवानां प्रकरोति भङ्गमथवा भ्रूणस्य सन्तापनं गोपृथ्वीधरविप्रबालहननमारामविध्वंसनम् ॥ सोऽयं स्थानविनाशनं च कुरुते स्त्रीणां वधं यो नरस्तस्यैतैर्गुरुकर्मभिः क्षयगदो देहार्थहारी महान् ॥ २ ॥ देवानां दहतो धनं च दहतो भ्रूणप्रपातेऽपि च देवत्वं हरतो विषं च ददत आरामकं निघ्नतः ॥ तेनासौ नियमेन सम्भवति वै नृणां च तीव्रा रुजा धातूनां क्षयकारिणी च मनुजस्यात्मापहा दारुणा ॥ ३ ॥ क्षयो दशविधश्चैव विज्ञातव्यो भिषग्वरैः ॥ ४ ॥

जो पुरुष देवताओंकी मूर्तिको तोडदेता है और जीवको संतापदेता है गौ, राजा, ब्राह्मण, बालक, इन्होंकी हत्या करता है, और बगीचाका विध्वंस करता है किसीके स्थानका विनाश करता है और जो स्त्रियोंका वध करता है तिसके इनकर्मोंसे देहको नाशकरनेंवाला महान् क्षयीरोग होता है ॥ २ ॥ जो पुरुष देवताओंको दग्धकरै किसीके धनको दग्धकरै और गर्भको गिरावै देवताके द्रव्यको हरै, विषदेवै बाग बगीचेका नाशकरै इन विपरीतकर्मोंसे मनुष्यके अतितीव्र पीडाहोती है धातुओंको क्षय करनेंवाली और आत्माको नाश करनेंवाली दारुणक्षयव्याधि होजाती है ॥ ३ ॥ वैद्यजनोंनें दशप्रकारका क्षयरोग जानना ॥ ४ ॥

॥ अथ क्षयरोगके हेतु ॥

श्रमाद्वाभाराद्वाविषमशयनैर्दीर्घचलनैरजीर्णे भोज्याद्वा सुरतरतिसे वाप
रतया ॥ ज्वरेणातिक्रान्ताद्विषमशयनाच्छीतलतरैः क्षयं याति श्ले
ष्मा पवनमथ पित्तञ्च तनुषु ॥ ५ ॥ रोगाक्रान्ताद्विषमशयनात्तस्य म
न्दज्वराद्वा श्लेष्मपित्तञ्च मरुदथवा याति देहक्षयं वा ॥

श्रम, भार, विषमशयन, दीर्घमार्गमें गमनकरना, अजीर्णमें भोजन करना मैथुनमें अतिरमण करना, ज्वरसे आक्रांतहोना, विषमशयन करना अतिशीतलपदार्थका सेवन करना, इन्होंसे कफ कोपको प्राप्तहोता है फिर शरीरमें वायुको और पित्तकोभी कुपित करदेता है ॥ ५ ॥ और रोगसे आक्रांत होनेंसे अथवा विषमशयनकरनेंमें अथवा मंद ज्वरसे यह क्षयरोग होजाता है और कफसे पित्तसे अथवा वायुसे इन तीनप्रकारोंसे देहमें क्षयरोग होता है.

अथ क्षयरोगके प्रकार ॥

रसरक्तमांसमेदश्वास्थि मज्जा च शुक्रमिति सप्त ॥ एवं दशवि
धा ज्ञेयाः क्षया भवन्ति नृणां शरीरेषु ॥ ६ ॥ पुनरपि लक्षणमे
षां वक्ष्यते ते शृणु त्वम् ॥ ७ ॥

और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य, इनसातधातुओंमें होता है ऐसे मनुष्योंके शरीरमें दशप्रकारके क्षयरोग कहे हैं ॥ ६ ॥ अब फिरभी इन्होंके लक्षणोंको कहते हैं सुनो ॥ ७॥

अथ वातक्षयका निदान ॥

अतिस्वेदातिघर्मेण चिन्ताशोषभयादिना ॥
वाताद्यैः सेवितैश्चापि जायते मारुतक्षयः ॥ ८ ॥

अत्यंत पसीना, अति घांम, चिंता, शोष, भय इत्यादिकोंसे औ वायुको करनेंवाले पदार्थोंको सेवनेसे वायुसे उपजाहुआ क्षयीरोग होता है ॥ ८ ॥

अथ वातक्षयका लक्षण ॥

तेन तन्द्राङ्गदाहश्च पिपासारुचिवेपथुः ॥
तमः क्लमो भ्रमश्चैव भवेच्च मारुतक्षये ॥ ९ ॥

तिस्से तंद्रा, अंगमें दाह, तृषा, अरुचि, कंपना, अंधेरी, ग्लानि, भ्रम, ये उपद्रव वातके क्षयरोगमें होते हैं ॥ ९ ॥

वातक्षयमें सेव्यपदार्थ ॥

तस्मादनूपानि सेव्यानि रसानि पललानि च ॥
रसोनादिककल्कश्च सेवयेद्वातनाशनम् ॥ १० ॥

तहां वातको नाशकरनेंवाले रस और अनूपदेशके मांसोंका सेवनकरै और लस्सनआदिक औषधोंका कल्कके सेवनेंसेभी वातका नाश होता है ॥ १० ॥

अथ पित्तक्षयके हेतु ॥

पित्तक्षयेऽग्निमान्द्यं च जायतेऽरुचिजाड्यता ॥
कासहृल्लासशोफश्च जायते मन्दचेष्टता ॥ ११ ॥

पित्तके क्षयरोगमें मंदाग्नि, अरुचि, जडता, ये रोग होते हैं और खांसी, श्वास, थुकथुकी, शोफ, मंदचेष्टा, ये उपद्रव होते हैं ॥ ११ ॥

अथ पित्तक्षयकी चिकित्सा ॥

स्वेदाभ्यङ्गान्नपानानि दीपनानि प्रयोजयेत् ॥
जाङ्गलानि रसान्नानि सेवयेत्पित्तकृत्क्षये ॥ १२ ॥

तहां स्वेद, मालिस, दीपन अर्थात् जठराग्निको दीप्तकरनेंवाले अन्नपान, इन्होंको प्रयुक्त करै और पित्तसे उपजे क्षयीरोगमें जांगलदेशके जीवोंके मांसका रस हित है ॥ १२ ॥

अथ कफक्षयका लक्षण ॥

व्यायामे च व्यवाये च रूक्षान्नाहारसेवनैः ॥
सन्तापक्रोधनैश्चैव जायते कफसम्भवः ॥ १३ ॥

और कसरत करना, मैथुन, रूषा अन्नका भोजन, संतापक्रोध, इन्होंके सेवनेंसे कफका क्षयरोग बढता है ॥ १३ ॥

अथ कफक्षयका लक्षण ॥

तेन दाहोऽथवा पाण्डुः शोफो निःश्वसनं भ्रमः ॥
विनिद्रता क्षुत्तृषा च स्त्रीसङ्गेनापि नन्दति ॥ १४ ॥

तिस्से दाह अथवा पांडुरोग, शोजा, श्वासरोग, भ्रम, निद्राका नाश, क्षुधा, स्त्रीसंगसे प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

अथ कफक्षयकी चिकित्सा ॥

तस्य शीतान्नपानानि कन्दशाकादिकै रसैः ॥
अनूपैर्दधिदुग्धैर्वा सेवनं न समीहितम् ॥ १५ ॥

तिसको शीतल अन्नपान, कंदशाकआदिकोंके रस, अनूपदेशके जीवोंका मांस दहीदूध, इन्होंका सेवन हित नहीं है ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजक्षयकी चिकित्सा ॥

त्रिभिर्दोषैः क्षयं प्राप्तैस्तदा हि मरणं ध्रुवम् ॥
तस्य क्रिया प्रयोक्तव्या साधारणा महामते ! ॥ १६ ॥

और जब त्रिदोषसे उपजाहुआ क्षयरोग होता है तब निश्चय मरण होजाता हैं हे हारीत ! महामते ! तिसकी साधारण चिकित्सा कही है ॥ १६ ॥

अथ धातु--रस-आदिसात ७ प्रकारके क्षयरोगके लक्षण ॥

अथ धातुक्षयं वक्ष्ये हारीत ! श्रृणु साम्प्रतम् ॥
रसरक्तमांसमेदाः प्रत्येकं क्षयलक्षणम् ॥ १७ ॥

हे हारीत ! अब धातुके क्षयरोगको कहते हैं सुन. रस, रक्त, मांस, मेद, इनसबोंके एक २ के लक्षणको कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ रसक्षयका लक्षण ॥

रसक्षयेऽतिशोषश्च मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ॥ शिरोरुग्मन्दचेष्टत्वं जायते च क्लमभ्रमौ॥ १८॥ रक्तक्षये क्षयः पाण्डुर्मन्दचेष्टो भवेन्नरः॥ श्वासो निष्ठीवनं शोषो मन्दाग्नित्वं च जायते ॥ १९ ॥

रसके क्षय होनेमें अत्यंत शोषहो, मंद अग्निहो, कंपनाहो,शिरमें पीडाहो, मंदचेष्टाहो,ग्लानिहो, भ्रमहो ॥ १८ ॥ और रक्तक्षय होनेमें क्षयरोग होवे तो पांडुरोग होजावे, मंदचेष्टा होजावे, श्वासहो, थुकथुकीहो, शोषहो, मंदाग्निहो ॥ १९ ॥

मांसक्षयका लक्षण ॥

मांसक्षयेऽतिकृशताचेष्टनं चाङ्गभङ्गता ॥
निद्रानाशोऽतिनिद्रास्य विसंज्ञो लघुविक्रमः ॥ २० ॥

मांसके क्षय होनेमें माडापनहो, चेष्टा नहींहो, अंगभंगहो, निद्राका नाशहो अथवा इसको अत्यंत निद्रा आवे और संज्ञा नहीं रहै अल्पबल रहै ॥ २० ॥

अथ मेदःक्षयका लक्षण ॥

मेदःक्षये मन्दबलो विसंज्ञता चाङ्गभङ्गो गमनं परुषता ॥ श्वासातिकासारुचिताग्निमान्द्यं विशोषस्तेन तनुशोषो जायते॥ २१ ॥

मेदके क्षय होनेमें मंदबल रहै संज्ञा नहीं रहै अंगभंगहो गमनहो कठोरता रहै और श्वास, अत्यंत खांसी, अरुचि, मंदाग्नि, शरीरमें शोषहो, ये उपद्रव होते हैं ॥ २१ ॥

अथ अस्थिक्षयका लक्षण ॥

अस्थिक्षये स्यादतिमन्दचेष्टता मन्दवीर्य्य इति मेदसः क्षये ॥ विसंज्ञता कृशता च कम्पना अङ्गभङ्गवमनं परुषता ॥२२॥ शोषदोषसदनं च शोफिता विकम्पनं शोषरुषश्च जायते ॥ भिषग्वर ! त्वं परिवेद लक्षणं मज्जाक्षये कम्पनमेव वास्ति ॥ २३ ॥

अस्थिक्षयमें अतिमंद चेष्टाहो, वीर्यमंद होजावै मुटाका नाश होजावे संज्ञा नहीं रहे माडापनहो, कंपना रहै, अंगभंगहो, वमनहो, कठोरताहो ॥ २२ ॥ और शोषहो वातआदिक दोषोंकी शिथिलताहो, शोजाहो, कंपनाहो, रुक्षताहो हेवैद्योंमें श्रेष्ठ हारीत ! तू इन लक्षणोंको जान और मज्जाके क्षयमें कंपनाहो ॥ २३ ॥

अथ वीर्यक्षयका लक्षण ॥

भ्रमः क्लमः स्यादतिमन्दचेष्टः शोफो निशाजागरणं च तन्द्रा ॥ मन्दज्वरः शोषसमो मनुष्ये शुक्रक्षये चाङ्गविचेष्टितानि ॥ २४ ॥ रूक्षभ्रमकम्पनशोषरोषस्त्रीद्वेषितादीनि ॥ विरूपता च वैकल्यं सन्धिषु जातशोषः ॥ २५ ॥

भ्रमहो, ग्लानिहो, मंदचेष्टाहो, शोजाहो, रात्रिमें निद्रा नहींआवे, तंद्रारहै, मंदज्वरहो, शोषहो, ये लक्षण हैं, और मनुष्यके वीर्यक्षय होनेमें अंगमें चेष्टा नहींरहै ॥ २४ ॥ रूषापनहो, भ्रमहो, कंपना, शोष, रोष, वैरभाव, विरूपता, विकलताहो संधियोंमें शोषहो ॥ २५ ॥

अथ रसरक्तवृद्धिकारक औषध ॥

इदानीं संप्रवक्ष्यामि भेषजानि यथाक्रमम् ॥ स्नेहनं रूक्षणं चैव तथा विम्लापनं हितम् ॥ २६ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजनानि च सेवयेत् ॥ गुडूची शृङ्गवेरश्च यवानीक्वथितं जलम् ॥ २७ ॥ मरिचैः क्वथितं दुग्धं पाने रात्रौ प्रशस्यते ॥ तेन रसानां वृद्धिः स्याच्छीघ्रं तस्माद्विमुच्यते ॥ २८ ॥ रसानां वृद्धिकरणं गोधूमयवशालीनाम् ॥ कथितानि भिषक्छ्रेष्ठैर्जाङ्गलानि विशेषतः ॥ २९ ॥

अब यथाक्रमसे औषधोंको कहते हैं स्नेहन, रूक्षण, विम्लापन ये कर्म करनें हित हैं ॥ २६ ॥ और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है और गिलोय, अदरक, अजमा-

न, इन्होंके क्राथका जल हित है ॥ २७ ॥ और मिरचोंमें पकायाहुआ दूध रात्रीमें पीना हित है तिस्से रसोंकी वृद्धि होती है शीघ्रही तिसके क्षयरोग छुटजाते है ॥ २८ ॥ और गेहूं, जव, शालीसंज्ञक चावल, जांगलदेशके जीवोंका मांस, ये वैद्यजनोंनें श्रेष्ठ कहे हैं॥२९॥

अथ रक्तवृद्धिकारक औषध ॥

घृतदुग्धसिताक्षौद्रमरीचानि च पिप्पली ॥
पानं शस्तं मनुष्याणां रक्तवृद्धिकरं परम् ॥ ३० ॥

और घृत, दूध, मिसर, शहद, मिरच, इन्होंका पन्ना बना पीना हित है मनुष्योंके रक्तकी वृद्धि करनेंवाला है ॥ ३० ॥

अथ मेदोवृद्धिकारक औषध ॥

आनूपानि च धान्यानि लघुनामानि कल्पयेत् ॥ कल्यांश्च घृतदुग्धादीन्सेवयेन्मधुराणि च ॥ ३१ ॥ रसाश्च जाङ्गलानि स्युः सेवनार्थे भिषग्वर !॥ ३२ ॥ सितोपलादिकं चूर्णमजाक्षीरं सकोलकम् ॥ हितं पानं क्षये चैव कल्यमप्रातराशने ॥ ३३ ॥

अनूपदेशके जीवोंका मांस, हलकेअन्न, घृत, दूध, कल्यसंज्ञक मदिरा, मधुरपदार्थ इन्होंका सेवन हित है ॥ ३१ ॥ और हे वैद्योंमें श्रेष्ठ ! जांगलदेशके जीवोंका रस सेवना हित हैं ॥ ३२ ॥ और सितोपला आदि चूर्ण, पीपलीसे संयुक्त कियाहुआ बकरीका दूध, पीना हित है सायंकालमें भोजनके समय और कल्यकहिये प्रभातकालमें करै ॥३३॥

अथ अस्थिवृद्धिकारक औषध ॥

पक्वानि घृतशस्तानि क्षीराणि विविधानि च ॥ चन्दनानि च द्राक्षादिचूर्णानि च भिषग्वर ! ॥ ३४ ॥ जाङ्गलानि च सर्वाणि सेवनीयानि पुत्रक ! ॥ अन्नानि च मधुराणि सर्वाणि च प्रयोजयेत् ॥३५॥

पकेहुए घृत और अनेकप्रकारके दूध ये श्रेष्ठ हैं और हे उत्तमवैद्य ! चंदन, और द्राक्षादिक चूर्ण हित हैं ॥३४ ॥ और हेपुत्र ! सबप्रकारके जांगलदेशके जीवोंके मांस सेवनें हित हैं और सबप्रकारके मीठे अन्न सेवने हित है ॥ ३५॥

अथ शुक्रवृद्धिकारक औषध ॥

शुक्रक्षये प्रपाकानि रसानि च विशेषतः ॥ नवनीतं तथा क्षीरं मधुराणि च सेवयेत् ॥ ३६ ॥ कर्कटीमूलपयसा विदारीकन्दशाल्मली ॥ सिता

ढ्यपानं च हितं शस्यन्ते मधुराणि च ॥ ३७ ॥ शुक्रक्षयवृद्धिकरणमि दानीं चूर्णानि वक्ष्यंते ॥ ३८ ॥

शुक्रके क्षयमें अच्छीतरह पकायेहुए रस देनें हित हैं और नौंनीघृत दूध, मधुरपदार्थ, इन्होंका सेवनकरै ॥ ३६॥ और काकडीकी जड, विदारीकंद, शालवन, इन्होंको दूधके संग मिसरी मिला पान करना हित है और मीठे पदार्थ हित है ॥ ३७ ॥ अब आगे वीर्यकी वृद्धिको करनेंवाले चूर्णोंको कहै ॥ ३८ ॥

अथ बलादि चूर्ण ॥

बला विदारी लघुपञ्चमूली पञ्चैव क्षीरद्रुमत्वक् प्रयोज्या॥ पुनर्नवामेघतु गायुतं स्यात्सञ्जीवनीयैर्मधुकैः समांशैः ॥ ३९ ॥ अक्षप्रमाणानि समानि तानि सर्वाणि चैतानि विचूर्णयित्वा॥ विमिश्रयेत्तत्र कणाशतानि यवान्न गोधूमयवांश्च पिष्ट्वा ॥ ४० ॥ तुगासमांशं सिततण्डुलानां सेयं सुभृङ्गार कमिश्रितं तु ॥ प्राकर्णकार्द्धेन वियोजनीयं सर्वांशकेनापिसिता प्रयो ज्या ॥ ४१ ॥ विभावयेच्चामलकीरसेन वारत्रयं गोपयसा विभाव्य ॥ ततोऽस्य सर्वैश्च सशर्करैर्वा घृतेन चैवं पुनरेव भाव्यम् ॥४२॥ तं भक्षये त्क्षौद्रयुतं पलार्द्धं जीर्णे च भोज्यं कटुकाम्लवर्जम् ॥ क्षीरं घृतं वा सि तशर्करां वा यवान्नगोधूमकशालिभक्ष्यान् ॥ ४३ ॥ ज्ञात्वाग्निपाकं जठरे नरस्य देयो विधिज्ञैः क्षयरोगशान्त्यै ॥ पथ्यक्षये श्रान्तचिराभिता पसंपीडितानां च तथा शिरोऽर्त्तौ ॥ ४४ ॥ पित्तातुराणां रुधिरक्षयाणां श्रमाध्वसंपीडितकामलानाम्॥श्वासातुराणां मधुमेहिनां च क्षीणेन्द्रिया णां बलकारि शस्तम् ॥ ४५॥ गर्भो गृहीतश्च यया स्त्रिया च तस्याः प्रशस्तं तु बलादिचूर्णम्॥ ४६ ॥ इति बलादिचूर्णम् ॥

खरैंहटी, विदारीकंद, लघुपंचमूल अर्थात् सालवन, पिठवन, कटेहली, बडीकटेहली, गोखरू, और पीपल, वड, गूलर, पिलखन,आंब, इन पांचवृक्षोंकी छाल प्रयुक्त करनी चाहिये और सूंठ, नागरमोथा, वंशलोचन, और जीवनीआदिक गण औषध मुलहटी इनसबोंको समानभाग ॥ ३९ ॥ एक २ तोला प्रमाणले फिर इनसबोंका चूर्ण बना तिसमें सौ १०० पीपली मिला और जव, गेहूं, जव ॥ ४० ॥ उत्तम सफेद चावल, इन्होंको वंशलोचनके समान भागले पीसके मिलादेवै और पीछे कहीहुई प्रकरणकी सब औषधोंसे आधाभाग भंगरा और

इनसबोंके समान मिसरी मिला ॥ ४१ ॥ फिर इसचूर्णको आंवलेके रसमें भावनादे पीछे तीनवार गौके दूधमें भावनादे फिर इस सबचूर्णके समान खांड मिला फिर घृतमें भावनादे ॥ ४२ ॥ फिर २ तोला प्रमाण तिसचूर्णको शहदके संग खावै और यह चूर्ण जरजावे तब भोजनकरै और चर्चरा तथा खट्टा भोजन नहींकरै और दूध, घृत, सफेदखांड, जव, गेहूं, शालिसंज्ञकचावल इन्होंका भोजनकरै ॥ ४३ ॥ और मनुष्यके जठराग्निपाकको जानके विधिके जाननेंवाले वैद्योंनें क्षयरोगकी शांतिकेवास्ते देना कहा है और मार्गमें क्षीणहुआ, हाराहुआ, बहुतकालसे संतापवाला इन्होंसे पीडितहुए पुरुषोंको और शिरकी पीडामें ॥४४॥ और पित्तसे आतुर, रुधिर क्षयवाले, श्रम, मार्ग, इन्होंसे पीडित, कामलारोगवाले, श्वासरोगवाले, मधुप्रमेहवाले, क्षीणइंद्रियवाले इन पुरुषोंको यह चूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥ ४५ ॥ और जिस स्त्रीके गर्भ ठहररहाहो तिसको यह बलादिचूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥४६ ॥

अथ च्यवनप्राशननामक अवलेह ॥

बिल्वाग्निमन्थशोणाकाः काश्मरी पाटली तथा ॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ४७ ॥ भृङ्गी शीता चामलकी जयन्ती पुष्कराह्वयम् ॥ द्राक्षाभयामृता मेदा चन्दनागुरुपद्मकम् ॥४८॥ बलाह्वयास्तु कर्णौ द्वे जीवकर्षभावुभौ ॥ काकोली क्षीरकाकोली विदार्य्याः कन्दमांसकम् ॥ ४९ ॥ सर्वेषां पलिका मात्रा योजयेद्भिषजां वरः ॥ धात्रीफलं पञ्चशतं सुपक्करससंयुतम् ॥ ५० ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागे च शोषितम् ॥ तथा निर्वाप्य मतिमान् कल्कानि समुद्धरेत् ॥ ५१ ॥ तत्क्वाथं कल्कयेत्तावद्यावद्दर्वीप्रलेपकः ॥ पुनस्तैलेन वाज्येन पक्त्वा चामलकीफलान् ॥ ५२ ॥ पाचिताश्चूर्णितान्सर्वान्समशर्करयायुतान् ॥ चतुष्पलातुगाक्षीरैर्योजयेद्भिषजांवरः ॥ ५३ ॥ पिप्पलीनां सहस्रैकं त्वगेलापत्रकं तथा ॥ एषां द्विपलिकां मात्रां विदध्यात्तत्र सत्तमः ॥ ५४ ॥ सर्वं प्राक्कथिते लेहे योजयेच्च विचूर्णितम् ॥ आदरेण समं लिह्यान्नराणां च रसायनम् ॥ ५५ ॥ श्वासकासक्षयपाण्डुकामलानां विशोषणम् ॥ क्षीणक्षतानां बालानां वृद्धानां देहरक्षणम् ॥ ५६ ॥ स्वरभङ्गपिपासानां हृद्रोगे पित्तशोणितम् ॥ शुक्रदोषं शिरोरोगं पीनसं चापकर्षति ॥ ५७ ॥ जीर्णज्वरञ्च मन्दाग्निं कुष्ठं दुष्टं भगन्दर

म् ॥ मेहं कृच्छ्राश्मरीं हन्ति तथा रोचनवारणम् ॥ ५८ ॥ हृद्रोगशूलमा नाहं नाशयत्यविसंशयम्॥वन्ध्यानां पुत्रजननं वृद्धानामल्परेतसाम्॥५९ षण्डोऽपि जायते चैव सदा ऋतुकरः परः ॥ मेधास्मृती तथा तेजो वर्द्ध यत्याशु निश्चितम् ॥ ६० ॥ सौख्यसौभाग्यदर्शी च वृद्धोऽपि तरुणाय ते ॥ क्षयरोगविनाशाय कथितं चात्रिणा महत् ॥ ६१ ॥ च्यवनप्राशनं नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥ ६२ ॥ इति च्यवनप्राशनं नामावलेहः ॥

बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, खंभारी, शालवन, पिठवन, गोखरू, छोटी कटेहली, बडी-कटेडली ॥ ४७ ॥ भांग, गंगेरन, भूमि आंवला, जयंती अर्थात् अरणीभेद, बडीअरणी,पोह-करमूल, दाख, हरडैं, गिलोय, मैदा, चंदन, अगर, पद्माक, ॥ ४८ ॥ खरैहटी, दोभाग दाल-चीनी, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, विदारीकंद, ॥ ४९ ॥ इनसबोंको वैद्यजन चार २ तोला प्रमाणलेवें और पकेहुए रसके आंवले पांचसौं लेवे ॥ ५० ॥ पीछे इनसब औषधोंको एकहजार चौसठ १०६४ तोले जलमें पकावे फिर चतुर्थांश बाकी रहे तब बु-द्धिमान् पुरुष तिन औषधोंको निकाल कल्कबना ॥ ५१ ॥ क्काथ बनावे फिर कडछी चपक-नेंमें लगे तब उतारे और तेलमें अथवा घृतमें तिन आंवलोंको पकावे ॥ ५२ ॥ पीछे पकाये हुए तिस चूर्णमें बराबरकी खांड मिलावे और १६ सोलह तोले वंशलोचन मिलावै ॥ ५३ ॥ और उत्तम वैद्य इसीकहेहुए अवलेहमें हजारपीपली, दालचीनी ८ तोले, तेजपात ८ तोले इन्होंका चूर्ण मिलादेवै ॥ ५४ ॥ पीछे यह लेह मनुष्योंको आदरसे चाटना चाहिये यह म-नुष्योंको रसायन कहा है ॥ ५५ ॥ और श्वास, खांसी, पांडुरोग, कामला, इन रोगोंको ना-शता है और क्षीणरोगसे क्षतहुए बालक, वृद्धजन, इन्होंके देहकी रक्षा करनेंवाला है ॥ ५६ ॥ स्वरभंग, पिपासा, हृदयरोग, पित्तरक्त, शुक्रदोष, शिरोरोग, पीनस, इनरोगोंको दूर करता है ॥ ५७ ॥ जीर्णज्वर, मंदाग्नि, दुष्टकुष्ठ, भगंदर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पथरी,अरुचि, इन-रोगोंको दूर करता है ॥ ५८ ॥ और हृदयरोग, शूल, अफारा, इन्होंको नाशता है इसमें संदेह नहीं यह चूर्ण वंध्यास्त्रियोंको पुत्रको देनेंवाला है और अल्पवीर्यवाले, वृद्ध, ॥ ५९ ॥ नपुंसक इन्होंके वीर्यको बढानेंवाला है और बुद्धि, स्मृति, तेज, इन्होंको शीघ्रही निश्चय ब-ढाता है ॥ ६० ॥ इसके खानेंसे वृद्धपुरुषभी सुख सौभाग्यको देखता है और जवानकीतरह आचरण करता है यह महान् चूर्ण क्षयरोगोंके विनाशके वास्ते कृष्णात्रेयजी महाराजने कहा है ॥ ६१ ॥ यह कृष्णात्रेयमुनिनें च्यवनप्राशननामक अवलेह कहा है ॥ ६२ ॥

अथ अगस्तिहरीतकीपाक ॥

भार्ङ्गीपुष्करमूलचित्रककणामूलं गजाह्वा शठी शङ्खाह्वादशमूलचित्रकब

लायासात्मगुप्तास्तथा ॥ एतेषां द्विपलांशकी भिषग्वर!प्रोक्ता च पञ्चाढके पथ्यानां शतकं विपाच्य बहुधा मन्दाग्निना संततम् ॥ ६३ ॥ निर्वाप्य पुनरेव पूतसरसं चोद्धृत्य पथ्याशतं संशुष्यामातिशीतले सुभवनक्राथः प्रशस्तः पुनः ॥ दत्वा जीर्णगुडस्य चैकतुलया कुडवञ्च क्षौद्रं घृतं स्नेहस्यार्द्धमथाक्षकेण मगधा योज्यं शतं पञ्चकम् ॥ ६४ ॥ चूर्णं तत्र निधापयेत्पुनरपि संघट्टयेदुच्चकं पथ्ये द्वे मधुना सह हितकृत्सर्वामयच्छेदनः ॥ पाण्डुकासहलीमकगुदरुजो हृद्रोगहिक्काभ्रमान् हन्यात्पीनसमेहपित्तरक्तकुष्ठं च ग्रहण्यामयम् ॥ ६५ ॥ पुष्पं चैव तनोति शोफमरुचिगुल्मार्त्तिराजक्षयमेहानाहविबन्धरोगशमनं क्षीणेन्द्रियाणां हितम्॥मन्दाग्नेः प्रशमं करोति वडवातुल्योऽरुच्चिबन्धको नाशं वा विदधाति देहसुखदागस्तिप्रणीताभया ॥ ६६ ॥

भारंगी, पोहकरमूल, चीता, पीपलामूल, गजपीपली, कचूर, शंखपुष्पी, दशमूल, चीता, खरैहटी, जवांसा, कौंच, इन्होंको आठ आठ तोला प्रमाण लेवे और सौ १०० हरडें लेवे पीछे इन्होंको १२८० तोले जलमें मंद २ अग्निसे अच्छे प्रकारसे पकावे ॥ ६३ ॥ फिर पकजावे तब पूर्णरसवाली पहले कहीहुई सौ १०० हरडोंको निकासलेवे और शीतलहुआ क्वाथमाहसे तिनहरडोंको निकास फिर ४०० चारसौ तोले पुराना गुड १६ तोले शहद और १६ तोले अथवा ८ तोले घृत मिलावै और चतुरवैद्यको पांचसौ ५०० पीपली मिलानी चाहिये ॥ ६४ ॥ इन सबऔषधोंका चूर्णको एकजगह कूटके मिलादेवै फिर शहदके संग दोहरडै खानेंसे सबरोगोंका नाशहोताहै. पांडुरोग, खांसी, हलीमक, गुदाका रोग, हृदयरोग, हिचकी, भ्रम, इनरोगोंका नाश होता है और पीनस, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ, संग्रहणी, इनरोगोंको नाशता है ॥ ६५ ॥ और स्त्रीके पुष्पको बढाता है, शोजा, अरुचि, गुल्म, राजयक्ष्मा, मूत्ररोग, आनाह, मलका बंधा इनरोगोंको नाशता है और क्षीणइंद्रियवालोंको यह हरीतकीपाक हित है और मंदाग्निको शांत करता है और अरुचिरोगके नाशके वास्ते अग्निके समान कहा है और अगस्तिऋषिसे कहाहुआ यह हरीतकीपाक देहको सुख देनेंवाला है ॥ ६६ ॥

अथ बलाक्काथ ॥

बलाद्वयं गोक्षुरको बृहत्यौ निष्क्काथ्य दुग्धेन कणासमेतम् ॥ पानं हितं स्यान्मधुना सिताढ्यं विनाशनं कामलकं क्षयं वा ॥ मेहस्य तृष्णाशय नाशकारि क्षीणेन्द्रियाणां बलमातनोति ॥ ६७ ॥

और खैरंहटी, गोखरू, छोटी कटेहली, बडीकटेहली, पीपली, इन्होंको दुग्धमें क्राथबना फिर शहद और मिसरी मिला पीना पथ्य है कामला, क्षयरोग, प्रमेह, तृषा, इनरोगोंका नाश होता है और क्षीणइंद्रियवाले पुरुषोंके बलको बढानेवाला है ॥ ६७ ॥

अथ पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥

पिप्पलीं वर्द्धमानं वा कारयेद्दुग्धसर्पिषा ॥ आद्यः पञ्च पुनः सप्त पुनरेव नव क्रमात् ॥ ६८ ॥ एकादशस्त्रयोदशः पञ्चदशास्तथा सप्तदशः स्मृतः॥ एकोनविंश एकविंशः पृथक्पृथग्यथाक्रमम् ॥ ६९ ॥ एवं क्रमेण वृद्धिः स्यात्कारयेच्छतमात्रया ॥ ततः क्रमेण पुनः पश्चाद्यावच्छेषं च पञ्च कम् ॥७०॥ भोजयेत्षष्टिकान्नं तु मुद्गेन सर्पिषा युतम् ॥ एवं बालश्च वृद्धश्च नरो नागबलो भवेत् ॥७१॥ पिप्पली वर्द्धमाना तु ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ मन्दाग्नौ पीतमेवाथ गुदजे वा तथा पुनः ॥ ७२ ॥ ॥ इति पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥

दुग्ध और घृतके संग पिप्पली वर्द्धमान बनाया जाता है तिसको कहते हैं क्रमसे पहले पांच फिर सात फिर नव पीपलोंको दूधमें पका घृत मिला पानकरना चाहिये ॥ ६८ ॥ और पीछले दिन ग्यारह, फिर १३ पीछे १५ पीछे १७ पीछे १९ पीछे २१ ऐसे बढतीहुई ॥ ६९ ॥ ऐसे दिन २ प्रति दो बढतीहुई सौ पीपलोंतक बढालेंनी चाहिये ॥ ६९ ॥ पीछे क्रमसे घटतीहुई जबतक पांच शेष रहें तबतक सेवनकरै ॥ ७० ॥ और इसपै सांठी चावलोंको मूग और घृतके संग भोजन करै बालक अथवा वृद्धजन इसप्रकार इसका पान करताहुआ हस्तीके समान पराक्रमवाला होजाता है ॥ ७१ ॥ और यह पीपली वर्द्धमान जीर्णज्वरमें श्रेष्ठ कहा है और मंदाग्निमें तथा गुदाकें रोगमें पीना हित है ॥ ७२ ॥

अथ शिलाजतुचूर्ण ॥

द्वे पले मार्कवं धातु माक्षिकं च पुनर्नवा ॥ तुगा पृक्का शालिपर्णी वासकं च दुरालभा ॥ ७३ ॥ चूर्णार्द्धेन समं योज्यं त्रिगन्धं मरिचानि च॥ तालीसं मगधा चैव तदर्द्धेन शिलोद्भवम् ॥ ७४ ॥ शिलाभेदं तदर्द्धेन सर्वं चैकत्र मिश्रयेत् ॥ समेन तिलचूर्णं तु शर्करायाः समायुतम् ॥७५॥ भक्षयेत्क्षीरपानं वा शस्यते घृतसंयुतम् ॥ तेन क्षयो राजयक्ष्मा कामला च विनश्यति ॥ ७६ ॥ अपस्मारो जयत्याशु बलवीर्य्याधिको भवेत् ॥

शाम्यन्ति च महारोगाः शुक्राढ्यो जायते नरः ॥ ७७ ॥ ॥ इति शिलाजतुचूर्णम् ॥

भंगरा ५ तोले, सोनामाखी ५ तोले, सांठी ५ तोले, वंशलोचन ५ तोले, पृक्कासंज्ञकवृक्षकी छाल ८ तोले, वांसा, ८ तोले शालवण ८ तोले, जवासा ८ तोले ॥ ७३ ॥ और ४ तोले त्रिगंध, अर्थात् इलायची, दालचीनी, तेजपात, मिरच ४ तोले और तालीसपत्र, पीपली, शिलाजीत ये दोदो तोले ॥ ७४ ॥ पाषाणभेद १ तोला ऐसे इन औषधोंको मिला चूर्ण बनालेवे और इसचूर्णके समान तिलोंका चूर्ण और खांड मिलावे ॥ ७५ ॥ पीछे इसचूर्णको घृतके संग भोजन करै अथवा इसके ऊपर दूधको पीवे इसचूर्णसे क्षयीका रोग, राजयक्ष्मा, कामला इनरोगोंका नाश होता है ॥ ७६ ॥ और मृगीरोगको शीघ्रही दूर करता है बल, वीर्य, इन्होंको बढाता है और महारोग शांत होजाते हैं और इसके खानेंसे मनुष्यवीर्यसे युक्त होजाता है ॥ ७७ ॥

अथ जीवंत्यादिघृत ॥

जीवन्तिकावत्सकयष्टिकानांसपौष्करं गोक्षुरकं बले द्वे ॥ नीलोत्पलं चामलकी यवासं सत्रायमाणा मगधा च कुष्ठम् ॥ ७८ ॥ द्राक्षामलकया रसप्रस्थमेकं प्रस्थद्वयं छागलकं पयश्च ॥ प्रस्थं दधिषु पचेद्घृतं वह्निवातं पाने प्रशस्तमेव भोज्ये ॥ ७९ ॥ नस्ये च बस्तावपि योजयेत्तं विनाशमेत्याशु च राजयक्ष्मा ॥ हलीमकः कामलपाण्डुरोगो मूर्च्छा भ्रमः कम्पशिरोऽर्त्तिशूलम् ॥ ८० ॥ महाश्मरी वा गुदकीलकुष्ठं शिरोगतो नाशमुपैति रोगः ॥ तस्य प्रदानेन वियोजितेन पानेन पाण्ड्वामयराजयक्ष्मा ॥८१॥ नाशं शमं याति हलीमको वा बस्तिप्रदानेन गुदोद्भवाश्च ॥ रोगो विनाशं समुपैति पुंसां विसर्पविस्फोटकप्रोक्षणेन ॥ ८२ ॥

गिलोय, कूडाकी छाल, मुलहटी, पोहकरमूल, गोखरू, छोटीकटेहली, बडीकटेहली, नीलाकमल, भूमिआंवला, जवांसा, त्रायमाण, पीपली, कूट, ॥ ७८ ॥ दाख, इन्होंको समानभागले फिर आंवलोंका रस ६४ तोले बकरी दूध १२८ तोले, दही ६४ तोले, घृत ६४ तोले इन्होंमें मिला अग्निसे पकावे यह घृत पानमें और भोजनमें हित कहा है ॥ ७९ ॥ और नस्यमें तथा बस्तिकर्ममेंभी युक्त करना हित कहा है और राजयक्ष्मा, हलीमक, कामला, पांडुरोग, मूर्च्छा, भ्रम, कंपरोग, शिरकी पीडा, शूल इनरोगोंको नाशता है ॥ ८० ॥ महापथरी, गुदकील, कुष्ठ, शिरका रोग इन्होंका नाश होता है और इस घृतका पान करानेंसे

पांडुरोग, राजयक्ष्मा, ॥ ८१ ॥ हलीमक, इनरोगोंका नाश होता है और इस घृतको बस्तिकर्ममें वर्त्तनेंसे गुदाके रोग दूर होते है और इस घृतके मोक्षण अर्थात् शरीरपै छिडकनेंसे विसर्प, विस्फोटक, इनरोगोंका नाश होता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पलीआदि घृत ॥

कणा पलाशः पञ्चगुणं पयश्च आद्यं घृतं वै विपचेत्समांशम् ॥ पाने ऽथवा भोजनके प्रशस्तं देयं च राजक्षयनाशहेतोः ॥ ८३ ॥

पीपली, केशू, इन्होंको समानभागले इन्होंसे पांचगुना दूधमें इन औषधोंके समानभाग गौके घृतको और इनऔषधोंको पकावे यह घृत पानमें और भोजनमें श्रेष्ठ है और राजयक्ष्मा, क्षयरोग, इन्होंका नाश करता है ॥ ८३ ॥

अथ पंचकोलआदि घृत ॥

पञ्चकोलं यवाग्रश्च क्षीरं दध्ना घृतं पुनः ॥ समांशेन तु योज्यानि भार्ङ्गी कुष्ठं तु पौष्करम् ॥ ८४ ॥ शतं तत्र हरीतक्या जले चैव चतुर्गुणे ॥ क्वाथं चैकत्रयं योज्यं क्वाथयेन्मृदुवह्निना ॥ ८५ मृदुपाकं घृतं सिद्धं पाने नस्ये च बस्तिषु ॥ गुणाधिक्यं भवेन्नृणां पाण्डुरोगे हलीमके ॥ ८६ ॥ राजयक्ष्मणि क्षये चैव शस्तं चोक्तं भिषग्वर ! ॥ ८७ ॥

पंचकोल अर्थात् पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सूंठ, जवाखार, दूध, दही, घृत, भारंगी, कूठ, पोहकरमूल ॥ ८४ ॥ इनसबोंको समानभागले और सौ १०० हरडैंले फिर इन औषधोंसे चौगुनेंजलमें मंद२अग्निसे क्वाथ बनावे मंद२अग्निसे पकायाहुआ ॥ ८५ ॥ यह घृत पानमें, नस्यमें, और बस्तिकर्ममें युक्त करना श्रेष्ठ है और पांडुरोग, हलीमक ॥ ८६ ॥ इनरोगोंमें मनुष्योंके अधिक गुण करनेंवाला है और हेउत्तमवैद्य ! राजयक्ष्मारोगमें यह घृत श्रेष्ठ है ॥ ८७ ॥

अथ पाराशर घृत ॥

यष्टी बला गुडूची च पञ्चमूलं समांशकम् ॥ क्वाथेन सदृशं धात्रीरसं चेक्षुरसं तथा ॥ ८८ ॥ विदार्य्याश्च रसं चैव घृतञ्च समभागिकम् ॥ क्षीरं दधिसमं चात्र नवनीतं तु तत्समम् ॥ ८९ ॥ द्राक्षातालीससंयुक्तं यथालाभेन योजयेत् ॥ सिद्धं घृतं च पानाय नस्ये बस्तौ प्रदापयेत् ॥

॥९०॥ जयति राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं सुदारुणम् ॥ हलीमकं चार्श सं च रक्तपित्तनिवारणम्॥९१॥ लेपेन दुष्टवैसर्पपित्तदग्धव्रणापहम्॥९२॥

मुलहटी, खरैहटी, गिलोय, पंचमूल, इन्होंको समानभागले क्काथ बनावे और क्काथके समान आंवलाका रस, और ईखका रस ॥ ८८ ॥ और विदारीकंदका रस मिलावे इन औषधोंके समानभाग घृत और दूध, दही, नौंनीघृत इनसबोंको समानभागले ॥ ८९ ॥ और दाख, तालीसपत्र इन्होंको अनुमानमुवाफिक मिला फिर इस घृतको सिद्धकरि पानमें और नस्यमें बस्तिकर्ममें देना श्रेष्ठ है ॥ ९० ॥ और राजयक्ष्मा, पांडुरोग, हलीमक, ववासीर, रक्तपित्त, इन्होंका नाशहोता है ॥ ९१ ॥ और इसघृतका लेप करनेंसे दुष्टविसर्परोग, पित्तरोग, दग्ध, व्रण, इन्होंका नाशहोता है ॥ ९२ ॥

अथ बलाआदि घृत ॥

बला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयं च पर्णीद्वयं गोक्षुरकं स्थिरा च ॥ पटोलनिम्बस्य दलानि मुस्तं सत्रायमाणा च दुरालभा च ॥ ९३ ॥ कृत्वा कषायं च यदावशेषं पूतीकृतेचूर्णइदं प्रयुञ्ज्यात् ॥ द्राक्षा शठी पुष्करमूल धात्री तमालकी दुग्धसमं कषायम् ॥ ९४ ॥ सर्पिःप्रयुक्तं नवनीतकं च सर्पिस्तदर्द्धेन नियोजनीयम्॥सिद्धं घृतं पानमथैव बस्तौ नस्ये तथाभ्यञ्जनभोजनेन ॥ ९५ ॥ जघन्यकासक्षयकामलानां राजक्षये क्षीणबलेन्द्रियाणाम्॥क्षतेषु शोफेषु व्रणेषु शस्तं शिरोऽर्त्तिपार्श्वार्त्तिगुदामयघ्नम् ९६

खरैहटी, गोखरू, छोटी कटेहली, बडी कटेहली, माषपर्णी, मूंगपर्णी, गोखरू, शालपर्णी परवल, नींबके पत्ते, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा ॥ ९३ ॥ इन्होंका क्काथ बना जब चतुर्थांश बाकीरहै तब उतारि वस्त्रमांहके छानि पीछे दाख, कचूर, पोहकरमूल, आंवला, भूमिआवला, इन्होंका चूर्ण मिलावे और इस क्काथके समान दूधमिला ॥ ९४ ॥ और नूनीघृत नूनीघृतसे आधा और घृत मिला पीछे इसघृतको तिस क्काथमें पकावे फिर यह घृत पीनेंमें बस्तिकर्ममें नस्यमें मालिसमें भोजनमें वर्त्तना श्रेष्ठ कहा है ॥ ९५ ॥ अत्यंत खांसी, क्षयरोग, कामला, राजयक्ष्मा, इनरोगोंको नाशता है और क्षीणइंद्रियोंवाले तथा क्षीणबलवाले पुरुषोंको हित कहा है क्षतरोग, शोजा, व्रण, शिरकी पीडा, पशलीपीडा, गुदाका रोग इन्होंका नाश करता है इस जगह गोखरू दोवार लिखा है सो दोभागलेना इसीतरह अन्यजगहभी जानलेना ॥ ९६ ॥

अथ चंदनादि तेल ॥

चन्दनं सरलं दारु यष्ट्येला वालकं शठी ॥ नलशैलेयकं पृक्का पद्मकं वनकेसरम् ॥ ९७ ॥ कङ्कोलकं मुरामांसी शैरियं द्विहरीतकी ॥ रेणुका त्वक्कुङ्कमञ्च सारिवे द्वे तिक्तागुरुः ॥ ९८ ॥ नलिकाबले तथा द्राक्षा कषायं सुपरिस्रुतम् ॥ तैलमस्तु तथा लाजा रसेन समभागिकम् ॥९९॥ मन्दाग्निना पचेत्तैलं सिद्धं पाने च वस्तुषु ॥ नस्ये चाभ्यञ्जने चैव यो जयेत्तं भिषग्वरः ॥ १०० ॥ हन्ति पाण्डुक्षयं कासं ग्रहघ्नं बलवर्ण कृत् ॥ मन्दज्वरमपस्मारकुष्ठपामाहरं पुनः ॥१०१॥ करोति बलपुष्ट्योजो मेधाप्रज्ञायुर्वर्द्धनम् ॥ रूपसौभाग्यदं प्रोक्तं सर्वभूतयशस्करम्॥१०२॥

चंदन, सरल, देवदार, मूलहटी, नेत्रवाला, कचूर, नड, शिलाजीत, पृक्का संज्ञकवृक्ष, पद्माक, वनकेशर, ॥ ९७ ॥ कंकोल, मुरामांसी, लोबान, दोनोंप्रकारकी हरडै, रेणुका, दालचीनी, केशर, दोनों प्रकारकी सारिवा अनंतमूल, कुटकी, अगर ॥ ९८ ॥ नाडीशाक, खरैहटी, दाख, इन्होंका क्काथ बनावे और पीछे तिसक्काथमें तेल, दहीका मस्तु, धानकी खीलोंका रस, इन्होंको समान भागले मिलावे ॥ ९९ ॥ इसतेलको मंद २ अग्निसे पकावे सिद्ध कियाहुआ यह घृत वैद्यजनको पीनेमें, बस्तिकर्ममें नस्यमें तथा मालिसमें वरताना चाहिये ॥१००॥ यह घृत पांडुरोग, क्षयरोग, खांसी, ग्रहदोष, इन्होंको नाशता है और बल, वर्ण इन्होंको करता है मंदज्वर, अपस्मार, कुष्ठ, पामा, इनरोगोंको नाशता है॥ १०१॥ और बल, पुष्टि, पराक्रम, मेधा, बुद्धि वायु, इन्होंको बढाता है रूपसौभाग्य इन्होंको करता है संपूर्ण भूतपीडाको दूर करता हैं ॥ १०२ ॥

अथ राजयक्ष्मारोगका निदान ॥

स्वामिभार्य्याभिगमने गुरुपत्न्यभिलाषणात् ॥ राजस्वहेमचौर्य्याद्वा राजयक्ष्मा भवेद्ददः ॥ १०३ ॥ अथवा दुष्टरोगेण जायते शृणु पुत्रक! ॥ चतुर्भिर्हेतुभिर्यक्ष्मा जायते शृणु साम्प्रतम् ॥ १०४ ॥ व्यायामयानसुरतागतिपीडिताङ्गरोगेण वा व्रणनिपीडितक्षीणदेहात् ॥ क्रोधातिशोकानशनादिभयोपवासैः संजायते च मनुजस्य महागदोऽयम् ॥ १०५ ॥ वार्द्धक्यान्यो भवति नितरां ज्याधनुःकर्षणेन भारात्यर्थं भवति हननोत्पात

बन्धेन युद्धात् ॥ दूराध्मानात्कदशनवशाच्चिन्तयातिव्यवायात्सम्भूतिः स्यान्मनुजबलहृद्राजयक्ष्मेतिसंज्ञः ॥ १०६ ॥

स्वामीकी स्त्रीसे संग करनेंसे और गुरुकी स्त्रीकी अभिलाषा करनेंसे राजाका द्रव्य और सुवर्णकी चोरी करनेंसे राजयक्ष्मा रोग होता है ॥ १०३ ॥ अथवा दुष्टरोगसे होता है सो हे पुत्र ! चारहेतुओंकरके यह राजयक्ष्मा रोग होता है सो सुन ॥ १०४ ॥ कसरत, असवारी, मैथुन, गमन, इन्होंसे पीडित अंग होनेंसे रोगसे व्रणसे पीडित होनेंसे क्षीण देह होनेसे क्रोध, अतिशोक, लंघन करना, भय, व्रत, इन्होंसे मनुष्यके यह महान् रोग होता है॥१०५॥ निरंतर धनुष्यके खीचनेंसे बुढापा होजाता है तिस्से और अत्यंत भार उठानेंसे चोर आदिके उत्पातसे युद्धसे दूरसे अग्निको धमानेंसे बुरा भोजन करनेंसे चिंता करनेंसे अतिमैथुनसे मनुष्यके बलको हरनेंवाला राजयक्ष्मासंज्ञकरोग होजाता है ॥ १०६ ॥

अथ राजयक्ष्माके लक्षण ॥

क्षतक्षयाच्छ्रमाद्वापि सहसोपप्लवादपि ॥ व्यवायातिप्रसङ्गेन तथा रूक्षातिसेवनात् ॥ १०७ ॥ तेन संक्षीयते गात्रं ज्वरो मन्दश्च जायते ॥ ज्वरान्ते जायते शोफो मलविट् चातिमूत्रता ॥ १०८ ॥ अतिसारश्च भवति भक्षणेनातिशेषते ॥ कासते ष्ठीवतेऽत्यर्थं शोषश्च कुरुते भृशम् ॥ १०९ ॥ स्त्रियोऽभिलाषतात्यर्थं वार्त्तायाद्विषता पुनः ॥ राजयक्ष्मेति विज्ञेयो गदः साध्यो न विद्यते ॥ ११० ॥ सुप्तौ पादौ भवेतां तु ग्रासश्च बहु मन्यते ॥ शब्दे च पटुता यस्य राजयक्ष्मा न जीर्य्यति ॥ १११ ॥

और उरःक्षतसे, क्षयहोनेंसे अथवा श्रमसे एकवार जोरसे कूदनेंसे अत्यंत स्त्रीसंग करनेंसे रूषा भोजनके सेवनेंसे ॥१०७॥ शरीर क्षीण होजाता है और मंदज्वर होजाता है और ज्वरके अंतमें शोजा होजाता है और विष्ठा मूत्र अत्यंत उतरता है ॥ १०८ ॥ और अतिसार होता है भोजन कियाहुआ जरता नहीं है अत्यंत खांसता है और अत्यंत थूकता है बहुतसा शोष होजाता है ॥ १०९ ॥ स्त्रीकी अभिलाषा अत्यंत रहती है और वार्ता नहीं सुनी जाती है ऐसा यह राजयक्ष्मा रोग कहाता है यह साध्य नहीं कहा है ॥ ११०॥ जिसके पैर-शून्य होजावें और एकग्रास भोजनकोभी बहुत माने और जिसकी बोली नम्रहो ऐसे पुरुषका राजयक्ष्मा रोग शांत नहीं होता है ॥ १११ ॥

अथ राजयक्ष्माका इलाज ॥

यदन्नं यत्समाहारं यादृशं प्रतियाचते ॥ तत्तस्य च प्रदातव्यं मधुरं घ

नमेव च ॥ ११२ ॥ यद्यदाहारमिच्छेद्वा नरं वा राजयक्ष्मिणम् ॥ तस्य तस्यास्य लाभेन क्षीयन्ते तस्य धातवः ॥ ११३ ॥ यदा सरक्ताः शोफाः स्युः पाकतां याति मानवे॥तदा पुनर्नवाक्वाथः सलेशः प्रविधीयते ११४

और जो अन्न अथवा जो पदार्थ राजयक्ष्मारोगवालेको देवै वही उसको मधुर और कडा देना चाहिये ॥ ११२ ॥ और राजयक्ष्मारोगवालेको जिस२भोजनकी इच्छा होती है उसी २ भोजनसे इसकी धातु क्षीण होती है ॥ ११३ ॥ जो यदि राजयक्ष्मारोगवाले पुरुषके रक्तसहित शोजा होवे और पकजावे तो सांठीका क्वाथ किंचित्मात्र देना चाहिये ॥ ११४ ॥

अथ राजयक्ष्मावालेकी आयुष्यमर्यादा ॥

सञ्जीवेच्चतुरो मासान्षण्मासं वा बलाधिकः ॥ उत्कृष्टैश्च प्रतीकारैः सहस्राहं तु जीवति ॥ ११५ ॥ सहस्रात्परतो नास्ति जीवितं राजयक्ष्मिणः ॥ गतप्राणौजोवीर्य्यश्च क्षीणश्च विकलेन्द्रियः ॥ ११६ ॥ न भवेत्पुनरुच्छ्रायो याप्यरोगश्च मुञ्चति ॥ यस्तदायाससम्पन्नो भूयोऽपि कासना भवेत् ॥ ११७ ॥ तस्य प्राणापहारी स्याद्राजयक्ष्मा निदारुणः ॥ त्रिभिर्मासैश्च षण्मासैर्वर्षैश्चापि त्रिभिः पुनः ॥ ११८ ॥

राजयक्ष्मारोगवाला पुरुष चारमहीनोंतक जीवता है और बल अधिकहोवे तो छमहीनोंतक जीवता है और अत्यंतइलाज होतेरहैं तो हजारदिनोंतक जीवता है ॥ ११५ ॥ राजयक्ष्मारोगवाले पुरुषका जीवना हजारदिनोंसे उपरांत नहीं होता है और प्राण बल वीर्य इन्होंसे हीनहोजाता है क्षीण होजाता है इंद्रियविकल होजाती है ॥ ११६ ॥ और जो रोग फिर नहीं बढाता है वह याप्यरोग छुटजाता है और जो तिसरोगके परिश्रमसे युक्तहुआ फिर खांसीसे युक्त होजाता है ॥ ११७ ॥ तिसपुरुषका तीनमहीनोंमें अथवा छहमहीनोंमें प्राणोंका नाश होता है ॥ ११८ ॥

अथ अमृतप्राशनघृत ॥

शतमूलीरसे प्रस्थं गुडूचीकल्कप्रस्थकम् ॥ हरीतकीशतानां च कुटजस्य त्वचा तुलाम् ॥ ११९ ॥ निष्क्वाथ्य च पृथक्त्वेन पूतनाश्चैकत्र मिश्रयेत् ॥ दार्वीप्रलेपनं कृत्वा गुडानां शतपञ्चकम् ॥ १२० ॥ सिता चामलकीचूर्णं त्वगेला चित्रकं शठी ॥ द्राक्षा कुष्ठं शिलाजिच्च शिलाभेदस्तु तालकम् ॥ १२१ ॥ योज्यं तत्राक्षमानेन भक्षयेच्छुद्धसर्पिषा ॥

तस्योपरि पिबेत्क्षीरं भोजनञ्च ततः परम् ॥ १२२ ॥ राजयक्ष्मी लभे त्सौख्यं पाण्डुकामलकाञ्जयेत् ॥ अतीसारं विनश्यति बले नागबलो भवेत् ॥ १२३ ॥

शतावरीका रस ६४ तोले गिलोयका कल्क ६४ तोले, बडी सौ १०० हरडोंकी छाल और कूडाकी छाल ४०० तोले॥११९॥इन्होंका जुदा २ काढा बना फिर छानिके एकजगह मिलालेवे पीछे अग्निपे पकावे जब कडछीके चपकनें लगजावे तब५०० पानसौ मुनक्का दाख॥१२०॥मिसरी, आंवलाका चूर्ण, दालचीनी, इलायची, चीता, कचूर, दाख, कूट शिलाजीत, शिलाभेद, हरताल ॥१२१॥ इन्होंको एक २ तोला प्रमाण गेरै पीछे इसको अच्छे घृतके संग खावे इसके ऊपर दूध पीवे पीछे भोजनकरै॥१२२॥इसके खानेंसे राजयक्ष्मारोगवाला पुरुष सुखको प्राप्त होताहै और पांडुरोग, कामला अतीसार इन्होंका नाश होता है हस्तीके समान बल होजाता है ॥ १२३ ॥

अथ तालकाभ्रातक ॥

तालकं च शिलाभेदस्तथा चैव शिलाजतुः ॥ क्षीरके द्वे समङ्गा च कुष्ठं नागबला बला ॥ १२४ ॥ एलापत्रकतालीसं तमालं हरिचन्दनम् ॥ मुस्ता द्राक्षा च रास्ना च मुण्डी शैलेयकं पुरः॥१२५॥सुरसा चैव संयोज्या तिलाः कृष्णा द्विभागिकाः ॥ चूर्णं सूक्ष्मं प्रयुञ्जीत गुडेन मधुना युतम् ॥ १२६ ॥ पश्चाद्गोक्षीरपानं स्यात्क्षीरेण सह भोजनम् ॥ राजयक्ष्मादिभिः क्षीणा ग्रहणीपीडिताश्च ये ॥ १२७ ॥ धातुक्षीणबला ये च तेषां संयोजयेद्दृशम् ॥ वृद्धोपि तरुणो भूत्वा नरो नार्य्याभिनन्दति ॥१२८॥ वन्ध्यापि लभते पुत्रं षण्डोऽपि पुरुषायते॥तालकाभ्रातकं नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥ १२९ ॥

हरताल, पाषाणभेद, शिलाजीत, काकोली, क्षीरकाकोली, मंजीठ, कूठ, बडीखरैहटी, खरैहटी, ॥१२४॥ इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, तमालपत्र, लालचंदन, नागरमोथा, दाख, रास्ना, गोरखमुंडी, लोबान, गूगल, ॥१२५॥ तुलसी, और कालेतिल, दो भाग, इन्होंका सूक्ष्म चूर्ण बना तिसमें गुड और शहद मिला भक्षण करे ॥ १२६ ॥ और पीछे गौका दूधको पीवे और दूधके संगही भोजन करै, जो पुरुष राजयक्ष्माआदि रोगोंसे पीडित है और जो ग्रहणी रोगसे पीडित है ॥ १२७ ॥ और धातुक्षीणरोगवाले इन्होंको यह चूर्ण देना चाहिये

और इसके खानेंसे वृद्धपुरुषभी जवान होके स्त्रीके संग रमण करता है ॥ १२८ ॥ वंध्या स्त्री पुत्रको प्राप्त होजाती है और नपुंसकभी पुरुषकी तरह आचरण करता है यह तालका म्रातकनामवाला औषध कृष्णात्रेयजीने कहा है ॥ १२९ ॥

अथ गुडूच्यादिचूर्ण ॥

गुडूची च बले द्वे च धात्री च मरिचानि च ॥
चूर्णं गुडेन संयुक्तं राजयक्ष्मापहं नृणाम् ॥ १३० ॥

और गिलोय दोनों प्रकारकी खरैहटी, आंवला, मिरच, इन्होंका चूर्ण गुडमें मिला खानेंसे राजयक्ष्मारोगका नाश होता है ॥ १३० ॥

अथ क्षयरोगपर पथ्यापथ्य ॥

शालिषष्टिकगोधूमवास्तुकं जाङ्गलानि च॥ मुद्गांश्च गोपयश्चैव शशैकेण कुरङ्गिणाम् ॥ १३१ ॥ तित्तिरक्रौञ्चलावानां वार्त्ताकपिच्छकच्छागला नां हि ॥ कथितानि मांसादीनि प्रलेपकानि जगति च ॥ १३२ ॥ विभोजयेत्क्षीरसर्पिः क्षये वा राजयक्ष्मिणः ॥ क्षाराम्लकटुकं तीक्ष्णं तैलं सौवीरकं सुरा॥ राजिकावर्जिताश्चैते क्षये वा राजयक्ष्मिणः॥१३३॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने क्षयरोगचिकित्सा नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

और शालीसंज्ञक तथा सांठीचावल, गेहूं, वथुवाका शाक, जांगलदेशके जीवोंका मांस, मूंग, गौका दूध, और शूसा, कालाहिरन, हिरन ॥ १३१ ॥ तीतर, कूंजि, लावा, वत्तक, मोर, बकरा, इन्होंका मांस, इनसबोंका भोजन करना श्रेष्ठ कहा है ॥ १३२॥ और राजयक्ष्मा रोगमें तथा क्षयरोगमें दूध और घृतका भोजन करना श्रेष्ठ कहा है और खारा, खट्टा, चर्चरा, तीक्ष्ण, ऐसा पदार्थ, तेल, कांजी, मदिरा राई ये क्षयमें तथा राजयक्ष्मा रोगमें वर्ज देनें चाहिये ॥ १३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने क्षयरोगचिकित्सानाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ रक्तपित्तका निदान और चिकित्सा ॥

अतिघर्मतया वापि तीक्ष्णोष्णकटुसेवनात् ॥ क्षाराम्लसेवनाद्वापि मद्य

पानादिसेवनात् ॥ १ ॥ अतिव्यवायाच्छीतेन शुष्कशाकादिसेवनात् ॥ एतैस्तु कुपितं पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ २ ॥ पुत्रस्तु संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अत्यंत घामसे और तीक्ष्ण तथा गरमवस्तुके सेवनेंसे और खारा खट्टा पदार्थके सेवनेंसे तथा मदिराके सेवनेंसे ॥ १ ॥ अत्यंत मैथुनके सेवनेंसे, शीतलपदार्थके सेवनेंसे कुपितहुआ पित्तरक्तके संग मूर्च्छाको प्राप्तहोजाता है ॥ २ ॥ ऐसे सुन संशयमें युक्तहुआ हारीत आत्रेयजीसे पूछता है ॥ ३ ॥

हारीत उवाच ॥ कथं पित्तं प्रकुपितं केन वापि प्रचाल्यते ॥ तद्वद्रक्तं प्रकुपितं जायते केन हेतुना ॥ ४ ॥ युगपद्दृश्यते केन कथं वापि प्रवर्त्तते ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ ५ ॥

हारीत कहते हैं— पित्त कैसे कुपित होता है और किस्से चलायमान होता है और तैसें रक्तका कोप किस कारणसे होता है ॥ ४ ॥ एकवार किसहेतुसे दीखते है और कैसे प्रवृत्त होते है ऐसे पूछेहुए महाचार्य उत्तममुनि कहते भये ॥ ५ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु प्राज्ञ ! महातेजश्चिकित्सागमपारग ! ॥ येनैव कुप्यते पित्तं तेनैव कुप्यते तथा ॥ ६ ॥ तावत्प्रकुपिते कोष्ठे वायुर्दीरयते भृशम् ॥ ऊर्ध्वं च नयते प्राणश्चापानोऽपानमीरति ॥ ७ ॥ मध्ये समानः कुरुते रक्तपित्तस्य कोपनम् ॥ एवं युगपत्पित्तञ्च रक्तेन सह कुप्यति ॥ ८ ॥ चतुर्द्धा दृश्यते कोपो गतिश्चास्य द्विधा मता ॥ ऊर्ध्वश्लेष्मणि संसृष्टं नासास्ये कर्णरन्ध्रयोः ॥ ९ ॥ रक्तं प्रवर्त्तते यस्य साध्यास्तु विजिगीषुणा ॥ अधोयातेन संसृष्टं गुदेनापि प्रवर्त्तते ॥ १० ॥ स ज्ञेयो रक्तपित्तस्तु कृच्छ्रेण सिद्धिमिच्छति॥ उभाभ्यामधऊर्ध्वाभ्यां वातश्लेष्मणि वर्त्तते ॥ ११ ॥ तमसाध्यं विजानीयात्कृच्छ्रेण यदि सिध्यति ॥ १२॥ एकमार्गबलतो वा नाभिवेगेन चोत्थितः॥ रक्तपित्तः सुखेनापि साध्यः स्यान्निरुपद्रवः॥ १३ ॥ एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते॥ असाध्यस्तु त्रिदोषेषु रक्तपित्तः प्रवर्त्तते॥१४॥ ऊर्ध्वगरक्तपित्तेषु विरेकं कारयेत्सुधीः ॥ अधोभागगते रक्ते तदास्य वमनं हितम् ॥ १५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे प्राज्ञ! महातेजवाला! वैद्यकशास्त्रके पारको जाननेंवाला ! तूं सुन जिसकारणसे पित्त कुपित होता है तिसीकारणसे रक्त कुपित होता है ॥ ६ ॥ पहले कोष्ठस्थानमें पित्त कुपितहोके वायुको अत्यंत फाडदेता है प्राण वायु ऊपरको प्राप्त होजाता है और अपानवायु गुदाके स्थानमें कुपित होजाता है ॥ ७ ॥ और मध्यनाभिमें स्थितहुआ समान वायु रक्तपित्तको कोपकरदेता है इसीतरह एकहीवार पित्त रक्तके संग कुपित होजाता है॥८॥ रक्तपित्तका कोप चारप्रकारसे दीखता है और इसकी गति दोप्रकारकी कही है जिसकै कफ ऊर्ध्वभागमें प्राप्तहो और नासिकाके आगे तथा कानोंके छिद्रोंमें ॥ ९ ॥ रक्त प्रवृत्त होजावे वह साध्य कहा है. और जिसकै अधोमार्गमें रक्तकोप होजाता है उसकै गुदाके द्वारा रक्त निकसता है ॥ १० ॥ वह रक्तपित्त कष्टसाध्य कहा है और जो ऊर्ध्वमार्गमें प्राप्तहो अथवा अधोमार्गमें प्राप्तहो और वात कफ अधिक वर्तते हों ॥ ११ ॥ वह असाध्य जानना अथवा कष्टसे सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ एक मार्गसे उठाहुआ अथवा नाभिके देशसे उठाहुआ रक्त पित्त साध्य है और उपद्रवोंसे रहित है ॥ १३ ॥ और एकदोषसे उत्पन्नहुआ साध्य होता है दोदोषोंसे उत्पन्नहुआ याप्यरोग होताहै और तीनदोषोंसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य कहाता है ॥ १४ ॥ और जब रक्तपित्त ऊर्ध्वभागमें प्राप्तहोवे तब जुलाब दिवावै और जब रक्त अधोभागमें स्थितहो तब वमन कराना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ रक्तपित्तके उपद्रव ॥

रोगक्षीणे छविरविकले हीनदौर्बल्यकाये मन्दाग्निर्वा क्षवथुरथवा पाण्डुता दाहशोषः ॥ तृष्णा छर्दिः श्वसनमधृतिर्भक्तविद्वेषमोहो हृत्पीडा स्याद्भ्रममथ भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥ १६ ॥ अष्टादश इते प्रोक्ता रक्तपित्त उपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्योऽसाध्यः सोपद्रवस्तथा ॥१७॥ रक्तनिष्ठीवनोपेतो रक्तनेत्रो भ्रमातुरः॥रक्तमूत्रश्च वमते रक्तमूत्री न जीवति॥१८॥

रोगसे क्षीण होजावे और कांतिसे रहित होजावे,शरीर हीन होजावे और दुर्बल होजावे, मंद अग्नि होजावे, छीकहो, पांडुरोगहो, दाहहो, शोषहो,तृषाहो, छर्दिहो, श्वासहो, धीरज नहीं रहै, भोजनसे वैर रहै, मोह रहै, हृदामें पीडा रहै भ्रमहो, ऐसे ये ॥१६॥ अठारह रक्तपित्तके उपद्रव कहे हैं उपद्रवोंसे रहित रक्तपित्त रोग साध्य कहा है और उपद्रवोंसें संयुक्त रक्तपित्त असाध्य कहा है ॥ १७ ॥ और रक्तके थूकनेंसे युक्तहो रक्तनेत्रहौं भ्रमसे आतुरहो और रक्तमूत्रवाला पुरुष वमन करता है, वह जीवता नहीं है ॥ १८ ॥

अथ रक्तपित्तका लक्षण ॥

एवं प्रोक्तो निदानार्थस्ततो वक्ष्यामि भेषजम्॥ सुलक्षणसमायुक्तं रक्तपि

त्तंसुखावहम् ॥ १९ ॥ यस्यारुणं पवनफेनयुतं च तावत्पित्तातिकृष्णमथ पीतकुसुम्भकाभम् ॥ पित्तेन पित्तमिति तं प्रवदन्ति धीराः सान्द्रं सपाण्डु रतिजं सघनं कफेन ॥ २० ॥

इस प्रकार निदान तो कहदिया है अब औषध कहेंगे सुंदरलक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त सुखसाध्य कहा है ॥ १९ ॥ जो झागों सहित थूके वह वातसे उपजा रक्तपित्त जानना और पित्त अधिक होवे तो काला और कसुंभाके डहलके समान थूके, तिसको पित्तसे उपजा रक्तपित्त कहते है और कफसे होवे तो करडा और पीला सफेद चिकना ऐसा थूकै ॥ २० ॥

अथ रक्तपित्तकी चिकित्सा ॥

क्षीणमांसं कृशं वृद्धं बालं वा ज्वरपीडितम् ॥
शोषमूर्च्छाभ्रमापन्नमविरेचनमाचरेत् ॥ २१ ॥

क्षीणमांसवाला, कृश, वृद्ध, बालक, ज्वरसे पीडित शोष, मूर्च्छा भ्रम, इन्होंसे पीडित पुरुषको जुलाब दिवावे ॥ २१ ॥

अथ ऊर्ध्वरक्तका उपाय ॥

निष्पीड्य वासारसमाददीत क्षौद्रेण खण्डेन युतं च पानम् ॥ नासास्यकर्णौ नयनप्रवृत्तं रक्तं तु शीघ्रं शमतां प्रयाति ॥ २२ ॥

अथवा वांसाके पत्तोंका रसको निचोड तिसमें शहद और खांड मिला पीना चाहिये तिस्से नासिका, मुख कान इन्होंमें प्रवृत्तहुआ रक्त शीघ्रही शांत होजाता है ॥ २२ ॥

अथ वासादि क्वाथ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गुरोध्राञ्जनाम्भोरुहकेसराणि ॥ पीत्वा समध्वा ससिता प्रयोज्या पित्ताश्रयं चैवमुदीर्णमाशु ॥ २३ ॥

और वांसाका क्वाथ, कमलकी जडकी मांटी, मालकांगनी, लोह, कालासहैंजना, कमलकेशर, इन्होंमें शहद और मिसरी मिला पीनेंसे रक्तपित्त शांत होता है ॥ २३ ॥

अथ निंबक्वाथ अथवा अडूसाका क्वाथ ॥

प्रविद्यमानं पिचुवासकेन कथं नरः सीदति रक्तपित्ते ॥ क्षये च कासे श्वसनेऽपि यक्ष्मे वैद्याः कथं नातुरमादरन्ति ॥२४॥

अथवा नींब और वांसाका क्वाथ देनेंसे रक्तपित्तवाला मनुष्य दुःख नहीं पाता है और

क्षयरोग, खांसी, श्वास, राजयक्ष्मा, इनरोगोंमेंभी वैद्यजनोंको यही क्काथ देना चाहिये॥२४॥

अथ वासाकी प्रशंसा ॥

भिषग्भिषजां माता या पुरा कृत्यक्रिया यदि ॥ क्रियायत्ते रक्तपित्ते क्षये कासे च सिद्धिदा ॥२५॥ वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ॥ रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २६ ॥

जो यह पहले कहीहुई चिकित्सा है यह सबवैद्योंकी माता है रक्तपित्तमें क्षयीरोगमें खांसीमें यह चिकित्सा सिद्धिको देनेंवाली है ॥ २५ ॥ जबतक वांसा औषध है तबतक इस रोगवालेकी जीवनेंकी आसा है सो रक्तपित्तरोगवाला और क्षयरोगवाला तथा खांसीवाला पुरुष किसवास्ते दुःख पाता है ॥ २६ ॥

अथ तालीसचूर्ण ॥

तालीसचूर्णं वृषपत्ररसेन युक्तं पेयं समारभ्य पुनः कफपित्तकासे ॥ हन्ति भ्रमं श्वसनकासतासङ्करोत्थं भङ्गस्वरे त्वरितमाशु सुखं ददाति२७

और कफपित्तसे उपजीहुई खांसीमें वांसाके पत्तोंका रसमें तालीसपत्रका चूर्ण मिला पीना चाहिये, भ्रम, श्वांस, खांसी, इन्होंसे उत्पन्नहुआ भ्रम, स्वरभंग, इनरोगोंमें शीघ्रही सुखहोता हैं

अथ अडूसाका क्काथ और कल्क ॥

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्काथः सशर्करः ॥ क्षौद्राढ्यः श्वसनकासरक्तपित्तनिवारणः ॥ २८ ॥ छागं पयो वा सुरभीपयो वा चतुर्गुणश्चापि जलेन कल्कः ॥ सशर्करं पानमिदं प्रशस्तं सरक्तपित्तं विनिहन्ति चाशु।२९।

और वांसा, मुनक्कादाख इन्होंका क्काथमें खांड मिला और शहद मिलादेनेंसे श्वास, खांसी, रक्तपित्त इन्होंका निवारण होता है ॥ २८॥ और बकरीका दूध अथवा गौका दूध और चौगुना जल इन्होंमें वांसाका कल्कमिला सिद्धकर फिर खांडके संग इसका पीना श्रेष्ठ है यह रक्तपित्तको नाशता है ॥ २९॥

बलाश्वदंष्ट्रामलकीफलानि द्राक्षा मधूकं मधुयष्टिकानाम् ॥ सिद्धं पयः पानमिदं हितं स्यात्पित्ते सरक्ते मनुजस्य शान्त्यै ॥ ३० ॥ खदिरस्य प्रियङ्गूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ॥ पुष्पं चूर्णं तु मधुना लिह्यादरोगमस्तु ते ॥ ३१ ॥ आटरूषकरसेन सप्तधा भाविता च पुनरेव शोषिता ॥

पिप्पलीमधुसमन्विताभया रक्तपित्तमतिदुर्जयं जयेत् ॥ ३२ ॥ एलाफलानि सपद्मकनागकेशरं द्राक्षा घना मधुकपिप्पलिका समांशा ॥ एषां समांशसितशर्करयुक्तलेहःखर्जूरिका समभिहन्ति च रक्तपित्तम् ॥३३॥ दाहं ज्वरार्त्ति श्वसनं च विमोहतृष्णां मूर्च्छां निहन्ति रुधिरवमिजित्तथैव ॥ ३४ ॥

और खैरहटी, गोखरू, आंवला, दाख, महुआवृक्षकी छाल, मुलहटी, इन्होंको दूधमें मिला पकाके पीनेंसे रक्तपित्तकी शांति होती है ॥ ३० ॥ और खैर, मालकांगनी, शाल्वन, इन्होंके पुष्पोंका चूर्ण शहदके संग चाटनेंसे इसरोगसे छुटजाता है ॥ ३१ ॥ पीपली और हरडैको सातदिनतक वांसाका रसमें भावनादे फिर सुखाके शहदमें युक्तकर खानेंसे अत्यंत दुर्जय रक्तपित्तका नाश होता है ॥ ३२ ॥ इलायची, पद्माक, नागकेशर, दाख रुद्रजटा, मुलहटी, पीपली, इन्होंको समानभागले और इनसबोंके समान मिसरी मिला फिर लेह बना लेवे इसके खानेंसे शरीरकी खाज, रक्तपित्त ॥ ३३ ॥ दाह, ज्वरकी पीडा, श्वास, मोह, तृषा, मूर्च्छा, वमन इन्होंका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अथ नासाप्रवृत्तरुधिरचिकित्सा ॥

घ्राणे प्रवृत्तं रुधिरं यदि स्यात्तदा घृतेनामलकीफलानि ॥
तोयेन स्पृष्ट्वा शिरसि प्रलेपः सरक्तपित्तं सहसा रुणद्धि ॥ ३५ ॥

जो नासिकामें रुधिर प्रवृत्त होजावे तो घृत और जलमें आंवलोंको पीस शिरपे लेप करना चाहिये यह रक्तपित्तको शीघ्रही दूर करता है ॥ ३५ ॥

द्राक्षारसं वा घृतशर्कराढ्यं जलं सिताढ्यं च सरक्तपित्ते ॥
यवान्नं चैवेक्षुरसं सिताढ्यं क्षयं च कासं क्षतजं निहन्ति॥३६॥

और दाखोंका रसमें घृत और खांड मिला देनेंसे और मिसरी जलके संग पीनेंसे रक्तपित्त दूर होता है और जवका अन्न मिसरीके संग खानेंसे क्षय क्षतरोगसे उत्पन्नहुई खांसी इन्होंका नाश होता है ॥ ३६ ॥

अथ हरितालिकादिनस्य ॥

नस्यं विदध्याद्धरितालिकाया रसेन वालक्तरसेन वापि ॥
स्याद्दाडिमस्य प्रसवोद्भवेन रसेन नस्यं रुधिरस्रुतेऽपि ॥ ३७॥

और कानमें रक्त प्राप्त होजावे तब आलके रसमें अथवा अनारके रसमें हरताल मिला तिसकी नस्य बनाके देनी चाहिये ॥ ३७ ॥

अथ आम्रादि नस्य ॥

आम्रास्थिजम्बूद्भवशर्कराढ्यं नस्यं सिताढ्यं हितकृज्ज्वराणाम् ॥
नासाप्रवृत्तं रुधिरं निहन्ति हिक्कासच्छर्दिश्वसनं विमर्दि ॥ ३८॥

और आंबकी गुठली जामनकी गुठली इन्होंको पीस खांडमें मिला अथवा मिसरीमें मिला नस्य देनेंसे ज्वरोंका नाश होता है और नासिकामें प्रवृत्तहुआ रुधिरका नाश होता है और हिचकी वमन, श्वास, इन्होंका नाश होता है ॥ ३८ ॥

अथ पलांड्वादि नस्य ॥

पलाण्डुपत्रनिर्यासनस्यं नासाग्रजावहम् ॥
यष्टीमधूमधुयुतं पश्चान्नस्येऽस्रजं जयेत् ॥ ३९ ॥

और प्याजके पत्तोंकी नस्य देनेंसे रक्तपित्तरोग दूर होता है और मुलहटी, शहद, इन्होंकी नस्य देनेंसेभी शीघ्रही इसरोगका नाश होता है ॥ ३९ ॥

अथ वासादिपानक ॥

वासापत्ररसं विधाय मतिमान्योज्यानि चेमानि तु रोध्रं चोत्पलमृत्तिका समधुकं कुष्ठं प्रियङ्ग्वन्वितम् ॥ चूर्णं पुष्परसेन पाचकमिदं पित्ताश्रयाणां हितं कासकामलपाण्डुरोगक्षतजश्वासापमर्दि भवेत् ॥ ४० ॥

और वांसाके पत्तोंके रसको निचोड तिसमें लोध, कमलकी जडकी मृत्तिका, मुलहटी, मालकांगनी, इन्होंका चूर्ण मिला और वांसाके पत्तोंका रस मिला फिर इसको खावै यह पाचक है और पित्ताशयवालोंको हित है और खांसी, कामला, पांडुरोग, चोटसे उपजाहुआ श्वासरोग, इन्होंको नाशता है ॥ ४० ॥

अथ दाडिमादि रस ॥

रसो हितो दाडिमपुष्पकस्य तथैव किञ्जल्करसोत्पलस्य ॥
लाक्षारसो वा पयसा च नस्याद्घ्राणप्रवृत्तं रुधिरं रुणद्धि ॥ ४१ ॥

और अनारदानाका रस तथा कमलकी केशर और लाखका रस इन्होंकी दूधके संग नस्य देनेंसे नासिकामें प्रवृत्तहुआ रुधिर रुकजाता है ॥ ४१॥

अथ मुखमें प्रवृत्तहुआ रुधिरकी चिकिसा ॥

दाडिमपुष्पादिनस्य ॥

यदि वदनपथेऽसृक्प्रवृत्ते तस्य कुर्य्यात्प्रतिविधिर्विहितः स्याद्वक्ष्यते मानुषस्य ॥ भवति न सुखसाध्यं लोहितं मानुषेषु तदनु युवतियोन्यां रक्तवाहस्त्वसाध्यः ॥ ४२ ॥ मधु मधुकमुशीरं कञ्जकिञ्जल्कदूर्वारसमि

ह परिपीतं दाडिमस्य प्रसूतम् ॥ मलयजसितकुष्ठं पद्मकं चैव वालं म
धु मधुकबालकौ कोद्रवौ द्वौ समन्तात् ॥ ४३ ॥ समसुरभिपयो वा धा
वनं तण्डुलानां परिकलितसमग्रं तुर्य्यभागेन योज्यम् ॥ लघुतरमपि व
ह्नौ धावितं सिद्धमेव भवति वदनवृत्ते लोहिते पानमस्य ॥ ४४ ॥ श्रुति
पथमपि रक्ते वा प्रवृत्ते तु नासं विहितमपि तदा स्यात्पूरणं कर्ण
नासे ॥ रुधिरमभिरुणद्धि श्वासमाशु क्षतं वा श्वसितरुधिरच्छर्दि
मेहमुन्मादरोगम् ॥ ४५ ॥ नासाप्रवृत्ते नस्यं स्यान्मुखे पानं विधे
यकम् ॥ कर्णे नेत्रे पूरणं च गुदमार्गे निरूहणम् ॥ ४६ ॥ दा
डिमफलत्वचं वा चूर्णं लिह्यात्सितायुतम् ॥ पद्मकिञ्जल्कचूर्णं वा लि
ह्याद्वा सितया पुनः ॥४७॥ मुखप्रवृत्तरुधिरं रुणद्ध्याशु वामिं क्रमम् ॥
श्वासशोषौ भ्रमं तृष्णां नाशयत्याशु निश्चयः ॥ ४८ ॥ जम्ब्वाम्रपल्ल
वानि स्युर्हरीतक्या युतानि तु ॥ मधुशर्करया युक्तमास्यलोहितवारण
म् ॥ ४९ ॥ वटप्रवालार्जुनवृक्षकदम्बजम्ब्वाम्रकाणां खदिरस्य वापि ॥
यथाप्रपन्नो मधुनावलेह आस्यास्रजं वारयते क्षणेन ॥ ५० ॥

जो यदि मनुष्यके मुखमें रुधिर प्रवृत्त होजावे तब उसकी विधिको कहते है मनुष्योंके रुधिरका विकार सुखसाध्य नहीं है और तैसेही जवान स्त्रीकी योनिमेंभी प्रवृत्त हुआ वहता हुआ रुधिर असाध्य कहा है ॥ ४२ ॥ और शहद, मुलहटी, खश, कमलकेशर, दूव, अनारदाना इन्होंका रस पीना श्रेष्ठ कहा है और चंदन, कूठ, पद्माख, नेत्रवाला, शहद, मुलहटी, नेत्रवाला, दोनों प्रकारके कोदू धान्य ॥ ४३ ॥ गौका दूध इन्होंको समान भागले और चतुर्थांश चावलोंका धोवनका पानी लेवे फिर इन औषधोंका कल्क बना तिसमें मिला मंद २ अग्निसे पकावे पीछे मुखमें प्रवृत्तहुए रुधिरमें इसका पीना श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ और कानमें प्रवृत्तहुआ रुधिरमें अथवा नासिकामें प्रवृत्तहुए रुधिरमें कानमें तथा नासिकामें इसको पूरण करै यह रुधिरको शीघ्रही नाशता है और श्वास, चोट, श्वासमें प्रवृत्तहुआ रुधिर, प्रमेह, उन्माद, इनरोगोंका नाश होता है ॥ ४५ ॥ जो नासिकामें रुधिर प्रवृत्त होजावे तो नस्य देनी चाहिये मुखमें प्रवृत्तहोवे तो पीना चाहिये और कानमें तथा नासिकामें प्रवृत्तहोवे तो पूरण करै गुदामें प्रवृत्तहो तो निरूहबस्ति देनी चाहिये ॥ ४६ ॥ अथवा अनारके फलकी छालके चूर्णको मिसरीमें युक्तकर भक्षण करना चाहिये तथा कमलकेशरके चूर्णको मिसरीमें मिला भक्षणकरै ॥ ४७ ॥ इस्से मुखमें प्रवृत्तहुआ रुधिर और वमन, ग्लानि इन्होंका नाश होता है

और श्वास, शोष, भ्रम, तृषा इन्होंको शीघ्रही नाशता है ॥ ४८ ॥ और जामन आंब, इन्होंके पत्ते हरडै इन्होंको खांड और शहदमें मिला खानेंसे मुखके रक्तरोगका निवारण होता है ॥ ४९ ॥ वड, अर्जुनवृक्ष, कदंब, जामन, आंब, खैर इन्होंमेंसे कोइसे वृक्षकी पीपली और शहद मिला अवलेह बना चाटनेंसे मुखमें प्राप्तहुआ रक्तका निवारण होता है ॥ ५० ॥

अथ शतावरीघृत ॥

शतावरी मधुकं बला ससिता काकोलिका दाडिमा मेदःक्षीरविदारिका च फलिनी स्यात्तिन्तिडीकं बला ॥ सिद्धा गोपयसाज्यकं हितमिदं पाने तथा बस्तिषु योनौ मेढ्रगुदप्रवृत्तरुधिरं हन्यात्सकासक्षयम् ॥ ५१ ॥

शतावरी, मूलहटी, खैरेंहटी, मिसरी, काकोली, अनारदाना, मेदा, विदारीकंद, मालकांगनी, अमली, खैरेहटी, इन औषधोंको गौके दूधमें पकावे फिर तिसमें घृत मिला तिसको सिद्ध करै यह घृत पीनेंमें तथा बस्तिकर्ममें हित है और योनि, लिंग, गुदा, इन्होंमें प्रवृत्तहुआ रक्तको नाशता है और खांसीको दूर करता है ॥ ५१ ॥

अथ मृद्वीकाआदिघृत ॥

मृद्वीका मधुकं विदारिवसुधा नीली समङ्गाफलाः काकोल्यो बृहती युगं वृषमहामेदासितं चन्दनम् ॥ जातीपल्लवपटोलश्यामामृतासञ्जीवकाः साभया मेदे द्वे च कुचन्दनं मधुरसाः श्यामाः समांशास्त्वमी॥५२॥ पक्का गोपयसा विशुद्धविधिना सिद्धं चतुर्थांशकं मत्स्यण्डी मधुकं च सिद्धमिति चेत्पानं प्रशस्तं नृणाम् ॥ स्त्रीणां चापि हितं निहन्ति रुधिरं पित्ताद्गुदे वा भवे मेढ्रे चापि च रोमकूपकपथे वृत्तं निहन्यात्स्रजम् ॥ ५३ ॥ एतद्द्राक्षाभिधानं घृतमपि विहितं रक्तपित्ते ज्वरे वा वातास्रे योनिशूले भ्रममदशिरसोन्मादरक्तप्रमोहे ॥ पित्ताम्लेऽतिकुष्ठे क्षयक्षतरुधिरे राजयक्ष्मेऽथ पाण्डौ पाने बस्तौ च नस्ये हितमपि मनुजां भाषितं चात्रिणा च ॥ ५४ ॥

मुनक्कादाख, मुलहटी, विदारीकंद, लघुखजूरी, नील, मंजीठ, त्रिफला, काकोली, दोनों प्रकारकी कटेहली, वांसा, महामेदा, सफेद चंदन, जावित्री, परवल, निशोत, गिलोय, जीवक, हरडै, मेदा, महामेदा, लालचंदन, सौंफ, पीपल, इनसबोंको समान भाग ले ॥ ५२ ॥ फिर गौके दूधमें पकावे फिर चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि राव, मुलहटीका चूर्ण इन्होंको मिलावे

इसका पीना मनुष्योंको तथा स्त्रियोंकोभी हित है और रक्तरोगको नाशता है और पित्तसे प्राप्तहुआ गुदाका रक्त और लिंग, रोम इन्होंमे प्राप्तहुआ रक्त, इन्होंका नाश होता है ॥५३॥ यह द्राक्षाआदिनामक घृत रक्तपित्तमें और ज्वरमें हित है और वातरक्त, योनिशूल, भ्रम, मद, शिरोरोग, उन्माद, रक्तप्रमोह, पित्ताम्ल, अतिकुष्ठरोग, क्षयी, क्षतरक्त, राजयक्ष्मा, पांडुरोग, इन सबरोगोंको नाशता है और अत्रिऋषिसे कहाहुआ यह घृत पानमें तथा बस्तिकर्ममें मनुष्योंको हित कहा है ॥ ५४ ॥

अथ कूष्मांडावलेह ॥

छल्लिं निष्कृष्य कूष्माण्डखण्डानि प्रतिकल्पयेत् ॥ काञ्जिकेनाशु धौतानि पुनरेव जलेन तु ॥ ५५॥ पश्चात्क्षीररसप्रस्थे कल्कयेत्पुनरेव च ॥ घृतेन पुनरेवैतत्पाचयेत्सुविधानतः ॥ ५६ ॥ यदा मधुनिभानि स्युस्तदा शर्करया सह ॥ निधाय तत्र चेमानि भेषजानि प्रकल्पयेत् ॥५७॥ पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले मरिचानि च ॥ जीरके द्वे तथा धात्री त्वगेला पत्रकं तथा ॥ ५८ ॥ पलार्द्धेन वियुञ्जीयाच्चूर्णं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ दार्व्या विदधयेत्तावल्लेहीभूतं यदा भवेत् ॥ ५९ ॥ तदा मधुघृतेनापि लिह्याज्ज्ञात्वा बलाबलम् ॥ रक्तपित्तं क्षयं कासं कामलं नैमिकं भ्रमम् ॥ ६० ॥ छर्दितृष्णाज्वरश्वासपाण्डुरोगान् क्षतक्षयम् ॥ अपस्मारं शिरोर्त्तिश्च योनिशूलं च दारुणम् ॥ ६१ ॥ चिरं योनौ रक्तवाहं मन्दज्वरनिपीडनम् ॥ वृद्धोऽपि च युवा कामी वन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ६२ ॥ अवीर्य्यो वीर्य्यमाप्नोति भवेत्स्त्रीणां प्रियो नरः ॥ एष कूष्माण्डको लेहः सर्वरोगनिवारणः ॥ ६३ ॥

कोहलेको छील तिसको टुकडे बनाके कांजीसे धोवै पीछे जलसे धोवै ॥ ५५ ॥ फिर तिसका कल्क बना ६४ तोले दूध मिला पीछे ६४ तोले घृत मिला अच्छे विधानसे पकालेवे ॥ ५६ ॥ जब वे कोहलाके टुकडे शहदके समान वर्णवाले होजावे तब खांड मिला इन आगे कहीहुई औषधोंको मिलावे ॥ ५७ ॥ पीपल, अदरक, मिरच ये आठ आठ तोले और दोनोंजीरे, दालचीनी, इलायची, तेजपात ॥ ५८ ॥ ये दो २ तोला मिला चूर्ण बनाके गेरै फिर कडछीसे चलावे जब लेह बनजावे ॥ ५९ ॥ तब बलाबलको विचार शहद और घृतके संग इसको खावे यह अवलेह रक्तपित्त, क्षयी, खांसी, कामला, चक्करकी तरह भ्रम इनरोगोंको नाशता है ॥ ६० ॥ और छर्दि, तृषा, ज्वर, श्वास, पांडुरोग, क्षतक्षय, मृगी-

रोग, शिरकी पीडा, दारुण योनिशूल ॥ ६१ ॥ और बहुतसा वहताहुआ योनिका रक्त, मंदज्वरकी पीडा, इन्होंका नाश होता है और वृद्धपुरुषभी जवान और कामी होता है वंध्या स्त्री पुत्रवाली होजाती है ॥ ६२ ॥ और जिसके वीर्य नहीं हो वह वीर्यवाला होजाता है और स्त्रियोंको प्रिय होता है यह कूष्मांडकावलेह संपूर्णरोगोंको निवारण करता है ॥ ६३ ॥

अथ अन्यकूष्माण्डका अवलेह ॥

सुस्निग्धकूष्माण्डकखण्डकानि पलानि पञ्चाशदथो सितायाः ॥ युञ्ज्यात्सतोयं प्रणिधाय धीमान् घृतेन प्रस्थं परिपक्कमेव ॥ ६४ ॥ विज्ञाय पक्कं पुनरेव तत्र वासाकषायञ्च विमिश्रयेच्च॥ पश्चात्पचेद्यावत्तु दर्वीलेपो ज्ञात्वा तु चेमानि पुनर्वियुञ्ज्यात् ॥ ६५॥ धात्री घना च भार्ङ्गी च सुगन्धत्रयं च युञ्ज्यात्समस्तानि तानि कर्षमात्राम् ॥ तस्मात्पुनर्नवा च नागरधान्यकानि एषां पलस्य तुलिता कथितानुमात्रा॥६६॥ श्यामापलाष्टकमिदं विदधीत चूर्णं संघट्टयेत्सकलमेव पुनस्तु दर्व्या ॥ युञ्ज्यात्समं मधुयुतं सकलामयघ्नं कासं ज्वरं क्षतजमाशु निहन्ति हिक्काम् ॥ ६७ ॥ हृद्रोगपित्तरुधिरं क्षयपीनसं च पित्ताम्लकं विजयते श्वसनं च मूर्च्छाम् ॥ स्त्रीणां हितं भवति बालकवृद्धकेषु श्रेष्ठं समस्तरुजनाशबलप्रदं च ॥ ६८ ॥

अच्छे सुंदर कोहलाके चिकने २ टुकडे बना फिर तिसमें२०० तोले मिसरी मिलावे पीछे तिसमें जल मिला और ६४ तोले घृत मिला तिसको पकावे ॥६४॥ जब पकजावे तब उतारि तिसमें वांसाका क्वाथ मिलाके फिर पकावे जब कडछीके चपकनें लगजावे तब इनऔषधोंको गेरै ॥ ६५ ॥ आंवला, रुद्रजटा, भारंगी, सुगंधत्रय, दालचीनी, तेजपात, इलायची, इन्होंको एक २ तोलाप्रमाण लेवे सांठी, सूंठ, धनियां, इन्होंको चार २ तोले गेरै और निशोतका चूर्ण ३२ तोले मिलावे पीछे इनसबोंको मिला ॥ ६६ ॥ कडछीसे घोटै फिर इसको बराबरके शहदमें मिलाके खावे यह अवलेह, खांसी, ज्वर, क्षतरोग, हिचकी ॥ ६७ ॥ हृदयरोग, पित्तरक्त, क्षयी, पीनस, पित्ताम्ल श्वास, मूर्च्छा, इनरोगोंको नाशता है और स्त्री, बालक, वृद्ध, इन्होंको श्रेष्ठ है बलको देनेंवाला है ॥ ६८ ॥

अथ खंडकाद्यरसायन ॥

शतावरी मुण्डितिकामृता च फलात्वक् च पुष्करमूलभार्ङ्गी ॥ वृषो वृ

हत्या खदिरं च मांशली पृथक् पृथक् पञ्चपलैकमात्रया॥६९॥ उत्तार्य पक्कं जलमाशु पश्चाद्यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् ॥ विमूर्च्छितं तत्र निधाय धीमान्पलं तथा द्वादशमाक्षिकस्य ॥ ७० ॥ तथाशु चूर्णस्य च लोहकस्य विघट्टितं खण्डघृतेन तुल्यम् ॥ देयं पलं षोडशकं विधिज्ञो विपाचयेल्लोहमये च पात्रे ॥ ७१ ॥ गुडेन तुल्योऽपि विभाति यावत्तुगा विडङ्गं मगधा च शुण्ठी ॥ द्वे जीरके कण्टकं त्रिफलानां भृङ्गं धान्यमरिचं सकेसरम् ॥ ७२ ॥ पलेन मात्रां विदधीत पृथक् सुघट्टितं चूर्णमिदं घृतस्य ॥ स्निग्धे कटाहे प्रणिधाय युञ्ज्यात्कर्षप्रमाणं विदधीत चूर्णम् ॥ ७३ ॥ प्रभातकाले सरोवारिपानं गुरूणि चाम्लानि च वातलानि ॥ भगन्दरादिश्वयथून्निहन्ति रक्ताम्लकं वा श्वसनञ्च यक्ष्मिणम् ॥ ७४ ॥ विशोषणं कुष्ठरुजां च गुल्मान्बलप्रदं वृष्यतमं प्रदिष्टम् ॥ स रक्तपित्तं सहसा निहन्ति योनिप्रभावं च सरक्तशूलम् ॥ ७५ ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रमेहं समेढ्रबस्तौ निहितं नराणाम् ॥ सौभाग्यदं कान्तिकरं प्रदिष्टं तेजौजःपुष्टिं बलमातनोति ॥ ७६ ॥

शतावरी, गोरखमुंडी, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी, पौहकरमूल, भारंगी, बांसा, कटेहली, खैर, मूसली, इन्होंको जुदे २ वीस वीस तोला प्रमाण लेवे ॥ ६९ ॥ फिर इन्होंको जलमें पकावे जब चतुर्थांश क्वाथ बाकी रहे तब उतारि तिसको वस्त्रमांहके छानी पीछे इनआगे कहीहुई औषधोंको गेरै ४८ तोले प्रमाण शहद मिलावे ॥ ७० ॥ और ४८ तोला प्रमाण लोहाका चूर्ण गेरै और खांड तथा घृत इन्होंको समानभाग ६४ तोले प्रमाण गेरै फिर लोहेके पात्रमें पकावे ॥ ७१ ॥ पीछे पकके गुडके समान होजावें तब वंशलोचन, वायविडंग, पीपली, सूंठि, दोनोंजीरे, गोखरू, त्रिफला, भंगरा, धनियां, मिरच, केशर ॥ ७२ ॥ इनसबोंको चार २ तोला प्रमाण लेवे पीछे इनसबोंका चूर्ण मिला अच्छीतरह घोटि घृतके चीकने कडाहेमें घाल धरे पीछे इसको एक तोला प्रमाण हमेशै खावै ॥ ७३ ॥ और प्रातःकाल सरोवरके जलका अनुपान करै और भारे तथा खट्टे और वातवाले पदार्थ खानें चाहिये और भगंदर, शोजा, रक्ताम्ल, श्वास, राजयक्ष्मा ॥ ७४ ॥ विशोष, कुष्ठरोग, गुल्म, इनरोगोंका नाश करता है और बलको देनेंवाला है और वीर्यमें हित है और रक्तपित्तरोगको शीघ्रही नाशता है और योनिमें वहताहुआ रक्त, योनिका शूल, ॥ ७५ ॥ रक्तातिसार, रुधिरप्रमेह, लिंगका रोग, और बस्तिस्थानका रोग इन्होंको नाशता है और कांतिको करनेंवाला है और तेज, पुष्टि, बल, इन्होंको बढाता है ॥ ७६ ॥

अथ रक्तातिसारचिकित्सा ॥

रक्तातिसारे च प्रयोजनीयं रक्तप्रवाहे सरुजे सदाहे ॥ फलत्रिकञ्च सविषा समङ्गा सपर्पटं दाडिमधातकीनाम् ॥ ७७ ॥ चूर्णं मधुशर्करया समेतं तथैव दध्ना सघृतं सलेहम् ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रवाहं योनिप्रवाहं सततं स्त्रियश्च ॥ ७८ ॥ निवारयत्याशु हितं नराणां बालेऽतिसारे प्रशमाय योग्यम् ॥ ७९ ॥

और रक्तातिसार तथा पीडासहित और दाहसहित रक्तप्रवाह, इन रोगोंमें त्रिफला, अतीश, मंजीठ, पित्तपापडा, अनारदाना, धवके फूल,॥७७॥ इन्होंका चूर्ण बना तिसमें खांड और शहद मिला और दही, घृत ये मिला फिर अवलेह बनाके देना चाहिये यह अवलेह रक्तातिसार रुधिरप्रवाह, स्त्रीके निरंतर योनिका प्रवाह ॥ ७८ ॥ इन्होंका निवारण करता है और मनुष्योंको हित है बालकके अतिसारको शांत करता है ॥ ७९ ॥

अथ योनिप्रवाहचिकित्सा ॥

योनिप्रवाहे मधुकं समङ्गा एलादलं निम्बदलानि पथ्या ॥ मुस्ता विशाला कटुरोहिणी च कल्को हितः शर्करया युतोऽयम् ॥ ८० ॥ योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च सयोनिशूलं सरुजां तृषार्त्तिम् ॥ एला समङ्गा सहशाल्मलीनां हरीतकी मागधिका समांशा ॥ ८१ ॥ क्काथोदितः शर्करया समाध्व्या योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च॥ ८२ ॥

योनिके प्रवाहमें मुलहटी, मंजीठ, इलायचीके पत्ते नींबके पत्ते हरडै नागरमोथा, इंद्रायण कुटकी, इन औषधोंका कल्क बना तिसमें खांड मिला खाना चाहिये ॥ ८० ॥ यह विशेष करिकै योनिके प्रवाहको दूर करता है और पीडासहित योनिशूल तृषाकी पीडा इन्होंको दूर करता है और इलायची, मंजीठ, शालवन, हरडै, पीपली, इन्होंको समान भागले ॥ ८१ ॥ क्काथ बना तिसमें खांड और शहद मिला पीनेंसे रक्तप्रवाह दूर होता है ॥ ८२ ॥

घर्मातपान्ते च विदाहि चाम्लं सौवीरकं वा कटुकं कषायम् ॥ क्षारं सुरा वा परिवर्जनीयं सरक्तपित्ते मनुजे हिताय ॥ ८३ ॥ वास्तूकचिल्ली सुनिषणकञ्च जीवन्तिका वा शतपुष्पिका वा ॥ शाका हिता रक्तभवे च पित्ते मुद्गास्तथा लोहिततण्डुलाश्च ॥ ८४ ॥ यवगोधूमचणकाः कोशातक्यः पटोलकम्॥ मुद्गा माषा हिताश्चैव रक्तपित्तनिवारणे

॥ ८५ ॥ हरिणशशकलावास्तित्तिरास्ते कुलिङ्गः ककेरा अपि मयूराः क्रौञ्चपारावतानाम् ॥ पललमनिलपित्तबर्हणं वै हितश्चेद्भवति बलम मोघं सत्त्वतेजश्च कान्तिः ॥ ८६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सा नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

और रक्तपित्तरोगमें मनुष्यके हितकेवास्ते घांम, अग्निकी गरमाई, विदाही, खट्टा पदार्थ कांजी चर्चरा कसैला पदार्थ खारा और मदिरा इन्हेंको वर्ज देवै ॥ ८३ ॥ और वथुआ, चिल्ली वथुवाका भेद, कुरडू, जीवंतिकाशाक, सौंफ, इन्होंके शाक ये सब रक्तपित्तमें हित कहे है और मूंग लाल चावल ये हित कहे है ॥ ८४ ॥ और जव, गेहूं, चणे, तूरीधान्य, परवल, मूंग, उडद, ये अन्न रक्तपित्तको निवारण करनेमें हित कहे है ॥ ८५ ॥ और हिरन, शूशा, लावा, तीतर, चिमणापक्षी, ककेरा, मयूर, कूंजि, परेवापक्षी, इन्होंका मांस खानेंसे और वातपित्तके नाशक मांसके खानेंसे अमोघ बल होता है और सत्वगुण, तेज, कांति, इन्होंको बढाता है ॥ ८६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सानाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ अर्शचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ अथातो वक्ष्यते पुत्र ! अर्शस्य च चिकित्सितम् ॥ षट्प्रकारेण ये प्रोक्तास्तेषां च श्रृणु लक्षणम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! अब अर्श अर्थात् ववासीर रोगकी चिकित्साको कहते है जो छह प्रकारके ववासीररोग कहते है तिन्होंके लक्षणको सुन ॥ १ ॥

अथ अर्शके प्रकार ॥

जाता दोषैस्त्रिभिरपि वातपित्तकफादिकैः ॥ सन्निपाते चतुर्थः स्यात्पञ्चमो रक्तसम्भवः ॥ २ ॥ षष्ठकः सहजो ज्ञेयश्चार्शसां षड्विधो भवः ॥ एवं च षट्प्रकारेण जायन्ते गुदजा रुजः ॥ ३ ॥

वात आदिक तीनदोषोंसे होता है वातसें १ पित्तसे २ कफसे ३ और सन्निपातसे उपजा चौथा होता है और पांचवा रक्तसे उपजाहुआ ववासीर रोग होता है॥ २ ॥ और छठा सहज अर्थात् स्वभावसेही उपजाहुआ होता है इसप्रकारसे गुदाके रोग छहतरहसे होते है ॥ ३ ॥

अथ वातार्शके हेतु और संप्राप्ति ॥

अनशनलघुरूक्षाहारसंसेवनेन कटुलवणविदाहिसेवया वातरोधात् ॥ भवति सततवीप्सा विष्टरेणैव हीना कुपितमरुतवेगादर्शसां भूतिरासीत् ॥ ४ ॥ अनशनोपविष्टस्य मलमूत्रावधारणे ॥ शीतसंसेवनेनापि गुदजः संप्रकुप्यति ॥ ५ ॥ लवणकटुकषायातिक्तसंसेवनेन अमितलघुतरभोज्याच्छीतलेनातिरोधात् ॥ कुपितमलिननामापानमार्गेष्वपाने वितरति रुधिरवातापानमार्गे मरुत्सु ॥ ६ ॥

अनशन अर्थात् भोजन नहीं करनेंसे हलका और रूषाभोजन करनेंसे और चचंरा,नमक, बिदाही, ऐसे पदार्थके खानेंसे और वातके रोकनेंसे और आसनपे निरंतर नहीं बैठनेंसे वायु कुपित होजाता है तिस्से ववासीर रोग होजाता है ॥ ४ ॥ जो भोजनकिये विना बैठारहे और मलमूत्रके वेगको रोकै और शीतल वस्तुका सेवन करै उसके गुदाका वायु कुपित होजाता है ॥ ५ ॥ और नमक, चचंरा, कसैला, कडुआ, इनवस्तुओंके सेवनेंसे अत्यंत ज्यादै हलका भोजनसे वायुकुपित होके मलिननामवाला अपानवायुको गुदामें रहनेंवाला-को बिगाड देता है फिर वह अपानवायु गुदामें रक्तका रोग होजाता है ॥ ६ ॥

अथ पित्तार्शका हेतु ॥

कट्वम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ सेवनानिलतोयेन श्रमाद्व्यायामपीडया ॥ यानव्यवायदोषाद्वा दुर्नामा पित्तसम्भवः ॥ ७ ॥

और चचंरा, खट्टा, नमक, गरम, विदाही, भारा, ऐसे पदार्थके सेवनेंसे वायु, जल, इन्होंके सेवनेंसे भ्रमसे, कसरतकी पीडासे, असवारी और मैथुनके दोषसे पित्तसे उपजा ववासीर होता है ॥ ७ ॥

अथ कफार्शका हेतु ॥

अव्यायामान्नस्य शीलादजस्रं शीताद्वान्याद्वातसंसेवनाच्च ॥
लौल्यात्यम्लात्तैलसंपिच्छलेन दुर्नामा संजायते श्लेष्मरोगात् ॥ ८ ॥

और कसरत नहीं करनेंसे अथवा निरंतर कसरत करनेंसे शीतल वस्तुके सेवनेंसे और वायुके सेवनसे और जिसकी गुठ्ठी बंधतीहो ऐसे पदार्थसे तथा अत्यंत खट्टा पदार्थके सेवनें-से कफसे उपजाहुआ ववासीर होजाता है ॥ ८ ॥

अथ वातार्शका लक्षण ॥

शीतत्वतोदं परुषं विनिद्रा गुल्मोदराष्ठीलविषूचिका वा ॥

शोफावुभौ कृष्णनखस्य नेत्रे लिङ्गानि वातप्रभवार्शसानाम् ॥ ९ ॥

और शीतलता रहै चभकाहो कठोरताहो निद्राही आवे और गुल्मोदर, अष्ठीला, विषूचिका, शोजा, ये उपद्रवहो और नख मुख नेत्र ये काले रहै ये वायुसे उपजेहुए ववासीररोगके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

अथ पित्तार्शका लक्षण ॥

दाहभ्रमौ ज्वरपिपासिशरीरतो वा मूर्च्छारुचिर्नयनदन्तमुखानि यस्य ॥
पीतच्छविर्भवति वा विटभेदनं च पित्तेन जातगुदजस्य च लक्षणानि ॥१०॥

दाहहो भ्रमहो ज्वरहो तृषाहो, शरीरमें मूर्च्छाहो अरुचिहो और नेत्र दांत, मुख, ये जिसके पीले होजावे विष्ठा ढीला होजावे ये पित्तसे उपजा ववासीरके लक्षण है ॥ १०॥

अथ कफार्शका लक्षण ॥

निद्रा च जाड्यघनमन्दरुजा च शोफा शूलातिगुल्मगुदभङ्गुरकास्त
था स्युः ॥ विड्बन्धतोदमरुचिर्गतिमन्दता च श्लेष्मोद्भवा गुदरुजः
खलु भेषजज्ञ ! ॥ ११ ॥

निद्राहो, जडताहो, भारापनहो, मंद पीडाहो, शोजाहो, शूल, अत्यंत गुल्म, गुदाका भंग, विडबंध, चभका, अरुचि, मंदगति, ये लक्षणहो वह कफसे उपजा ववासीर जानना ॥ ११ ॥

अथ त्रिदोषार्शका लक्षण ॥

शूलानाहारुचिः कासो हृल्लासो रुचिनोदता ॥
स्कन्धयोर्जाड्यता सर्वाश्चार्शांसि संभवन्ति हि ॥ १२ ॥

शूलहो, अफाराहो, अरुचिहो, खांसीहो, थुकथुकीहो, अरुचिकी पीडाहो, कंधोंमें जडताहो, ये सब दोषोंसे उपजे ववासीरके लक्षण है ॥ १२ ॥

अथ गुदरोगलक्षण ॥

गुदजलक्षणं वक्ष्ये गुदे कण्डूरस्रक्स्रवः ॥ परुषा विषमा दीर्घा वातेन गुदजा मताः ॥ १३ ॥ सदाहाश्च विचित्राश्च पीता नीलावभासिकाः ॥ लोहितं स्रवते सोष्णं पित्तेन गुदजा मताः ॥ १४ ॥ सदाहाः कठिना ये तु तत्र पाको विड्बन्धता ॥ शीतकण्डूसमस्थूलाः कफेन गुदजा मताः ॥ १५ ॥ सदाहाः सरुजः श्यावाः कण्डूः शोषश्च जायते ॥ स्रवते

सततं रक्तं ते कण्डूासृग्भवार्शसाः ॥ १६ ॥ धान्याङ्कुरसमाकाराः क्रिमयः संभवन्ति च ॥ वातवर्चःसमा लिङ्गा गुदजाः संभवन्ति हि ॥ १७ ॥ वक्रास्तीक्ष्णाः स्फुटितवदना दीर्घबिम्बीफलाभाः केचित्सिद्धार्थककण निभाः कालखर्जूरकाभाः॥ कर्कन्ध्वाभाः कलम्बकसमाः केचिदम्भोज बीजा वायोश्वासौ मनुज! विहितःसम्भवश्चार्शसां च ॥ १८ ॥

अब गुदाके रोगका लक्षणको कहते है गुदामें खाजिहो, रक्त प्रवृत्तहो, कठोरहो, विषमहो, दीर्घहो ये वातसे उपजे गुदाके ववासीरोंके लक्षण है ॥ १३ ॥ दाहवालीहों, विचित्रहों, नीलावर्णवालीहों, गरम रुधिर गिरताहो ये पित्तसे उपजे ववासीरके गुमडियोंके लक्षण है॥१४॥ और दाहवालीहों कठिणहों पकी हुईहो विष्ठाबंधहो शीलीहों, और खाजिहो, समानहो, और स्थूलहो ये कफसे उपजी ववासीरकी गुमडियोंके लक्षण है ॥ १५ ॥ और जो दाहसहितहो, पीडासहितहों, कपिशवर्णवालीहो, खाजिहो, शोषहो और निरंतर रक्त झिरै ये खाजिसहित रक्तसे उपजे ववासीरके लक्षण है ॥ १६ ॥ और धान्यके अंकुरके समान चिन्हवाला क्रिमि होजाते है और वायुके विष्ठाके समान लिंगवाले होते है ॥ १७ ॥ और टेढे, खुलेहुए मुखवाले, तीक्ष्ण, बडे, गुलरके फलके समान तेजवाले, कईक सिरसमके समान आकारवाले और कईक काली खजूरीके समान आकारवाले और कईक बेरके समान आकारवाले अथवा सिरसमके फलके समान आकारवाले तथा कमलगट्टाके समान आकारवाले ऐसे मस्से वायुसे उत्पन्न हुए ववासीरके होते है ॥ १८ ॥

अथ अर्शके स्थान ॥

गुदे नासाकर्णरन्ध्रे मुखे वा तथावर्त्तनेत्रान्तरयोनिमध्ये ॥ नराणां सकाशे भवन्ति रोगा न साध्याः सुखेन क्रिया यत्नतः स्यात् ॥ १९ ॥

और गुदा, नासिका, कान, मुख, नेत्रोंके कोणमें योनिका मध्य,इन्होंमें मनुष्योंके अर्श रोग होते है सो साध्य नहीं है तहां यत्नसे क्रिया करनी चाहिये ॥ १९ ॥

अथ गुदामें अर्शका स्थान ॥

त्रिवलीगुदमध्ये तु बाह्यतोऽभ्यन्तरेषु च ॥ अर्शसां तु विजानीयात्त्रीणि स्थानानि चैव हि ॥ २० ॥ बाह्यतः सुखसाध्यः स्यान्मध्ये कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्योऽन्तर्वलीजातो गुदजो भिषजां वर! ॥ २१ ॥

गुदाके बाहिर और भीतर त्रिवली होती है सो ववासीरोंके तीन स्थान है ॥ २० ॥

बाहिरके स्थानकी ववासीर सुखसाध्य है और जो मध्यमें हो वह कष्टसाध्य होता है और जो गुदाके अंतर्वलीहो वह असाध्य रोग कहा है ॥ २१ ॥

अथ अर्शकी चिकित्साका प्रकार ॥

प्रलेपवर्त्तिभिः स्वेदैर्बाह्याः सिध्यन्ति चोत्तमाः ॥ यन्त्रशस्त्रेण मध्यास्तु अन्तर्जाश्चान्तरौषधैः ॥२२॥ तस्मात्पुत्र ! प्रयत्नेन क्रिया कार्या विजानता ॥ येनातुरस्य रक्षा स्याद्येन रोगो निवर्त्तते ॥ २३ ॥

और प्रलेप, बत्ती लगाना, स्वेद, इन्होंसे बाहिरकी पिंडिका सिद्ध होती है और गुदाके मध्यके मस्सोंको यंत्र शस्त्रसे सिद्ध करै और अंतर भीतरकी ववासीरको औषधोंसे सिद्ध करै ॥ २२ ॥ हे पुत्र! इसवास्ते जानते हुए वैद्यनें ऐसी क्रिया करनी चाहिये कि जिस्से रोगीकी रक्षा होजावे और रोग निवृत्त होवे ॥ २३ ॥

अथ अर्शरोगके उपद्रव ॥

करचरणमुखे वा नाभिमेढ्रे गुदे वा भवति हि यदि पुंसां शोफशोषो ज्वरश्च ॥ श्वसनतमकच्छर्दिर्मोहहृत्पार्श्वशूलं कृशमरुचिविबन्धश्चातिसारोपसर्गाः ॥ २४ ॥ इत्येवं द्वादशार्शसां संभवन्ति ह्युपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्या न साध्या बहूपद्रवाः ॥ २५ ॥

जो यदि मनुष्योंके हाथ पैर, मुख, नाभि, लिंग, गुदा इन्होंमें शोजा और शोषहो तथा ज्वरहो श्वासहो अंधेरी आवै छर्दिहो मोहहो हृदामें पशलीमें शूलहो, माडाहोना, अरुचि, मलका बंधा अतिसार ये होवे तो ॥ २४ ॥ ये बारह प्रकारके ववासीरके उपद्रव जानने उपद्रवोंके विना तो ववासीर रोग साध्य है और उपद्रवों सहित ववासीर असाध्य है ॥ २५॥

अथ असाध्यअर्श ॥

शूलारोचकतृष्णार्त्तश्चातिरक्तप्रवाहवान् ॥
शूलशोफातिसारार्त्तो ध्रुवं न जीवतेऽर्शसः ॥ २६ ॥

शूल, अरुचि, तृषा, इन्होंकी पीडावाला और रक्तके प्रवाहवाला, शोजा अतिसार इन्होंको पीडासे युक्त ऐसा अर्श रोगवाला पुरुष नहीं जीवता है ॥ २६ ॥

अथ पाचनक्वाथ ॥

अतोर्शसां प्रवक्ष्यामि क्रियां चैव भिषग्वर ! वटकाक्षारशस्त्राणि येन संपद्यते सुखम् ॥ २७ ॥ अर्शसां च क्रियाः प्रोक्ताश्चार्शोघ्ना बलवर्द्धनाः ॥

पित्तशोणितशमना न च वातप्रकोपनाः ॥२८॥ तस्यादौ पचनं श्रेष्ठं ततो भेषजमाहरेत् ॥ पथ्यामृता च धनिका पाने क्वाथो गुडान्वितः॥ २९ ॥

हे उत्तम वैद्य! अब ववासीररोगोंकी क्रियाको कहते है गोली, क्षार, शस्त्रक्रिया इन इलाजोंसे सुख होता है ॥ २७ ॥ अर्शरोगोंको नाशनेंवाली और बलको बढानेंवाली अर्श रोगकी क्रिया कही है जो क्रिया रक्तपित्तको शांत करनेंवाली और वातको कोप नहीं करनेंवालीहों सो करनी चाहिये ॥ २८ ॥ ववासीरकी आदिमें पाचन औषध करै पीछे अन्य औषध करै और हरडै, गिलोय, धनियां इन्होंका क्काथ बना तिसमें गुड मिला पीना चाहिये यह पाचन औषध कहा है ॥ २९ ॥

अथ कल्कयोग ॥

दन्ती विडङ्गमगधा धान्या भल्लातकगुडं तिलकुष्ठयुक्तम् ॥
संसिच्य पयसातिकल्को निहन्तिपाने गुदजांश्च रोगान् ॥ ३० ॥

जमालगोटाकी जड, वायविडंग, पीपली, धनियां, भिलावा, गुड, तिल, कूठ, इन्होंका कल्कबना दूधसे युक्तकर तिलका भक्षण करनेंसे गुदाके रोगोंका नाशहोता है ॥ ३० ॥

नागरपिप्पलीबिल्वविडङ्गं दन्ती च शठ्यभया त्रिवृता च ॥ कल्कमिदं सगुडं प्रतिपाने वार्शसि नाशनकारि नराणाम् ॥ ३१ ॥

और सूंठ, पीपली, बेलगिरी, वायविडंग, जमालगोटाकी जड, कचूर, हरडै, निशोत, इन्होंका कल्क बना गुडमिला खानेंसे मनुष्योंके ववासीररोगोंका नाश होता है ॥ ३१॥

अथ पत्रकादिक्काथ ॥

पत्रककेसरशुण्ठीसमैलातुम्बुरुधान्यविडङ्गतिलानाम् ॥ क्काथो
हरीतकीसर्पिर्गुडेन पीतो निहन्ति गुदे गदजानि ॥ ३२ ॥

और तेजपात, केशर, सूंठ, इलायची, धनियां, वायविडंग, तिल, हरडै इन्होंको समानले और धनियांको दो भागले फिर क्काथ बना गुड मिलाके पीनेंसे गुदाके रोगोंका नाशहोता है॥

अथ पिप्पल्यादियोग ॥

पिप्पलिकामभयां गुडयुक्तां प्रातर्भवे नरो भक्षति चैताम् ॥
तस्य गुदकीलकमाशु हन्ति सकामलपाण्डुजरोगवर्गान् ॥ ३३ ॥

और पीपल, हरडै इन्होंको गुडमें मिला प्रातःकाल जो मनुष्य भक्षण करता है उसका गुदकीलकरोग शीघ्रही नष्ट होताहै और कामला, पांडु इनरोगोंके समूहोंका नाशहोता है॥३३॥

अथ वार्ताकियोग ॥

सुस्विन्नवार्त्ताकफलस्य तोयं दध्ना सिताह्वा सलिलाम्रतेन ॥ पाने विधेयं गुदकीलकानां क्रिमीन्निहन्यात्क्रिमिजांश्च रोगान् ॥ ३४ ॥

और वथुआका शाक, बैंगन, इन्होंका जलमें दही और मिसरी मिलाके और अन्य जल नहीं मिलावे पीछे इसके पीनेंसे गुदकीलकरोगका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अथ भल्लातकचतुष्टय ॥

भल्लातकाः कृष्णतिलाश्च पथ्या चूर्णं गुडेनापि नरस्य सेव्यम् ॥ हन्याच्च पाने गुदकीलमेहशूलार्शकासान् विनिहन्ति तस्य ॥ ३५ ॥

भिलावे, कालेतिल, हरडै, इन्होंका चूर्णको गुडके संग खानेंसे गुदकीलक रोग दूर होता है और प्रमेह, शूल, ववासीर, खांसी इन्होंका नाश होता है ॥ ३५ ॥

सूरणकन्दकमर्कदलैस्तु वेष्टितमेव हि कर्दमलिप्तम् ॥ तप्तमनलवर्णकसमानं तत्पयः सैन्धवतैलविमिश्रम् ॥ ३६ ॥ भक्षति चार्शविनाशहेतोर्वातविकारहितोऽपि नरस्य ॥ ३७ ॥

और जमीकंदको आकके पत्तोंसे लपेट तिसपैं गारां लीप फिर अग्निमें स्थापित करदेवै जब तपके अग्निके समान होजावे तब तेल और सेंधानमक मिला और दूध मिला ॥ ३६ ॥ भक्षण करनेंसे ववासीर दूर होती है और वायुके विकारभी दूर होजाते है ॥ ३७ ॥

अथ कल्याणनामकलवण ॥

चित्रकपुष्करमूलशठीनां तेषु समांशास्तिला विनियोज्याः ॥ सूरणकन्दकखण्डसमेतं तेषु समोऽग्निकफलानि दध्यात् ॥ ३८ ॥ सैन्धवं तस्य चतुर्गुणकञ्च भावितमर्कदलेन समस्तम् ॥ तच्च घृतस्य घटे विनिधाय अरण्यगोमयवह्निविपक्कम् ॥ ३९ ॥ क्षीरमिदं लवणघृतपक्कं तक्रयुतं प्रतिपानमतोऽपि ॥ नाशयति गुदकीलककीलान्हन्ति विषूचिभगन्दरानपि ॥ ४० ॥ कामलपाण्डूनाहविबन्धान्गुल्ममरोचकनाशनकारी ॥ मूत्रगदगलकण्डुक्रिमीणां नाशनभद्रकसैन्धवो नाम ॥ ४१ ॥

और चीता, पौहकरमूल, कचूर, इन्होंके समान तिल और जमीकंदके टुकडे और इन्होंके समान मालकांगनी॥३८॥ और इनसबोंसे चारभाग सेंधानमक इनसबोंको आकके पत्तोंका रसमें भावनादे पीछे इसको घृतके चीकनें घडेमें घालके आरनोंकी अग्निमें पकावे ॥३९॥

पीछे इसको दूधमें पकावे फिर नमक, घृत इन्होंमें पका तक्रके संग पीनेंसे गुदकीलकरोगोंका नाश होता है और विषूचिका, भगंदर॥४०॥कामला, पांडुरोग, आनाह, मलका बंधा, गुल्म, अरुचि इन्होंका नाश होता है और मूत्ररोग, गलरोग, क्रिमिरोग, इन्होंको यह कल्याणलवण सैंधव औषध नाशता है ॥ ४१ ॥

अथ भल्लातकवटक ॥

त्रिकटुकमगधानां मूलचित्रं त्रिगन्धं समतुलितममीषां तुल्यभल्लातकानि ॥ सकलमिह समन्तादेकतः संप्रचूर्ण्य द्विगुणतुलितमात्रं योजनीयो गुडस्तु ॥ ४२ ॥ सकलमपि विकुट्य स्निग्धभाण्डे निधाय प्रतिदिनमपि सेव्यं चाक्षमात्रं सुधीरैः॥ गुदजजठररोगं शूलगुल्मान्क्रिमींस्तु जनयति वडवाग्निं हन्ति पाण्डुं क्षयं वा ॥ ४३ ॥

त्रिकटु अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, सहौंजना, चीता, त्रिगंध अर्थात् दालचीनी तेजपात इलायची इन्होंको समान भाग लेवे और इनसबोंके समान भिलाये लेवे पीछे इनसबोंका एक जगह चूर्ण बना इन्होंसे दूनी मात्रा गुड गेरै ॥ ४२ ॥ पीछे इन सबोंको कूटि चिकनें बरतनमें घाल धरै फिर धीर पुरुषोंको दिन २ प्रति एक २ तोला प्रमाण खाना चाहिये यह गुदाके रोग, उदररोग, शूल, गुल्मरोग, क्रिमि, पांडु, क्षयरोग, इन्होंको नाशता है और जठराग्निको दीप्त करता है ॥ ४३ ॥

अथ प्राण देनेंवाला मोदक ॥

नागरं त्रिफलां चैव पलांस्त्रींश्च प्रयोजयेत् ॥ चतुष्पलानि मरिचानां पिप्पलीनां पलद्वयम् ॥ ४४ ॥ पलमेकं त चव्यस्य योज्यं तत्र भिषग्वरैः ॥ तालीसार्द्धं पलं देयं पलार्द्धं पद्मकस्य च ॥ ४५ ॥ जीरकस्य समं मात्रा समेन तुलितो गुडः ॥ सुपक्वा सुघना श्यामा पिप्पलीनां शतत्रयम् ॥ ४६ ॥ उलूखले क्षोदयित्वा स्निग्धभाण्डेन धारयेत् ॥ ४७ ॥ अक्षप्रमाणा गुटिका नराणां प्रातः प्रदेया सकलामयघ्नी ॥ निहन्ति चार्शांसि च पाण्डुरोगं हलीमकं कामलकं भ्रमं वा ॥ ४८ ॥ गुल्मातिसारं च सरक्तपित्तं क्षयं क्षतं चाक्षयमस्य यक्ष्मा ॥ जीर्णज्वरारोचकपीनसानां हितो भवेत्प्राणदमोदकोऽयम् ॥ ४९ ॥

सूंठ, त्रिफला, इन्होंको बारह २ तोले प्रमाण लेवे मिरच १६ तोले लेवे, पीपल ८ तोले ॥ ४४ ॥ चव्य ४ तोले ऐसे वैद्यजन लेवे और तालीसपत्र दो तोले पद्माक २ तोले ॥ ४५ ॥ इन सबोंके समान जीरा और जीराके समान गुड लेवे और सुंदर पकीहुई सुंदर करडी और श्यामवर्णवाली ऐसी ३०० सौ पीपल ॥ ४६ ॥ इन सबोंको ऊखलमें कूट फिर चिकनें बरतनमें घाल धरै ॥ ४७ ॥ यह एक तोला प्रमाणकी गोली मनुष्योंको प्रातःकाल देनी चाहिये सब रोगोंको नाशनेंवाली है और बवासीर, पांडुरोग, हलीमक, कामला, भ्रम, इनरोगोंका नाश होता है ॥ ४८ ॥ और गुल्म, अतिसार, रक्तपित्त, दारुण राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, पीनस, इनरोगोंमें यह प्राणद मोदक हित है ॥ ४९ ॥

अथ कांकायनगुटिका ॥

जाजीपिप्पलिमूलकोलमगधापथ्याग्निकं नागराः सूक्ष्मैला च पलद्वयेऽपि क्रमशः कृत्वा पलैः सैन्धवम् ॥ भल्लातक्यफलानि पञ्चशतकं तेन समस्तेन तु द्वैगुण्येपि पुराणसूरणस्ततः सर्वस्य तुल्यो गुडः ॥ ५० ॥ क्षोदित्वा वटकाक्षमात्रमुपरि जातो विशेषो गुणः कुर्वत्यर्शनिवारणं क्षयमपि पुष्टं तथा सुप्रभम् ॥ मन्दाग्निर्वडवासमो भ्रमहरो हृद्रोगपाण्ड्वामयं शूलानाहभगन्दरो भयहरो दुष्टार्त्तिनिर्वासनः ॥५१॥ कृतोऽप्यर्थे विकारोऽपि ऋषिणा योगयुक्तिना ॥ काङ्कायनेन मतिमान् तेन सौख्यमभीप्सति ५२

जीरा, पीपलामूल, बेर, पीपल, हरडै, चीता, सूंठ, छोटी इलायची इन्होंको आठ २ तोला प्रमाण लेवे और इन्होंके समान सेंधानमक लेवे और पानसौं भिलावे लेवे और पीछे कही इन सब औषधोंसे दूनाप्रमाण पुराना जमीकंद लेवे और इन सब औषधोंके समान गुड लेवे ॥५० ॥ फिर इनसबोंको कूटके मिलालेवे पीछे १ तोला प्रमाण गोली बांधलेवे यह गोली अतिविशेष गुण है बवासीररोगोंको निवारण करती है और क्षयरोगवाला, सुंदर कांतिसे युक्त पुष्ट होजाता है मंदाग्नि अत्यंत तेज होती है भ्रमका नाश होता है और हृदयरोग, पांडु, शूल, अफारा, भगंदर इन्होंके भयको हरनेंवाली है दुष्ट पीडा, बवासीरको नाशती है ॥ ५१ ॥ योगकी युक्तिवाले कांकायनमुनिनें उत्तम औषध कहा है बुद्धिमान् पुरुष इस्से सुखको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

अथ लवणोत्तमादि ॥

लवणोत्तमं वह्निकलिङ्गवचा चिरबिल्वमहत्पिचुमन्दयुतम् ॥
पिब सप्तदिनं समस्तु लुलितं यदि मर्दितुमिच्छसि वायुरुजाम् ॥५३॥

सेंधानमक, चीता, इंद्रजव, वच, करंजुवा, वंकायन, इन्होंको सातदिनतक पीवे जो यदि आयुके रोगोंको नाशनेकी इच्छा हो तो ॥ ५३ ॥

अथ एलादिगुटिका ॥

विश्वोपकुल्यामरिचानि केसरं पत्रं लवङ्गैलकवृद्धिमाह्वयाः ॥
चूर्णं हितञ्च शर्करयुक्तमेतद्गुदामयानामुदरार्त्तिशान्तये ॥ ५४ ॥

सूंठ,१ भाग पीपल, २ भाग मिरच, ३ भाग केशर,४ तेजपात, ५ लोंग, ६ इलायची,७ इन्होंको एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवे पीछे इन्होंका चूर्णमें खांड मिला खाना गुदाके रोग और उदरके रोगकी शांतिकेवास्ते हित है ॥ ५४ ॥

अथ अर्शनाशक चतुःसममोदक ॥

सनागरं पुष्करवृद्धदासकं गुडो नवो मोदकमम्बुदारुकम् ॥
अर्शांसु दुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ ५५ ॥

सूंठ, पौहकरमूल, भिदारा, नवीनगुड, नेत्रवाला, देवदार, इन्होंका मोदक खानेंसे ववासीर रोगोंका नाश होता है और वृद्ध पुरुष तत्काल बालकसरीखा निरोग होता है ॥ ५५ ॥

अथ त्रिकटुकाद्यमोदक ॥

त्रिकटुकमभयानां पुष्करं चित्रकाणां कृमिरिपुतिलचूर्णं कारयेत्संगुडेन ॥ उषसि वटकमेकं भक्षयेद्यो मनुष्यो विनिहितगुदरोगश्चाग्निवृद्धिं करोति ॥ ५६ ॥

सूंठ, मिरच, पीपल, हरडै, पौहकरमूल, चीता, वायविडंग, तिल इन्होंका चूर्ण बना तिसमें गुड मिला जो मनुष्य प्रातःकाल इस मोदकको भक्षण करता है उसके गुदाके रोग दूर होते है और जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

अथ मरिचाद्यमोदक ॥

मरिचं नागरचित्रं सूरणभागोत्तरेण संकुट्य ॥ सर्वसमो गुडयुक्तो मोदको बिल्वप्रमाणं सेवेत् ॥ विनिहितपित्तविकारं क्षयति मनुजानां करोति तनुपुष्टिम् ॥ ५७ ॥

मिरच, १ भाग सूंठ, २ चीता, ३ जमीकंद ४ इन्होंकों एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवै फिर कूटके इनसबोंके समान गुड मिला मोदक बांध लेवै फिर चार तोला इस मोदकको भक्षण करै यह मोदक मनुष्योंके पित्तके विकारको नाशता है और मनुष्योंके शरीरकी पुष्टि होती है ॥ ५७ ॥

अथ सूरणपिंड॥

त्रिसमगतसूरणकन्दो लोहितवर्णेन यो भवेन्मनिमान् ॥ षट्खण्डीकृतवानपि संशुष्कान्षोडशान्भागान् ॥ ५८॥ तस्यार्द्धेन तुलितश्चित्रकशुण्ठ्यौ च तत्र संयोज्या ॥ मरिचस्य चैकभागो गुडेन बद्धस्तु मोदको मनुजैः ॥ ५९ ॥ भक्षित एव हि गुणवान्निहन्ति सकलान्गुदामयान् ॥ त्वरितमग्नेर्दीपनमुक्तं गुल्मानां जठररुजाम् ॥ ६० ॥

तीनोंतर्फसे समान और लाल वर्णवाला ऐसे जमीकंदको लेके तिसके छह टुकडे बना तिन्होंको सुखालेवे यह जमीकंद सोलहभाग लेना चाहिये ॥ ५८ ॥ और चीता, सूंठ, इन्हों-को आठ भाग लेवे मिरच१भाग लेवे पीछे इन्होंको गुडमें मिला मोदक बांधलेवे यह मोदक गुणवाला है ॥ ५९ ॥ और भक्षण कियाहुआ गुदाके सब रोगोंको नाशता है जठराग्निको शीघ्रही दीप्त करता है और गुल्मरोग, जठररोग, इन्होंको शीघ्रही नाशता है ॥ ६० ॥

अथ भीमवटक ॥

त्रिफलमगधजानां मूलतालीसपत्रं क्रिमिरिपुमगधानां पुष्करं चेत्समांशः ॥ मरिचदहनभागश्चैकभागेन शुण्ठी सकलतुलिततुल्यः सूरणस्यैकभागः ॥ ६१ मदनचपलयुक्तं वृद्धदारैलभृङ्गं कृतमिह परिचूर्णं द्विगुणो जीर्णखण्डः॥कृतवटकमुखस्तु प्राश्नुते यो मनुष्यो हरति जठररोगं तस्य चाशु प्रकर्षम् ॥ ६२ ॥ गुदजरुधिरपित्तं कासमन्दाग्निशूलान् क्षयतमकहलीमान् कामलांश्च क्रिमींश्च॥ विदधति बलपुष्टिं दापयेच्चाशु मार्गे प्रबलयति हुताशं योगराजः प्रसिद्धः॥६३॥ योगराजेन युञ्जीत स्मरणेनाप्यगस्तिनः ॥ अस्य योगस्य योगेन भीमोऽपि बहुभक्षकः ॥ ६४ ॥

त्रिफला, पीपलामूल, तालीसपत्र, वायविडंग, पीपल, पौहकरमूल, इन्होंको समानभाग लेवे और मिरच, चीता ये दोनों एक भाग, सूंठ १ भाग और इनसबोंके समान जमीकंद ॥ ६१ ॥ और मैनफल, गठोना, भिदारा, इलायची, भंगरा, इन्होंका चूर्ण और दूनी पुरानी-खांड इन्होंका वटक अर्थात् गोली बना जो मनुष्य खाता है तिसके जठररोग शीघ्रही दूर होजाता है ॥ ६२ ॥ और गुदाका रक्तपित्त, खांसी, मंदाग्नि, शूल, क्षयरोग, तमक, श्वास, हलीमक, कामला, क्रिमि, इनरोगोंको नाशता है और बल पुष्टि इन्होंको बढाता है जठराग्नि-को तेज करता है यह सब योगोंका प्रसिद्ध राजा है ॥६३॥ इसयोगराजको अगस्तिमुनिका स्मरण करके प्रयुक्तकरै इसयोगके प्रतापसे भीमभी बहुतसे भोजनको भक्षण किया करता॥६४॥

अथ चव्याद्यघृत ॥

चव्यं पाठा त्रिकटु मगधा मूलकस्तुम्बुरूणां बिल्वाजाजीरजनिसुरसा पथ्यया सैन्धवं च ॥ पिष्ट्वा चैतत्समगविघृतं पाचयेत्सुप्रयुक्तं पाना भ्यङ्गे हरति गुदजान्वातरोगाश्मरीं च ॥ ६५ ॥

चव्य, पाठा, त्रिकटु, सूंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, धनियां, बेलगिरी, जीरा, हलदी, तुलसी, हरडे, सेंधानमक, इन्होंको बराबरके गौके घृतमें पीस और पकावे यह घृत पीनेंसे और मालिस करनेंसे गुदाके रोग, वातरोग, पथरी, इन्होंको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ पिप्पल्याद्यतैल ॥

श्यामा कुष्ठं मधुकमदनं पुष्पकं चित्रकश्च बिल्वं दारु प्रतिविषशताह्वा कलिङ्गाशठीनाम्॥ पिष्ट्वा तैलं द्विगुणपयसा पाचितं चानुवासे चाभ्यङ्गे वा हितमपि गुदव्याधिनिर्णाशहेतोः ॥ ६६ ॥ वातव्याधिश्रवणरुधिरे कर्णशूलेऽश्मरीणां जङ्घापृष्ठे कटिशिरःशिरावेक्षणे वाततोदे ॥ विष्ठाबन्ध ग्रहनिग्रहनिःसारके मूढगर्भे श्रेष्ठं तैलं सकलनिचयव्याधिसंधारणेन॥६ ७॥

पीपली, कूठ, मुलहटी, मैनफल, मैनफलका पुष्प, चीता, बेलगिरी, देवदार, अतीश, शतावरी, इंद्रजव, कचूर, इन्होंको तेलमें पीस फिर दूनें दूधमें पका इसको अनुवासन बस्तिमें और मालिसमें वरतै यह गुदाकी व्याधिके नाशके हेतुमें हित है ॥ ६६ ॥ और वातव्याधि, कानका रुधिररोग, कर्णशूल, पथरी, जांघ, पीठ, कटि, शिर, इन्होंका रोग नाडियोंका फुरणा, वातका चभका, मलका बंधा, इन्होंको नाशता है ग्रहदोषको दूर करता है मूढगर्भको दूर करता है यह तैल संपूर्णव्याधियोंको नाशता है ॥ ६७ ॥

अथ भीमसेननामकवटक ॥

मुस्ता विश्वविडङ्गचव्यकशठी पथ्या च तेजोवती दन्तीन्द्रात्रिवृता समांश कपली मात्रा च प्रत्येकशः ॥ तस्माच्चाष्टपलान् पुरुष्करमपि षड् वृद्ध दारोपलान् युञ्ज्यात्षोडशसूरणाख्यसलिलद्रोणेऽखिलं कल्कितम् ॥६ ८॥ भूतं भूयः पचेद्गुडत्रिगुणितं युञ्ज्याद्भवेद्वादिनमुद्धृत्य पुनरेव चित्रकत्रिवृत्तेजोवती सूरणम् ॥ एलापत्रकनागकेशरलवङ्गानां समं चूर्णितमेषां षोडशभागयोग्यविहितं सर्वञ्च तं चैकतः ॥ ६९ ॥ स्थाप्यं स्निग्धघटे प्रभातसमये भक्षेदक्षमात्रं वटं जीर्णे क्षीरमपि प्रभूतमतिमान् पा

ने तथा भोजने ॥ अर्शोगुल्मभगन्दरान् ग्रहणीपाण्डुरोगं च कामलां शूलश्चाथ विबन्धकासक्षतजराजयक्ष्मान्निहन्ति ॥ ७० ॥

नागरमोथा, सूंठ, वायविडंग, चव्य, कचूर, हरडै, तेजबल, जमालगोटाकी जड, इंद्रायण, निशोत, इनसबोंको समान भाग चार २ तोला प्रमाण लेवे और पोहकरमूल ३२ तोले लेवे भिदारा २४ तोले प्रमाण लेवे जमीकंद ६४ तोला प्रमाण लेवै फिर इन्होंका कल्क बना १०२४ तोले प्रमाण जलमें पकावे ॥ ६८ ॥ पीछे करडा होजावे तब तिगुना जल मिला फिर पकावे पीछे इसको नीचे उतारि इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, इन्होंको समान भागले चूर्ण बनाके तिसमें मिला देवै और इन्होंका चूर्ण इन औषधोंसे सोलहमां भाग मिलाना चाहिये ॥ ६९ ॥ पीछे इसको चीकनें बरतनमें घाल धरै फिर इसको प्रातःकाल एक तोला प्रमाण भक्षण करै पीछे यह चूर्ण जरजावे तब दूध पीवे और भोजनमेंभी दूधको वरतै और ववासीर, गुल्म, भगंदर, संग्रहणी, पांडुरोग,कामला, शूल, मलका बंधा, खांसी, क्षतजरोग, राजयक्ष्मा, इनरोगोंको नाशता है ॥ ७० ॥

अथ भल्लातकगुड ॥

भल्लातकानां द्विसहस्रकाणां द्रोणे जले पाच्यपदावशेषम् ॥ क्वाथे तु तस्मिन् विपचेद्गुडस्य तुलाप्रमाणं पुनरेव तत्र ॥ ७१ ॥ भल्लातकानां शतपञ्चकानि तत्रैव संयोज्य पलत्रिकं वा ॥ व्योषं जवानीघनसैन्धवानामेलालवङ्गं दलनागकेशरम् ॥ प्रत्येककर्षं तुलितं नियोज्यम् ॥ ७२ ॥ संकुट्य तैले घृतभाजने वा स्थाप्यं प्रभाते वटकप्रमाणम् ॥ भक्षेद्गुडं स तु निहन्ति रोगान्भगन्दरार्शःक्रिमियक्ष्मपाण्डून् ॥ ७३ ॥ गुल्माश्मरीमेहहलीमकं वा सरक्तपित्तं ग्रहणीं निहन्ति ॥ करोति पुष्टिं बलमातनोति वर्णप्रकर्षं सुखमादधाति ॥ ७४ ॥

दोहजार भिलावोंको १०२४ तोले जलमें पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि तिसक्काथमें ४०० तोले गुडको पकावे ॥ ७१ ॥ पीछे तिसमें पानसौ भिलावे मिलावे और त्रिफला, सूंठ, मिरच, पीपल, जमान, नागरमोथा, सेंधानमक, इलायची, लौंग, तेजपात, नागकेशर, इन्होंको एक २ तोला प्रमाण गेरै ॥ ७२ ॥ पीछे इन्होंको अच्छी तरह कूटके मिला तेलके अथवा घृतके चीकनें पात्रमें घाल धरै पीछे प्रभातसमय इसको वडाके प्रमाण भक्षण करै यह गुड भगंदर, ववासीर, क्रिमि, राजयक्ष्मा, पांडु, ॥ ७३ ॥ गुल्म, पथरी, प्रमेह, हलीमक, रक्तपित्त, संग्रहणी, इनरोगोंको नाशता है और पुष्टि करता है बलको बढाता है वर्णको सुंदर करता है सुख करता है ॥ ७४ ॥

अथ अन्यभल्लातकगुड ॥

दशमूलकगुडूचिसठीक्षुरकं सहचित्रकभार्ङ्गीफलासहितम् ॥ भल्लातकंपं चशतं प्रदिशेद्विपचेज्जलद्रोणमितेन तच्च ॥ ७५ ॥ गुडजीर्णशतं प्रददे त्कथितमवतार्य्य सुशीतलमेलसमम् ॥ दलकेसरभृङ्गलवङ्गयुतं कृतचूर्ण मिदं सकलैकमिति ॥ ७६ ॥ घृतभावितमेकदिनं विदधीकृतभाजनके दिनसप्तमिदम् ॥ स्निग्धघटे च विदधीत मनुष्यो दत्तमिदञ्च गुदजाम यसङ्घे ॥ ७७ ॥ मोदकमेकमुषस्सु ग्रसेत्तथा विनिहन्ति गुदामयमेह रुजः ॥ हन्ति कासहलीमककामलकं हितमेव हुताशनदीप्तिकरम् ॥ ७८ ॥ यस्तु शीतजले क्षिप्तो जलेनैव विलीयते ॥ लोहितो लोहि तां याति चैकपाको गुडस्य च ॥ ७९ ॥

दशमूल, गिलोय, कचूर, गोखरू, चीता, भारंगी, त्रिफला, पानसौ, भिलावे, इन्होंको १०२४ तोले जलमें पकावे॥७५॥ पीछे इस क्वाथमें बराबर पुरानागुड मिला पकाके नीचे उतारी शीतलहो जावे तब तेजपात, केशर, भंगरा, लौंग, इन्होंका चूर्ण बना तिसमें मि ला ॥ ७६ ॥ फिर एकदिनतक घृतमें भावनादे पीछे सातदिनतक घृतके पात्रमें घाल रक्खे पीछे चीकनें पात्रमें इसको घालधरे इसमोदकको गुदाके रोगोंके समूहोंमें खावै ॥ ७७ ॥ एक मोदक, प्रातःकाल खावै गुदाके रोग, प्रमेह, खांसी, हलीमक, कामला, इन रोगोंको ना- शता है और जठराग्निको दीप्त करता है ॥ ७८ ॥ और जो जलमें गेरा हुआ डूब जावे और लाल लाल वर्णवाला हो जावे यह गुडका पाकका लक्षण हैं ॥ ७९॥

अथ भल्लातकावलेह ॥

ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं चविकं त्रिफलामृता ॥ सहदेवी गजकणापामा र्गश्च कुठेरकम् ॥८०॥ प्रत्येकं चतुष्पालिकं कल्के द्रोणाम्भसा सुधीः॥ द्वे सहस्रे समे पिष्टे भल्लातक्याः फलानि तु ॥ ८१ ॥ पादावशेषे कल्के च लोहचूर्णं तुलार्द्धकम् ॥ क्षिपेत्कुडद्वयं सर्पिः सर्वं चैकत्र घट्टयेत् ॥ ८२ ॥ फलत्रिकं तथा व्योषं चित्रकं लवणाष्टकम् ॥ विडङ्गानि समां शानि सर्वाणि पलमात्रया ॥ ८३ ॥ चतुष्पलं वृद्धदारोर्मूर्वाख्या तु च तुष्पला ॥ संशुष्कसूरणं कन्दं चूर्णं चाष्टपलोन्मितम् ॥ ८४ ॥ संक्षिप्य

खादयेच्चूर्णमवतार्य्य सुशीतले ॥ स्थापितं मधु संयोज्यं कुडवद्वयमात्र या ॥ ८५ ॥ देयं गुदामये चादौ कल्कमप्रातराशने ॥ अर्शांसि ग्रहणी रोगं कामलाराजयक्ष्मणः ॥ ८६ ॥ गुल्मंक्रिमीनश्मरीं च मन्दाग्निमेहशोणितम् ॥ नाशयत्याशु यक्ष्माणं करोति बलमाकृतेः ॥ ८७ ॥ आशु वृद्धिं प्रकुरुते वलीपलितनाशनम् ॥ रसायनस्य योगेन नरो नागबलो भवेत् ॥ ८८ ॥

गठोना, चीता, नागरमोथा, चव्य, त्रिफला, गिलोय, सहदेवी, गजपीपली, ऊंगा, आजवला, ॥ ८० ॥ इन सबोंको १६ सोलह २ तोला प्रमाणलेवे पीछे कल्क बना एक हजार चौवीस १०२४तोले प्रमाण जलमें पकावे और दो हजार भिलावोंका कल्क बना तिसका क्वाथ बनावे॥८१॥जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि२००तोले प्रमाण लोहाका चूर्ण मिलावे और ३२ तोला प्रमाण घृत मिला पीछे एक जगह घोटि ॥ ८२ ॥ पीछे त्रिफला, सूंठ, मिरच, पीपल, चीता, आठ प्रकारके नमक, वायविडंग, इनसबोंको चार २ तोला प्रमाण लेवे॥८३॥ और भिदारी १६ तोले, मूर्वा, १६ तोले और सूखाहुआ जमीकंद ३२ तोले प्रमाण लेवे इन्होंका चूर्ण बना तिस पाकमें गेरदेवै ॥ ८४ ॥ पीछे शीतल होजावे तब ३२ तोला प्रमाण शहद मिलावे ॥ ८५ ॥ पीछे गुदाके रोगकी निवृत्तिके वास्ते इस कल्कको प्रातःकाल खावे, बवासीर, संग्रहणी, कामला, राजयक्ष्मा इन रोगोंको नाशता है ॥ ८६ ॥ और गुल्म, क्रिमि, पथरी, मंदाग्नि, प्रमेह, रक्तरोग, इनरोगोंको नाशता है और बल आकृति, इन्होंको बढाता है ॥ ८७ ॥ धातुओंकी वृद्धि करता है बुढापाके सफेद बालोंको दूर करता है इस रसायनके योगसे मनुष्य हस्तीके समान बलवाला होता है ॥ ८८ ॥

अथ रक्तकी बवासीरकी चिकित्सा ॥

रक्तार्शसामुपचारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक !॥ प्रातस्तिलान्भक्षयेच्च नवनीतविमिश्रितान् ॥ ८९ ॥ सितानागरकयुक्तं नवनीतं सशर्करम् ॥ केसरं मातुलुङ्गस्य विडङ्गशर्करायुतम् ॥ ९० ॥ भक्षेत्कूष्माण्डकालेहं नवनीतेन शर्कराम् ॥ एतेन रक्तगुदजाञ्छमयन्ति विचक्षणाः ॥ ९१ ॥ समङ्गाशाल्मलीपुष्पं चन्दनं ककुभत्वचम् ॥ नीलोत्पलमजाक्षीरं पिष्ट्वा पानमसृग्गदान् ॥ ९२ ॥ कुटजमूलसकेसरमुत्पलं खदिरधातुकिमूलशृतं पयः ॥ पिबति मक्षणयोगमसृग्भवं गुदजनाशनकारिविकारणम् ॥ ९३ ॥

अब रक्तके ववासीरकी चिकित्साको कहते हैहे पुत्र! सुन तिलोंको नौनीघृतमें मिला प्रातः भक्षण करै॥८९॥ और मिसरी, सूंठ, नौंनीघृत, खांड, इन्होंको मिला खावै और बिजौराकी केशर, वायविडंग, खांड, इन्होंको खावे ॥ ९० ॥ अथवा कोहलेके अवलेहको नौंनीघृत और खांडके संग खावे, इन इलाजोंसे वैद्यजन रक्तकी ववासीरोंको शांत करै ॥ ९१ ॥ और मंजीठ, सालवणका पुष्प, चंदन, अर्जुनवृक्षकी छाल, नीलाकमल, इन्होंको बकरीके दूधमें पीस पीनेंसे रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९२ ॥ कूडाकी छाल, और जड, कमलकेशर, खैरकी जड, धवकी जड, इन्होंमें दूधको पका क्वाथ बना जो मनुष्य पीवता है तिसकी गुदाके रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९३ ॥

अथ वर्त्तियोग ॥

कुक्कुटस्य पुरीषञ्च तथा पारावतस्य च ॥ गृहधूमं च सिद्धार्थं धत्तूरक दलानि च ॥ काञ्जिकेन च संपिष्य वर्त्तिं सञ्चारयेद्गुदे ॥ ९४ ॥ सूरणं कन्दकवर्त्तिर्विधेया मल्लीरसेन घृतेन च लिप्त्वा॥ रोगगुदे गुदकीलक माशु नाशयते गुदजांश्च क्रिमींश्च ॥ ९५ ॥ हरिद्रा मार्कवं कुष्ठं गृहधूमं सुवर्चलम् ॥ सिद्धार्थकरसश्चैव काञ्जिकेन च पिष्यते ॥ ९६ ॥ मधुना सह वर्त्तिः स्याद्गुदे सञ्चारिता यदि ॥ अर्शसां नाशनं चैव करोति सहसा नृणाम् ॥ ९७ ॥

मूरगाकी वींट, कबूतरकी वींट, घरका धूवां, सिरसम, धतुराके पत्ते, इन्होंको कांजीमें पीस गुदामें बत्ती चढानीं चाहिये ॥ ९४ ॥ और जमीकंदकी बत्ती बना मोगरीके रससे और घृतसे लीपि गुदामें चढानेंसे गुदकीलक, गुदाके क्रिमि, इन रोगोंका नाश होता है ॥ ९५ ॥ और हलदी, भंगरा, कूट, घरका धूवां, कालानमक, इन्होंको सिरसमके रसमें और कांजीमें पीस ॥ ९६ ॥ पीछे शहद मिला बत्ती बना गुदामें चढानेंसे शीघ्रही ववासीररोगोंका नाश होता है ॥ ९७ ॥

अथ देवदाल्यादि लेप ॥

देवदालीपलसम्मितश्च हुतभुग्व्योषै रसानां गणान्षड्ग्रन्थापिचुमन्दवारि ककणाभार्ङ्गीशिलातैलकम् ॥ पिष्ट्वा श्लक्ष्णसमस्तकाञ्जिकयुतं दत्वा शिलालेपनं दुर्नामानि हन्ति तथैव गुदजान्सर्वातिसारामयान् ॥ ९८ ॥

ताडका मस्तक, चीता, व्योष अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंको चार २ तोला प्रमाण

लेवे पीछे इन्होंका रस निकास लेवे और वच, नींब, नेत्रवाला, पीपली, भारंगी, शिलाजीत, इन्होंको समान भागले पीछे, तेलमें और कांजीमें तथा पूर्वोक्त औषधोंके रसमें इन्होंको बारीक पीस शिलापे लीप देवे पीछे शिला ऊपरसे उतार गुदापे लगानेंसे बवासीर, सब प्रकारके अतिसार इन्होंका नाश होता है ॥ ९८ ॥

अथ अर्शरोगपरशस्त्रादिकर्म ॥

यन्त्रं शस्त्राग्निकार्यञ्च कथितं तत्तु शल्यके ॥ यथा यन्त्रेण छिद्यन्ते दाहस्तत्र विधेयकः ॥ ९९ ॥ चर्मकीलं तथा छित्त्वा दग्धं क्षारेण धीमता ॥ पक्कजम्बूसमो वर्णो क्षारदग्धे प्रशस्यते ॥ १०० ॥ दग्धं वा सूरणक्षारं कदलीजीवमुद्गकैः ॥ पलाशकोकिलाक्षारमपामार्गघृतान्वितम् ॥ १०१ ॥ क्षारदाहे प्रशस्येत नवनीतघृतेन वा ॥ कुष्ठं पथ्या तथा निम्बपत्राणि च मनःशिला ॥ १०२ ॥ तस्मान्मधुघृतमिश्रं निर्धूमाङ्गारके क्षिपेत् ॥ धूपयेद्गुदजांतेन यथा सम्पद्यते सुखम् ॥ १०३ ॥ मनःशिलानागरकं सगुग्गुलं ससार्षपम् ॥ देवदारु सपौष्करं विशल्यासर्जिकारसम् ॥ १०४ ॥ घृतेन धूपयेद्गुदजं गुदामयं भगन्दरम् ॥ निहन्ति दुष्टपीनसं व्रणं सपूयगन्धिकम् ॥ १०५ ॥ निर्गुण्डीदलपत्रहरितालं तथा सार्षपचूर्णकं देवाह्वं घृतशर्करामधुयुतं धूपं गुदजादिके ॥ दुर्नामे सरुजे व्रणे च विषमे दुष्टे विसर्पेषु च पामापीनसकासनाशनकरो धूपो ग्रहोच्छेदनः ॥ १०६ ॥

और यंत्र, शस्त्र, तथा अग्निकर्म कहा है वह शल्यरोगमें करै और जो यंत्रसे छेदन कियाजावे तहां दाह करना चाहिये ॥ ९९ ॥ और चर्मकीलको छेदन करके क्षारसे दग्ध करै और जो पकाहुआ जामनके फलके समान वर्णवालाहो वह क्षारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है ॥ १०० ॥ और जमीकंदका खार, केला जीवक, मूंग इन्होंका खारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है और केशू, कोलिस्ता, ऊंगा इन्होंका खारको घृतमें युक्तकर अथवा नौंनीघृतमें युक्तकर ॥ १०१ ॥ क्षारदाह करना श्रेष्ठ कहा है और कूठ, हरडै, नींबके पत्ते, मनसिल, ॥ १०२ ॥ इन्होंको शहदमें मिला धूवांसे रहितहुआ अंगारपे गेरै पीछे तिस्से गुदाके मस्सोंके धूमनी देवै तब रोगीको सुख प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥ और मनसिल,

सूंठ, गूगल, सिरसम, देवदार, पौहकरमूल, कलहारी, साजीखार, ॥ १०४ ॥ इन्होंको घृतमें मिला धूप देनेंसे ववासीरका मस्सा, गुदाके रोग, भगंदर, दुष्टपीनस, रादिकी गंधसे युक्त व्रण, इन्होंको नाशता है ॥ १०५ ॥ संभालूके पत्ते, तेजपात, हरताल, सिरसमका चूर्ण, देवदार, इन्होंको घृत, खांड, शहद इन्होंमें मिला धूप देनेंसे गुदाके रोग दूर होते है पीडासहित ववासीर, विषम और दुष्ट विसर्परोग, पाम, पीनस, खांसी, इनरोगोंको नाशता है और यह धूप ग्रहदोषको दूर करता है ॥ १०६ ॥

अथ अर्शरोगमें पथ्य ॥

एवं क्रियाविधिः प्रोक्तश्चातः पथ्यानि मे शृणु ॥ शालिषष्टिकमुद्गाश्च कुलत्थाढक्यवास्तुकम् ॥ १०७ ॥ चिल्ली च शतपुष्पा च कूष्माण्डक पटोलकम् ॥ कारवेल्लं च तुण्डीरं सूरणो राजिकार्जकम् ॥ १०८ ॥ गुडस्तक्रं घृतं चैतत्प्रशस्यन्तेऽर्शसां सदा ॥ सूकरः शल्लकी गोधा मूषको वा सरीसृपः ॥ १०९ ॥ लावतित्तिरवार्त्ताकमांसानि कथितानि च ॥ ११० ॥ वल्लूरमत्स्यदधिपिच्छलतैलबिल्ववार्त्ताकभोजनमतिप्रतिवर्जनीयम् ॥ निप्राकृति निशि दिवा शयनञ्च शीतं शीतान्तमेव परिवर्जितमादरेण ॥ १११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अर्शश्चिकित्सा नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकारसें क्रियाओंकी विधि कही है अब पथ्यवस्तुओंको कहते है शालिसंज्ञक चावल, सांठी चावल, मूंग, कुलथी, तुरीधान्य, वथुवा ॥ १०७ ॥ चिल्लीशाक अर्थात् वथुवाका भेद, सौंफ, कोहला, परवल, करेला, तोरी, जमीकंद, सिरसमकी डांकल, इन्होंका भोजन और शाक हित कहा है ॥१०८ ॥ और गुड, तक्र, घृत, ये ववासीरवालोंको हित है और शूर, शेह, गोह, मूंसा, सर्प, आदि ॥ १०९ ॥ लावा, तीतर, वत्तक, इन्होंके मांस पथ्य कहे है ॥ ११० ॥ और शूखामांस, मत्स्यका मांस, दही, झागोंवाला पदार्थ, तेल, बेलगिरी, वत्तकका मांस, इन्होंका ज्यादै भोजन नहीं करै और रात्रीमें प्रकृतिके अनुसार शयन करै दिनमें नहीं सोवै और शीतल पदार्थोंको वर्ज देवै ॥१११॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

अथ खांसीकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ अथ वक्ष्यामि कासानां निदानं सचिकित्सितम् ॥ कासांश्चाष्टविधांश्चैव शृणु पुत्र! महामते! ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—इस्से अनंतर कास अर्थात् खांसीरोगोंका चिकित्सासहित निदानको कहते है खांसी आठ ८ प्रकारसे होती है सो हे पुत्र! हे महामते! सुन ॥ १ ॥

अथ कासरोगके हेतु ॥

हास्यात्प्रहास्यरजसानिलसंनिरोधाद्धिमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य ॥वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव संजायतेऽपि मनुजां प्रतिधाम कासः ॥२॥ संसेवनान्मधुरपिच्छलजागरेण स्वप्नैर्दिवातिदधिगौल्यहिमाशनेन ॥संजायते मदनतैलमथाल्पकन्दी मद्येन वा भावि जनुः कफस्य॥ ३ ॥

हास्यसे हासाके और वायुके रोकनेंसे मार्गमें विशेष गमन करनेंसे भोजनका वेग रोकनेंसे छींकके रोकनेंसे, मनुष्योंको खांसी रोग होता है ॥ २ ॥ और मधुर तथा झागोंवाला पदार्थके सेवनेंसे जागनेंसे दिनमें सोनेंसे और अत्यंत दही, गुली बंधनेंवाला पदार्थ, ठंढा पदार्थ इन्होंके भोजन करनेंसे तथा मैनफल, तेल, अल्प कंद, इन्होंके भक्षण करनेंसे मदिरा पीनेंसे खांसीमें कफ उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथ कासरोगकी संप्राप्ति ॥

उदान ऊर्ध्वगतिवैपरीत्यात्कफेन प्राणानुगतेन दीर्घः ॥ हृदं निरेत्य कफकासकण्ठे करोति तेनापि च काससंज्ञाम् ॥४॥

नाभिमें रहनेंवाला उदानवायु ऊपरको विपरीत होजानेंसे कफके संग प्राणवायुके दीर्घ संग होनेंसे हृदामें प्राप्तहुआ कफ खांसीके संग कंठमें प्राप्त होजाता है तिस्से खांसी रोग होता है ॥ ४ ॥

अथ कासरोगके प्रकार ॥

कासाश्चाष्टौ समुद्दिष्टाः क्षतजोऽन्यः प्रकीर्त्तितः ॥ वातिकः पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकः सान्निपातिकः ॥ ५ ॥ वातपित्तसमुद्भूतः श्लेष्मपित्तसमुद्भवः ॥ सप्तमो लोहितेनात्र चाष्टमो जायते क्षयात् ॥ ६ ॥ न वातेन विना

श्वासः कासो न श्लेष्मणा विना ॥ न रक्तेन विना पित्तं न पित्तरहितः क्षयः ॥ ७ ॥ कथितः सम्भवश्वासश्वातो वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ येन संलक्ष्यते नृणां कासश्चाष्टविधः परः ॥ ८ ॥

खांसी आठ प्रकारसेभी होती है एक खांसी क्षतज होती है वातसे १ पित्तसे २ कफसे ३ सन्निपातसे ४ वातपित्तसे ५ कफपित्तसे ६ और सातमी रक्तसे और अठमी क्षयसे होती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ वातके विना श्वास नहीं होता कफके विना खांसी नहीं होती रक्तके विना पित्त नहीं होता पित्तके विना क्षयरोग नहीं होता यह सिद्धांत है ॥ ७ ॥ श्वासकी उत्पत्ति तो कहदी है अब लक्षण कहते है जिस्से मनुष्योंकी आठप्रकारकी खांसी जानी जावेगी ॥ ८ ॥

अथ वातसे उपजी खांसीका लक्षण ॥

क्षीणेन्द्रियः पार्श्वरुजोऽतिवेगः शूलावृतो वा गलके च बद्धः ॥ निद्राकृतिर्भिन्नस्वरो मनुष्यो वातेन कासस्य भवेत्प्रकाशः ॥ ९ ॥

इंद्रिय क्षीणहों पशलीमें पीडाहो अत्यंत वेगहो शूलहो गलबंधा रहै निद्रा आवे स्वर फटा रहै तो वातसे उपजी खांसी जाननी ॥ ९ ॥

अथ पित्तसे उपजी खांसीके लक्षण ॥

कण्ठे विदाहो ज्वरशोषमूर्च्छातृष्णाभ्रमः पित्तभवे च कासे ॥ आस्ये कटुत्वं च शिरोऽर्त्तिपित्तं निष्ठीवते पीतनखानि नेत्रे ॥ १० ॥

कंठमें दाहहो ज्वर, शोष, मूर्च्छा, तृषा, भ्रम ये हो तब पित्तसे उपजी खांसी जाननी और मुखमें कडुआपनहो पित्त थूके शिरमें पीडाहो नख, नेत्र, ये मिले रहै ॥ १० ॥

अथ कफकी खांसीके लक्षण ॥

जाड्यं वमिः पाण्डुभवं च कासं निष्ठीवते यः सघनं कफं वा ॥ भक्तारुचिर्वा कफपूर्णदेहे घनः स्वरः श्लेष्मभवे च कासे ॥ ११॥

जडताहो, वमनहो पीलिया रोगकी खांसीके लक्षणहो और चीकना करडा कफको थूके भोजनमें अरुचिहो कफसे पूर्ण शरीरहो भारा स्वरहो ये कफसे उत्पन्न हुई खांसीके लक्षण है ॥ ११ ॥

अथ त्रिदोषकी खांसीके लक्षण ॥

कण्डूदाहश्वासच्छर्दिशोषारोचकपीडिताः ॥ शिरोऽर्त्तिशोफहृल्लासः कासे त्रिदोषसम्भवे ॥ १२ ॥ कासः कण्डूः पिपासा च कुक्षिशूलो विनिद्रता॥

शुष्ककासः पिपासा च वातपित्तोद्भवः कफः॥१३॥धूमगन्धः पीतवर्णोऽ क्षिप्रपाकी सरक्तकः॥रक्तनेत्रः पिपासाद्यःपित्तश्लेष्मान्वितःकफः ॥१४॥

खाजिहो, दाहहो, श्वासहो, छर्दिहो, शोषहो, अरुचिकी पीडाहो, शिरमें पीडाहो, शोजा हो, थुकथुकीहो, ये त्रिदोषसे उपजी खांसीके लक्षण हैं ॥ १२ ॥ और खांसीकी धसकहो खाजिहो तृषाहो कुक्षिमें शूलहो निद्रा नहींआवे, सूखी खांसीहो, तो वातपित्तसे उपजा कफ, अर्थात् खांसी जाननी ॥ १३ ॥ धूवां सरीखी गंधहो, पीला वर्णहो आंखि पकजावें कफमें रक्त अति लाल नेत्रहों तो पित्तकफसे उपजी खांसी जाननी ॥ १४ ॥

अथ क्षतजखांसीके लक्षण ॥

व्यवायातिप्रसङ्गेन वेगरुद्धाभिघातकः॥भारोद्धरणयानेन जायते क्षतजः कफः ॥ १५ ॥ तेन हृदि व्यथा रूक्षं कासते च सशोणितम् ॥ श्वासः संक्षीयते गात्रं दीनो मन्दज्वरातुरः ॥ १६ ॥ वेपते पर्वभेदश्च मोहभ्रमनि पीडितः ॥ एवं क्षतजनिर्दिष्टो नृणां प्राणापहारकः ॥ १७ ॥

मैथुनके अत्यंत प्रसंगसे वेगके रोकनेंसे अभिघातसे और बोझाके उठानेंसे क्षतसे उप-जाहुआ कफ जानना ॥ १५ ॥ तिस करके हृदामें पीडाहो रूखी खांसी आवे अथवा खां-सीमें रक्त आवे श्वासहो गात्र क्षीण हुआजावे गरीब रहै मंदज्वरकी पीडा रहै कंपना रहै ह-डफूटणीहो, मोह, भ्रम, इन्होंकी पीडाहो ऐसे मनुष्योंके क्षतज अर्थात् चोटसे उपजीहुई खांसी जाननी यह प्राणको हरनेंवाली खांसी है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ रक्तकी खांसीके लक्षण ॥

अल्पायासात्क्षतात्क्षीणात्संपातात्क्षणभोजनात् ॥ पातनाघातयोगेन जायते रक्तजः कफः ॥ १८ ॥ विस्रगन्धास्यहृच्छूलदीनो वै विकलेन्द्रियः ॥ रक्तनिष्ठीवनोपेतः श्वासो वापि मदातुरः ॥ १९ ॥ क्षीयते सततं गात्रं मोहस्तृष्णा च जायते॥इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं रक्तकासं विनिर्दिशेत्॥२०॥

कछुक परिश्रम करनेंसे चोटसे क्षीण होनेंसे गिरनेंसे और दुष्टभोजनसे गिरनेंके घातके योगसे रक्तसे उपजाहुआ कफ होजाता है ॥ १८ ॥ मुखमें बुरी गंधआवे हृदामें शूलहो गरीब रहै इंद्रिय विकल रहै रक्तके थूकनेंसे युक्तहो श्वासहो मदसे पीडितहो ॥ १९ ॥ श-रीर निरंतर क्षीणहुआ जावे मोहहो, तृषाहो, इन लक्षणोंसे युक्त जो हो वह रक्तसे उपजी खांसी जाननी ॥ २० ॥

अथ सबप्रकारकी खांसियोंके लक्षण ॥

अथ क्षयानुमानेन लक्ष्यते कासलक्षणम् ॥ पाण्डुरोगे तथा यक्ष्मे गुल्मे वापि क्षतक्षये ॥ २१ ॥ शोफार्शसां प्रतिश्याये चावश्यं काससम्भवः ॥ एतेषां चानुमानेन कासं संलक्षयेद्भृशम् ॥ २२ ॥ स्थविराणां रक्त कासः सोऽपि याप्यः प्रकीर्त्तितः ॥ बालानां जायते कासो धात्रीवैक ल्ययोगतः ॥ २३ ॥ एते कासाः समुद्दिष्टा दशभिर्भिषगुत्तमैः ॥ तेषां क्रियाप्रतीकारः पथ्यभेषजमेव च ॥ २४ ॥

इस्से अनंतर क्षयके अनुमान करके खांसीका लक्षण कहते है पांडुरोग, राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षतक्षय, शोजा, ववासीर, पीनस, इन्होंमें अवश्य खांसी होजाती है इन्होंके और अनुमानसे अत्यंत खांसीका लक्षण जानना ॥ २१ ॥ २२ ॥ और वृद्ध पुरुषोंके जो रक्तसहित खांसी होती है वह याप्यरोग कहाता है और धायके विकलताके योगसे बालकोंके खांसी उत्पन्न होती है इन दशप्रकारके लक्षणोंकरके वैद्यजनोंनें खांसी कही है सो तिन्होंको बंध करनें-वाली क्रियाओंको कहते है और पथ्य औषधोंको कहते है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ बातकी खांसीकी चिकित्सा ॥

शतमूलिकाक्वथितः कषायः पीतः कणाचूर्णयुतः सुखोष्णः ॥ नृणां निहन्यान्मरुतोद्भवं तु कासं सशूलं च विपाचनं स्यात् ॥ २५ ॥ भार्ङ्गी शठीगोस्तनीशृङ्गवेरभृङ्गीकणाचूर्णयुतोऽवलेहः ॥ गुडेन तैलेन हितो नरा णां मरुद्भवकासविकारनाशनः ॥ २६॥ विश्वा दुःस्पर्शभृङ्गी शठी पुष्क रं दारु भार्ङ्गी कणा मुस्तं रास्नायुतम् ॥ शर्करायुक्तमनुदिनञ्च चूर्णं का सं निःश्वासवातोद्भवं हन्ति वै ॥ २७ ॥

महाशतावरीका क्वाथ बना तिसमें पीपलीका चूर्ण मिला सुखसे सुहाता हुआ गरम२ पी-नेंसे मनुष्योंके वातसे उपजी हुई शूलसहित खांसी दूर होती है और पकजाती है ॥ २५ ॥ और भारंगी, कचूर, दाख, अदरक, भांग, पीपल, इन्होंका चूर्ण बना गुडमें और तेलमें अ-वलेह बना चाटनेंसे वातसे उपजी हुई खांसी दूर होती है ॥ २६ ॥ और सूंठ, धमांसा, भांग, कचूर, पोहकरमूल, देवदार, भारंगी, पीपल, नागरमोथा, रास्ना, इन्होंका चूर्ण बना खांड मिला खानेंसे श्वाससहित वातकी खांसी दूर होती है ॥ २७ ॥

अथ कट्फलआदि औषध ॥

कट्फलं कटुतृणं भार्ङ्गी मुस्ता वचा धान्यकम् ॥ पर्पटं देवदारुस्तथा

दार्वी विश्वायुतकर्कटम् ॥ २८ ॥ कल्कयेत्पानमेतन्मधुसंयुतं मानवम्॥ कासिनां कासप्रतीकारकासीत्तथा श्लेष्मसम्भूताय ॥२९॥ क्षयं पीनसं कण्ठग्रहं शोषवातात्मकम्॥कफं नाशयत्याशुहिक्काज्वरं श्लेष्मकम् ॥३०॥

कायफल, रोहिषतृण, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियां, पित्तपापडा, देवदार, दारुहलदी, सूंठ, काकडासींगी ॥ २८ ॥ इन्होंका कल्क बना शहद मिला पीना हित है इस औषधसे खांसी रोगवालोंकी खांसी दूर होती है और कफ दूर होता है ॥२९॥ क्षय, पीनस, कंठग्रह, वातसे उपजा शोष, कफ, हिचकी, कफसे उपजा ज्वर इन्होंको नाशताहै ॥ ३० ॥

अथ द्राक्षादि औषध ॥

द्राक्षामलक्याः फलपिप्पलीनां कोलं सखर्जूरयुतोऽवलेहः ॥
रक्तपित्तकासक्षयनाशकारी सकामलं पाण्डु हलीमकञ्च ॥ ३१ ॥

और दाख, आंवला, पीपल, चव्य, खिजूर इन्होंका अवलेह बना चाटनेंसे रक्तपित्त, खांसी, क्षयरोग, इन्होंका नाश होता है कामला, पांडुरोग, हलीमक, इन्होंको नाशता है ॥३१॥

अथ वालकादि कल्क ॥

वालाबृहत्यौ मधुकं वृषं च तथैव कुष्ठं पिचुमन्दकञ्च ॥ गवा
स्तनीसंयुतकल्कमेतत्पानं हितं पित्तकफात्मके च ॥ ३२ ॥

और नेत्रवाला, छोटी कटेहली, बडी कटेहली, मुलहटी, वांसा, कूठ, नींब, दाख इन्होंका कल्क बना पित्तकफसे उपजी हुई खांसीमें पीना हित है ॥ ३२ ॥

अथ मुस्तादि चूर्ण ॥

मुस्ताटरूषकफलत्रिकदारुभार्ङ्गी व्याघ्रीसपुष्पफलमूलदलैरुपेता॥ रास्ना विषा च मधुरसादलानि चूर्णं निहन्ति क्वथितेन जलेन कासम् ॥३३॥ बद्धाथवा च गुटिका मधुना गुडेन सिन्धूद्भवेन मगधासमहौषधेन ॥ आस्ये धृता निशि विशालगुणा भवन्ति श्वासं क्षयं क्षतजकासमिदं निहन्ति ३४

नागरमोथा, वांसा, त्रिफला, देवदार, भारंगी, और पुष्प, फल, मूल, पत्ते इन पंचांगोंसहित कटेहली, रास्ना, अतीश, श्रेष्ठ तुलसीके पत्ते, इन्होंका चूर्ण बना, जलमें क्वाथ बना पीनेंसे खांसी दूर होती है ॥ ३३ ॥ अथवा इसचूर्णको शहद तथा गुडमें मिला और सेंधानमक, पीपल, सूंठ ये मिला गोली बांध मुखमें धरे रात्रीकी समयमें यह उत्तम गुणवाली कही है और श्वास, क्षय, क्षतसे उपजी खांसी इन्होंको नाशती है ॥ ३४ ॥

अथ पित्तकी खांसीकी चिकित्सा ॥

शर्करा चैव खर्जूरं द्राक्षा लाजा कणा मधु ॥ सर्पिर्युतो हितो लेहः पित्तकासनिवारणः ॥ ३५ ॥ आटरूषकपत्राणि पिचुमन्ददलानि च ॥ तुलसीस्वरसश्चैव शठी भृङ्गी मरीचकम् ॥ ३६ ॥ शुण्ठीचूर्णं गुडे युक्तं लिह्यात्कासे कफात्मके ॥ भार्ङ्ग्याश्च नागपिप्पल्याः पिबेत्क्काथं सुखोष्णकम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रकस्य रसं नीत्वा मधुना च पिबेत्सुधीः ॥ कासे श्वासे प्रतिश्याये ज्वरे श्लेष्मसमुद्भवे ॥ ३८ ॥ कट्फलं भूतृणं भार्ङ्गी शुण्ठी पर्पटकं वचा ॥ सुराह्वं च जलश्रृतमुक्तञ्च पण्डितैस्तथा ॥ ३९ ॥ मधुना संयुतं पानं कासे वातकफात्मके ॥ श्वासे हिक्काज्वरे शोषे महाकासे च दारुणे ॥ ४० ॥

खांड, खिजूर, दाख, धानकी खील, पीपल, शहद, इनऔषधोंका चूर्णमें घृत मिला लेह बना चाटनेंसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ ३५ ॥ वांसाके पत्ते, निंबके पत्ते, तुलसी, इन्होंका रस और कचूर, भांग, मिरच, ॥३६॥ सूंठ, इन्होंका चूर्ण बना गुडमें मिला चाटनेंसे कफसे उपजी खांसी दूर होती है और भारंगी, गजपीपली, इन्होंका क्काथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीवे ॥ ३७॥ और अदरकका रस निकाल शहदके संग पीना, खांसी, श्वास, पीनस, कफसे उपजा ज्वर इन्होंमें श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥ और कायफल रोहिषतृण, भारंगी, सूंठ, पित्तपापडा, वच, देवदार इन्होंको जलमें पकावे ऐसे पंडितोंनें कहा है ॥ ३९ ॥ पीछे शहद मिला पीनेंसे वात कफसे उपजी खांसी दूर होती है और श्वास, हिचकी, ज्वर, शोष, महादारुण खांसी इन्होंमें श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥

अथ लघुतालीसआदि औषध ॥

तालीसपत्रं मरिचञ्च विश्वाश्यामायुतं चोत्तरभागवृद्ध्या ॥ त्वक्पत्रकेणापि लवङ्गमेलां पिप्पल्या चाष्टौ गुणितां सिताञ्च ॥ ४१ ॥ लिह्यात्प्रभाते श्वसने च कासे प्लीहारुचौ पीनसच्छर्दिहिक्काम् ॥ शोफातिसारं ग्रहणीं च पाण्डुं क्षयं निहन्यात् क्षतजञ्च यक्ष्मम् ॥ ४२ ॥

तालीसपत्र, १ मिरच, २ सूंठ, ३ पीपल, ४ इन्होंको यथोत्तर वृद्धि भागसे ले और दालचीनी, तेजपात, लौंग, इलायची, इन्होंको मिला और पीपलसे आठगुनी मिसरी मिला ॥४१॥ फिर प्रभातसमयमें खानेंसे श्वास, खांसी, प्लीह अर्थात् तिल्ली, अरुचि, पीनस, छर्दि, हिचकी, शोजा अतिसार, संग्रहणी, पांडुरोग, इनरोगोंका नाश होता है और चोटसे उपजा क्षय, राजयक्ष्मा इन्होंको नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ बृहत्तालीसाद्य औषध ॥

तालीसं त्रिफलाप्रियङ्गुमगधामूलञ्च मुस्ता शठी दार्व्येलादलनागकेसर लवङ्गानां तथा नागराः॥ कृष्णाकोलकबालकं सचविका मूर्वा विषा कर्कटं द्राक्षा कुष्ठनिशाग्निवत्सकवृषं गोकण्टतिक्ता तथा ॥ ४३ ॥ वृक्षाम्लं च सदाडिमाम्लकरसं पक्वबदराणि च एतेषां समभागचूर्णविहितं योज्या समा शर्करा ॥ योज्यं चार्द्धपलं निहन्ति क्षतजं कासं तथा श्वासकं पाण्डूकामलमेदशोषगुदजे शस्तं सदा यक्ष्मिणाम् ॥ ४४ ॥

तालीसपत्र, त्रिफला, मालकांगनी, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, देवदार, इलायची, तेजपात, नागकेशर, इलायची, लौंग, सूंठ, पीपली, कंकोल, नेत्रवाला, चव्य, मूर्वा, अतीश, काकडासींगी, दाख, कूठ, दारुहलदी, चीता, कूडाकीछाल, वांसा, गोखरू, कुटकी, ॥ ४३ ॥ विजौरा, अनारदाना, पकेहुए बेर, इन्होंको समान भागले चूर्ण बनावे और सब चूर्णके समान खांड मिलावे, इस चूर्णको आधा तोला प्रमाण खावे यह क्षतसे उपजी खांसी, श्वास, पांडुरोग, कामला, मेद, शोष, गुदाके रोग, राजयक्ष्मा, इनरोगोंको नाशता है ॥ ४४ ॥

क्षयकासे मधुयष्टिकया त्रिदोषजाः ॥

क्षयसे उपजीहुई खांसीमें और त्रिदोषसे उपजीहुई खांसीमें मुलहटीका सेवन करना हित है

आमजे शूलरोगार्त्तिः पर्वभेदो भ्रमः क्लमः ॥
शोषः शिरोव्यथा क्लेदो नेत्रे गम्भीरमिच्छति ॥ ४५ ॥

और आमसे उपजीहुई खांसीमें शूलरोगकी पीडा, संधियोंका भेद, भ्रम, ग्लानि ये होते है और शोषहो, शिरमें पीडाहो, ग्लानिहो, नेत्र गंभीरहो ये लक्षण होजाते है ॥ ४५ ॥

अथ छर्दिलक्षण ॥

खल्ली वा चेतनं वापि अजीर्णाज्जायते वमिः ॥ सापि स्निग्धा च रूक्षा च द्विविधा जायते वमिः ॥ ४६ ॥ गम्भीरनेत्रो वमते विड्बन्धो वातिसार्य्यते ॥ गात्रे खल्लीकरं शूलं तथा शोथातिमूर्च्छना ॥ ४७ ॥ विकलाङ्गो भ्रमार्त्तश्च भ्रमन्तं पश्यते जगत् ॥ शिरोऽर्त्तिर्वेपतेऽत्यर्थं करपादौ हिमोपमौ ॥ ४८ ॥ एतैर्लिङ्गैस्तु संयुक्तां छर्दिं दूरे परित्यजेत्॥असाध्या सर्वयोगैस्तु साप्यजीर्णा सुधीमता ॥ ४९ ॥

अजीर्णसे वमन होनेसे खल्लीरोग होजावे मूर्च्छा होजावे और वह वमनभी स्निग्ध, रूक्ष ऐसे दोप्रकारकी होती है ॥४६॥ जिसके गंभीर नेत्रहों और वमन करे विष्ठा बंधहो अ-

तिसारहो और शरीरमें खड्डी रोगहो शूलहो शोजाहो अतिमूर्च्छाहो ॥ ४७ ॥ अंग विकलहो भ्रमकी पीडाहो जगतको भ्रमताहुआ देखै शिरमें पीडाहो कांपनाहो हाथपैर ठंढेहों ॥ ४८ ॥ इन लक्षणोंसे युक्त जो वमनहो तिसको दूरसेंही त्याग देवै और सब योगोंकरके यह असाध्य है अजीर्णसे उपजा कहाती है ॥ ४९ ॥

अथ वातच्छर्दिकी चिकित्सा ॥

सपञ्चमूलीक्कथितः कषायः ससैन्धवं चामलकश्च कल्कः ॥ क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकं सवातच्छर्दिविनिवारणं च ॥ ५० ॥ दद्यात्क्षीरं शर्करया नरस्य पित्तोद्भूतां बातिशीघ्रं निहन्ति ॥ द्राक्षा वापि क्षीरदार्व्या विचूर्णं लेहो हन्ति सारघाणां पिबन्ति ॥ ५१ ॥ फलत्रिकं पुष्करकं वचां च तथाभयासैन्धवकं गुडेन ॥ चूर्णं विलिह्यात्कफवान्ति हन्ति नरस्य मूत्रेण युतस्य पानम् ॥ ५२ ॥ शठी दार्व्याभया शुण्ठी मागधी घृतसंयुता ॥ चूर्णं तक्रेण संयुक्तं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ ५३ ॥ रक्तशाल्युद्भवा लाजा मधुशर्करयान्विता ॥ ज्वरार्त्ति युवतेः शीघ्रं नाशयत्येव मे मतम्॥५४॥आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु॥गुटिका पलमानेन लेहो हन्ति वमिं ध्रुवम् ॥ ५५ ॥ आर्द्रदाडिमनिर्य्यासश्चाजाजी शर्करान्विता ॥ सतैलमाक्षिकं वापि चत्वारः कवलग्रहाः ॥ ५६ ॥ चतुररोचकान्हति वाताद्यान्द्वन्द्वजान्स्त्रियः ॥ ५७ ॥ त्रिकटुकरजनीद्वयं च फलत्रिकं मध्वा च यावशूकश्च ॥ समकृतमिति चूर्णमेतन्मधुना युतं वमिं निवारयति ॥ ५८ ॥ सगुडं दाडिमं द्राक्षा पथ्या वा नागरगुडयुक्ता ॥ त्रिवृता नागरमथवा गुडेन युक्तं वमिं दधति ॥ ५९ ॥

लघुपंचमूलका क्वाथ बना तिसमें सैंधानमक, आंवला इन्होंका कल्क बना और पीपल मिला इसक्वाथके पीनेंसे वातसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥ ५० ॥ और दूधमें खांड मिला पीनेंसे पित्तसे उपजी खांसी शीघ्रही नष्ट होती है और दाख क्षीरबिदारी इन्होंका चूर्णका लेह बना नासिकासे पीनेंसे खांसीका नाश होता है॥५१॥और त्रिफला, पौहकरमूल, वच, हरडै, सेंधानमक इन्होंका चूर्ण बना गुडमें मिला चाटनेंसे कफकी छर्दि दूर होती है और जिसकै ज्यादै मूत्र उतरताहो उसकोभी इसीका पीना श्रेष्ठ है॥५२॥और कचूर, देवदार,हरडै, सूंठ, पीपल, इन्होंका चूर्णको घृतमें अथवा तक्रमें मिला खानेंसे त्रिदोषसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥५३॥

और शाली चावलोंकी खीलोंमें शहद और खांड मिला खानेंसे शीघ्रही ज्वरकी पीडाका नाश होता है ॥ ५४ ॥ और आंवलाके रसमें चंदनको घिस तिसमें शहद मिला आंवलाके प्रमाण गोली बांधलेवे यह लेह वमनको निश्चय नाशता है ॥ ५५ ॥ अदरकका रस अनारदानाका रस, जीरा, खांड, तेल, शहद इन्होंके कवलग्रह अर्थात् ग्रास बनाके मुखमें धारण करै ॥ ५६ ॥ इन ग्रासोंके धारण करनेंसे वात आदिक दोषोंसे उपजीहुई तथा दोदोषोंसे उपजीहुई और तीन दोषोंसे उपजीहुई वमन दूर होती है ॥ ५७ ॥ और सूंठ, मिरच, पीपल, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, मदिरा, जवाखार, इन्होंको समान भागले चूर्ण बना शहद खानेंसे छर्दिका निवारण होता है ॥ ५८ ॥ और अनारदाना, दाख, इन्होंको मिला अथवा हरडै, सूंठ, इन्होंको, गुड मिला अथवा निशोत, सूंठ, इन्होंको गुडमें मिला खानेंसे वमन दूर होती है ॥ ५९ ॥

अथ पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा ॥

पर्पटं सगुडं क्वाथं शीतलं पाययेन्नृणाम् ॥ हन्ति वमिं महाघोरां सपित्तां भ्रमसंयुताम् ॥ ६० ॥ काकोली काकमाची च क्वाथं शर्करया युतम् ॥ लाजाशर्करसंयुक्तं हन्ति पित्तवमिं नृणाम्॥६१॥ मातुलुङ्गरसश्चैव पथ्या शर्करया युतः ॥ हन्ति कासं पित्तभवं वमिं शीघ्रं नियच्छति ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा पित्तवमिं घोरां सदाहभ्रमदायिनीम् ॥ तस्यारग्वधपत्राणि मधु शर्करयान्वितम् ॥ ६३ ॥ क्षीरपानं प्रशस्तं वा मुस्ताशर्करयान्वितम् ॥६४॥

पित्तपापडा गुड इन्होंका क्वाथ बना शीतल कर मनुष्योंको पीनेंसे पित्तसहित और भ्रमसहित महाघोर वमन दूर होती है ॥ ६० ॥ और काकोली, मकोह, इन्होंका क्वाथ बना तिसमें खांड मिला पीनेंसे अथवा धानकी खीलोंका रसमें खांड मिला पीनेंसे पित्तकी छर्दि दूर होती है ॥ ६१ ॥ और बिजौराका रसमें हरडैका चूर्ण और खांड मिला पीनेंसे पित्तसे उपजी खांसी और वमन दूर होती है ॥ ६२ ॥ और दाह तथा भ्रमवाली घोर पित्तकी छर्दिको देखि तहां अमलतासके पत्तोंका रसमें शहद और खांड मिला पीना ॥६३॥ तथा नागरमोथा, खांड, ये मिला दूधका पीना श्रेष्ठ कहा है ॥ ६४ ॥

अथ कफकी छर्दिकी चिकित्सा ॥

जम्ब्वाम्रकप्रवालानि दाडिमामलकं तथा ॥ मस्तुनोपोषितं पानं हन्याच्छ्लेष्मवमिं नृणाम् ॥६५॥ सर्जार्जुनधवकदम्बकलोलचूर्णं शुण्ठीधान्याकसहितं सगुडं प्रदद्यात् ॥ श्लेष्मोद्भवं वमनमाशु निहन्ति पुंसां शठीकणामधुविडङ्गयुतोऽपि लेहः ॥ ६६ ॥

जामन, आंब, इन्होंके कोमल पत्ते, अनारदाना, आंवला, इन्होंको दहीके मस्तुमें पीस पीनेंसे मनुष्योंके कफसे उत्पन्न हुई छर्दि दूर होती है ॥ ६५ ॥ और रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, धव, कदंब, कंकोल, सूंठ, धनियां इन्होंका क्वाथ बना गुड मिला पीनेंसे कफसे उपजी छर्दि दूर होती है और कचूर, पीपल, शहद, वायविडंग, इन्होंका अवलेह बना चाटना हित है॥६६॥

अथ एलादिचूर्ण ॥

एलालवङ्गगजकेसरकोलसर्जालाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम्॥चूर्णानि मार्कवसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाञ्च॥६७॥ एलादलानि गजकेसरकत्वगेलालामज्जकं दहकं घनं प्रियङ्गुम् ॥ सचन्दनं मगधजासमचूर्णितञ्च लीढ्वा सितासमत्रिदोषवमिं जघान ॥ ६८ ॥

इलायची, लौंग, इलायची, चव्य, रालवृक्ष, धानकी खील, मालकांगनी, नागरमोथा, चंदन, पीपल, भंगरा, इन्होंका चूर्णमें मिसरी मिला चाटनेंसे कफ वात पित्त इनदोषोंसे उपजीहुई छर्दि दूर होती है ॥ ६७ ॥ और इलायचीके पत्ते, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, रोहिषतृण, चीता, नागरमोथा, मालकांगनी, चंदन, पीपल, इन्होंको समान भाग ले चूर्ण बना मिसरी मिला खानेंसे त्रिदोषसे उपजी छर्दिका निवारण होता है ॥ ६८ ॥

अथ छर्दीकी शमनक्रिया ॥

ऊर्ध्वभागगते दोषे विरेचनं प्रशस्यते ॥ तस्मिञ्जातेऽप्यधोभागं वमनं शाम्यति ध्रुवम् ॥ ६९ ॥ अथवा द्विभागगते तदा देयाभया मधु ॥ क्रिमिजं वमनं ज्ञात्वा क्रिमीणां शमनक्रिया ॥ ७० ॥

और खांसीमें जो दोष ऊर्ध्वभागोंमें स्थितहो तो जुलाब दिवानी चाहिये और जो अधोभागमें अर्थात् नींचाके स्थानोंमें दोष प्राप्तहोंवे तो वमन कराना श्रेष्ठ है ॥ ६९ ॥ और जो नींचे तथा ऊपर दोनों भागोंमें दोष स्थित हों तो हरडै, शहद, ये देने चाहिये और क्रिमियोंसे उपजे वमनको जानके क्रिमियोंको शांत करनेंवाली क्रिया करनी चाहिये ॥७०॥

अथ छर्दिरोगमें पथ्यापथ्य ॥

न चोष्णं नातिचाम्लं च न तीक्ष्णं न तथा लघु ॥ तन्दुलीयकशाकं वा न मद्यं काञ्जिकं न तु ॥ ७१ ॥ वमिदोषे च कथितं पथ्यं चात्र शृणुष्व मे ॥ अनूपं शालिभक्तं च शतपुष्पा च वास्तुकम् ॥ ७२ ॥ आढकी मुद्गयूषश्च दधि गुडघृतान्वितम् ॥ अङ्गारमण्डका चाथ वमौ पथ्यं

प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ यथाबलं यथाकालं यथारोगं यथानलम् ॥ तथा दृष्ट्वा प्रकुर्वन्ति पथ्यानां समुपक्रमम् ॥ ७४ ॥ दिवा निद्रां प्रयुञ्जीयाद्व मौ श्वासेऽतिसारके ॥ हिक्काशोषे तथाजीर्णे वमिक्लेदेऽथवा पुनः ॥७५॥ न चोष्णतोयपानञ्च नातिभोजनमेव च ॥ न धावनं न कर्त्तव्यं वर्जयेद्व मनार्दिते ॥ ७६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने छर्दिचि कित्सा नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

और गरम, अत्यंत खट्टा, तीक्ष्ण तथा हलका, चौलाईका शाक, मदिरा, कांजी, इन्होंको वमन रोगमें नहीं खावे ॥ ७१ ॥ अब वमनमें पथ्य कहते है सुन अनूपदेशके जीवोंका मांस, शालिसंज्ञक चावल, सौंफ, वथुवा, ॥ ७२ ॥ तुरीधान्य, मूंगोंका यूष, दही, गुड, घृत अंगारोंपे सेके हुए मांडे ये वमनमें भोजन करने श्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥ और जैसा बलहो जैसा समयहो जैसा रोगहो जैसी जठराग्निहो तैसेंही पथ्य भोजनोंको विचारके देवै ॥ ७४ ॥ और वमन, श्वास, अतिसार इनरोगोंवाले पुरुषोंको दिनमें सुवावै, और हिचकी, शोष, अजीर्ण वमन ग्लानि इनरोगोंमेंभी दिनमे सोना श्रेष्ठ है ॥ ७५ ॥ और गरमजल नहीं पीवे ज्यादै भोजन नहीं करै और वमनसे पीडित पुरुषको दांतून नहीं करनीं चाहिये ॥ ७६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थानेछर्दिचि कित्सानाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ तृषा और तालुशोषकी संप्राप्ति ॥

आत्रेय उवाच ॥ भयश्रमाद्बलहीनाद्विदलरूक्षसेवनात् ॥ आतपे वा ज्वरे जीर्णे क्षयाच्च क्षतजात्तथा ॥ १ ॥ एतैः संकुपिता दोषा वात पित्तकफास्त्रयः ॥ चतुर्थी क्षतजा प्रोक्ता पञ्चमी क्षयजा स्मृता ॥ २ ॥ अजीर्णात्षष्ठी संप्रोक्ता सप्तमी रूक्षसेवनात् ॥ अष्टमी स्याज्ज्वरोत्पन्ना लक्षणानि शृणुष्व मे ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—भय, श्रम, बलकी हीनता, इन्होंसे विदलसंज्ञक अर्थात् कुलथी आदिअन्नको सेवनेंसे घामसे और ज्वरसे अजीर्ण और क्षतसे उपजे क्षयसे ॥१॥ इन्होंसे कुपित हुये वातपित्त कफसे तीन प्रकारकी तृषा होती है और घावके होनेंसे चौथी और क्ष-

यसे उपजी पांचमी तृषा होती है ॥२॥ अजीर्णसे छठी और रूक्षपदार्थको सेवनेसे सातमी और ज्वरसे उपजी आठमी ऐसे तृषा कही है तिन्होंके लक्षणोंको मुझसे सुन ॥ ३ ॥

अथ वातआदिदोषोंसे उपजी तृषाके क्रमसे लक्षण ॥

क्षामः श्यावास्यता चाथ वैरस्यं वेपथुस्तथा ॥ वातेन सा भवेत्तृष्णा विज्ञेया भिषजां वरैः ॥ ४ ॥ शीततोयाभिलाषश्च भ्रमदाहप्रलापतः ॥ मूर्च्छा च लोहिते नेत्रे तृष्णा पित्तोद्भवा मता ॥ ५ ॥ निद्रा श्यावास्यतालस्यं बलासोष्णाभिलाषता ॥ घनश्यावाङ्गशैत्यं च श्लेष्मणो जायते तृषा ॥ ६ ॥

कृशशरीर होजावै और मुख काला होजावै मुखमें स्वाद आवै नहीं और कंप उपजै ये लक्षण होवे तब वातकी तृषा जाननी ॥ ४ ॥ शीतल पानीकी इच्छा रहै भ्रम, दाह, प्रलाप, ये उपजै मूर्च्छाहो नेत्र लाल होजावै तब पित्तकी तृषा जाननी ॥ ५ ॥ नींदहो मुख कालाहो कफ पडै गर्मचीजकी इच्छा रहै कठिन और काला और शीतल ऐसा अंग होजावै तब कफकी तृषा जाननी ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाका लक्षण ॥

दृक्शूलं वमते दाहो भ्रमो वा शिरसो व्यथा ॥
वेपथुश्चाङ्गशैत्यञ्च त्रिदोषप्रभवा तृषा ॥ ७ ॥

नेत्रोंमें शूल चलै छर्दि आवै दाह और भ्रमहो शिरमें पीडा रहै कंपहो अंगोंमें शीतलता हो तब त्रिदोषकी तृषा जाननी ॥ ७ ॥

अथ अन्यतृषाओंके लक्षण ॥

वक्त्रशोषो भवेज्जृम्भा शिरोऽर्त्तिर्गुरुतोदरे ॥ अजीर्णेनाथ मनुजे तृष्णा संलक्ष्यते गदः॥८॥रसक्षये यदा तृष्णा तथाक्षमक्षुधातुरः॥ ग्लानिः शोषो भ्रमः श्वासो दैन्यमाशु प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ क्षतक्षयेषु या तृष्णा तस्यां नानाभिनन्दनम् ॥ अन्या ज्वरातुरे प्रोक्ता तृष्णा सा ज्वरवेगजा ॥१०॥ अन्यातिसारे शूले वा तृष्णा ज्ञेया भिषग्वरैः ॥ ११ ॥

मुखमें शोष हो और जंभाई आवै शिरमें पीडाहो पेट भारारहै तब अजीर्णकी तृषा जाननी ॥८॥ शरीर कृशहो भूखसे पीडित रहै ग्लानि, शोष, भ्रम, श्वास, दीनपना ये शीघ्र उपजै तब रसके क्षयसे उपजी तृषा जाननी ॥९॥ घावसे उपजी तृषामें अनेक प्रकारके पदार्थोंमें इच्छा

रहा करती है ऐसा लक्षण है ज्वररोगवालेके ज्वरके वेगसे उपजी तृषा होती है ॥ १० ॥ अतिसारसे और शूलसेभी उपजी तृषा जाननी ॥ ११ ॥

अथ असाध्यतृष्णाका लक्षण ॥

तृष्णातिसारवमनदाहमूर्च्छाभ्रमशोषोद्भवा ॥
तोयेन न याति तृप्तिमसाध्यां तां विजानीहि ॥ १२ ॥

अतीसार, छर्दि, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, शोष, इन्होंसे उपजी जो तृषा पानीसे शांत नहीं होवै तब वह असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथ वातकी तृषाकी चिकित्सा ॥

तृष्णां वातोद्भवां दृष्ट्वा शस्यते सगुडं दधि ॥ सगुडं वामृताक्काथं पीतं वा तत्तृषापहम् ॥ १३ ॥ शुण्ठी च जाज्या सह शृङ्गबेरं जलेन सौवर्चलयुक्तकल्कः ॥ पिबेत्कषायं च सुशीतलं वा वातोद्भवां चाशु निहन्ति तृष्णाम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषाको देख गुडसहित दही हित है अथवा गिलोयके क्काथमें गुड मिला पीवै यह वातकी तृषा शांत होती है ॥ १३ ॥ सूंठ, जीरा, अदरक, कालानमक इन्होंको पानीसे पीस कल्क बनावै अथवा क्काथ बनावै इन्होंमांहसे एक कोईसेको पीनेंसे वातकी तृषा शांत होजाती है ॥ १४ ॥

अथ पित्तकी तृषाकी चिकित्सा॥

काश्मर्य्यं पद्मकोशीरं द्राक्षा मधुकचन्दनम् ॥ वालकं शर्करायुक्तं क्काथं पित्ततृषापहम् ॥ १५ ॥ वटद्रुमो रोध्रसिता च चन्दनं सदाडिमं तण्डुलधावनेन॥ पिष्टश्च सुशीतजलेन वापि पीतं च पित्तोत्थतृषापहश्च॥ १६॥ कुष्ठमुत्पललाजां च न्यग्रोधस्य प्ररोहकान्॥संचूर्ण्य शर्करायुक्ता गुटिका तृष्णावारणी ॥ १७॥ द्राक्षोत्पलं सयष्टीकं शस्तं चेक्षुरस सेवनात् ॥ पीतं पित्तोद्भवां तृष्णां हन्ति दाहश्च पित्तजम् ॥ १८ ॥ आकण्ठं शर्करायुक्तं क्षीरं तथा पिबेन्नरः ॥ वमनञ्च तदा कुर्य्याद्धन्ति तृष्णां सपैत्तिकीम् ॥ १९ ॥ लोष्टप्रतप्ततोयञ्च निर्य्याप्य शीतलं कृतम् ॥ पिबेत्तृष्णा विनाशाय जलं वा चन्दनान्वितम् ॥ २० ॥

कंभारी, कमल, खस, दाख, मुलहटी, चंदन, नेत्रवाला, इन्होंके काथमें खांड मिला पीवै यह पित्तकी तृषाको हरता है ॥ १५ ॥ वडके कोंपल, लोध, मिसरी, चंदन, अनारदाना, इन्होंको चावलोंके पानीसे अथवा शीतल पानीसे पीस पीवै यह पित्तकी तृषाको हरता है ॥ १६ ॥ कूठ, नीलाकमल, धानकी खील, वडकी कोंपल इन्होंके चूर्णमें खांडमिला गोली बांधै ये गोली पित्तकी तृषाको हरती है ॥ १७ ॥ दाख, नीलाकमल, इन्होंका चूर्ण अथवा ईखका रस सेवनेंसे पित्तकी तृषा और पित्तका दाह शांत होता है ॥ १८ ॥ खांडसे युक्त किये दूधको कंठतक पीवै पीछे वमन करै तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ १९ ॥ जली-हुई माटीको या राखको, या वालूरेतको गर्म कर पानीमें बुझावै पीछे शीतल कर पीवै अथवा चंदनसे युक्तकिये पानीको पीवै तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ २० ॥

अथ कफकी तृषाकी चिकित्सा ॥

जम्ब्वाम्रकप्रवालानि तथा लाजा च चन्दनम् ॥ धातकीकुसुमानि स्युः पिष्टवासारसंयुतः ॥ २१ ॥ श्लेष्मतृष्णापहो लेहो दाहमूर्च्छाभ्रमापहः॥ पिबेच्चाढकीयूषञ्च लाजाशर्करयान्वितम् ॥ २२ ॥ क्षीरपानं समरिचं जलं वा मरिचान्वितम् ॥ श्लेष्मतृष्णाविनाशाय पिबेद्वा कोलकं पयः २३

जामन और आंबकी कोंपल, धानकी खील, चंदन, धवके फूल इन्होंको वांसाके रसमें पीस चाटै यह अवलेह कफकी तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, इन्होंको नाशता है ॥ २१ ॥ धानकी खीलोंसे संयुक्त लिये अरहरके यूषमें खांड मिला पीवै अथवा मिरचोंसहित दूधको पीवै ॥ २२ ॥ अथवा मिरचोंसहित पानीको पीवै अथवा वडवेरीको पत्तोंके रसको पीवै तब कफकी तृषा नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाकी चिकित्सा ॥

दुरालभा पर्पटकं प्रियङ्गु लोध्रद्रुमं त्र्यूषणकं सकुष्ठम् ॥ क्वाथः सुशीतो मधुशर्करायास्तृष्णां त्रिदोषप्रभवां निहन्ति ॥ २४ ॥ कालदाडिमवृक्षाम्लाः सारिवा समशर्करा ॥ पथ्या दाडिमचूर्णं वा मातुलुङ्गरसान्वितम् ॥ २५ ॥

जवासा, पित्तपापडा, कांगनी, लोध, सूंठ, मिरच, पीपल, कूठ, इन्होंके काथको शीतल बना तिसमें शहद और खांड मिला पीवै यह त्रिदोषकी तृषाको नष्ट करता है ॥ २४ ॥ काला अनार, वृक्षाम्ल, और सारिवा इन्होंके समान भाग शर्करा इन्होंका चूर्ण खावै, अथवा सूंठ और अनारका चूर्ण विजौराके रसके साथ खावे ॥ २५ ॥

अथ तालुशोषकी चिकित्सा ॥

काष्ठपात्रे शृतं सम्यक्छीतलं सलिलं तथा ॥ मर्दितं बहुवेलां तु तत्पा नीयं च पाययेत् ॥ २६ ॥ तालुशोषे घृतं तच्च दापयेच्च भिषग्वरः ॥ तृष्णादाहभ्रमच्छर्दिशोषमूर्च्छां व्यपोहति ॥ २७ ॥ क्षतजां क्षयजां तृ ष्णां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ २८ ॥

गर्म किये पानीको काष्ठके पात्रमें घाल बहुत देरतक मर्दितकर पीवै ॥ २६ ॥ और तिसीपानीमें घृतको सिद्धकर वैद्य तालुशोषमें देवै यह तृषा, दाह, भ्रम, छर्दि, शोष, मूर्च्छा, इन्होंको नाशता है ॥ २७ ॥ क्षतसे और क्षयसे उपजी तृषाको शीघ्र दूर करता है ॥२८॥

अथ दाडिमकोल ॥

दाडिमं कोलचुक्रीका वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥
रसं चैव तथा पथ्यायुक्तं तालुप्रलेपनम् ॥ २९ ॥

अनार, वेर, चूका, विजोरा, अम्लवेतस इन्होंके रसमें हरडैका चूर्ण मिला तालूपर लेप करै ॥ २९ ॥

अथ तृष्णाआदिकोंकी साधारण चिकित्सा ॥

वारयत्याशु शोषं च तृष्णां हन्ति च सज्वराम् ॥ केसरं मातुलुङ्गस्य पि ष्टं तण्डुलवारिणा ॥ ३० ॥ शतपत्रमधुना तालुलेपो मुखशोषापहः ॥ मधु शर्करया तालुलेपो मुखशोषनिवारणः ॥३१॥ पद्मकन्दशृतालेपः शीतः शीतलवारिणा॥तालुशोषं निहन्त्याशु जम्ब्वाम्रपल्लवानि च॥३२॥निम्बा न् वा मातुलुङ्गान् वा सौवीरं नागराणि च॥तृषार्त्तः पुरतो भक्षेन्न देयं त स्य धीमता॥३३॥ दर्शनात्तस्य चास्ये च लाला प्रस्रवते भृशम्॥तेनास्य शोषं हरति तृष्णामपि नियच्छति ॥३४॥ रक्तशाल्योदनं शस्तं दधिशर्क रयान्वितम् ॥ भोजनञ्च प्रशस्तं च न क्षारं कटुकं पुनः ॥ ३५ ॥ शोषे च छर्दितृष्णायां श्रमे पानात्ययेऽपि च॥अतीसारे च शोषे च दिवानिद्रा सुखावहा ॥ ३६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने तृष्णातालु शोषचिकित्सा नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

विजोराकी केशरको चावलोंके पानीसे पीस पीनेंसे तालुशोष और ज्वरसहित तृषा शांत होती है ॥ ३० ॥ गर्म किये शहदसे तालुपर लेप करै यह मुखशोषको नाशता है शहद और खांडसे तालूपर लेप करै यह मुखके शोषको दूर करता है ॥ ३१ ॥ कमलकंदको शीतल पानीसे पीस लेप करै अथवा जामन और आंबके पत्तोंको पीस लेप करै तब तालुशोष शांत होता है ॥ ३२ ॥ नींबू, विजोरा, कांजी, सुंठ, इन्होंको इसरोगवालेकै आगै खावै परंतु तिसरोगीको नहीं देना ॥ ३३ ॥ इन्होंके देखनेंसे रोगीके मुखमें अत्यंत लाल झिरनें लगती है तिस्से तृषा और शोष दूर होता है ॥ ३४ ॥ दही और खांडसे संयुक्त किये लाल शालि चावल इसरोगमें भोजन करनें श्रेष्ठ है खारा और चर्चराको फिर नहीं खावै ॥ ३५ ॥ शोष, छर्दि, तृषा, परिश्रम, पानात्यय, इनरोगोंमें दिनकी नींद सुखको देती है ॥ ३६ ॥ इतिवेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने तृषातालुशोषचिकित्सानाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ मूर्च्छाकी संप्राप्ति ॥

आत्रेय उवाच ॥ वेगाभिघातातिनिरोधकेन क्षीणक्षताच्च तृषितेन वापि ॥ विरुद्धयुक्तान्नविभक्षणेन दोषः प्रदुष्टः प्रकरोति मूर्च्छाम् ॥ १ ॥ पञ्चेन्द्रियाणां संलग्नाः प्रत्येके द्वादशादयः ॥ पञ्चेन्द्रियाणां सहिता नाडिकाः षष्टिसंख्यया ॥ २ ॥ रुन्धंति नाडिकाद्वारं तेन चेतो विमूर्च्छति॥ संज्ञानाशाद्भवेच्छीघ्रं निश्चेताश्च सदा नरः ॥ ३ ॥ पतति काष्ठवत्तूर्णं मोहमूर्च्छा निगद्यते ॥ सा षड्विधा समुद्दिष्टा वातपित्तकफात्तथा ॥४॥ शोणितादभिघातेन मद्येनाथ विषेण वा ॥ एतेषां कोपयेत्पित्तं मरुद्रक्तं समीरितम् ॥ ५ ॥ संख्यादौर्बल्यकं तेन मूर्च्छा मोहः प्रकथ्यते ॥ कथयामि समासेन लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विषयआदि वेगके अभिवातसे मूत्रआदिको रोकनेंसे क्षीण क्षतसे तृषाकी पीडासे विरुद्ध अन्नको सेवनेंसे दुष्टहुआ वातआदि दोष मूर्च्छाको करता है ॥ १ ॥ अलग २ बारहनाडी, पांचों इंद्रियोंमें लगीहुई है ऐसे साठ नाडी जाननी॥२॥ जब दुष्टहुए

दोष नडियोंके द्वारको रोकते हैं तब मनुष्य मूर्च्छाको प्राप्त होतेहै संज्ञाके नाश होनेंसे शीघ्रही जडरूप मनुष्य होजाता है ॥ ३ ॥ और काष्ठकी तरह मनुष्य शीघ्र गिर पडता है तिसको मोहमूर्च्छा कहते है वह छःप्रकारकी कही है ॥ ४ ॥ वातकी, पित्तकी, कफकी, रक्तकी, चोटकी, मदिराकी अथवा विषकी, ऐसे मूर्च्छा है वायु और रक्तसे प्रेरित किया पित्त इनमूर्च्छाओंको कोपित करता है ॥ ५ ॥ ऐसे गिनती है अब इस मोहमूर्च्छाके लक्षणोंको विस्तारसे पृथक् २ कहताहूं ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छाका लक्षण ॥

नीलं कृष्णारुणं पश्येत्तमः प्रविशति क्षणात् ॥
कम्पो मार्दवमेतासां क्षणेन प्रतिबुध्यति ॥ ७ ॥

नीला काला लाल ऐसे रंगको देखै और क्षणभरमें अंधेरीको प्राप्त होवै कंपहो और शरीर शिथिल होजावै और क्षणभरमें जागै ये मूर्च्छाके लक्षण है ॥ ७ ॥

अथ वातजआदिमूर्च्छा लक्षण ॥

वातेन मूर्च्छा भवति कृशता विकृतास्यता ॥
नेत्रप्लावश्च मृष्टिश्च आध्मानञ्च भवेत्क्षणम् ॥ ८ ॥

शरीर कृश होवै मुख विकारको प्राप्तहो नेत्रोंमें पानी झिरै और शरीरमें हडफुटन होवै और क्षणभरमें पेटपर अफाराहो तब वातकी मूर्च्छा जाननी ॥ ८ ॥

अथ पित्तजमूर्च्छा ॥

पीतञ्च नीलहरितं तमः प्रविशते भृशम् ॥ सन्तापश्च पिपासा च रक्ते
पीते च लोचने ॥ ९ ॥ सस्वेदं शरीरं चापि श्रमः संभिन्नवर्चसाम् ॥
पित्ताद्भवति मूर्च्छात्वं जायते च शिरोव्यथा ॥ १० ॥

पीला नीला हरा ऐसे अंधेरेमें प्राप्त होवै संताप और पिपासाहो लाल और पीले नेत्र होजावै ॥ ९ ॥ और पसीनें आवै श्रमहो पतला मल उतरै और शिरमें पीडाहो तब पित्तकी मूर्च्छा जाननी ॥ १० ॥

अथ कफजमूर्च्छा ॥

धूमाकुलां दिशं पश्येत्तमः पश्यति यः पुरः ॥ नेत्राकुलत्वं मन्दाग्निस्त
मोऽङ्गेषु च शीतता ॥ ११ ॥ चिरात्प्रबुध्यतेऽत्यर्थं कण्ठश्च घुर्घुराय
ते ॥ हल्लासमूर्च्छा भवति कफजा च विलक्षणैः ॥ १२ ॥

धूमासे व्याप्त हुई दिशाको देखै और आगे अंधेरीको देखै नेत्र व्याकुल होवै मंदाग्निहो अंगोंमेंभी मंदपना और शीतलपनाहो ॥ ११ ॥ बहुत देरमें जागै कंठमें घुर्घुर शब्द होवै थुकथुकी होवै तब कफकी मूर्च्छा जाननी ॥ १२ ॥

अथ संनिपातजमूर्च्छा ॥

सन्निपातादपस्मारो दृश्यते भिषजांवर ! ॥
स प्राणिनां घातयति रक्तेन सहितो यदि ॥ १३ ॥

हे वैद्यवर ! सन्निपातसे मृगी रोग दीखता है वह रक्तसे मिलकै जीवोंको नाशता है॥१३॥

अथ रक्तगन्धजमूर्च्छा

रक्तगन्धेन मूर्च्छन्ति तेन मूर्च्छा शिरोव्यथा ॥ १४ ॥
कम्पते नष्टचेष्टत्वं जल्पते वमते पुनः ॥

रक्तकी गंधसे उपजी मूर्च्छामें शिरविषैं पीडा होती है रोगी कांपता है चेष्टा नष्ट होजाती है ज्यादै बोलता है और वमन करता है ॥ १४ ॥

अथ मद्यादिजन्यमूर्च्छा ॥

विभ्रान्तचेता रक्ताक्षः स्वप्नशीलः सुरावशः ॥ १५ ॥ क्षतक्ष
याद्भवेच्चान्या कोद्रवान्ननिषेवणात् ॥ जायते मोहमूर्च्छा
च तेन निद्राति दुर्मनाः ॥ १६॥

मदिरासे उपजी मूर्च्छामें भ्रमतेहुये पित्तवाला और लालनेत्रोंवाला और शयन करनेंको चाहनेंवाला ऐसा मनुष्य होजाता है ॥ १५ ॥ क्षतक्षयसे और कोदूआदि अन्नसे उपजी मूर्च्छामें अत्यंत नींद आती है और मन बिगड जाता है ॥ १६ ॥

मूर्छा, भ्रम, निद्रा और तंद्रा इन्होंका हेतु॥

पित्तोत्तमाद्भवति वै मनुजस्य मूर्च्छा पित्तप्रभञ्जनभवं भ्रममेव पुं
साम् ॥ वातात्कफात्तमयुता मनुजस्य तन्द्रा निद्रा कफानिलतमा
भजते नरस्य ॥ १७ ॥

मनुष्यको पित्तके अत्यंतपनेंसे मूर्च्छा होती है और मनुष्योंके पित्त और वातसे उपजा भ्रम होता है वात और कफसे अंधेरीकरकै युक्तहुई तंद्रा होती है और कफ वात अंधेरी इन्होंसेही नींद होती है॥ १७ ॥

अथ मूर्च्छाकी चिकित्सा ॥

स्वेदाभिषङ्गविधिमर्दनवातशान्त्यै शीतान्नपानव्यजनानिलपित्तशान्त्यै ॥ कषायपानमवितथैव सदा प्रशस्तं श्लेष्मोद्भवा विनिहिता भ्रममूर्च्छना वा ॥ १८ ॥ पाययेत्रिफलाक्काथं शीतं शर्करया युतम् ॥ दुरालभायाः क्काथश्च पाययेच्छर्करान्वितम् ॥ १९ ॥

पसीना, मालिस, मर्दन ये वातकी मूर्च्छामें हित है शीतल अन्न और पान, वीजनाकी पवन ये सब पित्तकी मूर्च्छामें हित है कसैला पदार्थका पान कफकी मूर्च्छामें हित है ॥ १८ ॥ त्रिफलाके शीतलक्काथमें खांड मिला पीवै अथवा जवासाके क्काथमें खांड मिला-पीवै ये दोनों क्काथ मूर्च्छाको हरते है ॥ १९ ॥

अथ रक्तमूर्च्छाआदिकोंको उपाय ॥

कणां कोलस्य मज्जाश्च केसरोशीरचन्दनम् ॥ पिष्ट्वा शीताम्बुना खण्ड पानं हन्ति विमूर्च्छितम् ॥ २०॥ रक्तजां मूर्च्छनां दृष्ट्वा विधेयः शीतलो विधिः ॥ क्षयजे दुर्बले क्षीणे मूर्च्छापोषणकारणम् ॥ २१ ॥ नष्टचेष्टत्व मापन्ने नरे संचेतनक्रिया ॥ संपीड्य च नवाङ्गुष्ठं नासिकां च प्रपीडयेत् ॥२२॥ दन्तैर्वा सन्दंशैर्वापि शनैर्गात्रं प्रपीडयेत् ॥ दाहयेद्वा ललाटे तुपृष्ठ देशे च भालके॥२३॥ एवं न सिध्यते वापि तदा चान्दोलनं हितम्॥२४॥

पीपल, बेरकी मज्जा, केसर, खस, चंदन, इन्होंको शीतल पानीसे पीस और खांड मिला-पीवै यह मूर्च्छाको नाशता है ॥ २० ॥ रक्तसे उपजी मूर्च्छाको देखके शीतल विधि करनी चाहिये क्षयवाला, दुर्बल, क्षीण, इन्होंकै मूर्च्छाकी रक्षाका कारण करना ॥ २१ ॥ जब मूर्च्छासे मनुष्यकी संज्ञा जाती रहै तब मनुष्यकौ चेतन करानेकी क्रिया करै अंगूठेको पीडित कर पीछे नासिकाको पीडित करना ॥ २२ ॥ दंतोंसे अथवा नखआदिसे हौलें शरीरको पीडित करना अथवा मस्तकमें और पृष्ठभागमें दाग देवै ॥ २३ ॥ जो ऐसेभी सिद्धि नहीं होवै तो आंदोलन क्रिया करनी हित है ॥ २४ ॥

अथ नष्टसंज्ञमूर्च्छितकी चिकित्सा ॥

मूर्च्छातुरं सकलशीतजलेन सिञ्चेत्संवीजयेच्च शिखिपिच्छकवीजनैस्तु ॥ दोलायनं हि विहितं मनुजस्य मूर्च्छामोहं भ्रमश्च हरते च मदात्ययं वा ॥ २५ ॥

मूर्च्छासें पीडित हुये मनुष्यको शीतल पानीसें सींचै और मोरकी पांखोंके वीजनेसें

हवाकरै और दोलायन अर्थात् हिंडोलाके द्वारा झुलानेसें मूर्च्छा मोह भ्रम मदात्यय इन्होंका नाश होता है ॥ २५ ॥

अथ मूर्च्छामदभ्रमइन्होंकी चिकित्सा ॥

करञ्जबीजं सह सैन्धवेन रसोनपत्रस्य रसं च यत्र ॥ मार्कं च पथ्यश्च वचां जलेन पिष्ट्वाञ्जनं हन्ति दिनस्य तन्द्राम् ॥२६॥ घोटकलालामरिचं लवणयुतं नेत्रयोरञ्जनंशस्तम् ॥ विनिहन्ति दिनशतं तन्द्रां निद्रां वा मानुषस्य ॥ २७ ॥ सुगन्धं सुकषायोपयुक्ता रसस्त्रिफला गुडार्द्रकं प्रातः ॥ समाहान्मधुरजलं हन्ति मदमूर्च्छाकरानुन्मादान् ॥२८॥ रक्तकर्षणमिच्छन्ति मोहमूर्च्छाप्रशान्तये ॥ तस्मादवहितः कुर्य्यात्तासु रक्तावसेचनम् ॥२९॥

करंजुआके बीज, सेंधानमक, ल्हसनका पत्ताका रस, भंगरा, हरडै, वच, इन्होको पानीसें पीस अंजन करनेसें तंद्रा दूर होती है ॥ २६ ॥ घोडाकी लालोंसे काली मिरच और सेंधानमकको पीस नेत्रोंमें अंजनेसें सौ १०० दिनोंतक मनुष्यकी तंद्रा और नींद दूर होजाती है ॥ २७ ॥ चंदन, हरडै, बहेडा, आंवला, गुड, अदरक इन्होंको प्रभातमें खाके ऊपर मधुर जलको पीनेसें मद और मूर्च्छाको करनेवाले उन्माद दूर होते है ॥ २८ ॥ कुशलवैद्य मोह और मूर्च्छाकी शांतिके लियें रक्तको घटाना चाहते है इसवास्ते मोह मूर्च्छारोगमें सावधान मनुष्य रक्तको निकसावे ॥ २९ ॥

अथ मूर्च्छादिकोंके साधारण उपाय ॥

शीतसेकावगाहाद्यान् श्रीखण्डं व्यजनानिलान् ॥ शीतानि चान्नपानानि सर्वमूर्च्छासु योजयेत् ॥ ३० ॥ शर्करेक्षुरसद्राक्षावातमूर्च्छाप्रपानकैः ॥ काश्मर्य्यमधुकैरेव पित्तमूर्च्छां जयेन्नरः ॥ ३१ ॥ यष्ट्याः क्वाथं शृतं सर्पिः शृतं वामलकीरसम् ॥ पिबेद्रसं सितालाजायुक्तं चोष्णं च शीतलम् ॥ ३२ ॥ मधुना हन्ति च मूर्च्छामालेपैश्च प्रबोधयेत् ॥३३॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूर्च्छाचिकित्सा नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

शीतल पानीकी सेक शीतल पानीमें स्नान करना सफेद चंदन, वीजनाकी पवन, शीतल अन्न और पान ये सब प्रकारकी मूर्च्छामें योजित करने ॥ ३० ॥ खांड, ईखका रस, दाख, इन्होंसें वायूकी मूर्च्छाको दूर करै कंभारी और मुलहटीसे पित्तकी मूर्च्छाको दूर करै ॥ ३१ ॥

मुलहटीके क्काथमें पकाया हुआ घृत अथवा आंवलाके रसमें धानकी खीलोंका चूर्ण और मिसरी मिला पीवै ॥३२ ॥ अथवा शहद मिला पीवै मूर्च्छा दूर होती है और मूर्च्छा-रोगीको सुंदर आलापोंसे जगाना श्रेष्ठ है॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यर-विदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ निद्राचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ धुरिणां गीतैर्नृत्यैर्हास्यैस्तन्द्रां निद्रां दिवा हन्ति ॥ यदा रात्रौ न निद्रा स्यात्तदा कुर्य्यादिमां क्रियाम् ॥ १ ॥ काकमाच्यास्तु मूलञ्च शिखां बद्धा भिषग्वरः ॥ अधोमुखीं शिखां बद्धा निद्रां जनयति निशि ॥ २ ॥ मस्तुना पादतलकौ मर्दयेन्निद्रयार्थिनाम् ॥ यस्य नो दिवसे निद्रा तस्य निद्रा निशासु च ॥ ३ ॥ भयचिन्तया लोभेन या निद्रा न भवेन्निशि ॥ तां चिन्तां च परित्यज्य निद्रा संजायते क्षणात् ॥ ४ ॥ सिंही व्याघ्री सिंहमुखी काकमाची पुनर्नवा ॥ वार्त्ताकानां च मूलानां क्काथो निद्राकरो नृणाम् ॥ ५ ॥ काकजङ्घा चापामार्गः कोकिलाक्षः सुपर्णिका ॥ क्काथो निद्राकरः शीघ्रं मूलं वा बन्धयेच्छिखाम् ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सा नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

आत्रेयजी कहते हैं—बैल और घोडाआदिके बोलनेंसे, नाचनेंसे,हास्य करनेंसे दिनकी नींद और तंद्रा दूर होती है और जो रात्रिमें नींद नहीं आवै तब इसक्रियाको करना ॥ १ ॥ काकमाचीकी जडको चोटीपर बंधानेंसे अथवा चोटीके मुखको नीचेकी तर्फकर बांधनेंसे रात्रिको नींद आजाती है ॥ २ ॥ नींदकी इच्छावालोंके पैरोंके तलुवोंको दहींके पानीसे मर्दित करै और जिसको दिनमें नींद नहीं आती है तिसको रात्रिमें नींद आजाती है ॥ ३ ॥ भय, चिंता, लोभ, इन्होंसे जो रात्रिमें नींद नहीं आवै तब भय, चिंता, लोभ, इन्होंको त्यागनेंसे नींद आती है ॥ ४ ॥ कटेहली, बडी कटेहली, वांसा, मकोहविशेष, सांठी, वार्ताकुनामक कटेलीका भेद इन्होंकी जडोंका क्काथ मनुष्योंके नींदको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ काकजं-

घा, ऊंगा, कोलिस्ता, सालवण, इन्होंका क्वाथ बना पीवै अथवा इन्होंकी जडोंको शिखा अर्थात् चोटीपर बंधावै ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सानाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ मदात्ययचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ हालाहलाहलसमं भजते वियोगात्सेव्यानां शिष्यानुजानां कथितं मुनीन्द्र ! ॥ तृष्णा वमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा संजायतेऽतिशरणं विकलेन्द्रियत्वम् ॥ १ ॥ ये नित्यं सेवनाद्दुष्टा मद्यस्य मनुजां भृशम् ॥ विषमाहारसदृशी सुरा मोहनकारिणी ॥ २ ॥ यथा विषं प्राणहरं वियोगाद्योगेन तं चाप्यमृतं वदन्ति ॥ तथा सुरा योगयुता हिता स्यादयोगतश्चारभतेऽतिकष्टम् ॥ ३ ॥ क्षुधातुरे तृषाक्रान्ते सुरा वा भोजनं विना ॥ न च क्षीणैर्विना भक्ता विनाहारातिपानकम् ॥ ४ ॥ अत्यशनेऽप्यजीर्णेऽपि सुरा पीता रुजाकरी ॥ ५ ॥

विशेषयोगसे मदिरा हलाहलविषके समान फलको देती है और मदिराको अत्यंत पीनेसे तृषा, छर्दि, श्वास, मोह, दाह, अतिशरणपना, इंद्रियोंका विकलपना ये उपजते है ॥ १ ॥ जो नित्य मदिराको पीते है तिन्होंको जो समयपर नहीं मिलै तब वह मदिरा विषमभोजनके समानहोजाती है और मोहको करती है ॥ २ ॥ जैसे बुरे योगसे विष प्राणोंको हरता है और अच्छे योगसे विष अमृतके समान होजाता है तैसेही योगसे युक्तकरी मदिरा हित है और अयोगसे युक्तकरी मदिरा अत्यंत कष्टको करती है ॥ ३ ॥ क्षुधासे पीडितको, तृषासे पीडितको, भोजनसे रहितको, क्षीणको, आहार और पानसे वर्जितको ॥ ४ ॥ भोजनपर भोजन करनेवालेको और अजीर्णवालेको पानकरी मदिरा रोगको करती है ॥ ५ ॥

अथ वातादिदोषजन्य मदात्यय ॥

यस्य प्रलपनं चापि नच वातमदात्ययः ॥ दाहमूर्च्छातिसारश्च ज्वरः पित्तमदात्यये ॥ ६ ॥ छर्द्यरोचक हृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवम् ॥ शीतता च प्रतिश्यायः कफजे च मदात्यये ॥ ७ ॥ त्रिषु दोषेषु समतालिङ्गैर्येषामुपक्रमः ॥ स त्रिदोषसमुद्भूतो मदात्ययो भिषग्वर ! ॥ ८ ॥

जिसकै बहुत प्रलाप उपजै तिसकै वातका मदात्यय जानना और जिसकै दाह, मूर्च्छा, अतिसार, ज्वर, ये उपजै तिसकै पित्तका मदात्यय जानना॥६॥जिसकै छर्दि, अरोचक, थुकथुकी, तंद्रा, शरीरका गीलापन, भारीपन, शीतलपना, जुखाम, ये उपजै तिसकै कफका मदात्यय जानना॥७॥जिसकै तीन दोषोंके लक्षण मिलै तिसकैसन्निपातका मदात्यय जानना॥८॥

मदात्ययकी चिकित्सा ॥

वमनं च प्रशस्तं च निद्रासंसेवनं पुनः॥स्नानं हितं पयःपानं भोजने सगुडं दधि ॥ ९ ॥ मस्तुखण्डं सखर्जूरं मृद्वीका मारिवाम्लिका ॥ आमला च परूषं च लेहो हन्ति मदात्ययम् ॥१०॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन वा ॥ कल्कयेत्पयसा तत्तु पानं सर्वमदात्यये ॥ ११ ॥ पथ्याक्राथेन संयुक्तं पयःपानं मदात्यये ॥ १२ ॥

वमन, नींदको सेवना, स्नान, दूधका पीना, भोजनमें गुड सहित दही ये मदात्ययमें हित है ॥ ९ ॥ दहीका पानी, खांड, छुहारा, मुनक्का मेढासिंगी, अमली, आंवला, फालसा, इन्होंकी चटनी मदात्ययको नाशती है ॥ १० ॥ दाख, आंवला, खजूरका फल अथवा छुहारा, फालसा, इन्होंके रस करकै बनायी चटनी मदात्ययको नाशती है॥११॥सब प्रकारके मदात्ययमें दूधसे कल्क बना पीवै और मदात्ययरोगमें हरडैके क्काथसे संयुक्त किये दूधको पीना हित है॥१२॥

अथ सुपारीके मदकी निदान और चिकित्सा ॥

पूगीफलमदे कम्पो मोहो मूर्च्छा क्लमस्तमः॥प्रस्वेदो विधुरत्वं च लालास्रावश्च जायते ॥१३ ॥ भ्रमक्लमपरीतत्वं विज्ञेयं पूगमूर्च्छिते ॥ मानवो लक्षणै रेभिर्ज्ञेयः पूगविमूर्च्छितः ॥ १४ ॥ तस्य शीतं जलं पीतं बस्तिर्वास्तुहितं भवेत् ॥ शर्कराभक्षणे देया मुस्ता वा शर्करान्विता ॥ १५ ॥

सुपारीके मदमें कंप, मोह, मूर्च्छा, ग्लानि, अंधेरी, पसीना, लालोंका पडना ये उपजते है ॥ १३ ॥ इन लक्षणोंके होनेंसे मनुष्य सुपारीसे मूर्च्छितहुआ जानना तिसको शीतल पानीका पीना और बस्तिकर्म्म हित कहा है ॥ १४ ॥ इसरोगीको खानेंवास्तै अकेली खांड अथवा नागरमोथासहित खांडका देना हित है ॥ १५ ॥

अथ कोदूआदिसे उपजे मदात्ययकी चिकित्सा ॥

कोद्रवाणां भवेन्मूर्च्छा देयं क्षीरं सुशीतलम् ॥ धत्तूरकमदे देयं शर्करासहितं दधि ॥ १६ ॥ हलिनी करवीरं च मोहिनी मदयन्तिका ॥ अम्येषामपि कन्दानां वमनं चाशु कारयेत् ॥ १७ ॥ पाययेच्छर्करायुक्तं क्षी

रं वा दधि शर्कराम् ॥ १८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मदात्ययचिकित्सा नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६॥

कोदूसे उपजी मूर्च्छामें अच्छीतरह शीतल किया दूध हित है धतूराके मदमें खांडसहित दही हित है ॥ १६ ॥ कलहारी, कनरे, भांग, मोगरी, अन्य प्रकारके सबकंद, इन्होंके मदोंमें शीघ्र वमनको करवावै ॥ १७ ॥ अथवा खांडसे युक्तकिये दूधको अथवा खांडसे युक्तकरी दहीको पान करावै ॥ १८ ॥ इति वेरी निवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

अथ दाहकी संप्राप्ति आदिक ॥

आत्रेय उवाच ॥ समानः संक्रुद्धो रुधिरमपि पित्तं त्वचिगते नरस्याङ्गे दाह्यं भवति नितरां घोरमपि च ॥ कदाचिद्दन्तोद्धर्षो भवति मनुजां दाह्योदये भवेच्छीतस्यार्त्तिः श्वसनमपि वा शोषमरतिः ॥ १॥पित्तज्वरसमानानि लक्षणानि भिषग्वर !॥पित्तज्वरवदारभ्य क्रिया दोषोपशान्तये ॥२॥

आत्रेयजी कहते हैं—जब समान वायु और रक्त कुपित होता है और पित्त त्वचामें प्राप्त होता है तब मनुष्यके अंगोंमें घोर दाह उपजता है और दाहके उदयमें कभीक दंतोंको घसता है और शीतलकीभी पीडा होती है शोष और ग्लानि उपजती है ॥ १ ॥ हे वैद्यवर ! दाहरोगके लक्षण पित्तज्वरके समान होते है इसकारणसे दोषकी शांतिके लिये पित्तज्वरकी तरह क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ दाहकी चिकित्सा ॥

कुशकासेक्षुमूलानामुशीरं घनवालुकौ ॥ क्वाथः शर्करया युक्तः शीतदाहं नियच्छति ॥ ३ ॥ पर्पटः सघनोशीरः क्वथितः शर्करान्वितः ॥ शीतपानं निहन्त्याशु दाह्यं पित्तज्वरं नृणाम् ॥४॥ लामज्जचन्दनोशीरैर्लेपनं दाहशान्तये॥वीजयेत्तालवृन्तैश्च कदल्यम्भोजसंस्तरे॥५॥कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम्॥शस्यते शीतलं वारि दाहतृष्णानिवारणम्॥६॥उत्तानस्य प्रसुप्तस्य नाभेरुपरि संदधेत्॥कांस्यपात्रमये सौख्यं धाराभिःशीतवारिणा॥७॥पूरयेत्सुरतं यत्नात्तेन सौख्यं समाप्नुते॥शतधौतं घृतमपि तद्वा

हो परि धारयेत् ॥८॥ मतिर्धात्रीफलं वापि शीतजले प्रलेपनम्॥दाहशोषातुरस्यापि लेह्यं वा सुखकारकम् ॥ ९॥ जम्ब्वाम्रपल्लवान्निम्बं बीजपूररसेन तु ॥ पिष्ट्वा प्रलेपनं दाहे शीघ्रं सुखमभीप्सते ॥ १० ॥ धारागारं तथा सुशीतलशशी ज्योत्स्ना तु पानानि च वातः शीतलचन्दनं च कमलं प्रेमानुबन्धस्तथा ॥ रामागूहनमर्दनं स्तनयुगे शुक्लार्द्रवस्त्राणि च क्षीरं शर्करशङ्खलोहरजतं दाहप्रशान्त्यै हितम् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने दाहचिकित्सा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

डाभकी जड, कांसकी जड, ईखकी जड, खस, नागरमोथा, नेत्रवाला, इन्होंके क्काथमें खांड मिला पीवै यह शीतसहित दाहको नाशता है ॥ ३ ॥ पित्तपापडा, नागरमोथा, खस, इन्होंके क्काथमें खांड मिलापीवै परंतु यह शीतकषाय बनाके पीना चाहिये यह मनुष्योंके दाहको और पित्तज्वरको नाशता है ॥ ४ ॥ रोहिषतृण, चंदन, खस, इन्होंका लेप दाहकी शांतिके लिये हित है और दाहवालेको केलाके पत्तोंकी सेजपर शयन करा ताडके वीजनेंसे हवा करवावै ॥ ५ ॥ दारुहलदीके रससे लेप करना दाहरोगमें हित है और शीतल पानीभी श्रेष्ठ है यह तृषाको और दाहको निवारण करता है ॥ ६ ॥ दाहवाले मनुष्यको सीधा शयन करा तिसकी नाभीके ऊपर कांसीके पात्रको धर तिसमें शीतल पानीकी धारा देनेंसे सुख उपजता है ॥ ७ ॥ सुंदर स्त्रीसे मिलाप होनेंसेभी दाह दूर होता है और सौ १०० वार धोयेहुई घृतकी मालिस करनेंसेभी दाह दूर होता है ॥ ८ ॥ मचकनको अथवा आंवलाको शीतल पानीसे पीस लेप करावै अथवा चटावै तब दाहमें सुख होता है ॥ ९ ॥ जामन, आंब, नींब इन्होंके पत्तोंको विजोराके रससे पीस लेप करनेंसे दाहरोगीको सुख मिलता है ॥ १० ॥ फुहाराका स्थान, चंद्रमाकी शीतल चांदनी, शीतलपन्ने, शीतलवायु, सपेद चंदन, कमल, प्रेमका होना, स्त्रीका मिलाप और स्त्रीकी चूंचियोंको मसलना, सफेद वस्त्रको गीला बना धारण करना, दूध, खांड, शंख, लोहा, चांदी, ये सब दाहकी शांतिकेलिये हित हैं ॥ ११ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने दाहचिकित्सानामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ मृगीरोगकी संप्राप्ति आदिक ॥

आत्रेय उवाच ॥ पित्तं मरुच्च श्लेष्मा च उदानः कुपितो भृशम् ॥ प्रा

णः शिरसि संकुप्य कुरुते नष्टचेष्टताम् ॥ १ ॥ प्राणान्नयत्यचैतन्यं नाडीं चेन्द्रियरोधनम् ॥ पतते काष्ठवल्लोको मुखे लालां विमुञ्चति ॥ २ ॥ कण्ठश्च घुर्घुरायेत फेनमुद्गिरतेऽथवा ॥ कम्पेते हस्तपादौ च रक्तव्यावर्त्ति लोचनम् ॥ ३ ॥ अपस्मारे च लिङ्गानि जायन्ते भिषजां वर! ॥ व्यावृत्तं लोचनं क्षामं तमो दाहः शिरोव्यथा ॥ ४ ॥ हतप्रभेन्द्रियसंज्ञश्चापस्मारी विनश्यति ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–पित्त, वात, कफ, उदानवायु, ये अत्यंत कुपित होकै और प्राणवायु शिरमें कुपित होके चेष्टाको नष्ट करते है ॥१॥ तब चेतन नहीं रहता और नाडीभी अचेतन होजाती है और इंद्रियों रुकजाती है और काष्ठकीतरह मनुष्य गिरजाता है और मुखसे लाल पडती है ॥ २ ॥ कंठमें घुर्घुर शब्द होता है अथवा झागको मुखसे गेरता है हाथ और पैर कंपते है और रक्तसे विशेषकरकै आवृतहुये नेत्र होजाते है ॥ ३ ॥ हे वैद्यवर! मृगीरोगमें ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ जिसके नेत्र पलट जावे और शरीर कृश होजावे और अंधेरी, दाह, शिरमें पीडा, ये उपजै इंद्रियोंकी कांति और संज्ञा जातीरहै ऐसा अपस्मारी अर्थात् मृगीरोगी मरजाता है ॥ ५ ॥

अथ मृगीरोगकी चिकित्सा ॥

तस्य पानाञ्जनालेपमर्दनं पानमेव च ॥ अपस्मारे चोपचार्य्यं घृतं तैलं च धीमता ॥ ६ ॥ अगस्तिपत्रं मरिचं मूत्रेण परिपेषितम् ॥ नस्ये शस्तमपस्मारं हन्ति शीघ्रं नरस्य तु ॥ ७ ॥ बन्ध्याकर्कोटिकामूलं घृतं शर्करयान्वितम् ॥ नस्ये वापि प्रयोक्तव्यमपस्मारप्रशान्तये ॥ ८ ॥

इसरोगवालेके लिये कुशलवैद्यनें पान करनेंके पदार्थ, अंजन, आलेप, मर्दन, घृत, तेल, इन्होंसे इलाज करना ॥ ६ ॥ अगस्तिवृक्षके पत्तेको और काली मिरचको गोमूत्रमें पीस नासिकामें चढानेंसे मृगीरोग शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥ वांझककोडीकी जडके रसमें घृत और खांड मिला नासिकामें चढानेंसे मृगीरोग शांत होता है ॥ ८ ॥

अथ कूष्माण्डलेह ॥

कुष्माण्डखण्डाश्च पक्करसाश्च सत्र्यूषणैलादलनागकेशरम् ॥ कुमेथिकाग्रन्थकधान्यकानां समांशकेनापि सिताप्रयोज्या॥९॥ प्रत्यूषसे भक्षणकं विधेयंतस्योपरि क्षीरमितं प्रशस्तम्॥निहन्त्यपस्मारविकारमाशु विनाशयेच्छीघ्रमसृग्विकारम् ॥ १० ॥

पकेहुये कोहलेके टुकडे ले तिसमें सूंठ, मिरच, पीपल, इलायची, तेजपात, नागकेसर, रानीमेथी, पीपलामूल, धनियां, इनसबोंके चूर्ण मिला और सबोंके समान मिश्री मिलावै पीछे प्रभातमें खावै और तिसकेऊपर प्रमाणसे दूधको पीवै यह मृगीरोगको और रक्तके विकारको शीघ्र हरता है ॥ १० ॥

अथ कूष्मांडघृत ॥

कूष्माण्डब्राह्मी षड्ग्रन्था शङ्खपुष्पी पुनर्नवा॥ सुरसासहितं चूर्णं शर्करा मधुसंयुतम् ॥ ११ ॥ अपस्मारविनाशाय भक्षणे हितमेव च ॥ उन्मादे पित्तरक्ते तु वन्ध्याया गर्भदायकम् ॥ १२ ॥

कोहला, ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी, सांठी, तुलसी, इन्होंके चूर्णमें खांड और शहद मिला ॥ ११ ॥ खानेंसे मृगीरोग, उन्माद, रक्तपित्त इन्होंका नाश होता है और वंध्याकै गर्भ ठहरता है ॥ १२ ॥

अथ दीपघृत ॥

रास्नामागधिकामूलं दशमूलं शतावरी ॥ शणत्रिवृत्तथैरण्डो भागान्द्विपलिकान्क्षिपेत् ॥ १३ ॥ यष्टीमधुकमृद्वीका शङ्खपुष्पी शतावरी ॥ रास्ना समङ्गा श्वतकं त्रिसुगन्धश्च भीरुकम् ॥१४॥ कुष्ठं वैतद्दीपकं च घृतं योज्यं भिषग्वरैः ॥ हन्त्यपस्मारमुन्मादं रक्तपित्तं गुदामयम् ॥ १५ ॥

रास्ना, पीपलामूल, दशमूल, शतावरी, शण, निशोत, अरंड, ये सब आठ २ तोले लेनें ॥ १३ ॥ मुलहटी, मुनक्का, शंखपुष्पी, शतावरी, रायशन, मजीठ, दालचीनी, इलायची, तेज-पात, शतावरीका भेद ,॥ १४ ॥ कूठ इन्होंमें घृतको पकावै यह घृत मृगीरोग, उन्माद, रक्त-पित्त, गुदाका रोग, इन्होंको नाशता है ॥ १५ ॥

अथ ब्राह्मीघृत ॥

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च॥
पचेद्धृतं पुराणं च अपस्मारं नियच्छति ॥ १६ ॥

ब्राह्मीका रस, वच, कूठ, शंखपुष्पी, इन्होंमें पुरानें घृतको पकावै यह मृगीरोगको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ अन्य उपाय ॥

महाबलाद्यं तैलं च बस्तौ नस्ये प्रशस्यते ॥ शतावर्यादिकं चापि स

दैव च हितं भवेत् ॥ १७ ॥ चन्दनाद्यं घृतं चैव प्रयोज्यं चात्र चोत्तमैः ॥ अपस्मारे वाप्युन्मादे वातरोगेऽथवा हितम् ॥ १८ ॥

महाबलादि तेल और शतावर्य्यादि तेल नस्यकर्म्ममें और बस्तिकर्म्ममें सदा हित है ॥ १७ ॥ मृगीरोग, उन्माद, वातरोग, इन्होंमें चंदनादि घृत युक्त करना ॥ १८ ॥

अथ त्र्यूषणादि गुटिका ॥

त्र्यूषणं त्रिफला हिङ्गु सैन्धवं कटुका वचा॥नक्तमालकबीजानि तथाच गौरसर्षपाः ॥ १९ ॥ बस्तमूत्रेण पिष्टैस्तु गुटिका छायाशोषिता॥ अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादं चैव दारुणम्॥२०॥ स्मृतिभ्रंशभ्रमीदोषभूतदोषविनाशनम् ॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकश्च चातुर्थिकं ज्वरं हरेत् ॥ २१ ॥ हन्ति तिमिरपटलं रात्र्यान्ध्यं च शिरोरुजम् ॥ सन्निपातविस्मरणं चेतयत्याशु मानवम् ॥ २२ ॥

सूंठ, मिरच, पीपल, हरडै, बहेडा, आंवला, हींग, सेंधानमक, कुटकी, वच, करंजुवाके बीज, सपेद सरसों ॥ १९ ॥ इन्होंको बकराके मूत्रमें पीस गोलियां बना छायामें सुखावै पीछे गोलीको घिस नेत्रोंमें आंजनेंसे मृगीरोग, दारुणरूप उन्माद ॥ २०॥ स्मृतिभ्रंश, भ्रम, भूतदोष, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, चातुर्थिकज्वर, ॥ २१ ॥ तिमिर, पटलगतरोग, रातौंधा, शिरकी पीडा, इन्होंका नाश होता है और सन्निपातसे मूर्च्छितहुआ रोगी जागता है॥ २२॥

चंदनादि चूर्ण ॥

चन्दनं तगरं कुष्ठं यष्टीत्रिसुगन्धवासकम् ॥ मञ्जिष्ठाभीरुमृद्वीकापाठाश्यामाप्रियङ्गुभिः ॥ २३ ॥ स्वयंगुप्ता पीलुपर्णी विषा रास्ना गवादनी॥ काकोल्यौ जीरकं मेदे पुष्करं घनवालुकम् ॥ २४ ॥ विदारी बासुमन्ती च वृद्धदन्ती विडङ्गकम् ॥ पद्मकं चैन्द्रवृक्षश्च तथारग्वधचित्रकम् ॥ २५ ॥ धान्यकं पञ्चजीरेण तथा तालीसपत्रकम् ॥ खदिरं निर्यासतगरं कालीयकं च कैकतम् ॥ २६ ॥ नागकेसरं परूषञ्च खर्जूरं चैकत्र मर्दयेत् ॥ भावितं पुनरेवं च मधुना सघृतेन च ॥ २७ ॥ लेहोऽयञ्च सदा शस्तश्चापस्मारेतिदारुणे ॥ उन्मादे कामलारोगे पाण्डुरोगे हलीमके॥२८॥ राजयक्ष्मे रक्तपित्ते पित्तातिसारपीडिते॥रक्तातिसारे शोषे च शिरोरोगे सदाज्वरे ॥ २९ ॥ तमकभ्रमके छर्दिदाहे च समदात्यये ॥

अश्मर्य्यांश्च प्रमेहेषु कासे श्वासे च पीनसे ॥ ३० ॥ एतेषां च प्रयोक्तव्यः सर्वरोगनिवारणः ॥ वन्ध्यानां च प्रयोक्तव्यो वृद्धानां च विशेषतः ॥ ३१ ॥ बालानां च हितश्चैव शृणु चात्र प्रमाणकम् ॥ एवं प्रयोजितो रोगे महाकल्को मतो बुधैः ॥ ३२ ॥ बलवान्गुणवांश्चैव भवतीह फलप्रदः ॥ भिषग्भिः कथ्यते लेहः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ३३ ॥

चंदन, तगर, कूठ, मुलहटी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वांसा, मजीठ, शतावरी, मुनक्का, स्योनापाठा, कालीनिशोत, मालकांगनी॥२३॥कौंचके बीज, मीठी तोरी, अतीश, रास्ना, इंद्रायन, काकोली, क्षीरकाकोली, जीरा, मेदा, महामेदा, पौहकरमूल, नागरमोथा, नेत्रवाला, ॥२४॥विदारीकंद, शालवण, भिदारा, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, पद्माक, इंद्रायणविशेष, अमलताश, चीता, ॥२५॥ धनियां, पांचों तरहके जीरे, तालीशपत्र, खैर, तगर, दारुहलदी, कैथ, ॥ २६ ॥ नागकेशर, फालसा, छुहारा, ये सब समान भागलेकै मर्दित करनें पीछे घृत और शहदमें मिला खावै ॥ २७ ॥ यह लेह भयंकररूपी मृगीरोग, उन्माद, कामला, पांडुरोग, हलीमक, ॥ २८ ॥ राजरोग, रक्तपित्त, पित्तका अतिसार, शोष, शिरकारोग, सबकालमें रहनेंवाला ज्वर, ॥ २९ ॥ तमक, श्वास, भ्रम, छर्दि, दाह, मदात्यय, पथरीरोग, प्रमेह, खांसी, श्वासरोग, पीनस, ॥ ३० ॥ इन्होंमें प्रयुक्त करना चाहिये यह सब रोगोंको निवारण करता है वंध्यास्त्रियोंको और वृद्ध मनुष्योंके विशेषकरके हित है ॥ ३१ ॥ और बालकोंको हित है ऐसे यह कल्क बुद्धिमानोंनें माना है ॥ ३२ ॥ यह चूर्ण बलको देता है गुणोंको प्रकाशित करता है यह चूर्ण अथवा कल्क वृद्ध वैद्योंनें कहा है और कृष्णात्रेयजीनें पूजित किया है ॥ ३३ ॥

अथ द्राक्षावलेह ॥

द्राक्षा दारु तथा निशा च मधुकं कृष्णा कलिङ्गा त्रिवृद्यष्टीका त्रिफला विडङ्गकटुकास्त्वक्चन्दनं दाडिमम् ॥ चातुर्जातकनिम्बका च तुरगीतालीसपत्रं घना मेदे द्वे सुरदारु कुष्ठकमलं रोध्रं समङ्गा वरी ॥ ३४ ॥ भार्ङ्गीकोलकदाडिमाम्लसहितं काश्मर्य्यशृङ्गाटकं काम्बोजा शणघण्टिका लघुतरा क्षुद्रा च रास्नायुतम् ॥ चूर्णं शर्करया समं मधु घृतं खर्जूरके संयुतं लिह्यात्कर्षमिदं समस्तबलकृद्धन्त्याश्वपस्मारकम् ॥ ३५ ॥ उन्मादश्च सुदारुणं क्षयमथो यक्ष्मा च पाण्डुश्वसन् कासास्त्रगुधिरप्रमेहगुदजं स्त्रीणां हितं शस्यते ॥ ३६ ॥

मुनक्का, देवदार, हलदी, मुलहटी, पीपल, सपेद निशोत, कालीनिशोत, महुवा, हरडै, बहेडा, आंवला, वायविडंग, कुटकी, रक्तचंदन, अनार, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात, नींबकी छाल, कालानमक, आसगंध, तालीशपत्र, नागरमोथा, मेदा, महामेदा, देवदार, कूठ, कमल, लोध, मजीठ, शतावरी, ॥ ३४ ॥ भारंगी, बेर, अनार, अमली, कंभारी, सिंगाडा, पद्माख, तानीवेल, छोटी कटेहली, रास्ना, खिजूरि ये अथवा छुहारे इन्होंके चूर्णमें खांड, घृत, शहद, इन्होंको मिला १ तोलाभरको चाटै यह बलको करता है मृगी रोगको हरता है ॥ ३५ ॥ और उन्माद, दारुणरूपी क्षय, राजरोग, पांडु, श्वासरोग, खांसी रक्तके रोग प्रमेहरोग, गुदाके रोग, इन्होंकोभी नाशता है और स्त्रियोंको हित कहा है ॥३६॥

अथ अन्यउपाय ॥

एतैर्यदि न सौख्यं स्याद्दहेल्लोहशलाकया ॥ ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये दहेद्वा मूर्ध्नि मानवम् ॥ ३७ ॥ वर्जयेत्कटुकं चाम्लं रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ विशेषेण वर्जनीयं सुरापूगकषायकम् ॥ ३८ ॥ न सेव्यानि ह्यपस्मारे मोहमूर्च्छाकराणि वा ॥ ३९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अपस्मारचिकित्सा नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो इनयोगोंसे सुख नहीं होवै तब लोहाकी सलाईको गर्मकर मस्तक, भृकुटियोंका बीच, शिर, इन्होंमें दाग देवै ॥ ३७ ॥ चर्चरा, खट्टा, रक्तपित्तविकारवालोंको वर्जित किये, मदिरा, सुपारी, ॥ ३८ ॥ मोह और मूर्च्छाको करनेंवाले पदार्थ, इन्होंको मृगीरोगमें त्यागै ॥ ३९ ॥ इतिवेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थानेऽपस्मारचिकित्सा नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ उन्मादनिदान ॥

आत्रेय उवाच॥ अयं मानसको व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ॥ प्रमत्ता ऊर्ध्वगा दोषा ऊर्ध्वं गच्छन्त्यमार्गताम् ॥ १॥ उन्मादो नाम दोषोऽयं कष्टसाध्यो भिषग्वरैः ॥ सोऽपि पृथग्विधैर्दोषैर्द्वन्द्वजोऽन्यः प्रकीर्त्तितः ॥ तथान्यः सन्निपातेन विषाद्भवति चापरः ॥ २ ॥ अशुचिविपथशून्यागार

केऽरण्यमध्ये सभयगहनवीथीदेवतागारके च ॥ अथ कथमपि भीत्या शङ्कया खिन्नचेतःक्षुभितमनसमार्गत्याज्यमुन्मार्गयेति ॥ ३ ॥ चिन्ताव्यथासुभयहर्षविमर्षलोभाद्देवातिथिद्विजनरेन्द्रगुरूपमानात् ॥ प्रेमाधिका युवतीजनस्य विप्रयोगादुन्मादेहतु च नृणां कथितं वरिष्ठैः ॥ ४ ॥ तेन गायति वा रौति विरूपं पठते यदा ॥ लोलयेच्छर्दिते वापि कम्पते हसते तथा ॥ ५ ॥ धावते हनने चैव जिह्वा तथा विनश्यति ॥ जवे भासयतेऽत्यर्थं पश्येद्वनमथातुरः ॥ ६ ॥ तस्यापस्मारकं कर्म कर्त्तव्यं भिषजां वरैः ॥ विशेषेण भूतविद्यामध्ये वक्ष्यामि चाग्रतः ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूर्च्छानिदानं नामोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

आत्रेयजी कहते हैं.—मनमें होनेवाली व्याधि उन्मादसंज्ञक कहाती है प्रमत्त अर्थात् बिगडके बढे हुए दोष ऊपरके मार्गमें प्राप्त होजाते है ॥१॥ तब यह उन्माद रोग होता है यह वैद्योंनें कष्टसाध्य कहा है वह उन्माद वात, पित्त, कफ इन्होंसें और द्वंद्वज होता है और एक सन्निपातसे उन्माद होता है एक विषसे होता है ॥२॥ और अशुद्ध होके भयंकर मार्गमें शून्य मकानमें, वनमें, तथा भयवाले गह्वर मार्गमें देवताके मंदिरमें, किसीक प्रकारसे भयकी शंकासे खिन्न मन होनेंसे मनक्षोभको प्राप्तहो अपनें मार्गको त्याग उन्मादको प्राप्त होजाता है ॥ ३ ॥ और चिंता,व्यथा, भय, हर्ष, क्रोध,लोभ, इन्होंसे और देवता, अतिथि, ब्राह्मण, राजा, गुरु, इन्होंके अपमान करनेंसे और अधिक प्रेमवाले जनका तथा स्त्रीका वियोग होनेंसे बुद्धिमान् पुरुषोंनें उन्मादका हेतु कहा है ॥ ४ ॥ तिस उन्मादके होनेंसे कभी गावै कभी रोवें विरूप होजावे कभी पढै चंचलपनाहो छर्दि करै कांपै हंसै ॥ ५॥ और मारनेंके समय भागजावे जिह्वाको छिपा लेवे और वेगसमय अत्यंत तेज होजावे और पीडित होके वनको देखै ॥ ६ ॥ ऐसे पुरुषके वैद्यजनोंनें मृगीरोगमें कहे हुए कर्म करनें चाहिये और विशेष करके मध्यमें भूतविद्याको कहैंगे ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने मूर्च्छानिदानं नाम ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ वातव्याधिचिकित्सा तहां सोलह प्रकारकी शिरोगत प्राणवायुका प्रकोप ॥

आत्रेय उवाच ॥ चतुरशीतिर्विख्याता वाता नृणां रुजाकराः ॥ तेषां

निदानं वक्ष्यामि समासेन पृथक्पृथक् ॥ १॥ विरुद्धचिन्ताशनजागराच्च व्यायामतश्चातितमोऽभिषङ्गात् ॥ असृग्विरेकाद्विषमाशनेन प्राणापानस मानसंधारणात् ॥ अध्वश्रमे क्षीणबलेन्द्रियाणामासन्नतो धातुगतोऽपि वायुः ॥ २ ॥ प्राणोपानःसमानश्च उदानो व्यान एव च ॥ एषां दोषाद्भवन्त्येते वातदोषाः पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ शिरःशूलं कर्णशूलं शङ्खशूलमसृग्गदः॥अर्द्धशीर्षविकारश्च दिनवृद्धिसमुद्भवः॥ ४ ॥ नासिकोपद्रवो वापि मन्यास्तम्भो हनुग्रहः ॥ जिह्वास्तम्भस्तालुशूलं तथा च तमकं भ्रमः ॥५॥ तन्द्राश्वासगलाद्याश्च षोडशैते शिरोगताः ॥ प्राणप्रकोपतो यान्ति पित्तेन सममीरिताः ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—वातसे उत्पन्न होनेंवाले विकार मनुष्योंके ८४ होते हैं सो संक्षेप करके जुदे २ तिन्होंके निदानोंको कहेंगे ॥१॥ विरुद्ध भोजन, चिंता, जागरण, कसरत, अत्यंत तमोगुणके अभिषंगसे रुधिरके विरेकसे अर्थात् फस्तसे, विषमभोजनसे, प्राण, अपान, समान, इनवायुओंके रोकनेंसे मार्गके श्रमसे क्षीणबल इंद्रियवाले पुरुषोंके धातुके समीपमें वायु प्राप्तहो ॥ २ ॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इनवायुओंके दोषसे जुदे २ वातदोष होजाती है ॥ ३ ॥ शिरमें शूलहो कानमें शूलहो कनपटियोंमें शूलहो रुधिरकी पीडाहो, दिनके चढनेंके समय आधा शिरमें पीडाहो, ॥ ४ ॥ नासिकामें उपद्रवहों मन्यास्तंभ, हनुग्रह अर्थात् ठोडी बंध रहै, जिह्वास्तंभ, तालुवामें शूल, तमकश्वास, भ्रम, ॥ ५ ॥ तंद्रा, श्वास गलकें रोग ये सोलह शिरमें प्राप्त होनेंवाले वायुके रोग है और प्राण वायुके कोपसे पित्तके संग वायुकोप होजाते है ॥ ६ ॥

अथ सोलह प्रकारके उदानवायुके कोप॥

हिक्का श्वासः परिश्वासः कासः शोषार्त्तिर्घण्टिका ॥ हृल्लासो हृदि शूलश्च यकृद्वातादिका वमिः ॥ ७ ॥ क्षवथुर्जृम्भणं चैव तथा वैस्वर्य्यपीनसः ॥ अरुचिश्च प्रतिश्याय एते प्रोक्ता उदानतः ॥ ८ ॥ उदानः श्लेष्मसंयुक्तो दोषाद्धृदि प्रकुप्यति ॥ ९ ॥

हिचकी, श्वास, अत्यंत श्वास, खांसी, शोषकी पीडा, गलघंटिका रोग, थुकथुकी, हृदामें शूल, यकृत्, वात आदिकोंकी छर्दि ॥ ७ ॥ छींक आना, जंभाई आना, स्वर बिगडना, पीनस, अरुचि, सेहर, ये रोग उदानवायुके कोपसे होते है ॥ ८ ॥ यह उदान वायु कफके साथ दोष करकै हृदयमें कुपित होता है ॥ ९ ॥

---

१ अस्मिन्पद्येचरणद्वयमिदमधिकम् ॥

अथ व्यानवायुके कोपके लक्षण ॥

वक्ष्यामो व्यानको नाम मारुतस्य प्रकोपनम् ॥ वातः सर्वाङ्गको धातुविकारं कुरुते भृशम् ॥ १० ॥ स च धातुमतो ज्ञेयस्तथा प्रोक्तः पृथक् पृथक् ॥ त्वग्वाते रोमहर्षश्च मन्या चांसाभूरेव च ॥ ११ ॥ मांसगे शोथतोदश्च मेदःस्वस्थे च कम्पता ॥ भङ्गतास्थिगते वाते पतनं मज्जगे भवेत् ॥ १२ ॥ शुक्रगे सन्धिशोथश्च तस्मात्त्वग्वातलक्षणम् ॥ एतैर्धातुगतान्वातान्साध्यासाध्यान्निरोधयेत् ॥ १३ ॥ संत्यक्तमांसमेदःस्थो वायुः सिध्यति भेषजैः॥ अन्ये कष्टेन सिध्यन्ति न सिध्यन्त्यथवा पुनः॥१४॥

अब व्याननामवाले वायुके कोपके लक्षणोंको कहते है सब अंगमें रहनेवाला यह वायु अत्यंत धातुविकारको करता है ॥ १० ॥ सो वह धातुमें प्राप्त हुआ पृथक् २ जानना यह वात त्वचामें कोप होजावे तब रोम खडेहों मन्यासंज्ञक नसोंका फुरणाहो ॥ ११ ॥ और मांसमें प्राप्त होजावे तब शोजाहो चभकाहो मेदमें कंपनाहो ॥ १२ ॥ और अस्थियोंमें प्राप्त होवे तब हाड टूटजावे मज्जामें कुपित होवे तब गिरना होवे वीर्यमें होवे तब संधियोंमें शोजा होवे ऐसे त्वचा आदिकोंमें वायु प्राप्त होता है इत्यादिक धातुओंमें प्राप्तहुए वायुओंको साध्य और असाध्योंको रोकै ॥ १३ ॥ जो वायु मांससे रहित मेदमें प्राप्त होवे वह औषधोंसे सिद्ध होता है और अन्यवायु कष्टसे सिद्ध होते है ॥ १४ ॥

अथ समानवायुका प्रकोप ॥

लोमहर्षो भवेत्तोदो निद्रानाशोऽरुचिस्तमः ॥ गात्रं सूची च विध्येत भ्रमन्त्येव पिपीलिकाः ॥ १५ ॥ रूक्षत्वं त्वग्रसे नेत्रे कृशत्वं जायते पुनः ॥ गर्भरजसः शुक्रस्य नाशो भवति वेपथुः ॥ १६ ॥ मन्दाग्नित्वं च भवति स्वमानि च स पश्यति॥निद्रानाशः क्षोभयति सामान्यं वातलक्षणम्॥१७॥

और रोमहर्ष अर्थात् रोम खडे होजावे, शरीरमें चभकाहो, निद्राका नाशहो, अरुचिहो, अंधेरीहो, शरीरमें कीडीसी चलै ॥ १५ ॥ त्वचा, नेत्र, ये रूषे रहे और माडा शरीर होजावे और स्त्रीकै गर्भ, रजस्वला, इन्होंका नाश होजावे वीर्य नष्ट होजावे, कंपनाहो॥ १६ ॥ मंद-अग्नि होजावे अनेक सुपनें आवे, निद्राका नाश होजावे शरीरमें लोभ होवे ये सामान्य वातके लक्षण है ॥ १७ ॥

अथ आक्षेपकवायुका लक्षण अथ तन्त्रकवायुका लक्षण ॥

मुहुराक्षेपयेद्गात्रं भेदस्तोदो बहुस्वरः ॥ स चैवाक्षेपको नाम जातो व्या

नप्रकोपतः ॥ १८ ॥ धनुर्वन्नाम्यते गात्रमाक्षिपेच्च मुहुर्मुहुः ॥ प्रक्लिन्न नेत्रस्तब्धाक्षः कपोत इव कूजति ॥ तमाहुर्भिषजां श्रेष्ठा अपतन्त्रकनामतः ॥ १९ ॥

और जो वारंवार शरीर कांपै मेदमें चभका हो ज्वर बहुत होजावे ऐसा आक्षेपकनामवाला वायु होता है यह व्यानवायुके कोपसे होता है ॥ १८ ॥ शरीर वारंवार धनुषकी तरह नवै गीले और गर्वसरीखे नेत्र रहै कपोतकी तरह कूजै ये लक्षण हो तिस वायुको वैद्यजन अपतंत्रकनामवाला कहते है ॥ १९ ॥

अथ अप्रतानकवायुप्रकोप ॥

मतान्तरे वदन्त्यन्ये प्रह्वप्रतानको मतः ॥
गृहीतार्द्धं ततो वायुरप्रतानकः संस्मृतः ॥ २० ॥

और कईक मतोंमें इसवायुको अप्रतानक कहते है अथवा जो आधा शरीरको बंधकर देवै उसको अप्रतानक वायु कहते है ॥ २० ॥

सोऽपि कफाश्रितो वायुः संपीडयति दण्डवत् ॥ स्तम्भयत्याशु गात्राणि सोपि दण्डाप्रतानकः॥२१॥हृद्वक्षोजकराङ्गुलीगुल्फसन्धौ समाश्रितः॥स्नायुं प्रतानयेद्यस्तु सोऽपि स्नायुप्रतानकः ॥ २२ ॥ बाह्यानामथ नाडीनां प्रतानयति मारुतः ॥ कट्याश्रितो वा भवति सशल्यमिव कुर्वते ॥ २३ ॥ तमसाध्यं बुधाः प्राहुस्तञ्च वातं प्रतानकम् ॥ अन्धं चतुर्थमाक्षेपमभिघातसमुद्भवम् ॥ २४ ॥ अभिघातेन यो जातो न स साध्यः प्रतानकः ॥ ऊर्ध्वं तानयते यस्तु विशोषयति गात्रकम् ॥२५॥ मोहतमःकृते वास्थिसन्धिसंशुष्कको मतः ॥

और वही वायु कफकै आश्रय होके लाठीकी चोट सरीखी पीडा करता है गात्रोंको बधकर देता है वह दंडाप्रतानक वायु कहाता है ॥ २१ ॥ और हृदा, छाती, हाथोंकी अंगुली, टंकने इन्होंकी संधियोंकै आश्रय होके जो नसोंको विस्तारित करदेता है वह स्नायुप्रतानक वायु कहाता है ॥ २२ ॥ और जो वायु बाहिरकी नसोंमें विस्तारित होजातीहै अथवा कटिकै आश्रय होजाती है और शल्य चोटलगी सरीखी पीडाहो ॥ २३ ॥ तिसको बुद्धिमान् मनुष्य असाध्य प्रतानक वात कहते है और चोटसे उत्पन्न होनेंवाला चौथा आक्षेपक वात कहाता है॥२४॥वह ऊपरले अंगोंमें फैलताहै और शरीरमें शोष कर देता है॥२५॥ और मोहहो, तम अर्थात् अंधेरी हो वह अस्थिसंधि इन्होंको सुखानेंवाला वायु कहाता है.

अथ एकाङ्गवायु ॥

कृच्छ्रार्द्धकर्षं भवति शुष्कतां च प्रकुञ्चति ॥ २६ ॥
पृष्ठं प्रतानार्द्धं यो वै स तथैकाङ्गिको मतः ॥ २७ ॥

तिस्से आधा शरीरमें कष्ट रहै खिंचाहुआ रहै और शोषका कोपहो ॥ २६ ॥ और जो पीठको तथा आधा शरीरको बंधकर देता है वह एकांगिक वायु कहाता है ॥ २७ ॥

अथ एकांगपक्षघातवायु ॥

एकाङ्गपक्षघातश्च भवत्यन्यतमो यदि ॥
वातघ्नैरौषधैः सर्वैर्वायुः कष्टेन सिध्यति ॥ २८ ॥

और जो यदि अन्य पक्षघातसंज्ञक वायु एकतर्फके अंगमें प्राप्त होजाता है वह संपूर्ण वातनाशक औषधोंकरके कष्टसे सिद्ध होता है ॥ २८ ॥

अथ तूनी तथा प्रतितूनी वायु ॥

तोदमूर्च्छा वेपनं स्याद्वेष्टता स्पर्शनाज्ञता ॥ यस्तु नश्यति गात्राणि वायुस्तूनीतिशब्दितः ॥ २९ ॥ वेपनं तोदवेष्टत्वं स्पर्शनं वेत्ति यः पुनः ॥ प्रतूनयति गात्राणि प्रतितूनीति गद्यते ॥ ३० ॥

शरीरमें चभकाहो, मूर्च्छाहो, कंपनाहो,शरीर बंधा रहे, स्पर्श नहीं जना जावे और अंगोंको नष्ट कर देवै वह तूनीसंज्ञक वायु कहाता है ॥ २९ ॥ और शरीर कांपै चभकाहो शरीर बंध रहे और स्पर्शको सह लेवै शरीरको पीने अर्थात् पीननें सरीखी पीडाहो वह प्रतितूनी वात कहाता है ॥ ३० ॥

अथ व्यानवायुके कोपका लक्षण ॥

हृदिस्तम्भः पृष्ठस्तम्भ ऊरुस्तम्भश्च गृध्रसी ॥ पृथक्त्वेन च कथितमग्रे शृणुष्व कोविद ! ॥ ३१ ॥ एते व्यानप्रकोपेन द्विषोडश प्रकीर्त्तिताः॥३२॥

हृदाबंध रहे पीठ बंध, रहे जांघ बंध रहे गृध्रसी रोग होजावे सो जुदे २ बत्तीस प्रकारके रोग पहले व्यान वायुके कोपसे कहे है अब आगे कहेहुए अन्यवायुओंके लक्षणोंको सुन ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ सोलह प्रकारके उदानवायुके कोप ॥

शूलं गुल्म उदावर्त्त आध्मानोदावर्त्तमेव च ॥ परिणामो विषमाग्निरजीर्णं वातिगुल्मकः ॥ ३३ ॥ परिक्लेदी रसशोषो रसश्च मलवालकः ॥ बन्धी भेदी विलासी च षोडशैते समानतः ॥ ३४ ॥

शूलहो, गुल्म, उदावर्त्त, ॥ ३३ ॥ अफारा, परिणाम शूल, विषमाग्नि, अजीर्ण, वातका गोला, परिक्लेद पीडा, रसशोष, रस नहीं पकना, मल कच्चा रहना, मलका बंधा, तथा पतला मल होना, भोग करनेंकी इच्छा रहे ये सोलह विकार समान वायुके कोपसे होता है ॥३४॥

अथ सोलहप्रकारके अपानवायुके लक्षण ॥

भगन्दरो बस्तिशूलो मेहार्शश्चातिकोठकः ॥ लिङ्गदोषो गुदभ्रंशस्तथान्यो गुदशूलकः ॥ ३५ ॥ मूत्ररोधो विड्रोधश्च षोडशैते विजानता ॥ अपानस्य प्रकोपेन विज्ञेयास्तु प्रधानतः ॥ ३६ ॥ एते विकाराः कथिताः विस्ताराश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ दाहः सन्तापः शोषश्च मूर्च्छा पित्तान्वितो मरुत् ॥ ३७ ॥ शैत्यं शोफारुचिर्जाड्यं वातश्लेष्मसमन्वितम् ॥ यो द्वन्द्वजाश्रितो धीर ! तं साध्यं मारुतं विदुः ॥ ३८ ॥ केवलोऽपि समीरोऽपि सोऽपि साध्यतमः स्मृतः ॥ वक्त्रं भवति वक्राद्र्धं ग्रीवा चाप्युपवर्त्तते ॥ ३९ ॥

भगंदर रोगहो, बस्तिमें शूल, प्रमेह, ववासीर, शीत पित्त, लिंगदोष, गुदभ्रंश, गुदामें शूल, ॥ ३५ ॥ मूत्रबंध होना, मलबंध होना, ये सोलह विकार वैद्योंनें अपानवायुके कोपसे जानेनें ॥ ३६ ॥ ये विकार विस्तार करके यहां कहदिये है, और दाह, संताप, शोष, मूर्च्छा, ये पित्तवातसे होते है ॥ ३७ ॥ और शीतलता, शोजा, अरुचि, जडपना, ये वात कफसे होते है और जो दो दोषोंसे मिलाहुआ, वायु है उसको साध्य कहते है ॥ ३८ ॥ तथा एक दोषवालाभी वायु सुखसाध्य कहा है मुख टेढा होजावे अथवा ग्रीवा ऊपरको होजावे॥३९ ॥

अथ अर्दित अर्थात् लकुआके लक्षण ॥

वैकृत्यं नयनानाञ्च विसङ्गो वेदनातुरः ॥ ग्रीवायां गण्डयोर्दन्तपार्श्वे य स्यातिवेदना ॥ ४० ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्वातव्याधिविचक्षणाः ॥ ४१ ॥

नेत्र बिगडजावे वायु बंध होजावे पीडा रहै और ग्रीवा, कपोल, दांतोंके मसूढे इन्होंमें ज्यादै पीडाहो ॥ ४० ॥ तिसको व्याधिको जाननेंवाले वैद्य अर्दित अर्थात् लकुआ कहते है॥४१॥

अथ द्वंद्वजअर्दितका लक्षण ॥

लालास्रावोऽथ शोषश्च हनग्रहो विरस्यता ॥ दन्तशूलं भवेद्यस्य वातेनार्दितमेव च ॥ ४२ ॥ पीताङ्गः सज्वरं तृष्णा पित्तजो मोह एव च ॥ शोफस्तम्भोऽस्य भवति कफोद्भूतेऽथवार्दिते ॥ ४३ ॥

और लाल गिरैं, शोषहो, ठोडी बंध रहे, मुखका रस बिगडा रहे, दांतोंमें शूलहो ये अर्दित वातके लक्षण है ॥ ४२ ॥ और पीला शरीरहो, ज्वरहो, तृषाहो, मोहहो, ये पित्तसे उपजे अर्दित वायुके लक्षण हैं और शोजाहो गात्र बंध रहै ये कफसे उपजे वायुके लक्षण है॥४३॥

अथ असाध्यअर्दित ॥

भाविनो लक्षणं यस्य वेपथुर्नेत्रमाविलम् ॥ क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥ ४४ ॥ न सिध्यत्यर्दितं गाढं विषमं चापि तस्य च ॥ कण्ठो घोरो भक्षणार्थं जृम्भा प्रस्तारिते मुखे ॥ ४५ ॥ हनुस्तम्भो भवत्येते कृच्छ्रसाध्या भवन्ति हि ॥ विषमे वा दिवास्वप्ने विवर्त्तितनिरीक्षणे ॥ ४६ ॥ मन्यास्तम्भं जनयति कृच्छ्रात्पार्श्वं विलोकते ॥ वाग्वादिनीं शिरां रुद्ध्वा स्तम्भयेद्वसनानिलः ॥ ४७ ॥ रक्ताश्रितोऽपि पवनः शिरोनाड्यां समाश्रितः ॥ शिरोऽर्त्तिं कुरुते यस्तु सोऽप्यसाध्यः शिरोग्रहः ॥ ४८ ॥

और जिसकै कंपनाहो नेत्र गड जावे आंखोंकी पलक क्षीण होजावे और अव्यक्त अप्रकट बोलै उसकै जानना की अब अर्दित वात होवेगा॥४४॥और जिसकै विषम तथा अत्यंत लकुवा वात होजाता है उसकै अच्छा नहीं होता है और जिसका कंठ घोरहो भक्षण करनेंकेवास्ते तथा जंभाई लेनेंकेवास्ते फाडाहुआ मुखसरीखा मुख रहजावे ॥ ४५ ॥ ठोडी बंद होजावे ये कष्टसाध्य लकुआके लक्षण है और जिसके दिनमें विषम सोनेंसे उलटे देखनेंके समय ॥ ४६॥ ठोडीकी न संबंध रहै और पांशुकी तर्फ बडे कष्टसे देखा जावे और वाणीको बोलनेंवाली नाडीको श्वासवायु बंधकर देवै यहभी कष्टसाध्य वात है ॥ ४७ ॥ और रक्तकै आश्रयहुआ वायु शिरकी नाडियोंके आश्रय हो जो शिरमें पीडा करदेता है वहभी शिरोग्रह वायु असाध्य कहाता है ॥ ४८ ॥

अथ अपान आदिकबातोंकी चिकित्सा ॥

अतः प्रतिक्रियां वक्ष्ये यथा सिध्यति मारुतः ॥ स्नेहनं रूक्षणं कार्य्यं पाचनं शमनानि च ॥ ४९ ॥ स्वेदनं मर्दनाभ्यङ्गो बस्तिस्नेहो निरूहणम् ॥ स्नायुसन्ध्यस्थिसंप्राप्ते भेदनं कारयेत्सुधीः ॥ ५० ॥ माणिमन्थेन यन्त्रेण ततः संभूषयानिलम् ॥ असाध्ये शुक्रगे व्याने बीजवसमुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

अब जैसे वायु सिद्ध होता है तैसे चिकित्साको कहते है स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शमन ऐसे इलाज करनें चाहिये ॥ ४९ ॥ पसीना दिवाना, मालिसकरनी, बस्तिस्नेह, निरूहणबस्ति ये चिकित्सा करनी चाहिये और स्नायू, संधि, अस्थि, इन्होंमें वायु प्राप्त होजावे तो तब भेदन अर्थात् गहावे ॥ ५० ॥ और माणिमंथ यंत्र करके वायुको शांतकरै और जो असाध्य व्यानवायु शुक्रमें प्राप्त होवे तो वीर्यवृद्धिसरीखी औषध करै ॥ ५१ ॥

अथ स्नेहननामघृत ॥

मुण्डी गुडूची बृहतीद्वयं च रास्ना समङ्गा कथितः कषायः ॥ समुच्चिते नापि विमिश्रितं च दुग्धं दधि स्यान्नवनीतकञ्च ॥ ५२ ॥ पचेत्सुधीमान्मृदुवह्निना च सिद्धं घृतं स्नेहनमेव पुंसाम् ॥ कर्षप्रमाणं विहितं च पाने चाभ्यञ्जके भोजनके तथैव ॥ ५३ ॥ बस्तौ हितं स्नेहनमेव पुंसां सप्ताहकं वातविकारिणाञ्च ॥ ५४ ॥

गोरखमुंडी, गिलोय, छोटी कटेहली, बडीकटेहली, रास्ना, मंजीठ, इन्होंका क्काथ, बनालेवे पीछे इस क्काथमें दूध, दही, नूनीघृत ॥ ५२ ॥ इन्होंको मिला फिर मंद २ अग्निसे पकावे फिर यह घृत सिद्ध होजावे तब इसकी मालिस करनी वातवालेपुरुषोंको हित है और एक तोला प्रमाण इसको पीवे अथवा मालिसमें और भोजनमें वरतै ॥ ५३ ॥ वातके विकारवाले पुरुषोंको यह घृत सात दिनतक सेवन करना चाहिये ॥ ५४॥

अथ निरूहणवस्ति ॥

रास्नाविडङ्गरजनी सह नागरेण सौवीरकेण सुरसा सह सैन्धवेन॥सोष्णञ्च पानमिदमेव विरूक्षणञ्च स्यान्नृणाञ्च पञ्चदिनकर्षमात्रमेव ॥ ५५ ॥

रास्ना, वायविडंग, हलदी, सुंठ, कांजी, तुलसी, सेंधानमक, इन्होंको एक जगह मिला गरम २ पीना हित है और रूषा भोजन खावै और पांच दिनतक एक एक तोला प्रमाण इसको खावै ॥ ५५ ॥

अथ पाचन तथा शमनका कथन ॥

अतः स्यात्पाचनं सम्यग् दिनसप्तकमेव तत् ॥ पाचिते चैव दोषे च तस्मात्संशमनं ददेत् ॥ ५६॥ वक्ष्यामि ते पुष्टिगते धमन्या समाश्रिते च बहुधाशनेन॥संस्वेदश्च नाशयते समीरं सप्ताहकं चोष्णजलेन सेकः॥५७॥

इसके सेवनेसे वायु पकजाता है और फिर सात दिन पीछे दोष पकजावे तब संशमन औषधको करै ॥ ५६ ॥ अब धमनी नाडीके आश्रय होके पुष्टिस्थानमें प्राप्तहुआ

वायुका इलाजको कहते है तिस वायुको बहुत प्रकारसे शमन करके स्वेद अर्थात् पसीना दिवाके वायुको शांत करै और सात दिनतक गरम जलसे सेकै ॥ ५७ ॥

अथ सर्वांगवायुकी चिकित्सा ॥

रास्नात्रिकण्टकैरण्डशतपर्वा पुनर्नवा ॥ क्वाथो वातमयं हन्ति सर्वाङ्गगतमाशु च ॥ ५८ ॥ रास्नागुडूचिकादारुनागरैरण्डसंयुतः ॥ क्वाथः सर्वाङ्गवातेऽपि समधातुगते हितः ॥ ५९ ॥ रास्नाश्वगन्धाकाशीशं वचा च कपिकच्छुकम् ॥ क्वाथस्त्वेरण्डतैलेन पीतो हन्ति समीरणम् ॥ ६० ॥ रास्नाधान्यकशुण्ठी च यवानी दशमूलकम् ॥ क्वाथः पाचनके प्रोक्तो नरे वातविकारिणि ॥ ६१ ॥ रास्नाद्यानि पाचनानि हितानि कथितानि च ॥ ६२ ॥

और रास्ना, छोटी कटेहली, बडी कटेहली, गोखरू, अरंड, वच, सांठी, इन्होंका क्वाथ बना पीनेंसे वातोंके रोग दूर होते है और सर्वांग वात शीघ्रही नष्ट होता है ॥ ५८ ॥ और रास्ना, गिलोय, देवदार, सूंठ, अरंड, इन्होंका क्वाथ सर्वांग वातमें और धातुगत वातमें हित है ॥ ५९ ॥ और रास्ना, आसगंध, हीराकसीस, वच, कौंचके बीज, इन्होंका क्वाथको अरंडीके तेलके संग पीनेंसे वातका नाश होता है ॥ ६० ॥ और, रास्ना, धनियां, सूंठ, अजमान दशमूल, इन्होंका क्वाथ वातविकारवाले पुरुषोंको पाचन कहा है ॥ ६१ ॥ ऐसे ये रास्ना आदिक क्वाथ वातवालोंको हित और पाचन कहे है ॥ ६२ ॥

अथ रसोनकयोग ॥

अर्द्धपलं रसोनञ्च हिङ्गुसैन्धवजीरकैः ॥ सौवर्चलेन संयुक्तं तथैव कटुकत्रिकम् ॥ ६३ ॥ घृतेन संयुतं भक्षेन्मासमेकं दिने दिने ॥ निहन्ति वातरोगञ्च अर्दितं च प्रतानकम् ॥ ६४ ॥ एकाङ्गरोगिणाञ्चापि तथा सर्वाङ्गरोगिणाम् ॥ ऊरुस्तम्भं क्रिमेर्दोषं गृध्रसीर्वापि कर्षति ॥ ६५ ॥ पलार्द्धञ्च पलं चापि रसोनञ्च सुकुट्टितम् ॥ हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थं सौवर्चलकटुत्रयम् ॥ ६६ ॥ एभिः संचूर्णितैः सर्वैस्तुल्यं तैलेन संयुतम् ॥ यथाग्नि भक्षयेत्प्रातः रुवुक्वाथानुपानवत् ॥ ६७ ॥ मासमेकं प्रयोगेण सर्ववातामयाञ्जयेत् ॥ एकाङ्गं चैव सर्वाङ्गमूरुस्तम्भं च गृध्रसीः ॥ ६८ ॥

कटिपृष्ठास्थिसन्धिस्थमर्दितं चापतन्त्रकम् ॥ ज्वरं धातुगतं जीर्णं नित्यञ्च सैकराह्वयम् ॥ ६९ ॥

लस्सन २ तोले हींग, सेंधानमक, जीरा, कालानमक, सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंको समानभाग ले ॥ ६३ ॥ घृतमें मिला दिन २ प्रति एक २ मासाप्रमाण भक्षण करे यह वातरोग, लकुवा, प्रतानकवात, इन्होंको नाशता है ॥ ६४ ॥ और एकांगवातरोग, सर्वांग वात, ऊरुस्तंभ, क्रिमिदोष, गृध्रसी वात इन्होंको दूर करता है ॥ ६५ ॥ और चार तोले अथवा दो तोले लस्सनको कूटि तिसमें हींग, जीरा, सेंधानमक, कालानमक, सूंठ, मिरच, पीपल,॥६६॥ इनसबोंको समान भाग ले चूर्ण बना तिसमें बराबरका तेल मिला फिर प्रातःकाल जठराग्निके अनुसार इसको भक्षण करे और इसपे अरंडका क्काथका अनुपान करै ॥ ६७ ॥ इसके एक मासा खानेंसें सबप्रकारके वातरोगोंका नाश होता है एकांग वात, सर्वांग वात, ऊरुस्तंभ, गृध्रसी वात ॥ ६८ ॥ कटि, पृष्ठ, अस्थि, संधि इन्होंको मर्दन करनेंवाला वात, अपतंत्रक वात, धातुगत ज्वर, तथा जीर्ण ज्वर, और नित्य आनेंवाला ज्वर, शीतज्वर, इन्होंको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ वातको शमन करनेंवाले क्काथ ॥

नागरा च हरिद्रा च कणाजाज्यजमोदिका ॥ वचा सैन्धवरास्ना च मधुकं समभागिकम् ॥ ७० ॥ श्लक्ष्णचूर्णं पिबेच्चैव सर्पिषा प्रत्यहं नरः ॥ एकविंशतिदिनैर्वा रोगान् हन्ति न संशयः ॥ ७१ ॥ भवेच्छ्रुतिधरः श्रीमान् मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ हन्ति वातामयान् सर्वान् लेहो यश्च सुखावहः ॥ ७२ ॥ शतावरी वचा शुण्ठी रास्ना कदरशल्लकी ॥ दशमूली बला किण्वस्तुम्बुरू च गुडूचिका ॥ ७३ ॥ एष कल्को घृतैर्युक्तो हन्ति वातं शरीरगम् ॥ ७४ ॥ शल्लकीचिक्कणीत्वचो क्काथस्तैलेन संयुतः ॥ कुर्य्याद्वातार्दितं स्वस्थमेकाविंशतिदिनैर्नरम् ॥ ७५ ॥ अतोऽभ्यङ्गश्च कर्त्तव्यस्तैलैरपि घृतैरपि ॥ गुग्गुलश्च रसोनश्च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ७६ ॥

सूंठ, हलदी, पीपल, जीरा, अजमोद, वच, सेंधानमक, रास्ना, मुलहटी, इन्होंको समान भागले ॥ ७० ॥ बारीक चूर्ण बना घृतके संग पीनेंसे इक्कीस दिनोंमें वातके रोग नष्ट होते है इसमें संदेह नहीं ॥ ७१ ॥ और श्रोत्र इंद्रिय बलवान् होजाती है मेघके समान स्वर होजाता है इसमें संदेह नहीं और यह लेह सबप्रकारके वातरोगोंको नाशता है सुख करनेंवाला है

॥ ७२ ॥ और शतावरी, वच, सुंठ, रास्ना, छोटा शल्यकीवृक्ष, दशमूल, खरैहटी, मदिरासे बाकी रहा द्रव्य, धनियां, गिलोय ॥ ७३ ॥ इन औषधोंका कल्क बना घृतके संग खानेंसे शरीरमें प्राप्तहुआ वातका नाश होता है ॥ ७४ ॥ और शालवृक्ष, सुपारीका वृक्ष, इन्होंकी छालके क्राथमें तेल मिला मालिस करनेंसे इक्कीस दिनमें वातसे पीडित मनुष्य स्वस्थ आनंदित होता है ॥ ७५ ॥ इसवास्ते तेलोंकरके तथा घृतकरके मालिस करनी हित है और विधिपूर्वक लस्सनमें गूगलको सिद्धकर तिसका सेवन करना हित है ॥ ७६ ॥

अथ बलाआदिक औषध ॥

भागाश्चाष्टौ बलामूलं चत्वारो दशमूलकम् ॥ क्राथश्चतुर्गुणे तोयेऽथवा द्रोणस्य संख्यया ॥ ७७ ॥ तत्राढकं क्षिपेत्क्षीरमाढकं मिश्रयेद्दधि ॥ कुलत्थाढकयूषं वै चाशु पर्य्युषितं क्षिपेत् ॥ ७८ ॥ तैलं तिलानां द्रोणं तु कटाहे पाचयेच्छनैः ॥ जीवन्ती जीवनीया च काकल्यौ जीवकर्षभौ ॥ ७९ ॥ मेदे द्वे सरलं दारु शल्लकश्च कुचन्दनम् ॥ कालीयकं सर्जरसं मञ्जिष्ठा त्रिसुगन्धिकम् ॥ ८० ॥ मांसी शैलेयकं कुष्ठं वचा कालाष्टशारिवा ॥ शतावरी चाश्वगन्धा शतपुष्पा पुनर्नवा॥८१॥ किण्वकं च सुरा मुस्ता तथा तालीसपत्रकम् ॥ कटुत्रयं वालुकौ च सर्वं तत्रैव मिश्रयेत् ॥ ८२ ॥ सिद्धं सर्वगुणं श्रेष्ठं कृत्वा मङ्गलवाचनम् ॥ सौवर्णे राजते कुम्भे वाथवा मृन्मयायसे ॥ ८३ ॥ प्रतप्तं धारयित्वा तु पानाभ्यङ्गे निरूहके ॥ बस्तौ वापि प्रयोक्तव्यं मनुष्यस्य यथा बलम् ॥ ८४ ॥ वातार्दितेऽथवा भग्नेभिन्ने वापि प्रदापयेत् ॥ या वन्ध्या च भवेन्नारी पुरुषाश्चाल्परेतसः ॥ ८५ ॥ क्षीणो वा दुर्बलो वापि तथा जीर्णज्वरातुरः ॥ आमवातातुराणाञ्च तथा प्रक्षिप्य कञ्चटम् ॥ ८६ ॥ प्रभाते च प्रयोक्तव्यं तथा शुष्के हनुग्रहे ॥ कर्णशूले चाक्षिशूले मन्यास्तम्भे च पार्श्वगे ॥८७॥ सर्ववातविकाराणां हितं तैलं यथामृतम् ॥ हन्ति श्वासं च कासं च गुल्मार्शोग्रहणीगदम् ॥ ८८ ॥ अष्टादशानि कुष्ठानि शीघ्रं वापि नियच्छति ॥ ग्रहभूतपिशाचाश्च डाकिनी शाकिनी तथा ॥ ८९ ॥ दूरदेशे पलायन्ते बलातैलस्य दर्शनात् ॥ अपस्मा

रादिदोषांश्च तच्च दूरे नियच्छति ॥ ९० ॥ वृद्धा युवानो भवन्ति वन्ध्या च लभते सुतम् ॥ तैलं महाबलाद्यं च महावातहरं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

खरैहटीकी जड आठ भाग, दशमूल चार भाग, इन्होंको चारगुना जलमें और १०२४ तोले जलमें पकाके क्काथ बनावे ॥ ७७ ॥ पीछे तिसमें २५६ तोले दूध मिला, और २५६ तोले दही, २५६ तोले कुलथीका यूषको बासीकरके मिलावे ॥ ७८ ॥ और तिलोंका तेल १०२४ तोले ऐसे इनसबोंको मिला पीछे शनैःशनैः कडाहींमे पकावे और जीवंती, हरडे, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ॥ ७९ ॥ मेदा, महामेदा, सरल, देवदार, शल्लकी, लाल चंदन, रोहिस तृण, शलकावृक्ष, मंजीठ, त्रिसुगंधि अर्थात् तेजपात, इलायची, दालचीनी ॥ ८० ॥ जटामांसी, शिलाजित, कूठ, वच, नील, अनंतमूल, शतावरी, आसगंध, सौंफ, सांठी ॥ ८१ ॥ मदिरासे बाकी रहा द्रव्य, मदिरा, नागरमोथा, तालीसपत्र, कुटकी, नेत्रवाला, इनसबोंको एक जगह मिला ॥ ८२ ॥ पीछे इसको सिद्ध करै यह सब गुणोंवाला है श्रेष्ठ है इसको मंगलाचरण करके सुवर्णका अथवा चांदीका तथा मृत्तिकाके पात्रमें घाल धरै॥८३॥ इसको गरम २ को पीनेंमें अथवा मालिसमें तथा निरूहबस्तिमें प्रयुक्त करै अथवा मनुष्यके अग्निबलको विचार साधारण बस्तिमें इसको प्रयुक्त करै ॥ ८४ ॥ लकुवावात, भग्नवात, भिन्नवात, इन्होंमें यह औषध वरतना चाहिये और जो वंध्या स्त्री है अथवा अल्पवीर्यवाला पुरुष है तिसको यह श्रेष्ठ कहा है ॥ ८५ ॥ और क्षीण पुरुष, दुर्बल, जीर्ण ज्वरसे पीडित, इनपुरुषोंकेवास्ते श्रेष्ठ कहा है और आमवात इनरोगवाले पुरुषोंको इस औषधमें गजपीपली मिलाके देना चाहिये ॥ ८६ ॥ और शुष्क हनुग्रहरोगमेंभी इसको प्रभातकालमें खावे और कर्णशूल, अतिशूल, मन्यास्तंभ, पशलीशूल, इन्होंको नाशता है ॥ ८७ ॥ और यह तेल संपूर्ण वातके विकारोंको नाशता है और श्वास, खांसी, गुल्म, ववासीर, संग्रहणी रोग ॥ ८८ ॥ अठारह प्रकारके कुष्ठ रोग, इनसबोंको नाशता है और ग्रहदोष, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, ॥ ८९ ॥ ये सब इस बलातेलके दर्शन करनेंसे दूर भाग जाते है और मृगी आदि रोग दूर चले जाते है ॥ ९० ॥ और वृद्ध पुरुष जवान होजाता है और वंध्या स्त्री पुत्रवाली होजाती है यह महाबलाआदिक नामवाला तैल महावातरोगोंको हरनेंवाला कहा है ॥ ९१ ॥

अथ बलाआदितैल ॥

बलाक्काथाढकं क्षिप्त्वा क्षिपेत्तत्राढकं दधि ॥ कुलत्थाढकयूषं तु सौवीरस्याढकं तथा ॥ ९२॥ एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधञ्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥ ९३॥ त्रिसुगन्धि सुरामांसी कुष्ठ

श्च दशमूलकम् ॥ चूर्णकं निक्षिपेत्तत्र सिद्धं तदवतारयेत् ॥ ९४ ॥ यो ज्यं पाने तथाभ्यङ्गे निरूहे नस्यकर्मणि ॥ हन्ति वातामयाञ्छीतिं श्रेष्ठं गुणगणात्मकम् ॥ ९५ ॥ यथा महाबलं तैलं तथेदं गुणवर्द्धनम् ॥ ९६ ॥

२५६ तोले खैरहटीका क्वाथमें २५६ तोले दही मिलावे पीछे तिसमें २५६ तोले कुलथीका यूष मिलावे २५६ तोले कांजी मिला ॥ ९२ ॥ इनसबोंको एक जगहकर आगे कहीहुई औषधोंको मिलावे सौंफ, देवदार, पीपल, गजपीपल, ॥ ९३ ॥ दालचीनी, तेजपात, इलायची, मुरामांसी, कूठ, दशमूल, इन्होंके चूर्णको मिला अग्निसे पकावे सिद्ध होजावे तब उतारि ॥ ९४ ॥ इसको पीनेमें निरूहबस्तिमें नस्यकर्ममें वरतै और अस्सी प्रकारके वातरोगोंको यह तैल नाशता है जैसे पहले कहाहुआ महाबलादिक तैल गुणोंवाला है॥९५॥ ऐसेही यह तैल गुणोंको बढानेंवाला और बलप्रद कहा है ॥ ९६ ॥

अथ भृंगराजतैल ॥

भृङ्गराजरसश्चैव कटुतुम्बीरसं तथा ॥ सौवीरकरसं चैव क्वाथं वै दशमूलकम् ॥ ९७ ॥ माषकुल्माषयूषं च वाजं दधि समाश्रयेत् ॥ समांशकानि सर्वाणि तैलं चार्द्धं प्रयोजयेत् ॥ ९८ ॥ मृद्वग्निना पाचनीयं सिद्धं चैवावतारयेत् ॥ अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यं न पाने बस्तिकर्मणि ॥ ९९ ॥ पूरणं कर्णरोगेषु शिरःशूले च दारुणे ॥ अर्द्धशीर्षविकारेषु भ्रुवः शङ्खाक्षिशूलके ॥ १०० ॥ तस्य योगेन मनुजः सुखमाप्नुयते द्रुतम् ॥ हन्ति कुष्ठं च पामानं त्वग्योगोऽभ्यञ्जनेन तु ॥ १०१ ॥ शीघ्रं विनाशमायाति हन्त्यपस्मारमुत्कटम्॥न बस्तिशूलो भवति वामवाते श्रमः क्लमः॥१०२॥

भंगराका रस, कडुईतुंबीका रस, कांजीका रस, दशमूलका क्वाथ ॥ ९७ ॥ उडदोंके वाकलोंका यूष अथवा बकरीका दही इन्होंको समान भाग ले और आधाभाग तैल मिला ॥ ९८ ॥ पीछे मंद २ अग्निसे पकावै जब सिद्ध होजावे तब उतारि इसकी मालिस करै और यह तैल पीनेंमें तथा बस्तीकर्ममें नहीं वरतना चाहिये ॥ ९९ ॥ और कानके रोग, दारुण शिरकी शूल, इन्होंमें पूरण करना चाहिये और अधशिराका विकार, भृकुटि, कनपटी, आंखि इन्होंकी शूल ॥ १०० ॥ इनरोगोंवाला मनुष्य इस तैलके योगसे सुखको प्राप्त होजाता है और इस तेलकी अच्छीतरह मालिस करनेंने कुष्ठ, पामा, इन्होंका नाश होता है ॥ १०१ ॥ और मृगीरोग शीघ्रही नष्ट होता है और बस्तिस्थानमें शूल नहीं रहता है और आमवातमें श्रम और ग्लानि होती है ॥ १०२ ॥

अथ आमपाककी चिकित्सा ॥

आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्य्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥ १०३ ॥ कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं बस्तिशूलता ॥ गुल्मवज्जठरं गर्जेत्तथान्त्रे शोफमेव च ॥ १०४ ॥ शिरोगुरुत्वं भवति वामे च पतति भृशम् ॥ सर्वाङ्गगो भवेत्सोऽपि विज्ञेयः सुविजानता ॥ १०५ ॥ तस्य च पाचनं कुर्य्याद्विरेचनं ततः परम् ॥ विष्टम्भी गुल्मपाकी च सर्वाङ्गगोऽन्यः कीर्त्तितः ॥ १०६ ॥ विज्ञेयस्तत्र यः साध्यश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ॥स्नेही वामश्च कथितः कृत्वापस्मारनिग्रहम् १०७

और जो पुरुष आमपाकी हो तिसको पाचन औषध नहीं देवे और जुलाब नहीं दिवावे किंतु स्तंभन औषध देवै ॥ १०३ ॥ और कटि, पीठ, छाती, इन्होंमें चभकाहो बस्तिमें शूल हो और गोलाकी तरह पट बोले आंतोमें शोजा हो ॥ १०४ ॥ शिर भाराहो, और बहुतसी आंव गिरै वह सर्वांग वात अर्थात् सब आंगमें प्राप्तहुआ वात जानना ॥ १०५ ॥ तिसमें पहले पाचन औषध देवै पीछे जुलाबकी औषध देवै और जिसका मलबंध हो गोला पकजावे, वहभी अन्यप्रकारका सर्वांगवात कहाता है ॥१०६॥ तहां एकतो साध्य होता है और दो कष्टसाध्य होते हैं, और स्नेह, तैलादिक देके वमन करके मृगीरोगको दूर करै ॥ १०७॥

अथ नारायणनामक तेल ॥

श्योनाकः पाटला बिल्वं तर्कारी पारिभद्रकम् ॥ अश्वगन्धा कण्टकारी प्रसारिणी पुनर्नवा ॥१०८॥ श्वदंष्ट्रातिबला चैव बला च समभागिकी॥ पादशेषं जलद्रोणे क्वथितं परिस्रावयेत्॥१०९॥वाच्यमानानि योज्यानि भेषजानि भिषग्वरैः॥११०॥ शतपुष्पा वचा मांसी दारु शैलेयकं वरा॥ पतङ्गं चन्दनं कुष्ठं तथान्यं रक्तचन्दनम् ॥ १११ ॥ करञ्जबीजांशुमती त्रिसुगन्धि पुनर्नवा ॥ रास्ना तुरङ्गगन्धा च सैन्धवं च दुरालभा ॥११२॥ मिष्टासुरसा चैतत्तु प्रत्येकं तु पलद्वयम्॥चूर्णं कृत्वा क्षिपेत्तत्रक्षिपेल्लाक्षारसाढकम्॥११३॥शतावरीरसं चैव अजाक्षीरं चतुर्गुणम्॥दधि तत्राढकं गव्यं तिलतैलं प्रयोजयेत् ॥ ११४ ॥ सिद्धं तत्र प्रदृश्येत ततो मङ्गलवाचनम् ॥ प्रतिस्नेनं प्रतिष्ठाप्य नारायणमिदं स्मृतम् ॥ ११५ ॥ हन्ति वा

तविकारांश्च अपस्मारग्रहांस्तथा ॥ शिरोरोगान् कर्णरोगान् कुष्ठान्य
ष्टादशान्यपि ॥ ११६ ॥ वन्ध्या च लभते पुत्रं षण्डोऽपि पुरुषायते ॥
कृशो युवायते मूर्खो विद्याराधनतत्परः ॥ ११७ ॥ नारायणमिदं तैलं
कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ११८ ॥

सोनापाठा, पाडलवृक्ष, बेलपत्र, अरणी, नींब, आसगंध, कटेहली, खींप, सांठी ॥१०८॥ गोखरू, खरैहटी, गंगेरनकी जड, इन्होंको समान भागले १०२४ तोले जलमें पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि वस्त्रमांहके छान लेवे ॥ १०९ ॥ पीछे वैद्यजनोंको आगे कहीहुई औषधें गेरनी चाहिये॥१०॥ जैसे—सौंफ,वच,जटामांसी,देवदार,शिलाजीत,त्रिफला, पतंग, चंदन, कूठ, लाल चंदन ॥ १११ ॥ करंजुवाके बीज, शालवन, दालचीनी, तेजपात, दालचीनी, इलायची, सांठी, रास्ना, आसगंध, सैंधानमक, जवांसा ॥ ११२ ॥ मीठी तोरी, तुलसी, इनसबोंका आठ २ तोला प्रमाण ले चूर्ण बना तिसमें पहले कहे क्वाथमें गेर देवै और लाखका रस २५६ तोले ॥ ११३ ॥ शतावरीका रस २५६ तोले, बकरीका दूध चार भाग गौका दही २५६ तोले और २५६ तोले तिलोंका तेल इन्होंको मिला ॥ ११४ ॥ फिर अग्निसे सिद्ध करै पीछे मंगलाचरण करके इस नारायणनामक तैलको प्रतिष्ठाकरके स्थापित कर देवै ॥ ११५ ॥ यह तैल वातके विकारोंको नाशता है और मृगीरोग, ग्रहदोष इन्होंको दूर करता है और शिरके रोग ॥ ११६ ॥ कर्णरोग, अठारह प्रकारके कुष्ठ इन्होंको नाशता है वंध्यास्त्री पुत्रको प्राप्त होजाती है और नपुंसकभी पुरुषकीतरह आचरण करता है और माडा पुरुषभी जवानकी तरह आचरण करता है और मूर्ख पुरुष विद्यावान् होजाता है ॥ ११७ ॥यह नारायणनामवाला तेल कृष्णात्रेयजीनें कहाहै ॥ ११८ ॥

अन्यानि घृततैलानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ एतेन जायते सौख्यं वा
तरोगं नियच्छति ॥११९॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वा
तव्याधिचिकित्सा नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

और अन्यभी जो घृत तथा तेल कहे है वे इस जगह प्रयुक्त करनें चाहिये इस कर्म्मकरके सुख होता है और वातरोग दूर होते है ॥ ११९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सानामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ आमवातचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ लक्षणं शृणु पुत्र ! त्वं समासेन वदाम्यहम् ॥ गुर्वन्नाहारपुष्टेन मन्दाग्निना व्यवायिनः ॥ १ ॥ तर्पितैः कन्दशाकैस्तु आमो वायुसमीरितः ॥ श्लेष्मस्थाने प्रपच्यैव जायते बहुवेदनः ॥ २ ॥ आमातिसारो वर्त्तेत सन्धौ शोफः प्रजायते ॥ जरत्वञ्चैव गात्राणां बलासपतनं मुखे ॥ ३ ॥ पृष्ठमन्यात्रिके जाते वेदनार्त्तेऽपि सीदति ॥ अङ्गं वैकल्यमायाति आमवाते भिषग्वर ! ॥ ४ ॥ तस्य नो स्नेहनं कार्य्यं पाचनञ्च विधीयते ॥ आमं संक्षयते प्राज्ञश्चतुर्धा भेदलक्षणैः ॥५॥ विष्टम्भी गुल्मकृन्मेही आमः पक्वाम एव च॥ सर्वाङ्गगो भवेच्चान्यो वक्ष्ये तस्यापि लक्षणम् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! आमवातके लक्षणोंको संक्षेपमात्रसे कहते है सुन भारा अन्नके भोजनसे मंदअग्निवाले पुरुषके ॥ १ ॥ कसरत नहीं करनेंसे, कंद, मूलआदिक शाकोंसे तृप्त होनेंसे आमवात होजाता है सो कफके स्थानमें पकके बहुत पीडा सहित होजाता है ॥ २ ॥ तिस्से आमातिसार होता है संधियोंमें शोजाहो अंगोंमें ज्वर बना रहे मुखसे कफ गिरै ॥ ३ ॥ और पीठ, मन्या कटिआदि त्रिकस्थान इन्होंमें अत्यंत पीडा रहे और हे उत्तमवैद्य ! आमवातरोगमें सब अंग विकल होजाते है ॥ ४ ॥ तिस आमवातमें स्नेहन अर्थात् तैलआदिक औषध नहीं करै, पाचन क्काथ देनें चाहिये और चारप्रकारके लक्षणोंसे आमवात होता है ॥ ५ ॥ विष्टंभी अर्थात् मलबंध रहे १ पेटमें गुल्महो, २ स्नेही आम, ३ पक्काम ४ऐसे चारप्रकारका होता है और एक सर्वांगवात होता है तिसका लक्षणभी कहेंगे ॥ ६ ॥

अथ विष्टंभीआमके लक्षण ॥

विष्टम्भी गुरु चाध्मानं बस्तिशूलं च जायते ॥
तस्यापि पाचनं कार्य्यं स्नेहनं चैव कारयेत् ॥ ७ ॥

मल बंध रहे पेट भारा रहै अफाराहो बस्तिमें शूलहो तिसकाभी पाचन औषध करना चाहिये और स्नेहनऔषध नहीं करै ॥ ७ ॥

अथ गुल्मीआमका लक्षण ॥

जठरं गर्जते यस्य गुल्मवत्परिपीड्यते ॥ कटिदेशे जडत्वञ्च आमगुल्मा

भिशङ्कितः ॥ ८ ॥ तस्यादौ लङ्घनानि स्युर्ज्ञात्वा देहबलाबलम् ॥ पाचनं नैव कर्त्तव्यं गुल्मपाके विमूर्च्छति ॥ ९ ॥ पाचिते चापि गुल्मामे तदाशु मरणं ध्रुवम् ॥ १० ॥

जिसका पेट गर्जता रहे गोलासरीखी पीडाहो कटिमें जडताहो वह गुल्मवाला आम कहाता है ॥ ८ ॥ तिसकी देहके बलाबलको विचार लंघन करानें चाहिये और पाचन औषध नहीं करावे गुल्मपाक होनेंमे मूर्च्छा होजाती है ॥ ९ ॥ गुल्म आममें पाचन औषध करनेंसे शीघ्रही मृत्यु होजाती है ॥ १० ॥

अथ स्नेहीआमके लक्षण ॥

यस्य च स्निग्धता गात्रे जाड्यं मन्दाग्निको बली ॥ स्नेहामो विजलो यस्य स्नेही वामः प्रकीर्त्तितः ॥ ११ ॥ तस्य नो स्नेहनं कार्य्यं चोपवासश्च कारयेत् ॥ पाचनं चैव कर्त्तव्यमामं चैवातिसारयेत् ॥१२॥

जिसके शरीरपै चिकनाईहो, जडताहो, मंदअग्निहो, और जलसे रहित चिकनी २ आम गिरै वह स्नेही आम होता है ॥ ११ ॥ तिसकी स्नेहन औषध नहीं करे उपवास बस्तिकर्म करै और पाचन औषध करै आमको निकासै ॥ १२ ॥

अथ आमकें लक्षण ॥

यस्य शोफाननं जाड्यं तथा चैव घनोदरम् ॥ अरुच्यामातिसारश्च स चासाध्योविजानता ॥ १३ ॥ प्रत्याख्येया क्रिया कार्य्या जीवितस्यापि संशये ॥ पाचनं पाचितं ज्ञात्वा तस्माच्चूर्णानि दापयेत् ॥ १४ ॥

जिसके मुखपै शोजाहो, जडताहो, पेट करडाहो, अरुचिहो, आमातिसारहो, वह असाध्य कहा है ॥ १३ ॥ तिसकी सब क्रिया त्यागदेनी चाहिये तिसके जीवनेंमें संदेह है तहां पाचन औषधोंको पकानेंवाली जानके चूर्ण देना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ पक्काम और सर्वांगआमके लक्षण ॥

सपीतो विजलः श्यामः पक्कामः पतते त्वधः ॥ न बस्तिशूलो भवति आमवाते श्रमः क्लमः ॥ १५ ॥ आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्य्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥ १६ ॥ कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं बस्तिशूलवान् ॥ गुल्मतो जठरं गर्जेत्तथातः शोफ एव च ॥१७॥ शिरोगुरुत्वं भवति आमश्च पतते भृशम् ॥ सर्वाङ्गगो भवेत्सोऽ

पि विज्ञेयोऽसौ विजानता ॥ १८ ॥ तस्य च पाचनं कुर्य्याद्विरेचनमनन्तरम् ॥ विष्टम्भी गुल्मपाकी च अन्यः सर्वाङ्गगो मतः ॥ १९ ॥ विज्ञेयाश्चात्र ये साध्याश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ॥स्नेही आमश्च कथितः कृच्छ्रसाध्यं द्वयं मतम् ॥ २० ॥ पक्कामः सुखसाध्यस्तु ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥ २१ ॥

पीला रंगवाला जलसे रहित काला रंगवाला ऐसा पकाहुआ आंव गिरै और बस्तिस्थानमें शूल नहीं होवे और जो आमवात होवे तो श्रमग्लानि होती है ॥ १५॥ और जो आमपाकी वात होवे तो तिसका पाचन नहीं करै जुलाबभी नहीं देवै तहां स्तंभन औषधोंको करै ॥ १६ ॥ और कटि,पीठ, छाती इन्होंमें चभका हो बस्तिमें शूल हो गुल्मसरीखा पेट गर्जे शोजाहो ॥ १७ ॥ शिर भारा हो बहुतसा आम गिरै वह सर्वांगवात जानना ॥ १८ ॥ तहां पहले पाचन औषध देवै पीछे जुलाब देवै और विष्टंभी, गुल्मपाकी, सर्वांग ॥ १९ ॥ ये रोग साध्य है और स्नेहीआम, आम, ये दोकष्टसाध्य कहे है ॥ २० ॥ तहां पकेहुए आमको सुखसाध्य जानके तिसका कर्म करै ॥ २१ ॥

अथ पाचनविधि ॥

रास्ना त्रिकण्टमेरण्डं शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ पानं पाचनके शस्तं वामे वाते भिषग्वर ! ॥ २२ ॥ रास्ना श्योनाककाश्मीरं चिक्कणीकं च पुष्करम् ॥ क्वाथं शृतं सुखोष्णं च पाचनं पाययेन्नरः ॥ एतत्पाचनकं विद्धि प्रोक्तं चामे सवातिके ॥ २३ ॥

हे उत्तम वैद्य! आमवातमें रास्ना, छोटीकटेहली, बडीकटेहली, अरंड,सौंफ, सांठी,इन्होंका क्वाथ बना पीनेंमें पाचनकेवास्ते श्रेष्ठ है॥२२॥और रास्ना, सोनापाठा,खंभारी,चिकनीसुपारी, पोहकरमूल,इन्होंका क्वाथ सुखसे सुहाताहुआ गरम २ पीना पाचनमें हित है यह क्वाथ आमवातमें पाचनके वास्ते श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ गुडूची नागरं पथ्या चूर्णमेतद्गुडान्वितम् ॥ २४ ॥ धान्यनागरराजाम्लदेवदारुवचाभयाः ॥ पाचनं चामवाते च श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ २५ ॥ तथा कोल्लकचूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ आमवातश्च मन्दाग्निं शूलं गुल्मश्च नाशयेत्

॥ २६ ॥ बलाक्काथाढकं क्षिप्त्वा दधितक्राढकं क्षिपेत्॥कुलत्थाढकयूषं तु सौवीरस्याढकं तथा ॥ २७ ॥ एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधश्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥ २८ ॥ त्रिसुगन्धि मुरामांसी कुष्ठं द्विपञ्चमूलकम् ॥ चूर्णं विनिक्षिपेत्तत्र सिद्धं तदवतारयेत् ॥ २९ ॥ पाने चाभ्यन्तरे योज्य निरूहे वस्तिकर्मणि ॥ हन्ति वातामयं सर्वं श्रेष्ठं गुणगणप्रदम् ॥ ३० ॥ पिबेदेरण्डजं तैलं गुडक्षीरेण संयुतम् ॥ सर्वाङ्गे चामवाते हि श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ ३१ ॥ नागरस्य भागमेकं द्वौ भागौ क्रिमिजस्य तु ॥ त्रिवृद्भागत्रयं क्षिप्त्वा चूर्णं गुडसमं वटम् ॥३२ ॥ भक्षेत्तथोष्णतोयेन पुनश्चोष्णं पयः पिबेत् ॥ एतेन जायते वामे विरेकः सुखकारकः ॥ ३३ ॥ विडङ्गशुण्ठी रास्ना च पथ्या त्रिकटुकान्विता ॥ क्वाथमष्टावशेषं च कारयेद्भिषजांवरः ॥ ३४ ॥ दुग्धं क्वाथार्द्धकं तैलं तथैवैरण्डजं क्षिपेत् ॥ कर्षमात्रं सुपातव्यो विरेकश्चानुपानतः ॥३५॥ गुडूची त्रिफला पथ्या गुडेन सह भक्षयेत् ॥ विरेको ह्यामवातेषु श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ ३६ ॥

और आमवातमें पीपल, दशमूल, इन्होंका क्काथ बना पीना हित है और गिलोय, सूंठ, इन्होंका चूर्णमें गुड मिला खाना ॥ २४ ॥ तथा धनियां, सूंठ, अमलतास, देवदार, हरडे, इन्होंका चूर्ण आमवातमें पाचन है और सुखको करनेंवाला है ॥ २५ ॥ और पीपलोंका चूर्णको गरम जलके संग पीनेंसे आमवात, मंदाग्नि, शूल, गुल्म, इन्होंका नाश होता है॥२६॥ और २५६ तोले खरैहटीका क्काथ, दही, तक्र, इन्होंको २५६ तोले, लेवे कुलथीका यूष २५६ तोले कांजी २५६ तोले, ॥ २७ ॥ इन्होंको एकजगंह मिलाके पकावे और इन आगे कही औषधोंको गेरै सौंफ, देवदार, पीपल, गजपीपल, ॥ २८ ॥ त्रिसुगंधि अर्थात दालचीनी, तेजपात, इलायची, मुरामांसी, कूठ, दशमूल, इन्होंका चूर्ण गेरै पीछे सिद्ध होजावे तब उतारलेवे ॥ २९ ॥ यह पीनेंमें और निरूहबस्तिमें उदरके भीतर युक्त करना चाहिये यह संपूर्ण वातरोगोंको नाशता है श्रेष्ठ है गुणको देनेंवाला है ॥ ३० ॥ और अरंडीका तेलको गुड तथा दूधके संग पीवे सर्वांगवातमें और आमवातमें यह जुलाब श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ और सूंठ एक भाग, अगर दोभाग, निशोत तीन भाग, इनसबोंके समान गुड मिला गोली बांधलेवे ॥३२॥ पीछे गरम जलके संग भक्षण करै और ऊपरसे गरम दूध पीवे इस्से आमवातमें सुखको करनेंवाला जुलाब होता है ॥३३ ॥ और वायविडंग, सूंठ, रास्ना, हरडे, इन्होंको जलमें चढा

अष्टमांश बाकी रहे तबतक क्वाथ बनावे ॥३४॥ पीछे क्वाथसे आधा दूध और अरंडीका तेल मिलावे पीछे यह एक तोला प्रमाण पीना चाहिये इसपे जुलाबका अनुपानकरै ॥ ३५ ॥ और गिलोय, त्रिफला, हरडै, इन्होंको गुडके संग भक्षणकरै यह जुलाब आमवातमें हित है सुखको करनेंवाली है ॥ ३६ ॥

अथ आमवातरोगको शमन करनेंवाली औषध॥

अभया मस्तुना पिष्टा मधुशर्करयान्विता ॥ आमातिसारं स्तम्भेत्तु गुडा मलकमेव च ॥ ३७ ॥ वत्सकं जीरके द्वे च दध्ना पिष्टं तु दापयेत् ॥ आमातिसारशमनं बस्तिशूलं नियच्छति ॥ ३८ ॥ गुग्गुलं च रसोनं च हिङ्गु नागरसंयुतम् ॥ क्वाथं वामविनाशाय शमनं मारुतस्य च ॥ ३९ ॥ अजमोदोग्रगन्धा च कुष्ठं त्रिकटुकं शठी ॥ फलत्रिकं च भार्ङ्गी च पुष्करं लवणाष्टकम् ॥ ४० ॥ जीरके द्वे विडङ्गानि तुम्बुरू द्वे च दारु च ॥ तथा बिल्वा शिलाभेदो रोध्रं वत्सकवासकम् ॥ ४१ ॥ धातकीकुसुमं चैव शाल्मलीत्वक् च दाडिमम् ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत् ॥ ४२ ॥ घृतेन संयुतं वातं नाशयत्याशु निश्चितम् ॥ सहिङ्गु चारनालेन पीतं शूलार्त्तिनाशनम् ॥ ४३ ॥ तथा चोष्णजलेनापि वामवातं नियच्छति ॥ गृध्रसीकटिशूले च दशमूलजलेन तु ॥ ४४ ॥ विबन्धेरण्डतैलेन शोफे वापि सुदारुणे ॥ गुल्मगोमूत्रसंयुक्तं गुडेन पाण्डु रोगजित् ॥ ४५ ॥ प्रमेहे मधुसंयुक्तं यक्ष्मणि शर्करायुतम् ॥ हन्ति सर्वा मयान् घोरान् यथायोगेन योजितम् ॥ ४६ ॥

हरडैको दहीके पानीमें पीसि शहद और खांड मिला पीनेंसे अथवा गुड आंवला इन्होंके पीनेसे आमातिसार बंध होता है ॥ ३७ ॥ कूडाकी छाल, दोनों जीरे इन्होंको दहीमें पीस देनेंसे आमातिसार, बस्तिशूल ये शांत होते है ॥ ३८ ॥ और गूगल, लस्सन, हींग, सूंठ इन्होंका क्वाथ बना पीनेंसे आमवातका नाश होता है ॥ ३९ ॥ और अजमोद, वच, कूठ, सूंठ, मिरच, पीपल, कचूर, त्रिफला, भारंगी, पौंहकरमूल, लवणाष्टक, ८ नमक ॥ ४० ॥ दोनों जीरे, वायविडंग, धनियां दो भाग, देवदार, बेलगिरी, पाषाणभेद, लोध, कुडाकी छाल, वांसा ॥ ४१ ॥ धायके फूल, सालवनकी छाल, अनारदाना इन्होंको समान भागले बारीक चूर्ण बना लेवे ॥ ४२ ॥ पीछे घृतमे मिला खानेसे आमवातका नाश होता है और हींग,

कांजी इन्होंके संग पीनेसे बस्तिशूलकी पीडाका नाश होता है ॥ ४३ ॥ और गरम जलके संग पीनेसे आमवातका नाश होता है और गृध्रसीवात, कटिशूल, इनरोगोंमे दशमूलके क्काथके संग पीवे ॥ ४४ ॥ और मलका बंधा, दारुण शोजा, इन्होंमें अरंडीका तेलके संग पीवै पांडुरोगमें गुडके संग और पेटका गोलामें गोमूत्रके संग पीवै ॥ ४५ ॥ प्रमेहमें शहदके संग, राजयक्ष्मारोगमें खांडके संग पीवे यह चूर्ण इसप्रकार यथायोगके संग देनेंसे संपूर्ण घोर वातरोगोंको नाशता है ॥ ४६ ॥

अथ आमवातमें वर्ज्य ॥

वर्जयेद्द्विदलं गौल्यं तैलं पिच्छलमेव च ॥ शीतोदकेन न स्नानमाम वाते भिषग्वर ॥ ४७ ॥ पाचिते चामदोषे च आमवानं न सेवयेत् ॥ न सेवनीयं चोष्णं च द्रवं द्रावं विशेषतः ॥४८॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय स्थाने आमवातचिकित्सा नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

और इसपै द्विदल धान्य, गुल्डी बंधनेंवाला अन्न, तेल, झांगोवाला पदार्थ, इन्होंको वर्ज देवै. और हे उत्तमवैद्य ! आमवातमें शीतल जलसे स्नान नहीं करावे ॥ ४७ ॥ और आमदोष पकजावे तब आमवातनाशक औषधोंको नहीं सेवै और विशेष करके गरम वस्तु पतला और दस्त लगानेंवाला भोजन, इन्होंको नहीं सेवै ॥ ४८ ॥ और ज्वरमें कहीहुई जो पथ्य वस्तु है उन्होंको यहां प्रयुक्त करै॥४९॥इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने आमवातचिकित्सानाम एकविंशोऽध्यायः॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ गृध्रसीवातकी निदान और लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ रक्तवातसमुद्भूतान्दोषाञ्छृणु महामते ! ॥ कट्यूरुजानु मध्ये तु जायते बहुवेदना ॥ १ ॥ गृध्रसीति विजानीयात्तेन नोक्तश्च ल क्षणम् ॥ २ ॥ जानुमध्ये भवेच्छोफो जायते तीव्रवेदना ॥ वातरक्तस मुद्भूता विज्ञेया क्रोष्ठशीर्षिका ॥ ३ ॥ कण्डरा बाहुपृष्ठे च अङ्गुल्यभ्य न्तरेषु च ॥ करक्रमक्षयकरी सा विज्ञेया विपश्चिता ॥ ४ ॥ पादहर्षो

भवेच्चात्र पादयोर्लोमहर्षणम् ॥ कफवातप्रकोपान्ते प्रस्वेदः करपादयोः ॥ ५ ॥ पित्तवातान्वितं चान्ते उष्णत्वं करपादयोः ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे महामते ! रक्तवातसे उपजेहुए दोषोंको सुन, कटि,जांघ, गोडे, इन्होंमें बहुतसी पीडा होती है ॥ १ ॥ उसको गृध्रसीवात कहते है इसके अन्य लक्षण पहले नहीं कहे है ॥ २ ॥ गोडाके मध्यमें पीडाहो शोजाहो तीव्र वेदना हो वह वातरक्तसे उपजी हुई कोष्ठशीर्षिका कहाती है ॥ ३ ॥ और भुजा, पीठ, अंगुली इन्होंमें खाजिहो वह कर क्रमक्षयकरी अर्थात् हाथके क्रमसे क्षय करनेंवाली गृध्रसी कहाती है ॥ ४ ॥ और पैरोंमें जो रोमहर्ष होता है वह पादहर्ष कहाता हैं और कफवातके प्रकोपके मध्यमें हाथ पैरोंमें पसीना हो जावे ॥ ५ ॥ और पित्तवातके मध्यमें हात पैर गरम हो जाता है.

अथ गृध्रसीवातकी चिकित्सा ॥

अमीषां रुधिरस्रावं ततः स्वेदं च कारयेत् ॥ ६ ॥ अभ्यङ्गे वातहृत्तैलं पानं रास्नायाः पञ्चकम् ॥ शतावरी बले द्वे च पिप्पली पुष्कराह्वयम् ॥ ७ ॥ चूर्णमेरण्डतैलेन गृध्रसीमपकर्षति ॥ अजमोदादिकं चूर्णमामवाते प्रकीर्त्तितम् ॥ ८ ॥ तदत्र योजनीयं च गृध्रसीनां निवारणम् ॥ एतैर्न जायते सौख्यं दहेल्लोहशलाकया ॥ ९ ॥ पादरोगेषु सर्वेषु गुल्फे द्वे चतुरङ्गुले ॥ तिर्य्यग्दाहं प्रकुर्वीत दृष्ट्वा पादे शिरां दहेत् ॥ १० ॥ वातरोगेषु प्रोक्तानि पथ्यानि चात्र योजयेत् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गृध्रसीचिकित्सा नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

और इनसबोंमें जो यदि रुधिरस्राव होवेतो पसीना दिवाना चाहिये ॥ ६ ॥ और वातको हरनेंवाला तेलको मालिसमें वरते और रास्ना पंचक आदि औषधोंका क्वाथ पीना चाहिये और शतावरी, खरैहटी, बडीखरैहटी, पीपल, पोहकरमूल ॥ ७ ॥ इन्होंका चूर्णको अरंडके तेलमें मिला पीनेंसे गृध्रसी वातका नाश होता है और अजमोद आदिक चूर्ण जो आमवात रोगमें कहा है ॥ ८ ॥ वह यहां गृध्रसी वातके निवारण करनेंमें देना चाहिये और इन इलाजोंसे जो यदि सुख नहीं होवे तो लोहकी शलाका करके दग्ध करै ॥ ९ ॥ और संपूर्ण पादरोगोंमें दोनों टंकनोंपे दाह करै अथवा पैरपे नाडीको देख तिरछा दाह करना चाहिये ॥ १० ॥ और वातरोगमें कहेहुए पथ्योंको यहां करे ॥ ११ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां गृध्रसीचिकित्सानामद्वाविंशोऽध्यायः॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ वातरक्तका निदान और लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ कटुक्षाराम्ललवणै रक्तं देहे प्रकुप्यति ॥ रोधात्संधारणाद्वापि दिवास्वप्नादिसेवनैः ॥ १ ॥ समीरकोप. प्रत्यङ्गे युगपद्दृश्यते नृणाम् ॥ वातरक्तमिति प्रोक्तं नृणां देहे प्रवर्त्तते ॥ २ ॥ जायते सुकुमाराणां तथा स्त्रीणां भिषग्वर ! ॥ स्थूलानाञ्च विशेषेण कुप्यते वातशोणितम् ॥ ३ ॥ आलस्यं च तथा कण्डूर्मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ वैवर्ण्यं स्फुरणं शोफशोषौ दाहश्च मार्दवम् ॥ ४ ॥ वातरक्तं विजानीयाच्छ्यावतां दन्तरक्तयोः ॥ एतद्विलक्षणं दृष्ट्वा कर्त्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–कडुआ, खारा, खट्टा, नमक, इनभोजनोंके खानेंसे शरीरमें रक्त कुपित होता है और मल आदिकोंके वेगका धारण करनेंसे दिनमें सोनेंसे ॥ १ ॥ वायुके कोपसे मनुष्योंके अंगमें एकवार वातरक्त कुपितहोके दीखता है ॥ २ ॥ यह रोग सुंदर बालकोंकै तथा स्त्रियोंके होता है और स्थूल शरीरवाला पुरुषकै विशेष करिकै वातरक्त कुपित होता है ॥ ३ ॥ आलकसहो खाजिहो शरीरमें मंडलसे दीखै शरीरका विवर्ण होजा और फुरै, शोजाहो, शोषहो दाहहो, कोमलपनाहो, ॥ ४ ॥ दांत, रक्त ये कालेहों तब जानिये कि वातरक्त है ऐसा विलक्षण रोग जानके इसका इलाज करै ॥ ५ ॥

अथ वातरक्तकी चिकित्सा ॥

विरेकं रक्तमोक्षं च पानलेपनलेहकान् ॥ धान्यनागरसंयुक्तं क्षीरं चास्य प्रदापयेत्॥ ६ ॥ पटोलीनिम्बपत्राणि क्वथित्वा मधुसंयुतम्॥ पाचनं वातरक्तानां तथा च शमनानि च ॥ ७ ॥ काञ्जिकेन च संपिष्य पिचुमन्ददलानि च ॥ लेपनं शस्यते तस्य वातरक्तप्रशान्तये ॥ ८ ॥ दूर्वा मूर्वा शठी शुण्ठी धान्यकं मधुयष्टिका ॥ वर्त्तनं शीततोयेन वातरक्तप्रलेपनम् ॥ ९ ॥ धन्यकर्षञ्च जीरे द्वे गुडेन परिपाचितम् ॥ भक्षणे वातरक्तानां दापयेद्दोषशान्तये ॥ १० ॥ एतैर्यदि न सौख्यं स्यात्तदा रक्तावसेचनम्॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत्॥ ११॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सानाम त्रयोविंशोऽध्यायः

और जुलाब दिवानी, फस्तखुलानी, पान, लेप, अवलेह ये क्रिया करनी चाहिये, और धनियां, सूंठ, इन्होंसे युक्त दूधका पान करना चाहिये, ॥ ६ ॥ और परवल, नींबके पत्ते इन्होंका क्काथ बना शहद मिला पीनेंसे रक्तवातका पाचन होता है और शमन होता है ॥ ७ ॥ और नींबके पत्तोंको कांजीमें पीसि लेप करनेंसे वातरक्तकी शांति होती है ॥ ८ ॥ और दूव, मूर्वा, सूंठ, कचूर, धनियां, मुलहटी, इन्होंको शीतल जलमें पीस लेप करनेंसे वात रक्तकी शांति होती है ॥ ९ ॥ और १ तोला धनियां १ तोला दोनों जीरे इन्होंको गुडमें पका भक्षण करनेंसे वातरक्त दोषकी शांति होती है ॥ १० ॥ और इन्होंसे जो शांति नहीं होवे तो रक्त निकसावे और ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य है उन्होंको यहां करवावे ॥ ११ ॥ इतिवेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सानाम त्रयोविंशोऽध्यायः २३

चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ अम्लपित्तका निदान ॥

आत्रेय उवाच ॥ गुडनिषेवणाच्चाम्ले विरुद्धाहारसूचिते ॥ कुपितं चाम्लपित्तं च कण्ठस्तेन विदह्यते ॥ १ ॥ दाहो वा हृदये तस्य शिरोऽर्तिश्चैव जायते ॥ उद्गारानम्लकान् कण्ठे हिक्काम्लोऽपि प्रधावति ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—गुडका सेवन करनेंसे और खट्टा पदार्थ खानेंसे विरुद्ध भोजन करनेंसे अम्लपित्त कुपित होजाता है तिस्से कंठ दग्ध होता है ॥ १ ॥ अथवा तिसके हृदामें दाह होता है और शिरमें पीडा होती है और कंठमें खट्टी २ अडकार आवती है खट्टी हिचकी आवे ॥ २ ॥

अथ अम्लपित्तकी चिकित्सा ॥

शृणु तस्य प्रतीकारं वमनं कारयेद्द्रुतम् ॥ अधोगते चाम्लपित्ते विरेकश्च प्रदीयते ॥ ३ ॥ पारिभद्रदलानीति आमलक्याः फलानि च ॥ क्काथ पानं प्रयोक्तव्यमम्लपित्तं व्यपोहति ॥४॥ पटोलपाटलाक्काथो धान्यनागरकान्वितः ॥ जलेन हितकः प्रोक्तश्चाम्लपित्तनिवारणे ॥५॥ पटोलविश्वामृतवह्लितिक्तापत्राणि निम्बस्य च वत्सकानाम्॥क्काथो विसर्पकृतम

म्लपित्तं विनाशयेन्मण्डलकानि दद्रून् ॥ ६ ॥ रात्रौ संपाचनं देयं धा न्यनागरकल्कितम् ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अ म्लपित्तचिकित्सा नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

तिसके इलाजको सुनों। तहां शीघ्रही पहले वमन करवावै और जो अम्लपित्त नीचा-को प्राप्तहोरहाहो तो जुलाब दिवानी चाहिये ॥ ३ ॥ और नींबके पत्ते आंवले इन्होंका क्काथ बना पीनेंसे अम्लपित्तका नाश होता है ॥ ४ ॥ और परवल, पाडलवृक्ष इन्होंका क्काथ अथवा धनियां, सूंठ, इन्होंका क्काथ बना पीनेंसे अम्लपित्तका निवारण होता है ॥५॥ परवल, सूंठ, गिलोय, कुटकी,और नींब, वासा इन्होंके पत्ते इन्होंका क्काथ बना पीनेंसे विसर्प-रोगसे उपजाहुआ अम्लपित्तका नाश होता है और मंडल, दद्रु, इन्होंका नाश होता है ॥६॥ और धनियां, सूंठ, इन्होंका कल्क बना रात्रीमें पाचनकेवास्ते देना चाहिये ॥७॥ इति वेरी निवासि०हारीतसंहिताभाषायां अम्लपित्तचिकित्सानामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ शोफचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ शोफो भवेच्च विकलेन्द्रियरोममार्गः क्षीणे बले वपुषि चाम्लकटूष्णसेवया ॥ शैत्यात्तथा विशदपिच्छलसेवनेन रूक्षाभिघातप तनेन च धारणाद्वा ॥ १ ॥ आमाशये गतवतोऽपि नरस्य यस्य अन्ते प्र धावति ततोऽपि च दोष एषः ॥ करोति पाणिचरणे च पृथक् प्रसूतो द्वन्द्वेन वा भवति शोफविकारचारः ॥ २ ॥ नरस्य चान्तःप्रभवाश्च शो फाः साध्या भवेयुर्विनता मुखेषु ॥ असाध्या ये सर्वशरीरगाश्च पादे स्त्रि यो वा वदने नरस्य ॥३॥ क्षये वाते वापि च गुल्मदेशे स्याद्राजयक्ष्मणि तथोदरेषु॥रक्तेन जातोऽप्ययमेव शोफोभवेच्छोफविकारचारः॥४॥अन्या श्चोर्ध्वगशोफाश्च श्लेष्मपित्तसमुद्भवाः ॥ कष्टसाध्याश्च विज्ञेया बहूपद्र वसंयुताः ॥ ५॥ श्लेष्मणि शिरसि प्राप्ते ऊर्ध्वशोफः प्रजायते॥ मध्यः प क्काशयस्थेऽपि मलमप्यागते त्वधः ॥ ६ ॥ रसे सर्वानुगाः शोफाः सर्वदे

हानुगा रसाः ॥ ७ ॥ सर्वाङ्गशोफा अथ मध्यशोफाः सर्वाङ्गशोफाः परिव र्जनीयाः॥ वृद्धे च बाले क्षतजाः क्षयोत्थाश्छर्द्यातिसारश्वसनेन युक्ताः ॥ ८ ॥ भ्रमज्वरक्षीणशरीरजाता शोफोद्भवा या च भवेन्नरस्य॥ साध्या न वैद्यस्य चानन्यदोषा सा नैव साध्या भिषजांवरिष्ठ ! ॥ ९ ॥ तोदश्च रूक्षं श्वसनञ्च वातात्पित्ताच्छ्रमः शोफविदाहकश्च ॥ शीता घना श्लेष्मणि बाधकण्डूः स्याद्वन्द्वजा द्वन्द्वजलक्षणेन ॥ १० ॥ अतो वदामीत्युपचारमस्यां संस्वेदनं पाचनशोधनं वा ॥ विरेचनं रक्तविमोक्षणं च कषायशोफेषु विधिः प्रदिष्टः ॥११॥ न चास्य स्नेहनं कार्य्यं नैव कार्यं विरूक्षणम् ॥ १२ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–जिनकी इंद्रिय और रोममार्ग विकल होजावे बल क्षीण होजावे तब खट्टा चर्चरा गरम ऐसा पदार्थके सेवनेंसे शरीरमें शोजाहोजाता है और शीतल पदार्थ कोमल और झागोंवाला पदार्थके सेवनेंसे रूषा भोजन करनेंसे और चोट आदिके लगनेंसे ॥ १ ॥ आमाशंयमें प्राप्तहुआ शोथवायुविकार मनुष्यके भीतर कुपित होजाता है तब हाथ पैरोंपे शोजा होजाता है और दोदोषोंके विकारसेंभी यह शोजा होता है॥२॥मनुष्यके भीतर होनेंवाले शोजे और प्रमेहरोगसे उपजीहुई पिडिकाओंके मुखका शोजा साध्य है और सब शरीरमें होनेंवाला शोजा स्त्री तथा पुरुषके पैरोंपे और मुख ये होनेंवाला शोजा असाध्य होता है ॥ ३ ॥ क्षयी रोग, वात, गुल्मका स्थान, राजयक्ष्मा, उदररोग, इन्होंमेंभी रक्तसे उपजाहुआ यह शोजाका विकार होजाता है ॥ ४ ॥ और अन्यऊपरको होनेंवाले शोजे कफपित्तसे होते है व कष्टसाध्य होतेहै और बहुत उपद्रवोंसे युक्त होते है ॥ ५ ॥ जब शिरमें कफ प्राप्त होजावे तब ऊपरको शोजा होजाता है और पक्काशयमें स्थितहुआ मल नीचाको प्राप्त होजावे तब मध्यमें शोजा होता है ॥ ६ ॥ और सब प्रकारके शोजे रसके अनुसार रहते है रस सब शरीरमें प्राप्त होनेंवाले है॥७॥सब अंगोंमें होनेंवाला और मध्यमें होनेंवाला दोप्रकारका शोजा होता है तहां सर्वांगशोथ और वृद्ध बालक इन्होंका शोजा चोटसे उपजा तथा क्षयरोगमें उपजा और छर्दि, अतिसार, इन्होंसे युक्त, ये सब शोजे वर्ज देनें अर्थात् असाध्य है ॥ ८ ॥ और भ्रम, ज्वर, इन्होंसे क्षीण हुए शरीरमें जिस पुरुषके शोजाकी पीडा होती है वह वैद्यजनोंने असाध्य कही है हे उत्तमवैद्य! वह शोजाकी पीडा साध्य नहीं है ॥ ९॥ वातसे उपजा शोजामें चभकाहो रूषा शोजाहो श्वासहो पित्तके शोजेमें श्रमहो शोजाहो दाहहो और कफसे उपजा शोजा शीतल और करडाहो खाजिकी पीडा होती है और दो दोषोंसे उपजा शोजामें दो दोषोंके लक्षण होते है ॥ १० ॥ अब इस शोजाका इलाज कहते है पसीना देना

पाचन और शोधन औषध देनी, जुलाब दिवानी, फस्त खुलानी, क्काथपान, ये विधि शोफ रोगमें कही है ॥ ११ ॥ शोजाकी आदिमें तेलआदि औषध और रूषी औषध नहीं करनी चाहिये किंतु आगे कही हुई औषधोंको पाचनकेवास्ते देवै ॥ १२ ॥

अथ पुनर्नवादिक्काथ ॥

पुनर्नवा मगधजा च कटुत्रयं च निम्बाभया च कटुका च पटोलदार्वी ॥ क्काथः सुखोष्णक्कथितस्तु विपाचनेन शोफो जहाति जठरं च नरस्य शीघ्रम् ॥ १३ ॥

सांठी, पीपल, कटुत्रय अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, नींब, हरडै, कुटकी, परवल, दारु, हलदी, इन्होंका क्काथ बना गरम २ पीना पाचन कहा है और मनुष्यके उदरमें प्राप्त हुआ शोजाको शीघ्रही नाश देता है ॥ १३ ॥

अथ अन्यउपाय ॥

पुनर्नवा गुडूची च गुग्गुलं समकल्कितम् ॥
शोफदोषांश्च गुल्मञ्च हन्त्युदरं कफानयम् ॥ १४ ॥

और सांठी, गिलोय, गूगल, इन्होंको समान भागले कल्क बना खानेंसे शोजा, गुल्मरोग, उदररोग, कफरोग, इन्होंका नाश होता है ॥ १४ ॥

गजमहिष्या वृषभस्य मूत्रं तथैव लाजं सकणं प्रयोज्यम् ॥ पानेन शोफो विजहाति शीघ्रमेरण्डतैलेन युतं पयो वा ॥१५॥ संस्वेदनक्रिया तत्र कार्य्या चैव पुनः पुनः॥ एरण्डपत्रकैर्वापि अथवा तिन्तिडीच्छदैः॥१६॥ लोमशा कटुतुम्बी च काञ्जिकेन जलेन वा ॥ निष्क्काथ्य चापि संस्वेदस्तथैवोष्णेन तेन च ॥ १७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शोफचिकित्सा नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

और हस्ती, भैंस, बैल, इन्होंके मूत्रमें धानकी खील और पीपल मिला क्काथ बनाके पीनेंसे शीघ्रही शोजाका नाश होता है और अरंडीका तेलमें दूध मिला पीनेसेभी शीघ्रही नाशता है ॥१५॥ और अरंडके पत्तोंसे अथवा अमलीके पत्तोंसे वारंवार स्वेदनक्रिया अर्थात् पसीना दिवावै॥ १६ ॥ और वालछड, कडुई तुंबी, इन्होंको कांजीमें अथवा जलमें औटाय गरम २ तिस जलसे पसीना दिवावे अथवा इन्होंकोही गरम करके पसीना दिवावे॥१७॥ इति वेरीनिवासि०हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने शोफचिकित्सानाम पंचविंशोऽध्यायः॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ गुल्मनिदान और लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ श्वयथूत्थैरुपचारैस्तैश्च संकुप्यतेऽनिलः ॥ मन्दाग्निना विषमेण गुल्मं जठरे जायते ॥ १ ॥ उदरं गर्जते यस्य विषमाग्निश्च दृश्यते ॥ तोदो वपुषि शूलं च वातगुल्मं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥ शोषोऽरतिः सपीतत्वं मन्दज्वरनिपीडिनम्॥ तमोभ्रमपिपासार्त्तिर्गुल्मं तत्पित्तसम्भवम्॥३॥ शोषो जाड्यश्च हृल्लासस्तन्द्रालस्यं सशीतकम् ॥ मन्दाग्निर्विड्विबन्धश्च गुल्मं तच्छ्लेष्मसम्भवम् ॥ ४ ॥ मोहो विभ्रमता जाड्यमरतिः क्षुत्पिपासकम् ॥ आलस्यं निद्रतावेश्यं गुल्मं तत्कफपैत्तिकम् ॥ ५ ॥ निद्रालस्यश्च दाहश्च शोफाच्छूलं च सज्वरम् ॥ वैवर्ण्यमरतिर्जाड्यं विड्बन्धो विकलङ्गता ॥ ६ ॥ तथातिसारो मूर्च्छा च तृड्हृल्लासश्च वेपथुः ॥ श्वासोऽरुचिरजीर्णत्वं गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥ ७ ॥ साध्यं केवलदोषोत्थं द्वन्द्वं कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्यं सन्निपातोत्थं वक्ष्यामस्तत्प्रतिक्रियाम् ॥८॥

आत्रेयजी कहते हैं—शोजासे उत्पन्नहुए उपचारोंकरके वायु कुपित होजाता है तिस्से अथवा मंद अग्निसे और विषम अग्निसे उदरमें गुल्म अर्थात् गोला उत्पन्न होजाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर गर्जै और विषम अग्नि दीखै शरीरमें चभकाहो और शूलहो वह वातसे उपजा गुल्म जानना ॥ २ ॥ और शोषहो, पीडाहो, ग्लानिहो, पीला शरीरहो, मंद ज्वरकी पीडाहो, तम अर्थात् अंधेरी, भ्रम, पिपासा ये हों वह पित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥ ३ ॥ शोषहो, जडताहो, थुकथुकीहो, तंद्राहो, आलस्यहो, ठंढकर रहे, मंदाग्निरहे, विष्ठा बंधरहै वह कफसे उपजा गुल्म जानना ॥ ४ ॥ और मोह, विभ्रम, जडता, ग्लानि, क्षुधा, पिपासा, आलस्य, निद्राआना, ये हों वह कफपित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥५॥ और निद्राहो, आलस्यहो, दाहहो, शूलसहित शोजाहो, ज्वरहो, बुरावर्णहो, ग्लानिहो, जडता, मलबंध, विकलपना॥६॥ अतिसार, मूर्च्छा तृषा, थुकथुकी, कांपना, श्वास, अरुचि, अजीर्ण, ये हों वह सन्निपातका गुल्म जानना ॥७॥ एक दोषका गुल्म साध्य है और दो दोषोंसे उपजागुल्म कष्टसाध्य है सन्निपातसे उपजा गुल्म असाध्यहोता है अब इन्होंकी चिकित्सा कहैंगे ॥ ८ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ॥

यकृद्ग्रहणीचिकित्सैव कथितं चोपवारणम् ॥ तद्वत्प्लीहा समाख्यातो न

चात्र कथितः पुनः ॥ ९ ॥ चिकित्सोदरगुल्मस्य वक्ष्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ स्नेहनं रूक्षणञ्चैव पाचनं शोधनानि च ॥ १० ॥ संशमनं विरेकश्च बस्तिस्नेहनिरूक्षणम्॥क्षारपानञ्च चूर्णानि गुल्मोपचरणक्रिया ॥११॥

पहले यकृत् ग्रहणीकी चिकित्सा जो कही है वही तिल्लीकी चिकित्सा जान लेनी अब फिर नहीं कहैंगे ॥ ९ ॥ अब गुल्मोदरकी चिकित्साको कहते है सो सुन, स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शोधन, ॥ १० ॥ संशमन, जुलाब, स्नेहनबस्ति, रूक्षणबस्ति, क्षारपान, चूर्ण ये सब क्रिया गुल्मरोगकी शांतिकेवास्ते करै ॥ ११ ॥

अथ शुंठ्यादि क्वाथ ॥

शुण्ठी दारु सुरसा च मूर्वा पञ्चमूलं लघुः ॥
क्वाथोऽस्याष्टावशेषः स्यात्तत्समं क्षीरमेव च ॥ १२ ॥

सूंठ, देवदार, तुलसी, मूर्वा, लघुपंचमूल, इन्होंका क्वाथ अष्टमांश बाकी जल रहे ऐसा लेवे और इसकी बराबर दूध मिलावे ॥ १२ ॥

अथ स्नेह विधि ॥

दधि तत्सममाज्यं तु पाचयेत्तत्समाग्निना ॥ घृतं यावत्प्रदृश्येत सिद्धमुत्तार्य्यते ततः ॥ १३ ॥ तत्कृतं पानकेऽभ्यङ्गे भाजने च प्रदापयेत् ॥ स्नेहः सप्तविधो यावत्तस्माच्च रूक्षणं हितम् ॥ १४ ॥

और तिस दूधके समान दही मिला और तिसीके समान घृत मिलावे फिर मंद २ अग्निसे पकावे जब घृतमात्र बाकी रहजावे तब सिद्धहुआ जानके उतार लेवे ॥ १३ ॥ पीछे इसको पात्रमें घाल धरै इसको पीनेमें और मालिसमें वरतै स्नेह सात प्रकारका होता है इसवास्ते रूक्षण कर्म करना हित है ॥ १४ ॥

अथ शुंठ्यादि पानक ॥

दिनत्रयञ्च कर्त्तव्यं कथयाम्यत्र कोविद! शुण्ठी सौवर्चलं जीरे द्वे वाहिङ्गु समन्वितम् ॥ १५ ॥ काञ्जिकं पानमेतेषां रूक्षणं गुल्मशान्तये ॥ गुल्मचिकित्सिते क्षारपाकोऽत्र प्रतियुज्यते ॥ १६ ॥

तीन दिनतक रूक्षण कर्म करै सो कहते है सूंठ, कालानमक, दोनों जीरे, हींग, इन्होंको ॥ १५ ॥ कांजीमें मिला पान करना यह गुल्मकी शांतिके वास्ते रूक्षण कर्म कहा है और यहां गुल्मकी चिकित्सामें क्षारपाकयुक्त करनाभी श्रेष्ठ है ॥१६॥

अथ विरूक्षण ॥

क्षारं पलाशार्जुनसूरणस्य तथैव क्षारं सहयावशूकम् ॥ सौवर्चलं सिन्धुभवोद्भिदश्च सामुद्रजं वापि विमिश्रयेच्च ॥ १७ ॥ तोयं परिस्राव्य विधानतोऽपि युक्तं तथैतानि सदौषधानि ॥ पथ्याग्निशुण्ठीरजनीसुराह्वं कुष्ठं विशाला च जवानिका च ॥ १८ ॥ तथाजमोदा सह जीरके द्वे ष ड्ग्रन्थिका हिङ्गुयुतं च चूर्णम् ॥ क्षारोदकापानविमिश्रपानं निहन्ति सर्वाण्यपि कोष्ठजानि ॥ १९ ॥ गुल्मानि सर्वाणि विसूचिकानां मन्दाग्निशूलानि भगन्दराणाम् ॥ प्लीहोदरानाहं च विड्विबन्धं विनाशयेद्रोगत्रयं नराणाम् ॥ २० ॥

केशू, अर्जुनवृक्ष, जमीकंद, इन्होंका खार, जवाखार, काल्ञानमक, सेंधानमक, रेही, इन्हों- का खार, खारीनमकका खार इन्होंको एकत्र मिलाय॥१७॥जलमें उतार पीछे विधिसे इन औषधोंको गेरै, हरडै, चीता, सूंठ, हलदी, देवदार, कूट, इंद्रायण, अजमान, ॥ १८ ॥ अजमोद दोनोंजीरे, वच, हींग, इन्होंके चूर्णको तिनक्षारोंके संग पीवे यह कोष्ठमें उपजे हुए सब विकारोंको नाशता है ॥ १९ ॥ और सब प्रकारके गुल्मविसूचिका मंदाग्नि, शूल, भगंदर, प्लीहोदर, अफारा, विड्बंध, इन सब रोगोंको नाशता है ॥ २० ॥

अथ वातगुल्म पाचन

पथ्या समङ्गा कलसी वृषश्च महौषधं वातिविषा सुराह्वम् ॥ जले च निष्क्वाथ्य त्विदं हि पानं गुल्मामयानां प्रतिपाचनञ्च ॥२१॥ वचायवानीत्रिकटुदशमूलीजलं स्मृतम् ॥ क्वाथश्चोष्णो हितः पाने धान्यनागरयाथवा ॥ २२ ॥ वातगुल्मेषु सर्वेषु ज्वरेषु विषमेषु च ॥ रास्नाद्यं पञ्चकं वापि वातगुल्मप्रपाचनम् ॥ २३ ॥ शठी सौवर्चलं शुण्ठी पाचनं वाथ गुल्मिते ॥ २४ ॥

हरडै, मंजीठ, पिठवन, वांसा, सूंठ, अतीश, देवदार, इन्होंको जलमें क्वाथ बना तिसका पीना गुल्मरोगमें पाचन है, ॥ २१ ॥ वच, अजमान, त्रिकटु, सूंठ, मिरच पीपल, दशमूल इन्होंका जलमें क्वाथ बना सुखसे सुहाताहुआ गरम २ पीना हित है अथवा धनियां, सूंठ इन्होंका क्वाथ हित है ॥ २२ ॥ संपूर्णवात गुल्म और विषमज्वर इन्होंमें ए क्वाथ हित

है अथवा रास्नाद्य पंचक, रास्ना आदि पांच औषधोंका क्वाथ वात गुल्ममें पाचन है ॥२३॥ अथवा कचूर, कालानमक, सूंठ, इन्होंका क्वाथ देना पाचन है ॥ २४ ॥

अथ पित्तगुल्म तथा कफके गुल्मका पाचन

विद्गुला द्राक्षा कटुका निम्बपत्राणि चैव तु ॥ सगुडं पाचनं देयं पैत्तिकगुल्मरोगिणि ॥ २५ ॥ धात्रीकल्कं सितोपेतं पाचनं पित्तगुल्मिते ॥ यवानी चोग्रगन्धा च तथा च कटुकत्रयम् ॥ पाचनं श्लैष्मिके गुल्मे पीतं चोष्णं निशासु च ॥ २६ ॥

सातला, दाख, कुटकी, नींबके पत्ते, इन औषधोंका क्वाथमें गुड मिला पित्तके गुल्ममें पाचन देना चाहिये ॥२५॥ और आंवलोंका कल्कमें मिसरी मिला खाना पित्तके गुल्ममें पाचन है और अजमान, वच, सूंठ, मिरच, पीपल, इन्होंका क्वाथ रात्रिमें पीयाहुआ पाचन है ॥२६॥

अथ वातके गुल्ममें जुलाब ॥

नागरा क्रिमिजित्पथ्या त्रिवृतात्रिगुणायुता ॥ चूर्णं गुडान्वितं देयं वातगुल्मविरेचनम् ॥ २७ ॥ दन्ती च भागमेकं च द्वौ भागौ च हरीतकी ॥ त्रिवृताभागत्रयं स्याच्छुण्ठ्याश्चत्वार एव च ॥२८॥ प्रक्षिप्य सर्वमेकत्र सर्वतुल्यगुडेन तु ॥ वटकं भक्षयेत्प्रातस्तस्योपरि जलं पिबेत् ॥ २९ ॥ कथितं च विरेकाय वातगुल्मोपशान्तये ॥ ३० ॥

सूंठ, वायविडंग, हरडै, तीन भाग निशोत, इन्होंके चूर्णमें गुड मिला वातगुल्ममें जुलाबके वास्ते देना चाहिये ॥ २७ ॥ जमालगोटाकी जड एकभाग, हरडै दोभाग, निशोत तीन भाग, सूंठ चारभाग ॥२८॥ इसप्रकार इन्होंको ले चूर्ण बना तिसके समान गुड मिला तिस गोलीको प्रातःकाल भक्षण करै तिसपै औटायाहुआ जल पीवे॥२९॥ इसप्रकार जुलाब देनेसे वातका गुल्म शांत होता है ॥ ३० ॥

अथ पित्तके गुल्ममें जुलाब ॥

पिबेदेरण्डतैलं च शर्कराक्षीरसंयुतम् ॥ पित्तगुल्मविरेकाय श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ ३१ ॥ आरग्वधप्रवालानि तथैवारग्वधानि च ॥ विभाव्यैरण्डतैलेन एरण्डपत्रैस्तु वेष्टयेत् ॥ ३२ ॥ कर्दमेन प्रलिप्याथ अङ्गारेषु च स्थापयेत् ॥ सुस्विन्नभर्जिकां ताञ्च भक्षयेच्छर्करान्विताम् ॥ ३३ ॥ विरेकः पैत्तिके गुल्मे हितं शुद्धविरेचनम् ॥ ३४ ॥

अरंडीके तेलमें खांड और दूध मिलाके पीवे यह जुलाब पित्तके गुल्ममें श्रेष्ठ और सुखको देनेंवाली कही है ॥ ३१ ॥ और अमलतासके पत्ते तथा अमलतास इन्होंको अरंडीके तेलमें भावना दे फिर अरंडके पत्तोंमें लपेटि ॥३२॥गारासे लीप अंगारोंमें रख देवै जब अच्छि तरह पकजावे तब खांड मिलाके भक्षण करै ॥ ३३ ॥ पित्तसे उपजे गुल्ममें यह जुलाब हित और शुद्ध कही है ॥ ३४ ॥

अथ कफगुल्मपर विरेचन ॥

त्रिफलासुरसाशुण्ठीचूर्णं कृत्वा विभावयेत् ॥ स्नुहीक्षीरेण वारैकं गुडेन सह मिश्रितम् ॥ ३५ ॥ विरेकः श्लेष्मके गुल्मे सर्वोदरविनाशनः॥३६॥ शुण्ठी सौवर्चलं पथ्या विडङ्गश्च पुनर्नवा ॥ चूर्णंऽपामार्गबीजानां स्नुही क्षीरेण भावितम् ॥ ३७ ॥ गुडेन संयुतं खादेत्पश्चादुष्णं जलं पिबेत् ॥ विरेकः सर्बगुल्मेषुप्रशस्तो हितकारकः ॥ ३८ ॥

त्रिफला, तुलसी, सूंठ, इन्होंका चूर्ण बना, एकवार थोहरके दूधमें भावना दे गुडमें मिला भक्षण करै॥ ३५ ॥ यह जुलाब कफके गुल्ममें हित कही है और सबप्रकारके उदर रोगोंका नाश करती है ॥ ३६ ॥ और सूंठ, कालानमक, हरडै, वायविडंग, सांठी, ऊंगाके बीज इन्होंका चूर्ण बना थोहरके दूधमें भावना दे॥३७॥ गुडमें मिला भक्षण करै पीछे गरम पानी पीवै यह जुलाब सबप्रकारके गुल्मोंमें सुख करनेंवाली है ॥ ३८ ॥

अथ क्षारपान ॥

शुक्तिक्षारनिशाविशालकदली स्यात्सूरणं कोकिला पालाशं दहनार्जुनं शठिजयापामार्गकुष्माण्डकम्॥दग्ध्वा क्षारविपाचितं परिस्रुतं हिङ्गु त्रिकटुकान्वितं गुल्मानाहविबन्धशूलहरणं सर्वोदराणां हितम् ॥ ३९ ॥

सींप, जवाखार, हलदी, इंद्रायण, केला, जमीकंद, कोलिस्ता, केशू, चीता, अर्जुनवृक्ष, कचूर, अरणी, ऊंगा, कोहला, इन्होंको जला फिर पानीमें धोलके खार जमाके तिसखारमें हींग, सूंठ, मिरच, पीपल ये मिला खानेंसे गुल्म, अफारा, मलका बंधा, शूल, इन्होंका नाश होता है और सबप्रकारके उदररोगोंमें हित है ॥ ३९ ॥

अथ अजमोदादि औषध ॥

अजमोदा शठी दन्ती विडङ्गं कुष्ठतुम्बुरू ॥ त्रिफला चित्रकं चैव शुण्ठी कर्कटशृङ्गिका ॥ ४० ॥ त्रिवृता च सुराह्वा च पुष्करं वृद्धदारुकम् ॥ त

थाम्लवेतसं चैव तिन्तिडीकश्च चिञ्चिनी ॥ ४१ ॥ समं तु मातुलुङ्गेन वि भाव्यमेकतः कृतम् ॥ त्रिभागहिङ्गुसंयुक्तं घृतेन चूर्णितं हितम् ॥ निह न्ति वातगुल्मञ्च सशूलमुदरं तथा ॥ ४२ ॥

अजमोद, कचूर, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, कूठ, धनियां, त्रिफला, सूंठ, काकडासींगी ॥ ४० ॥ निशोत, देवदार, पोहकरमूल, भिदारा, अम्लवेत, अमली इन्होंको ॥४१॥ समानभागले एकवार विजौराके रसमें भावनादे तीनभाग हींग मिला फिर घृतके संग इसचूर्ण को खावे यह वातके गुल्मको तथा शूलसहित उदररोगको नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णितं ॥

हिङ्गुफलत्रिकजीरकयुग्मं चित्रकभार्ङ्गी कुष्ठविडङ्गम् ॥ तुम्बुरुपुष्कर विश्वसुराह्वं क्षारयुतं लवणानि च पञ्च ॥ ४३ ॥ वातिकगुल्मविनाशनहे तोः शूलरुजश्च निहन्ति नराणाम् ॥ ४४ ॥ हिङ्गुसौवर्चलाजाजी विश्वा कुष्ठं विडङ्गकम् ॥ आरनालेन पीतं च हन्ति गुल्मं सवातिकम् ॥ ४५ ॥

और हींग, त्रिफला, दोनों जीरे, चीता भारंगी, कूठ,वायविडंग, धनियां, पोहकरमूल, सूंठ, देवदार, इन्होंका चूर्णमें जवाखार और पांचोंनमक मिला खानेंसे वातके ॥४३॥ गुल्मका नाश होता है और मनुष्योंकी शूलकी पीडाका नाश होता है ॥ ४४ ॥ और हींग, कालानमक, जीरा, सूंठ, कूठ, वायविडंगइन्होंको, कांजीके संग पीनेंसे वातके गुल्मका नाश होता है॥४५॥

अथ पित्तगुल्मोदरचिकित्सा ॥

जीरे द्वे त्रिकटु शठी तुम्बुरु चित्रकं मधु ॥ लेहः पित्तात्मके गुल्मे हि तः शोफनिवारणः ॥४६॥ यष्टिकं निम्बपत्राणि तथा धात्रीफलं सिता॥ चूर्णं मध्वावलीढं च पित्तगुल्मनिवारणम् ॥ ४७ ॥

दोनोंजीरे, त्रिकटु, अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, कचूर, धनियां, चीता शहद, इन्होंका लेह बना खानेंसे पित्तका गुल्मका नाशहोता और शोजा दूर होता है ॥ ४६ ॥ मुलहटी, नींबके पत्ते, आंवले, मिसरी, इन्होंके चूर्णको शहदमें मिला चाटनेंसे पित्तके गुल्मका नाश होता है४७

त्रिकटुत्रिफलाचित्रबटकफलसंयुतम् ॥ चूर्णं मद्येन वा पीतं फलक्वाथे न वाहितम् ॥ ४८ ॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय हितं चैतत्सुखावहम् ॥४९॥

और सूंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, चीता, वडके फल, वडवंटे, इन्होंके चूर्णको मदिराके

संग अथवा त्रिफलाके क्काथके संग पीवे ॥४८॥ तो कफके गुल्मका नाशहोता है और यह हित है सुखको देनेंवाला है ॥ ४९ ॥

अथ कफके गुल्मकी चिकित्सा ॥

रोध्रं च कमलं विश्वा कुष्ठं चित्रकमेव च॥नागरहिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं मूत्रेण संयुतम् ॥ ५० ॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय शूलोदरविनाशनम् ॥ उग्रगन्धा च मरिचं क्षारचूर्णसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ पिबेन्मूत्रेण संयुक्तं श्लेष्मगुल्म विनाशनम् ॥ ५२ ॥

लोध, कमल, सूंठ, कूठ, चीता,नागरमोथा, हींग, इन्होंके चूर्णको गोमूत्रके संग खावे॥५०॥ तो कफकी शूल उदररोग कफका गुल्म इन्होंका नाशहोता है और वच, मिरच, इन्होंके समान जवाखार इन्होंके चूर्णको ॥५१॥ गोमूत्रके संग पीनेंसे कफके गुल्मका नाश होता है ॥ ५२॥

अथ वातकी गुल्मकी चिकित्सा ॥

शुण्ठी सौवर्चलं भार्ङ्गी वत्सकं यावशूककम् ॥ जीरे द्वे चाटरूषं च यवानी हिङ्गु सैन्धवम् ॥ ५३ ॥ आरग्वधेन संयुक्तं चूर्णं सघृतमेव च ॥ वातश्लेष्मोद्भवे गुल्मे सुखमाशु प्रपद्यते ॥५४॥ उग्रगन्धा फलत्रिकं देवदारु पुनर्नवा ॥ त्रिवृत्सौवर्चलोपेतं क्षारोदकसमन्वितम् ॥ पीतं वातकफे गुल्मे सुखकारि परं मतम् ॥ ५५ ॥

सूंठ, कालानमक, भारंगी, कुडाकी छाल, जवाखार, दीनोंजीरे, वांसा, अजमान, हींग, सेंधानमक, ॥ ५३ ॥ अमलतास, इन्होंके चूर्णमें घृत मिला खानेंसे वातकफसे उत्पन्नहुआ गुल्ममें शीघ्रही सुख उत्पन्न होताहै ॥ ५४ ॥ और वच, त्रिफला, देवदार, सांठी, निशोत, कालानमक, इन्होंको जवाखारके जलके संग पीनेंसे वातकफसे उपजाहुआ गुल्ममें अत्यंत सुख होता है ॥ ५५ ॥

अथ सन्निपातके गुल्मकी चिकित्सा॥

ग्रहणीगुल्मक्रिया या सा चात्र प्रभवेद्यदि ॥ शोफोदरेषु सर्वेषु कार्य्यश्चात्र विरेचनम् ॥ ५६ ॥ शोफातिसारसंयुक्तो हन्ति गुल्मोदरो नरम् ॥ तस्य क्षारोदकपानं बृहद्धिङ्ग्वादिचूर्णकम् ॥ ५७ ॥ अजमोदादिकं वापि शोफातिसारशान्तये ॥ वमिश्चैवातिसारश्च गुल्मरोगेषु यद्यपि ॥ ५८ ॥

तेनसाध्यं विजानीयात्प्रत्याख्येया क्रिया हिता ॥ गुडदाडिमपथ्यां च मधुना सहितां पिबेत् ॥५९॥ वमिश्च वातिसारं च वारंवारं प्रयोजयेत् ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥ ६० ॥ तोदोऽरतिर्विवर्णत्वं मूर्च्छातिसारसंयुतम् ॥ वमिः क्लेदश्च तन्द्रा च तदसाध्यं त्रिदोषजम्॥६१॥

संग्रहणी गुल्ममें कहीहुई जो क्रियाहो वह यहां करनी चाहिये और सबप्रकारके उदर-रोगोंमें जुलाब दिवानी चाहिये ॥ ५६ ॥ और शोजा अतिसार, इन्होंसे संयुक्त गुल्मोदर, मनुष्यको मार देता है तिसको बृहत् हिंग्वादि चूर्णके संग क्षारोदक पान कराना चाहिये ॥ ५७ ॥ अथवा अजमोदआदिक चूर्णको शोजाकी शांतिकेवास्ते देवै, गुल्मोदर रोगोंमें वमनहो और अतिसारहो ॥ ५८ ॥ जो साध्य जानना तिसकी संपूर्ण क्रिया करनी हित कही है और गुड, अनारदाना, हरडै, इन्होंको शहदके संग पीवे ॥ ५९ ॥ वमन अतिसार इन्होंको वारंवार करवावे और जो सब लक्षणोंसे युक्तहो वह सन्निपातसे उपजा गुल्म जानना ॥ ६०॥ चभकाहो, ग्लानिहो, विवर्णहो, मूर्च्छाहो, अतिसारहो, वमनहो, गीलापनहो, आल-स्यहो, वह त्रिदोषसे उपजा गुल्मरोग असाध्य जानना ॥ ६१ ॥

अथ शोथचिकित्सा ॥

शृणु पुत्र महाप्राज्ञ एकाग्रमनसाधुना॥शोफोद्धारक्रियां नृणां वक्ष्यते च विजानता ॥ ६२ ॥ त्रिवृत् तथाचेक्षुगुडेन युक्ता अनन्तरं कोष्णजलेन पीता॥तस्मान्निहन्त्युदरं सशोफं पित्तात्मकं वा विजहाति पुंसाम्॥ ६३ ॥ हरीतकी च त्रिवृता च शुण्ठी गुडेन युक्ता त्वथ हन्ति शोफम्॥द्विपञ्चमूलं क्वथितं सुखोष्णमेरण्डतैलेन जहाति शोफम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्रयुक्तं वरुणस्य तैलं पाने हितं नाशयते च शोफम् ॥ ६५ ॥

हे पुत्र! अब एकाग्र मन करके सुन मनुष्योंके शोजाको दूर करनेंवाली क्रियाको कहते है ॥ ६२ ॥ निशोतकों ईखके गुडके संग खावे पीछे गरम जल पीवे तिस्से शोजा सहित उदर रोगका नाश होता है और पित्तसे उपजा गुल्मरोगभी शांत होता है ॥ ६३ ॥ और हरडै, निशोत, सूंठ, इन्होंको गुडमें मिला खानेंसे शोजाका नाश होता है और दशमूलके गरम २ क्काथको अरंडीके तेलके संग पीनेंसे शोजाका नाश होता है ॥६४॥ और वरणाका तेल गोमूत्रके संग पीना हित है शोजाको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शोथरोगमें वर्ज्य ॥

ग्राम्यानूपं पिशितलवणञ्च शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टान्नं सदधिकं

शरश्च विजलं मद्यमन्नम् ॥ धान्यं वल्लूरं शोफकरणमथ गुर्वसात्म्यं विदाहिस्वप्नं वापि रात्रौ श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनञ्च ॥६६॥ लेपोऽरुष्करस्य शोफं हन्ति तिलदुग्धमधुकनवनीतैः ॥ तत्तरुतलमृद्भिर्वासकदलैर्वापि सविरणैः ॥ ६७॥ शोषे विषनिमित्ते तु विषोक्ता शमनक्रिया ॥ लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णवातानुलालनम् ॥ ६८ ॥ बृंहणं तु भवेदन्नं तद्विषं सर्वगुल्मिनाम् ॥ वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकादि वैदलम् ॥ ६९ ॥ न खादेद्वालुकं गुल्मी मधुराणि समानि च ॥ ७० ॥

और गाममें रहनेंवाला श्वान आदिजीव अनूपदेशके जीव इन्होंका मांस, नमक, सूखाशाक, नवीन अन्न, गुडका भोजन, पीठीका भोजन, दही, खीचडी, जलसे रहित सूखा अन्न, मदिराका अन्न, सूखा धान्य, सूखा मांस, शोजा करनेंवाला पदार्थ, भारा, प्रकृतिसे रहित और विदाही पदार्थ, रात्रीमें सोना, मैथुन, इन्होंको शोजावाला पुरुष त्याग देवै ॥ ६६ ॥ और भिलावा, तिल, मुलहटी, इन्होंको दूधमें पीस नौनी घृत मिला लेप करनेंसे शोजाका नाश होता है अथवा भिलावाका वृक्षकी जडकी मांटी, वांसाके पत्ते नेत्रवाला इन्होंका लेप करनेंसे शोजाका नाश होता है ॥ ६७ ॥ और विषसे उपजे हुए शोजे विषोंको शांत करनेंवाली चिकित्सा करै लंघन, दीपन, स्निग्ध, अर्थात् तेल आदि गरम वातको बढानेवाला ॥ ६८ ॥ बृंहण पदार्थ, ऐसा, अन्न सब गुल्म रोगवालोंको विषके समान है और सूखामांस, मूली, मच्छी, सूखाशाक, एलवा ॥ ६९ ॥ और समान मधुरी पदार्थ इन्होंको गुल्म रोगवाला पुरुष नहीं खावे ॥ ७० ॥

अथ रक्तगुल्ममें पाचन ॥

सरक्तगुल्मे न तु पाचनं तु न हिङ्गुपानं कटिचालनं च ॥ न चैव संस्वेदनमर्दनञ्च नाक्रमेण नोत्प्लवनं हितं च ॥ ७१ ॥ रोध्रार्जुनंखदिरमागधिकासमञ्जकाथोऽम्लवेतसमधुघृतसंप्रयुक्तः ॥ गुल्मं सरक्तमपि चाथ निहन्ति चाशु हृत्क्लेदनं च विनिहन्ति च कुद्धरक्तम् ॥ ७२ ॥

और रक्तसहित गुल्म रोगमें पाचन औषध नहीं देवै और हिंगुआदि औषध पान, कटि मसलना, पसीनें दिवाने, मालिस करनी, ऊपरको लफना, कूदना ये हित नहीं है ॥ ७१ ॥ और लोद, अर्जुन वृक्ष, खैर, पीपली, मंजीठ, अम्लवेत, इन्होंका क्काथ बना शहद और घृत मिला खानेंसे रक्तसहित गुल्मका शीघ्रही नाश होता है और हृदाकी पीडा, अत्यंत रक्तरोग इन्होंका नाश होता है ॥ ७२ ॥

अथ रक्तगुल्ममें पथ्य ॥

क्षीरपानं प्रदातव्यं घृतसौवर्चलान्वितम् ॥ रक्तगुल्मविनाशाय यकृद्विक्षतजेऽपिवा ॥ ७३ ॥ नच हिङ्गुयुतं पथ्यं नचोष्णं न विदाहि च ॥ रक्तजे क्षतजे गुल्मे मांसानि जाङ्गलानि च ॥७४॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

और रक्तके गुल्मके नाशकेवास्ते तथा यकृत् भंगसे उपजे गुल्मके नाशकेवास्ते घृत काला नमक इन्होंसे युक्त दूधको पीना चाहिये ॥ ७३ ॥ तहां हिंगुसंयुक्त औषध और गरम तथा विदाही पदार्थ हित नहीं है और रक्तसे उपजा तथा चोटसे उपजा गुल्ममें जांगल देशके जीवोंका मांस हित नहीं है ॥ ७४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सानाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथ जलोदरका निदान तथा लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ विषमासनोपवेशात्पीततोयादथापिवा ॥ श्रमाध्वश्वासनिष्क्रान्ते अतिव्यायामितेऽपि वा ॥ पीतं तूदरमेवं च तस्माज्जातं जलोदरम् ॥ १ ॥ उदरं सजलं यस्य सघोषमतिवर्द्धितः ॥ श्वयथुः पादयोः शोफो जलोदरस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

विषम आसनपे बैठनेंसें, ज्यादै जलपीनेंसे श्रम, मार्ग, इन्होंकी पीडा होनेंसे अथवा अत्यंत कसरत करनेंसे पीला उदर होजाता है इन्होंसे जलोदर संज्ञक रोग होजाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर जलसहित दीखे शब्दहो और अत्यंत बढजावे पैरोंमें शोजाहो यह जलोदरका लक्षण है ॥ २ ॥

अथ जलोदर रोगकी चिकित्सा ॥

विरेकं वमनं कुर्य्यात्पाचनानि च कारयेत् ॥ क्षारयोगश्च वटकस्तेन तदुपशाम्यति ॥ ३ ॥ तस्मान्नाभेर्वलीभागे वर्जित्वाङ्गुलमात्रकम् ॥ जलनाडीं चानुमान्य कुशमात्रेण वेष्टयेत् ॥ ४ ॥ एरण्डजलनालं च तत्र सञ्चारयेद्बुधः ॥ अन्तर्गतं जलं स्राव्यं ततः संधारयेद्घृतम् ॥ ५ ॥

यदा न धरते तच्च तदा दाहः प्रशस्यते ॥ कणकल्कं परिस्राव्य घृतं देयं चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥ शुण्ठीविषासमं पाच्य पानमालेपनं हितम् ॥ शस्त्रकर्म भिषक्छ्रेष्ठो विज्ञातेनैव कारयेत् ॥ ७ ॥ दुष्करं शस्त्रकर्मैव न कुर्याद्यत्र तत्र तु ॥ अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ ८ ॥ तस्मादवश्यं कर्त्तव्यमीश्वरं साक्षिकारिणा ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने जलोदरचिकित्सा नाम सप्तविंशोऽध्यायः २७

इसरोगमें जुलाब, वमन, पाचन औषध, इन्होंको करवावे और क्षारयोग, गोलीआदिक, इन्होंसे यह रोग शांत होता है ॥ ३ ॥ इसरोगमें नाभिके वलिभागसे एक अंगुल मात्र जगंह वर्जके जलकी नाडीका अनुमान जानके कुशासे बांधदेवै ॥ ४ ॥ पीछे बुद्धिमान् जन तहां अरंडीके जलकी नालीको प्रयुक्त करै भीतरको प्राप्त हुआ सब जलको झिरादेवै पीछे शीघ्र-बंद करदेवै ॥ ५ ॥ और जो इसप्रकार करनेंसे तहां आराम नहीं होवे तो दाह करना श्रेष्ठ कहा है गीहुंओंकी कणीका चूनको छान तिसमें चौगुना घृत मिला ॥ ६ ॥ सूंठ अतीश इन्होंको चूनके समान भाग मिला पकालेवे पीछे इसका पीना और लेप करना हित है और उत्तमवैद्यको अच्छी तरंह जानें विना शस्त्रकर्म नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ शस्त्रकर्म अत्यंत दुष्कर है इसवास्ते जहां तहां सब जगह नहीं करना चाहिये अन्यथा चिकित्सा होनेंमें निश्चय मृत्यु होजाती है यथार्थ चिकित्सा करनेंमेंभी संदेह रहता है ॥ ८ ॥ इसवास्ते अवश्य ईश्वरको साक्षी करके कर्म करना चाहिये ॥ ९ ॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषायां जलोदरचिकित्सानामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ विंशत्येवं प्रमेहास्तु नराणामिह लक्षणम् ॥ १ ॥ श्रमाद्व्यवायाच्च तथैव घर्मविरुद्धतीक्ष्णोष्णविभोजनेन ॥ मद्येन वा क्षीरकटुप्रसेवनान्मेहप्रसूतिः कथिता मुनीन्द्रैः ॥ २ ॥ जलप्रमेहो रुधिरप्रमेहः पूयप्रमेहो लवणप्रमेहः ॥ तक्रप्रमेहः खटिकाप्रमेहः शुक्रप्रमेहः कथितःपुरस्तात्॥ ३॥स्याच्छर्करामेहोवसाप्रमहो रसप्रमेहोऽन्यघृतप्रमेहः॥

पित्तप्रमेही कफमेहिनश्च मधुप्रमेहीति विभावयेच्च ॥ ४ ॥ यथा च नामानि तथैव लक्षणं बलक्षयं वापि नरस्य देहे ॥ कुर्वन्ति शीघ्रं भिषजां वरिष्ठः कुर्य्यात्क्रियाश्च शमनाय हेतुम् ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–मनुष्योंके बीस २० प्रकारके प्रमेह रोग होते है ॥ १ ॥ श्रम करनेसे घांम, तीक्ष्ण विरुद्ध भोजन इन्होंसे मदिरा, दूध, चर्चरा, इनवस्तुओंके सेवनेंसे मुनिजनोंको प्रमेह रोगकी उत्पत्ति कही है ॥ २ ॥ जलप्रमेह १ रुधिर प्रमेह २ पूय प्रमेह ३ लवण प्रमेह ४ तक्र प्रमेह ५ खटिका प्रमेह ६ शुक्र प्रमेह ७ ॥ ३ ॥ शर्करा प्रमेह ८ वसा प्रमेह ९ रस प्रमेह १० घृत प्रमेह ११ पित्त प्रमेह १२ कफ प्रमेह १३ मधु प्रमेह इसप्रकारसे हैं ॥ ४ ॥ जैसे इन्होंके नाम है वैसेही लक्षण है ये प्रमेहरोग मनुष्यके देहमें बलका क्षय करदेते हैं इसवास्ते इसरोगके नाशकेवास्ते शीघ्रही उत्तमवैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथ प्रमेह चिकित्सा ॥

धवार्जुनं चन्दनशालछल्लीक्काथो हितः स्याच्च जलप्रमेहे ॥ रक्तप्रमेहे शिशिरं पयश्च द्राक्षान्वितं यष्टिकचन्दनेन ॥ ६ ॥ स्त्रीसेवनं चाल्पतरञ्च पूयमेहे हितः क्काथो धवार्जुनस्य ॥ दूर्वाकसेरुकदलीनलिन्या लवणस्य मेहे कषाय उक्तः ॥ ७ ॥ कदम्बशालार्जुनदीप्यकानां विडङ्गदार्वीधवशल्लकीनाम् ॥ सर्वे तथैते मधुना कषायाः कफप्रमेहेषु निषेवनीयाः ॥ ८ रोध्रार्जुनः क्षीरमरिष्टपत्रात्तत्रैव धात्रीफलचन्दनानि ॥ तक्रप्रमेहे खटिकाप्रमेहे देयो हितः क्काथगुडावटश्च ॥ ९ ॥ दूर्वा च मूर्वा कुशकाशमूलं दन्ती समङ्गा सह शल्मली च ॥ शुक्रप्रमेहे क्कथितं जलेन पानं हितं वा रुधिरप्रमेहे ॥ १० ॥ फलत्रिकारग्वधमूलमूर्वाशोभाञ्जनारिष्टदलानि मोचा ॥ द्राक्षायुतो वा क्कथितः कषायः सर्पिःप्रमेहस्य निवारणाय ॥ ११ ॥ कुष्ठं तथा पर्पटकं च तिक्ता सिता गगाढं क्कथितः कषायः ॥ मूर्वारिकापाटलिकानियुक्तो दुरालभाकिंशुकटुण्टुकानाम् ॥ रसप्रमेहे च सदा हितः स्यात् ॥ १२ ॥ नीलोत्पलार्जुन कलिङ्गधवाम्लिकानां धात्रीफलानि पिचुमन्ददलानि तोये ॥ निष्क्काथ्य शर्करयुते मनुजस्य पाने पित्तप्रमेहशमनाय वदन्ति धीराः ॥ १३ ॥ विडङ्गसर्जार्जुन

१ अयमेकश्चरणोऽधिकोऽस्ति.

कफलानां कदम्बरोध्राशनवृक्षकाणाम् ॥ जलेन क्वाथश्च हितो नराणां कफप्रमेहं विनिहन्ति तेषाम् ॥ १४ ॥ मुस्ता फलत्रिकनिशा सुरदारु मूर्वा इन्द्रा च रोध्रसलिलेन कृतः कषायः ॥ पाने हितः सकलमेहभवे गदे च मूत्रग्रहेषु सकलेषु वियोजनीयः ॥ १५ ॥ यच्चाभयालोहरजोनिकुम्भचूर्णं हितं शर्करया समेतम् ॥ फलत्रिकाया मधुना च लेहं सर्वप्रमेहेषु हितं वदन्ति ॥ १६ ॥ मधुमेहे प्रयोक्तव्यं घृतपानं सुधीमता ॥ क्षीरं वा शर्करायुक्तं क्वाथो वा गुटिकानि च ॥ १७ ॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ प्लक्षारग्वधटुण्टुकम् ॥ पियालं ककुभं जम्बूकाकपिच्छाम्रातकानि च ॥ १८ ॥ मधुकं यष्टीमधुकं रोध्रं वै पारिभद्रकम् ॥ पटोलं चारिणी चैव दन्ती मेषविषाणिका ॥ १९ ॥ चित्रकं च करञ्जश्च शक्राह्वं त्रिफला युतम् ॥ भल्लातकानाञ्च समं त्रिगन्धं कटुकत्रयम् ॥ २० ॥ सूक्ष्मचूर्णं प्रदातव्यं न्यग्रोधाद्यं गुणाधिकम् ॥ मधुना संयुतं, लेहो हन्याच्च मधुमेहकम् ॥ २१ ॥ क्वाथो वा तैलपाको वा घृतपाकोऽथवापि च ॥ पानाभ्यङ्गे प्रशस्तः स्याद्धन्ति वै मूत्रजं गदम् ॥ २२ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं पेयं वा क्षीरसंयुतम् ॥ मधुमेहे नान्योऽस्ति यथालाभेन योजितः ॥ ॥ २३ ॥ माक्षीकं धातुमाक्षीकं शिलोद्भेदं शिलाजतु ॥ चन्दनं रक्तधातुश्च तथा कर्पूरकं कणाः ॥ २४ ॥ वंशरोचनकं चैव क्षीरेण सहितं पिबेत् ॥ मधुप्रमेहं हरति मूत्ररोगाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥

धव, अर्जुन वृक्ष, चंदन, शालवृक्ष इन्होंकी छाल इन्होंका क्वाथ बना पीना जलप्रमेहमें हित है और रक्त प्रमेहमें दाख, मुलहटी, चंदन, इन्होंसे युक्त ठंढा दूध पीना हित है ॥ ६ ॥ और मैथुन स्वल्प करना, धव, अर्जुनवृक्ष इन्होंका क्वाथ पीना पूयप्रमेहमें हित है और दूब, कसेरु, केला, कमलिनी, इन्होंका क्वाथ लवण प्रमेहमें हित है ॥ ७ ॥ कदंब, अर्जुनवृक्ष, शाल, अजमोद, वायविडंग, दारुहलदी, धव, शलकीवृक्ष, इन्होंका क्वाथ शहदके संग पीना कफ प्रमेहमें हित है ॥ ८ ॥ लोद, अर्जुनवृक्ष, दूध, नींबके पत्ते, आंवला, चंदन, इन्होंका क्वाथ अथवा गुडमें मिलाके गोली देना तक्रप्रमेह, खटिका प्रमेह, इन्होंमें हित है ॥९॥ और दूब, मूर्वा, कुशा, कांस, इन्होंकी जड, जमालगोटाकी जड, मंजीठ, शालवन, इन्होंका क्वाथ बनाके पीना शुक्रप्रमेहमें और रुधिर प्रमेहमें हित है ॥ १० ॥ त्रिफला, अमलतासकी जड,

मूर्वा, संहौंजना, नींबके पत्ते, मोचरस, दाख, इन्होंका क्वाथ पीनेंसे घृत प्रमेहका निवारण होता है ॥ ११ ॥ और कूठ, पित्तपापडा, कुटकी, मिसरी, इन्होंका अच्छीतरह क्वाथ बना पीना अथवा मूर्वा, खैर, पाडलवृक्ष, जवांसा, केशू, टेंटुवृक्ष, इन्होंका क्वाथ पीना रसप्रमेहमें सदा हित है ॥ १२ ॥ नीला कमल, अर्जुनवृक्ष, इंद्रजव, धव, अमली, आंवला, नींबकेपत्ते, इन्होंका क्वाथ बना तिसमें खांडमिला मनुष्यको प्यानेंसे पित्तप्रमेह शांत होता है ऐसे वैद्यजन कहते है ॥ १३ ॥ वायविडंग, रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, त्रिफला, कदंब, लोद, आसना इन्होंका क्वाथ बना पीना पीनेंसे कफ प्रमेहका नाश होता है ॥ १४ ॥ और नागरमोथा, त्रिफला, हलदी, देवदार, मूर्वा, इंद्रायण, इन्होंका क्वाथ बना पीनेसे सबप्रकारके प्रमेह रोग और मूत्रग्रह अर्थात् मूत्र बंधहोना ये दूर होते है ॥ १५ ॥ और हरडै, लोहाकी रज, जमालगोटाकी जड इन्होंका चूर्ण बना खांडके संग खानेंसे अथवा त्रिफलाके चूर्णको शहदमें मिला लेह बना चाटनेंसे सबप्रकारके प्रमेहरोग दूर होते है ॥ १६ ॥ और वैद्यजनको मधुप्रमेहमें घृतका पान कराना चाहिये और खांडसे युक्त दूधके क्वाथका पान करावे तथा गोली देवै ॥ १७ ॥ वड, गूलर, पीपल, पिलखन, अमलतास, टेंटूवृक्ष, चिरौंजीका वृक्ष, अर्जुन वृक्ष, जामन, कैथ, अंबाडा वृक्ष, ॥ १८ ॥ महुआ वृक्ष, मुलहटी, लोद, नींब, परवल, अरणी, जमालगोटाकी जड, मेंढासींगी ॥ १९ ॥ चीता, करंज वृक्ष, देवदार, त्रिफला, भिलावे त्रिगंध, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सूंठ, मिरच, पीपल, ॥ २० ॥ इन सब औषधोंका चूर्ण बना शहदमें मिला लेह बना खानेंसे मधुप्रमेहका नाश होता है ॥ २१ ॥ अथवा इनऔषधोंका क्वाथ तथा तैलपाक अथवा घृतपाक बनाके पीनेंमें और मालिस करनेंमें हित कहा है और सबप्रकारके मूत्ररोगोंको नाशता है ॥ २२ ॥ वडआदि औषधोंका यह चूर्ण दूधके संग पीना हित है मधु प्रमेहमें इसके समान औषध नहीं है इसमें कहीहुई जितनी औषध मिलें उतनीही मिलादेवै ॥ २३ ॥ और शहद, सोनामाखी, पाषाणभेद, शिलाजीत, चंदन, गेरू, कपूर, पीपल, ॥ २४ ॥ वंशलोचन, इन्होंके चूर्णको दूधके संग पीवे यह मधु प्रमेहको नाशता है और संपूर्ण मूत्र रोगोंको दूर करता है ॥ २५ ॥

अथ प्रमेह पिटिकाकी चिकित्सा ॥

प्रमेहपिटिकानाञ्च वक्ष्यामोऽथ चिकित्सितम् ॥ धवार्जुनकदम्बानां बदरी खदिरशिंशपे ॥ पारिभद्रकमेतेषां मेहनस्य प्रधावनम् ॥ २६ ॥ अर्जुनस्य कदम्बस्य टिण्टुकी बान्तरत्वचा ॥ पाके पूयविशोधार्थं मेहनस्य प्रशस्यते ॥ २७ ॥ भृङ्गराजरसं गृह्य तथाच सुरसादलम् ॥ निष्पावक पटोलानां पत्राणि काञ्जिकेन तु ॥ २८ ॥ पिष्ट्वा वातपिटिकानां लेपनं

मेहनस्य च ॥ २९ ॥ यष्टीमधु तथा कुष्ठं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ उशीरं कत्तृणं चैव रक्तधातुमृणालकम् ॥ ३० ॥ क्षीरमण्डकसंयुक्तं यथा लाभं भिषग्वर !॥ लेपनं पित्तरक्तानां मेहदाहः प्रशाम्यति ॥ ३१ धावनं शीतपयसा नवनीतेन मर्दनम् ॥ कणं कदम्बार्जुनपिण्याकपत्राणि दाडिमस्य च ॥ ३२ ॥ खदिरस्य दलानां तु तथा चामलकीदलान् ॥ उष्णेन वारिणा पिष्ट्वा सोमपाके च मेहने ॥ ३३ ॥ त्रिफलायाश्च वा चूर्णं शुष्कपूयनिवारणम् ॥ धावनं काञ्जिकेनाथ तक्रेणाथ तुषाम्बुना ॥ ॥ ३४ ॥ अतिशीतेन तोयेन मेहपाके च धावनम् ॥

अब प्रमेहकी पिडिकाओंकी चिकित्साको कहते है धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, बेर, खैर, सीसम, नींब, इन्होंकी छालके क्काथसे प्रमेहरोगकी पीडिकाओंको धोवै ॥ २६ ॥ और अर्जुनवृक्ष, कदंब, टेंटूवृक्ष, इन्होंकी भीतरकी वक्कलके क्काथसे, पकीहुई पिडिकाओंकी राधको शोधनेंकेवास्ते धोवै ॥ २७ ॥ और भंगराका रस, तुलसीके पत्तोंका रस, मोठ, परवल इन्होंके पत्ते इन्होंको कांजीमें और तिस रसमें॥२८॥पीस वातसे उपजी हुई प्रमेहकी पिडिकाओंपे लेप करै ॥२९ ॥ और मुलहटी, कूठ, चंदन, लाल चंदन, खश, रोहिषतृण, गेरू, कमलकी नाली ॥ ३० ॥ इन्होंको जितनी औषध मिलें उन्होंहीको दूधमें तथा चावलोंका मांडामें पीके लेप करनेंसे शिश्नका दाह शांत होता है ॥ ३१ ॥ तथा चावलोंके धोवनका ठंढा पानीमें वा नौंनी घृतमें पीस और गीहूंका कणका, कदंबवृक्ष, तिलोंका वृक्ष इन्होंके पत्ते और अनार ॥ ३२ ॥ खैर, आंवला, इन्होंके पत्ते इन्होंको गरम जलमें पीस सोमपाक प्रमेह रोगमें देवै ॥ ३३ ॥ और त्रिफलाका चूर्ण शुष्कपूय प्रमेहका निवारण करता है अथवा कांजी तक्र शीतलजल इन्होंसे इंद्रियका धोना हित है ॥३४॥ और प्रमेह पाकमें अत्यंत ठंढाजलसे इंद्रियका धोना श्रेष्ठ है

अथ प्रमेहमें पथ्यापथ्य ॥

रक्तशालिश्च षाष्टीकश्चाढकी वा कुलत्थकः ॥ ३५ ॥ घृतं च मधुरं किञ्चिद्भोजनार्थं विधीयते ॥ क्षाराम्लकटुकं वापि दिवा स्वप्नं विशेषतः ॥ ३६ ॥ स्त्रीदर्शनं व्यवायश्च तथाचात्यशनं तथा ॥ चलनं धावनं चेति तथा मूत्रविरोधनम् ॥३७॥ वस्त्रवातं रक्तवस्त्रं वर्जयेद्भिषजां वरः ॥ एकान्ते गृहमध्ये च गानस्त्रीबालकं रमः ॥ ३८ ॥ न चा भरणताम्बूलं कोपशोषं जहाति च ॥ दूरे चैतानि वर्जेत्तु यदीच्छेत्सुखसम्पदः ॥ ३९ ॥

और लाल चावल, सांठी चावल, कुलथी ॥ ३५ ॥ घृत, किंचित् मधुर अन्न, इन्होंको भोजनकेवास्ते देवै और खारा, खट्टा, चर्चरा पदार्थ, दिनमें सोना इन्होंको विशेष करिकै वर्ज देवै ॥ ३६ ॥ स्त्रीका दर्शन, मैथुन, ज्यादै भोजनकरना, मार्गमें चलना, भाजना, मूत्रका रोकना, ॥ ३७ ॥ वस्त्रसे वायु करना, रक्तवस्त्र पहिरना इन्होंको वैद्यजन इसरोगमें वर्ज देवै एकांतमें घरके मध्यमें गाना स्त्रीबालक इन्होंके संग प्यार करना ॥३८॥ आभूषण पहिरना, पान चाबना, क्रोध करना इन्होंको इसरोगमें दूरसेही त्यागदेवै तब सुखहोता है ॥३९॥

पीतप्रमेहपर हरिद्रादिक्काथ ॥

हरिद्राद्वितयं शुण्ठी विडङ्गानि हरीतकी॥ कफप्रमेहे विहितः क्काथोऽयं मधुना सह ॥ ४० ॥ नीलोत्पलमुशीरञ्च पथ्यामलकमुस्तकम् ॥ पिबेत्पीतप्रमेहार्त्तः क्काथं मधुविमिश्रितम् ॥ ४१ ॥

और दोनों हलदी, सूंठ, वायविडंग, हरडै इन्होंका क्काथ शहदके संग पीना कफ प्रमेहमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ४० ॥ नीलाकमल, खश, हरडै, आंवला, नागरमोथा, इन्होंका क्काथ शहदके संग पीनेंसे पीत प्रमेहका नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ पित्तप्रमेहपर कमलादिक्काथ ॥

कमलञ्च तथा रोध्रमुशीरमर्जुनान्वितम् ॥
पित्तप्रमेहे विहितः क्काथोऽयं मधुना सह ॥ ४२ ॥

और कमल, लोध, खश, अर्जुनवृक्ष, इन्होंका क्काथ शहदके संग पीना पित्त प्रमेहमें हित कहा है ॥ ४२ ॥

अथ आमलक्यादिचूर्ण ॥

आमलकस्य स्वरसं मधुना च विमिश्रितम् ॥
हरीतक्याश्च चूर्णं वा सर्वमेहनिवारणम् ॥ ४३ ॥

और आंवलोंका रसमें शहद मिला अथवा हरडैका चूर्णमें शहद मिला खानेंसे सब प्रकारके प्रमेहरोगोंका नाश होता है ॥ ४३ ॥

अथ खादिरादि चूर्ण ॥

खदिरं शर्करा दारु हरिद्रा मुस्तमेव च ॥
चूर्णितं तु पिबेत् सर्वप्रमेहगदशान्तये ॥ ४४ ॥

और खैर, खांड, देवदार, हलदी, नागरमोथा, इन्होंके चूर्णको पीनेंसे सब प्रमेहरोग शांत होते है ॥ ४४ ॥

अथ कोष्ठादि चूर्ण ॥

कोष्ठं हरिद्राद्वयदेवदारु पाठा गुडूची त्रिफला च मुस्तम् ॥ एषां हि चूर्णं मधुना विमिश्रं मूत्रप्रमेहं हरते व्यथाश्च ॥ ४५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने प्रमेहचिकित्सा नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

और कूठ, दोनों हलदी, देवदार, पाठा, गिलोय, त्रिफला, नागरमोथा, इन्होंके चूर्णको शहदके संग पीनेंसे सब मूत्र प्रमेहरोग और पीडा इन्होंका नाश होता है ॥ ४५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने प्रमेह चिकित्सानाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ एलाशिलाजतुयुतं मागधिकापाषाणभेदसंचूर्णम् ॥ तण्डुलजलेन पीतं प्रमेहरोगं हरत्येव ॥ १ ॥ एरण्डमूलपाषाणभेदगोक्षुरकास्तथा ॥ एलाटरूषपिप्पल्यो यष्टीमधुसमन्विताः ॥२॥ एषां क्वाथं पिबेज्जन्तुः शिलादित्येन योजितम्॥अश्मरीशर्करायाञ्चशर्करायाः पलद्वयम् ॥३॥ सुशीतलं जलं कर्षमात्रं स्यान्मूत्रकृच्छ्रहृत् ॥ दध्यम्बुना च संमिश्रमयश्चूर्णं सुखप्रदम् ॥ ४ ॥ मूत्रकृच्छ्रेयवक्षारचूर्णं हिङ्गुप्रयोजितम् ॥ कुष्माण्डं च समादाय शर्करासहितं पिबेत् ॥ ५ ॥ यो हि त्रिदोषसम्भूतमूत्रकृच्छ्रनिवारणः ॥ पिबेच्छतावरीमूलं शीतपानीयचूर्णितम् ॥ ६ ॥ अतः शर्करारोगार्त्तै शर्करां संप्रयोजयेत् ॥ आरग्वधफलं मूलं दुरालभा धान्यकशतावर्य्यः ॥ ७ ॥ पाषाणभेदपथ्ये क्वाथोऽयं मूत्रकृच्छ्रे स्यात् ॥ ८ ॥ पाषाणभेदस्त्रिवृता च पथ्या दुरालभा गोक्षुरपुष्करं वा॥ एला सकुरुण्टककर्कटीजं बीजं कषायः सुनिरुद्धमूत्रे ॥ ९ ॥ कुलत्थयुक्तः पटोलीमूलकषायः प्रतिपाकः ॥ पुष्करमूलमिश्रः प्रमेहपाषाणरोगघ्नः स्यात् ॥१०॥ यो मातुलुङ्गिकामूलं पिबेत् पर्य्युषिताम्बुना ॥ त

स्यान्तः शर्करोद्भूतं दुःखं सद्यो विलीयते ॥ ११ ॥ गवां तक्रेण संपिष्टं क्षिप्रनामकमौषधम् ॥ पिबेच्चिरेण तक्रञ्च शर्करादोषदूषितः ॥ १२ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–इलायची, शिलाजीत, पीपल, पाषाणभेद, इन्होंके चूर्णको चौलाईके जलके संग पीनेंसे प्रमेह रोगका नाश होता है॥१॥और अरंडकी जड,पाषाणभेद, गोखरू, इलायची, वांसा, पीपली, मुलहटी, इन्होंका क्वाथ बना तिसमें शिलाजीत मिला पीनेंसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ २ ॥ और पथरीरोग, शर्करारोग, इन्हेंमें ८ तोलाप्रमाण खांड मिला पीना चाहिये ॥ ३ ॥ और एक तोलाप्रमाण ठंढा जल पीनेंसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥४॥ और मूत्रकृच्छ्ररोगमें जवाखारका चूर्ण, हींग, कोहला, खांड, इन्होंको जलके संग पीवे ॥ ५ ॥ और शीतल जलके संग शतावरीके जडको पीनेंसे त्रिदोषसे उपजा मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥६॥ और शर्करारोगमें खांडको पीवे और अमलतास, मूली, जवांसा, धनियां, शतावरी, ॥ ७ ॥ पाषाणभेद, हरडै इन्होंका क्वाथ पीनेंसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ और पाषाणभेद, निशोत, हरडै, जवासा, गोखरू, पौहकर मूल, इलायची, कोरंटा, काकडीका बीज, इन्होंका क्वाथ मूत्रबंधमें पीना श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ और कुलथी परवल, मूली, पौहकर मूल इन्होंका क्वाथ बना पीनेंसे प्रमेह, पथरीरोग, इन्होंका नाश होता है ॥ १० ॥ और जो पुरुष विजौराकी जडको वासी जलके संग पीता है वह शर्करारोगसे छुटजाता है ॥ ११ ॥ और गौकी तक्रके संग कायफलको पीस पीनेंसे शर्करारोग दूर होता है ॥ १२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थानेमूत्रकृच्छ्रचिकित्सानाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथ मूत्ररोध चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ पिबेत्कर्कटिकाबीजं त्रिफलासैन्धवान्वितम् ॥ उष्णाम्बुचूर्णितं पीतं मूत्ररोधं शमं नयेत् ॥ १ ॥ यस्तिलकाण्डक्षारं दधिमधुसंमिश्रितं पिबेत् ॥ स नरश्च मूत्ररोधं हत्वा सद्यः सुखमाप्नोति ॥ २ ॥ अजाक्षीरेण संमिश्रं जातीमूलं प्रपेषितम् ॥ पिबेत्सदाहमूत्रोष्णवेद

नाशमनं यतः ॥ ३ ॥ तैलेन पद्मिनीकन्दं पक्वगोमूत्रमिश्रितम् ॥ पिबेन्मूत्रनिरोधे तु सतीव्रवेदनान्विते ॥ ४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—काकडीके बीज, त्रिफला, सेंधानमक, इन्होंको पीस गरम जलके संग पीनेंसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १ ॥ और तिलोंकी नालियोंका क्षार, दही, शहद, इन्होंको मिला पीनेंसे मूत्ररोध रोग दूर होता है तात्काल सुख होता है ॥ २ ॥ और जायफलको बकरीके दूधमें पीस पीनेंसे दाह, गरम मूत्रकी पीडा, इन्होंकी शांति होती है ॥ ३ ॥ और कमलकंदको तेलमें पीस गोमूत्रमें मिला पीनेंसे तीव्र पीडासे युक्त मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है॥४॥

अथ मूत्रकृच्छ्रका कारण॥

पित्तप्रकोपनैर्द्रव्यैः कट्वम्ललवणैस्तथा ॥ गौरास्त्रीसेवनेनापि रक्तं वापि प्रवर्त्तते ॥ ५ ॥ मद्यपानेन चोष्णेन श्रमव्यायामपीडितैः ॥ पित्तं प्रकोपयेच्छीघ्रं करोति मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ ६ ॥ तेन मूत्रयते कृच्छ्रं चोष्णधारा प्रवर्त्तते ॥ मूत्रस्रोतश्च हरति रक्तं चापि प्रवर्त्तते ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं येन संपद्यते सुखम् ॥ ७ ॥

और पित्तको कोप करनेंवाले द्रव्य चर्चरा, खट्टा, नमक इन्होंके खानेंसे और गौरस्त्रीके सेवनेंसे इंद्रियमें रक्त प्रवृत्त होजाता है ॥ ५ ॥ और गरम मदिरा पीनेंसे, श्रम, कसरत इन्होंकी पीडा होनेंसे शीघ्रही पित्त कुपित होजाता है वह मूत्रकृच्छ्र रोगको करदेता है ॥ ६ ॥ तिस्से कष्टसे मूत्र उतरे गरम २ धार आवे और मूत्रका वेग बंद होजावे, तथा रक्त गिरनें लगे ॥ ७ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रपर उपाय॥

यष्टीमधुकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ रक्ततण्डुलतोयेन मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् ॥ ८ ॥ वटप्ररोहमालासु द्राक्षाशर्करयान्वितः ॥ लेहोऽयं मूत्रकृच्छ्रस्य नाशनो भिषजां वर ॥ ९ ॥ देहोपशमनः प्रोक्तः शीतगाहनकोपतः ॥ मूत्रकृच्छ्रे तु तत् प्रोक्तं भोजनं मधुरं हितम् ॥ १० ॥ उत्तानस्य रतौ भङ्गाद्दाहव्यायामजातके ॥ मूत्ररोधे वचा वर्त्या दद्यात्तत्रानिरोधकान् ॥ ११ ॥ अव्यायामे शुभं भोज्ये शीतावगाहिता नरे ॥ एतैस्तु कुपितो वायुर्मूत्रद्वारं प्ररुन्धति ॥ १२ ॥ श्लेष्मसहितः पापिष्ठ उक्तः कष्टतमो गदः ॥ शृणु तस्य प्रतीकारं कषायं वानुबासनम् ॥ १३ ॥

बस्तिनिरूहक्काथं च मूत्ररोधे हितो विधिः ॥ सर्वसंस्वेदनं चैव स्थानं व क्रमणाविव ॥ १४ ॥ तुरङ्गशकटारोहधावनं च हितं मतम् ॥ फलत्रिकं समगुडं क्काथः क्षीररसेन तु ॥१५॥ पानं मूत्रनिरोधेषु पित्ताद्वा लवणाम्लिकम्॥पाटला टुण्टुका चैव निम्बगोक्षुरकं तथा ॥१६॥ एलात्वक् च तथा पत्रं क्काथस्त्रिफलयान्वितः ॥ गुडेन संयुतं पीतं हन्ति मूत्रनिरोधकम् ॥ १७ ॥दाडिमाम्लयुतं चैव हितं मूत्ररुजां नृणाम् ॥ त्रिफलेक्षुसिताक्काथगुडेन सह सैन्धवम् ॥ १८ ॥ मूत्ररोधं वारयति पथ्या वा गुडसंयुता ॥ अथवा तोदनन्नारीमैथुनं च विधेयकम् ॥ १९ ॥ तेन सौख्यं भवेच्छीघ्रं स्त्रीणाञ्च योनिमर्दनम् ॥ २० ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सा नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अब तिसकी औषधोंको कहते है जिस्से सुख होवे है, मुलहटी, महुआवृक्ष, मुनक्कादाख, चंदन, लाल चंदन, ॥ ८ ॥ इन्होंको लाल चावलोंके धोवनके जलमें पीस पीनेंसे मूत्रकृछ्रकी पीडा दूर होती है । और वडके पत्तोंके अंकुर, दाख, खांड, ये मिला लेहबना खानेंसे मूत्रकृछ्ररोगका नाश होता है ॥ ९॥ और यह लेह देहको शांत करनेंवाला है और शीतल जलमें गोता मारनेंसे उपजे हुए मूत्रकृछ्ररोगमें मधुर भोजन हित कहां है ॥ १० ॥ और मोधा सोवनेंसे मैथुनका भंग होनेंसे दाह और कसरतका परिश्रमसे उपजाहुआ मूत्ररोधमें वच, शतावरी, इन्होंको देवै ॥ ११ ॥ और कसरत नहीं करना सुंदर तथा ज्यादै भोजन करना शीतल जलमें गोता मारना, इन्होंसे कुपितहुआ वायु मूत्रद्वारको रोकलेता है ॥ १२ ॥ और अत्यंत कष्टवाला पापवाला यह रोग कफ सहित होता है अब इसरोगका इलाज कहते हैं अनुवासन बस्तिमें क्काथ वरतना चाहिये ॥ १३ ॥ और मूत्ररोधमें निरूह बस्तिद्वारा क्काथ देना चाहिये और सब शरीरमें पसीना दिवाना हित है जैसे टेढी मणिमें स्थान दीखता है ऐसेही मूत्ररोध जानना ॥ १४ ॥ और घोडा, गाडी, इन्होंकी असवारीपे चढके भाजना हित कहा है और त्रिफला, गुड इन्होंको समान भागले गुडमें क्काथ बनादेना हित है॥१५॥ और पित्तसे उपजे मूत्ररोधमें नमक कांजी इन्होंका पीना हित कहा है और पाडलवृक्ष, टेंटूवृक्ष, नींब, गोखरू, ॥ १६ ॥ इलायची, दालचीनी, तेजपात, त्रिफला इन्होंका क्काथ बना गुडके संग मिला पीनेंसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १७ ॥ और अनारदानाकी कांजी पीना मूत्ररोगवाले पुरुषोंको हित है और त्रिफला, ईख, मिसरी इन्होंका क्काथ बना गुड, सेंधानमक इन्होंके संग पीनेंसे ॥ १८ ॥ अथवा हरडै गुड इन्होंके खानेसे मूत्ररोधका निवारण होता है अथवा स्त्रीके संग मूत्र आनेकेसमय विषय करै ॥ १९ ॥ और स्त्रीकै

मूत्र बंधहोवे तो उसकी योनि मर्दन करै तो शीघ्रही सुख उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ अश्मरी अर्थात् पथरी रोगकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ पितृमातृकदोषेण अथवा मूत्ररोधनात् ॥ अपथ्यसेवनाचारैर्जायते चाश्मरीगदः ॥ १ ॥ मूत्राविष्टौ च पितरौ सुरतं कुरुतो यदि ॥ मूत्रेण सहितं युक्तं च्यवते गर्भसम्भवम् ॥ २ ॥ पश्च यस्य सदेहस्य स च तत्र प्रजायते ॥ मूत्रं मूत्रस्य संस्थाने करोति बन्धनं त्रिषु ॥ ३ ॥ सोऽप्यसाध्यो मूत्रगदश्चाल्पाद्भवति मानुषे ॥ तारुण्ये चापि साध्यश्च जायते मूत्रशर्करा ॥ ४ ॥ बिपरीतेन चोत्ताने स्त्रिया च पुरुषेण वा ॥ शुक्रञ्च प्रबलेत्तस्य स्त्री शुक्रं विञ्चिनोतिच ॥ ५॥ पुनश्च मेहने वासः वातेन शोणितं च तत् ॥ द्वयं दत्तं प्रपद्येत मूत्रद्वारं प्ररुध्यति ॥ ६ ॥ तेन मूत्रप्ररोधश्च जायते तीव्रवेदना ॥ अण्डसन्धिस्थिता याति शर्करा शस्त्रसाध्यका ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—मातापिताके दोषसे अथवा मूत्रके रोकनेंसे पथ्य वस्तुओंके सेवन नहीं करनेंसे पथरीरोग होजाता है ॥ १ ॥ मूत्रके वेगसे युक्त हुए माता पिता जब मैथुन करते है तब गर्भको उत्पन्न करनेंवाला वीर्य मूत्र सहित झिरता है ॥ २ ॥ फिर उसगर्भके शरीरमें वह मूत्र उसीस्थानमें प्राप्त होजाता है वह मूत्र मूत्रके स्थानमें बंधा कर देता है ॥३॥ वह पथरीरोग असाध्य होता है बालकही अवस्थामें यह पथरी रोग होता है यह तीन प्रकारसे होता है ॥ ४ ॥ और जवान अवस्थामें मूत्रशर्करा रोग होता है वह साध्य होता है स्त्री और पुरुषके विपरीत तथा मोधेहोके मैथुन करनेंसे जो वीर्य झिरता है और स्त्रीका वीर्य इकट्ठा होता है ॥ ५ ॥ वह वीर्य तो मूत्रके संग वासमें युक्त होता है और स्त्रीका रुधिर वातके संग युक्त होजाता है फिर इनदोनुओंको गर्भमें संयुक्त होनेंसे मूत्रद्वार रुकजाता है ॥ ६ ॥ वह जो बालक उत्पन्न होवे उसकै मूत्ररोध रोग होवे तीव्र पीडाहो यह अंड संधिमें शर्करा संज्ञक रोग होजाता है ॥ ७ ॥

अथ अश्मरी रोगपर चिकित्सा ॥

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र ! महामते ! ॥ शुण्ठी गोक्षुरकं चैव वरुणस्य त्वचस्तथा ॥ ८ ॥ क्काथो गुडयवक्षारयुक्तश्चाश्मरिनाशनः ॥ कुशकाशनलं वेणु अग्निमन्थाक्षनृत्तकम् ॥ ९ ॥ श्वदंष्ट्रा मोरटा वापि तथा पाषाणभेदकम् ॥ पलाशस्त्रिफलाक्काथो गुडेन परिमिश्रितः॥ १०॥ पाने मूत्राश्मरीं हन्ति शूलबस्तौ व्यपोहति ॥ ११ ॥

हे पुत्र हे महामते! अब इन्होंकी औषध कहते है सुन. सूंठ, गोखरू, वरणाकी छाल॥८॥ गुड, जवाखार इन्होंका क्काथ बना पीनेंसे पथरीका नाश होता है ॥ ९ ॥ और कुशा, कांस, नड, बांस, अरणी, बहेडा, बेत, गोखरू, मोरबेल, पाषाणभेद, ॥१०॥ केशू, त्रिफला, इन्हों-का क्काथ बना गुडमें मिला खानेंसे पथरीका नाश होता है और बस्तिशूल दूर होती है॥११॥

अथ एलादि क्काथ ॥

एलाकणाटषत्रिकण्टकरेणुकाचपाषाणभेदमधुकं च फलत्रिकञ्च ॥ एरण्डतैलकशिलाजतुशर्कराद्यं क्काथोऽश्मरीञ्च हनते तथासोष्णपानम्॥१२॥

और इलायची, पीपल, वांसा, दोनों कटेहली, गोखरू, रेणुका, पाषाणभेद, त्रिफला, अरंडीका तेल,शिलाजीत,खांड, इन्होंका क्काथ बना गरम२पीनेंसे पथरीरोग दूर होता है॥१२॥

अथ गोक्षुरकादि चूर्ण ॥

गोक्षुरकस्य बीजानां धातुमाक्षीकसंयुतम् ॥ चूर्णं महिषीदुग्धेन पानं चाश्मरीपातनम् ॥ १३ ॥

और गोखरूके बीज, सोनामांखी इन्होंके चूर्णको भैंसके दूधके संग पीनेंसे पथरी गि-रती है ॥ १३ ॥

अथ अन्य उपाय ॥

शस्त्रविधिरुत्तरीये सूत्रस्थाने प्रोक्तं घृताध्याये च स्मृतम् ॥ १४ ॥ पुराणषष्टिका शालिरक्ततण्डुलकास्तथा ॥ श्यामाकः कोद्रवो दालो मर्कटी तृणधान्यकम् ॥ १५ ॥ यवगोधूमकुलत्थास्तथाचैवाढकी भिषक्॥ वातहराः प्रयोक्तव्या भोजने वातरोगिणाम् ॥ १६ ॥ क्रौञ्चाद्यानि च मांसानि पथ्यान्यश्मरीनाशने ॥ १७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सा नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

और उत्तर सूत्रस्थानमें शस्त्रविधि कहदी है तैलाध्यायमें तेल कहदिया है और घृताध्यायमें घृत कहदिया है॥१४॥और पुरानें सांठी चावल शालि संज्ञक चावल, लाल चावल,शामक, कोदूधान्य, दाल, कौंच, तृणधान्य अर्थात् मालकांगनी आदि अन्न,॥ १५ ॥ जव, गेहूं, कुलथी, आढकी धान्य, इनभोजनोंको देवै और वातरोगवाले पुरुषोंको वात नाशक भोजनोंको देवै ॥ १६ ॥ और पथरी रोगके नाशकेवास्ते कूंजि आदि पक्षियोंका मांस देना चाहिये ॥ १७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सानामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

अथ वृषण चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच॥अत ऊर्ध्वमण्डवृद्धिर्दृश्यते भिषजां वर !॥ बाल्ये मातुः पितुर्दोषाज्जायते वृषणानुगा ॥ १ ॥ दुष्टदाराविहाराच्च वातो बस्तिगतो भृशम् ॥ अण्डस्थानं च संप्राप्य तस्य वृद्धिं करोति वै ॥ २ ॥ एकैकसन्निपातश्च चतुर्थः सान्निपातिकः ॥ पित्तदोषात्सन्निपातात्तथाऽसाध्या इमेस्मृताः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे उत्तमवैद्य! हारीत! इससे उपरांत अंडवृद्धि रोग होता है सो बालकके मातापिताके दोषसे वृषणोंका रोग होता है ॥ १ ॥ दूषित स्त्रीके संग मैथुन करनेंसे बस्तिस्थानमें प्राप्तहुआ बहुतसा वायु अंडस्थानमें प्राप्तहोके अंडवृद्धि करदेता है ॥ २ ॥ एकएक दोषसे तीनप्रकारका और चौथा सन्निपातसे होता है और पित्तके दोषसे उपजेहुए और सन्निपातसे उपजेहुए अंडवृद्धिरोग असाध्य कहे हैं ॥ ३ ॥

दोषान् वक्ष्याम्यौषधानि शृणु तानि भिषग्वर !॥ स्वेदनान्यभ्यञ्जनानि क्वाथ्य पानं विधीयते ॥ ४ ॥ शिरःस्रावो भिषक्श्रेष्ठ ! तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ कम्पश्च मृदुवातेन पित्तेन दाहकज्वरः ॥ ५ ॥ कफाद्घनश्च शोषश्च कठिनोवृषणो भवेत् ॥ रसालशल्लकीक्वाथः तर्कारी कटुतुम्बिका ॥६॥ क्वाथसंसेवनार्था च मुष्कवृद्धिः सवातिके॥ शीततोयावगाहो वा शीतसंसेवनं तथा ॥ ७ ॥

हे उत्तमवैद्य ! अब दोषोंको और औषधोंको कहते है सुन पसीना दिवाना मालिस करनी और क्काथ पान नसोंका स्राव ये विधि करनी चाहिये ॥ ४ ॥ अब इन्होंके लक्षणोंको कहैंगे वातदोषसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें कंपनाहो कोमलहो और पित्तसे दाहहो ज्वरहो ॥ ५ ॥ कफसे करडाहो शोषहो कठिन अंडहो वातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें आंब, शल्लकी वृक्ष, अरणी, कडुई तुंबी, इन्होंका क्काथ बना सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ और पित्तसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें शीतल जलमें गोता मारना, शीतल वस्तुसे बना और चंदन, कपूर, चीता, इन्होंका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

वृषणवृद्धिपर चिकित्सा॥

शीतशीताग्निलेपश्च पित्तमुष्के प्रशस्यते ॥ वचालवणतोयेन कदम्बार्जुनसर्षपैः ॥ कषायसेवनैः प्रोक्तं कफमुष्केऽहितापहम् ॥ ८ ॥ अरुणवरुणकोलं च शालिपर्णी शतावरी ॥ क्काथः पित्तसन्निपातमुष्कवृद्धौ विदां वर ! ॥ ९ ॥ वरुणवृक्षादनी चैव दशमूली शतावरी ॥ क्काथपानं वातिके च मुष्कवृद्धौ हितावहम् ॥ १० ॥ एतेन भवते सौख्यं तदा कर्मविकारयेत् ॥ कर्णकोषस्य मध्ये तु रक्तान्निर्हारयेच्छिराम् ॥ ११ ॥ बामकोष्ठस्य वृद्ध्या तु दक्षिणां हारयेच्छिराम् ॥ उभाभ्यां द्वे शिरे वेध्ये तेन वा तत्सुखं भवेत् ॥ १२ ॥ इति चाण्डक्रिया प्रोक्ता सा चैवोन्नीतरोगिणे ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सा नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

कफसे उपजे अंडवृद्धिमें वच, नमक, कदंबवृक्ष, सिरसम, इन्होंका क्काथ बना सेवन करना हित है ॥ ८ ॥ और लाल ऊंगा, वायवरणा, कंकोल, शालपर्णी, शतावरी, इन्होंका क्काथ पित्त और सन्निपातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें हित है ॥ ९ ॥ और अमलवेल, वायवरणा, दशमूल, शतावरी, इन्होंका क्काथ वातके अंडवृद्धिरोगमें प्याना हित है ॥ १० ॥ इसकरके सुख होजाता है पीछे अन्यकर्म करै कानके मध्यमें रहनेंवाली रक्तको धारण करनेंवाली नाडीको विंधावे ॥ ११ ॥ और वायींतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दाहिनें कानकी नस विंधावे और दोनोंतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दोनों कानोंकी नसोंको विंधावे ऐसे करनेंसे सुख उत्पन्न होता है॥ १२॥ यह दारुण क्रिया कही है जिसके ज्यादै अंडवृद्धिहो रहीहो तिसरोगीकै करनी चाहिये ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सानाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

अथ विसर्प रोगकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ लवणाम्लक्षारकटुकैरुष्णस्वेदातिदोषतः ॥ रक्तपित्तं प्रकुप्येत स विसर्पी भिषग्वर!॥ १ ॥ स सप्तधा परिज्ञेयः पृथग्दोषैश्च द्वन्द्वजैः ॥ केवलो रक्तजस्त्वन्यः सन्निपातेन सप्तमः ॥ २ ॥ तथापरे प्रवक्ष्यन्ते नामानि च पृथक्पृथक् ॥ आग्नेयो ग्रन्थिको घोरः कर्दमश्च तथापरः ॥ ३ ॥ आग्नेयो वातपित्तेन ग्रन्थिकः पित्तश्लेष्मणा ॥ कर्दमो वातश्लेष्मोत्थो घोरः स्यात्सान्निपातिकः ॥ ४ ॥ रक्तंलसीका त्वग्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥ विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः ॥ ५ ॥ न्यग्रोधबिल्वखदिरकषायो धावने हितः ॥ काञ्जिकाम्लैः पिच्छिलया सौवीरकरसेन वा॥६॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं वातसर्पिषु॥ क्षीरेण शीततोयेन धावनं पित्तसर्पिणि ॥ ७॥ श्लेष्मविसर्पिणे वाथ धवार्जुनकदम्बकम् ॥ धावनं सर्पिणे शस्तं सुरासौवीरकेण वा ॥ ८ ॥ धावनञ्च हितं तस्य सन्निपाते विसर्पिणे ॥ यवाग्निमन्थैश्च सठीन्यग्रोधैश्च ससर्षपैः ॥ ९ ॥ क्वाथः स्यात्सन्निपातोत्थविसर्पधावने हितः ॥ पञ्चजीरकपित्थांश्च काञ्जिकेन तु पेषयेत् ॥ मातुलुङ्गरसेनापि लेपनं वातसर्पिणे ॥ १० ॥ धवा रोध्रतिलाश्चैलविदारी कण्टकं तथा ॥ लेपः पित्तविसर्पे वा गुञ्जापत्रैस्तु लेपनम् ॥ ११ ॥ सैन्धवारिष्टतुम्बीकापटोलपत्रैकैर्घृतम् ॥ पाचितं लेपने शस्तं विसर्पाणां निवारणम् ॥ १२ ॥ रक्तजेषु विसर्पेषु कुर्याद्रक्तावसेचनम् ॥ पश्चाद्धवकदम्बानां सर्वदा गृहधूमकम् ॥ १३ ॥ लेपने हितकृत्प्रोक्तं धावनं काञ्जिकेन तु ॥ कुठेरकाश्च सुरसा चक्रमर्दौ निशायुगम् ॥ १४ ॥ सर्षपाः काञ्जिकेनापि पिष्ट्वा च लेपनं हितम् ॥ १५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सा नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

आत्रेयजी कहतेहैं—नमक, खट्टा, खारा, चर्चरा, गरम, ऐसा पदार्थ सेवनेंसे और पसीनेंके दोषसे रक्त पित्त कुपित होजाता है वह विसर्परोग कहाता है ॥ १ ॥ वह जुदे २ दोषों करके और द्वंद्वज दोषों करके सात प्रकारका होता है और केवल रक्तसे उपजाहुआ सन्निपातसे युक्त सातवा होता है ॥ २ ॥ और अन्य कईकजन जुदे २ नामोंवाले इनरोगोंको कहते है आक्षेपनामवाला घोरनामवाला और कर्दमनामवाला ऐसे तीन प्रकारसे होता है ॥ ३ ॥ आक्षेप विसर्परोग वातपित्तसे होता है और ग्रंथिक पित्तकफसे होता है कर्दमनामवाला विसर्प वातकफसे होता है और घोरनामक सन्निपातसे होता है ॥ ॥ ४ ॥ और रक्तकांति, त्वचा, मांस, इन्होंसे दूषित हुए तीनों दोष और सात धातु ये विसर्प रोगोंकी उत्पत्तिमें हेतु कहे है ॥ ५ ॥ और बडबेलगिरी, खैर, इन्होंके क्काथसे शरीरका धोवना हित है और कांजीकी खटाईके झागोंसे अथवा सौवीर संज्ञक कांजीके रससे ॥ ६ ॥ अथवा विजौराके रससे धोवना वातसे उपजे विसर्परोगमें हित है और पित्तके विसर्पमें दूध और शीतल जलकरके धोवना हित है ॥ ७ ॥ और कफके विसर्परोगमें धव, अर्जुनवृक्ष, इन्होंके क्काथसे अथवा मदिरा सौवीर संज्ञक कांजी इन्हों करके धोवना हित है ॥ ८॥ और सन्निपातके विसर्पमेंभी मदिरा सौवीर संज्ञक कांजी इन्होंसे धोवना हित है और अजमान, अरणी, कचूर, बड, सिरसम, ॥ ९ ॥ इन्होंके क्काथसे सन्निपातसे उपजे विसर्पको धोवना हित है और पांच प्रकारके जीरे, कैथ, इन्होंको कांजीमें पोस विजौराके रसके संग वातके विसर्पमें लेप करना हित है ॥ १० ॥ और धव, लोध, तिल, एलवा, विदारीकंद, गोखरू, इन्होंको पीस लेप करना अथवा चिरमठीके पत्तोंका लेप करना हित है ॥ ११ ॥ और सेंधानमक, नींब, तुंबी, परवलके पत्ते इन्होंको घृतमें पका लेप करनेंसे सब प्रकारके विसर्पोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ रक्तसे उपजे हुए विसर्परोगोंमें फस्तखुलानी चाहिये पीछे धव, कदंब, घरका धूंवा, ॥ १३ ॥ इन्होंका लेप करना हित है और कांजीसे धोवना हित है और आजबला, तुलसी, पुआड, दोनों प्रकारकी हलदी, ॥ १४ ॥ सिरसम, इन्होंको कांजीमें पीस लेप करना हित है ॥ १५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथोपसर्गचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ चतुर्विधो भवेद्दोषो वातरक्तसमुद्भवः ॥ गन्धदोषेण जायन्ते नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ क्षुद्रतश्चान्तको घोरः अथवान्या

मसूरिका ॥ वसन्तः सर्षपाकारा पिटका यस्य दृश्यते ॥ २ ॥ सोऽपि क्षुद्रतरः प्रोक्तः पित्तरक्तप्रदोषतः ॥ अग्निदग्धवत्स दाह्यः पिटिका यस्य दृश्यते ॥ ३ ॥ सोऽप्यतीव विसर्पी स्यादसुखी च निरन्तरम् ॥ ४ ॥ सघनाः पीडका यस्य पाकयति समः कफः ॥ दाहोऽरतिर्विवर्णत्वं तस्य सद्यः प्रजायते ॥ ५ ॥ वर्त्तुलमसूरिकावत् पिटका यस्य दृश्यते ॥ शाम्यति शीघ्रपाकेन सा विज्ञेया मसूरिका ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं यथाविधि महामते! ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—वात रक्तसे उपजाहुआ चारप्रकारका दोष होता है सो गंधके दोषसे उत्पन्न होते हैं तिन्होंके जुदे २ नामोंको कहते है ॥ १ ॥ क्षुद्रक, अंतक, घोर, मसूरिका, ये है और जिसकै गौर सिरसमके आकार फुनसी दीखैं ॥ २ ॥ वह क्षुद्ररोग पित्तरक्तके दोषसे होता है और जिसमें अग्निके दग्ध होनेंके समान दाहहो ॥ ३ ॥ और निरंतर सुखी नहींहो वह अति घोर विसर्परोग होता है ॥ ४ ॥ और करडी तथा पकीहुई के समान पिडिकाहो दाहहो ग्लानिहो विवर्णहो वह तात्काल अंतक रोग होता है ॥ ५ ॥ जिसकै मसूरिकाके समान गोल पिडिकाहो जल्दीही पकके शांत होजावें वह मसूरिका कहाती है हे महामते! तिसकी यथार्थ विधिको कहते है ॥ ६ ॥

अथ मसूरिकामें चिकित्सा ॥

गुप्ताकारं सुरक्षेच्च रक्षायोगविधानतः ॥ न स्त्रीणां नाधमानाञ्च संसर्गं वा प्रसङ्गकम् ॥ ७ ॥ सुशीतं शीतलं स्थानं कारयेत्सुप्रयत्नतः ॥ क्षुद्रकस्योपसर्गस्य लेपनं चात्र कारयेत् ॥ ८ ॥ कुष्ठं सोशीरन्यग्रोधस्तथोदुम्बरिकत्वचः ॥ प्रलेपनं प्रशस्तं स्यात्क्षुद्रोपसर्गवारणम् ॥ ९ ॥ क्षीरञ्च मधु शर्करायुक्तं पानं सुखावहम् ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवानाञ्च पिष्टं दधिमधुयुतम् ॥ १० ॥ पाययेत् क्षुद्रकस्यास्य अतिसाराग्निनाशनम् ॥ गोक्षुरश्चातिविषा च कर्कटाद्यं सपर्पटम् ॥ ११ ॥ कल्कमेतत्प्रयोक्तव्यं मधुशर्करासंयुतम् ॥ हरीतकीमातुलुङ्गस्वरसं शर्करायुतम् ॥ १२ ॥ क्षुद्रकस्योपसर्गस्य वमिशोषनिवारणम् ॥ अग्निकोऽप्युपसर्गे च योज्यं चैतत्प्रलेपनम् ॥ १३ ॥ रक्तचन्दनं मञ्जिष्ठा निम्बपत्राणि चार्जुनम् ॥ क्षीरेण नवनीतेन हितं स्याल्लेपनं तथा ॥ १४ ॥

गुप्त आकारसे रक्षायोगके विधानसे तिसरोगीको रक्खै और स्त्री तथा नींच जन इन्होंका मेल नहीं होनेंदेवे ॥ ७ ॥ और अत्यंत यत्नसे शीतल स्थान रक्खै और क्षुद्रक उपसर्गमें लेप करना चाहिये ॥ ८ ॥ कूठ, खश, वड, गुलरकी छाल, इन्होंका लेप करनेंसे क्षुद्र उपसर्गरोगका निवारण होता है ॥ ९ ॥ और शहद, खांड इन्होंसे युक्त दूधका पीना सुखदायक है और जामन, आंब इन्होंके पत्तोंको पीस दही और शहद मिला ॥ १० ॥ पीनेंसे क्षुद्रकरोग अतिसारकी अग्नि इन्होंका नाश होता है और गोखरू, अतिश, काकडासींगी पित्तपापडा॥११॥ इन्होंका कल्क बना शहद और खांड मिला ॥१२॥ खानेंसे क्षुद्रक रोगवाले पुरुषका वमन, शोष, इन्होंका निवारण होता है और अग्निसरीखे दाहवाले उपसर्गरोगमें ॥ १३ ॥ लाल चंदन, मंजीठ, नींबके पत्ते, अर्जुनवृक्षकी छाल इन्होंको दूध, नौंनीघृत इन्होंमें पीस लेप करना हित है ॥ १४ ॥

घोरं चोपद्रवं दृष्ट्वा न स्वेदं न च मर्दनम् ॥ प्रलेपनं न कुर्वन्ति यथायोगेन पण्डिताः ॥ १५ ॥ अरण्यगोमयक्षारतैलेन चालनं हितम् ॥ न तैलेनापि चाभ्यङ्गं लेपेनैव च कारयेत् ॥ १६ ॥ चन्दनं मधुकं रोध्रं न्यग्रोधोत्पलसारिवा ॥ मधुना संयुतः कल्कः पानेन चोपसर्गहृत् ॥ १७ ॥ उपसर्गे ज्वरस्तीव्रो रक्तमूत्रं प्रजायते ॥ तस्य वक्ष्याम्युपचारं येन संपद्यते सुखम् ॥ १८ ॥ पटोलं पर्पटं शुण्ठी मुस्ता च खदिरं समम् ॥ कल्को मधुयुतः पाने हितः स्याज्ज्वरनाशनः ॥ १९ ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा पुष्करं दन्तधावनम् ॥ क्काथपानं मधुयुतमुपसर्गज्वरापहम् ॥ २० ॥ वमने चातिसारे च दाडिमं कुटजस्तथा ॥ मधुदध्नान्वितं पानमतिसार निवारणम् ॥ २१ ॥ शेषाश्च क्षुद्रिकाः प्रोक्ताः क्रिया चात्र विधेयका॥ एषा क्रिया मसूरिके कर्त्तव्या सुविधानतः ॥ २२ ॥ वातलानि च सर्वाणि तथा रूक्षाणि कोविदः ॥ स्त्रीसङ्गं रूक्षशोकञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ॥ एवं त्रिसप्तरात्रेण सुखं सम्पद्यते नरः ॥ २४ ॥ ततोऽभिषेकः कर्त्तव्यः कृत्वा मङ्गलवाचनम् ॥ नूतनानि च सूक्ष्माणि वस्त्राणि च सितानि च ॥ २५॥ परिधाप्य होमकार्य्यमिष्टभोज्यं विधेयकम् ॥ २६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सा नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

और उपसर्गरोगमें घोर उपद्रवको देखिके तहां पसीना नहीं दिवावे मर्दन नहीं करै और लेपभी नहीं करै पंडित जनोंको ऐसे जानना ॥ १५ ॥ तहां बनके आरनोंका खार और तेल करके चालन कर्म करना हित है तेलसेभी मालिस और लेप नहीं करवावै ॥ १६ ॥ चंदन, महुआ, लोध, बड, कमल, अनंतमूल, इन्होंका कल्क बना शहदके संग पीनेंसे उपसर्गरोगका नाश होता है ॥ १७ ॥ और उपसर्गरोगमें जो तीव्रज्वरहो लालमूत्र उतरे तिसकी चिकित्सा कहते है जिस्से सुख उत्पन्न होवे ॥ १८ ॥ परवल, पित्तपापडा, सूंठ, नागरमोथा, खैर, इन्होंको समान भाग ले कल्क बना शहद मिला पीनेंसे ज्वरका नाश होता है और यह हित है ॥ १९ ॥ और चंदन, खश, मंजीठ, पौहकरमूल इन्होंके क्काथसे दांतोंका धोवना और इसमें शहद मिला पीनेसे उपसर्गरोगमें उपजे ज्वरका नाश होता है ॥ २० ॥ और वमन अतिसार इन्होंमें अनारदाना इन्होंका क्काथ पीवे और शहद दही इन्होंके पीनेंसें अतिसारका नाश होताहै॥२१॥और बाकीके रहे सब क्षुद्ररोगमें यही क्रिया करनी यह क्रिया उत्तम विधानसे मसूरिका रोगमें करनी चाहिये ॥ २२ ॥ और सब वातवाले पदार्थ तथा रूखे पदार्थ स्त्रीसंग, शोक इन्होंको वैद्यजन दूरसेही वर्ज देवै॥२३॥ और ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य है उन्होंको यहां करवावै इसप्रकार करनेंसे तीन रात्रिमें अथवा सात रात्रीमें सुख उत्पन्न होता है ॥२४॥पीछे स्वस्तिवाचन करवाके अभिषेक करवावै और नवीन तथा बारीक सफेद वस्त्रोंको ॥ २५ ॥ धारण कर होम करवा इच्छा पूर्वक भोजन करै ॥ २६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सानाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

व्रणचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रणानां तु चिकित्सितम् ॥ व्रणाश्चानेकधा प्रोक्ता नानाधातुविकारिणः ॥ १ ॥ दुष्टाम्बुपानाशनसेवना च क्रोधातिभाराद्यसनेन वापि ॥ संजायते दुष्टव्रणोऽपि घोरश्चान्येन रक्तस्य हि दूषणेन ॥ २ ॥ वातेन पित्तेन कफेन वापि द्वन्द्वेन वा दोषसमुच्चयेन ॥ मांसं प्रहृष्य रुधिरं विकीर्य्य संजायते दुष्टव्रणोऽपि घोरः ॥ ३ ॥ त्वयक्तानि समेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ॥ दोषाः शोफं शनै

घोरं जनयन्त्युद्धता भृशम् ॥ ४ ॥ सरक्तश्च सशूलश्च रुजावच्च सवेपथु॥
रूक्षं वा वातसम्भूतं विज्ञेयं सरुजं व्रणम् ॥ ५ ॥ सप्रदाहस्वरः स्पृष्टः स्प
र्शनं सहते तु यः॥ शीतः सौख्यं लघुपाकी पित्तात् संजायते व्रणः॥६॥
कठिनो वर्तुलाकारो घोरः पीतोल्पवेदनः॥ उष्णसहः स्निग्धतरश्चिरपाकी
कफव्रणः ॥७॥ सर्वैर्लिङ्गैर्विजानीयात्सन्निपातसमुद्भवम् ॥ द्वन्द्वजे द्वयदो
षस्तु दोषे चापि प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ अभिघातसमुद्भूता विज्ञेयास्ते चतुर्वि
धाः ॥ अन्ये नाडीव्रणा ये स्युः सवाताश्च सवेदनाः ॥ ९ ॥ अन्ये तु
स्रोतसां मध्ये तेषां शृणु चिकित्सितम् ॥ प्रथमं मण्डविस्रावो द्वितीयं
स्वेदनं स्मृतम् ॥ १० ॥ तृतीयं पाचनं प्रोक्तं पाचिते पाटनं तथा ॥
शोधनञ्च प्रयोक्तव्यं तथा रोहणमेव च ॥ ११ ॥ पश्चात्क्रमस्तथै
व स्याद्व्रणानां हितकारकः ॥ रास्ना वचा तथा शुण्ठी मातुलुङ्गरस
स्तथा ॥ १२ ॥ काञ्जिकेन सममेकधावनं वातिके व्रणे ॥ यष्टीमधुक
मञ्जिष्ठापटोलनिम्बपत्रकैः ॥ १३ ॥ दुग्धेन क्वथितं शीतं धावनं पैत्ति
के व्रणे ॥ १४ ॥ त्रिफला च कदम्बश्च तथा जम्बु कपित्थकम् ॥ क्वा
थः सोष्णकफोद्भूते व्रणे धावनमुत्तमम् ॥ १५ ॥ मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च
मूलं वा काञ्जिकेन च ॥ सुरदारु तथा शुण्ठी लेपो वातव्रणे हितः ॥
॥ १६ ॥ नलमूर्वा च मधुकं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ पिष्टं तण्डुलतोयेन
पित्तव्रणविनाशनम् ॥ १७ ॥ अङ्कोलकश्च रोध्रश्च कदम्बार्जुनवेतसाः ॥
पारिभद्रदलानां तु पिष्ट्वा व्रणविलेपनम् ॥ १८ ॥ पाकं गते व्रणे वापि
गम्भीरे सरुजेऽथवा ॥ सरन्ध्रे शोधनं कार्य्यं धावनं तु भिषग्वरैः ॥१९॥
करञ्जधवनिम्बानां कदम्बार्जुनवेतसैः ॥ पादावशेषे क्वाथेन गम्भीरव्रण
धावनम् ॥ २० ॥ मञ्जिष्ठा च तथा लाक्षारसश्चैव मनःशिला ॥ निशा
युगे समायुक्तं पिष्ट्वा वस्त्रपरिस्रुतम् ॥ २१ ॥ मधुयुक्तं शोधनञ्च व्रणा
नां हितकारकम् ॥ निम्बपत्राणि संक्षिप्य मधुना व्रणशोधनम् ॥ २२॥
निम्बपत्रतिलक्षौद्रं दार्वीमधुकसंयुतम् ॥ तथा तिलानां कल्कश्च शोध
नञ्च व्रणेषु च ॥२३॥ तिलका निम्बसीतस्य पत्राणि सुमनासु च ॥ क

षायश्च हितश्चैव व्रणानां शोधनेषु च ॥ २४ ॥ विशुद्धश्च व्रणं ज्ञात्वा भक्षयेच्च व्रणंच तत् ॥ नवनीतेन वा श्रेष्ठं तेन नदह्यते व्रणः ॥ २५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–अब व्रणोंकी चिकित्साको कहेंगे अनेक प्रकारकी धातुओंके विकारवाले अनेक प्रकारके व्रण कहे है ॥ १ ॥ दूषित जल और अन्नके सेवनेंसे क्रोधसे अत्यंत बोझाके उठानेंसे किसीबातके व्यसनसे मनुष्योंकै घोर दुष्ट व्रण होजाता है अथवा दूषित रक्तसे घोरव्रण होता है ॥ २ ॥ वातसे, पित्तसे, कफसे, अथवा दोषोंसे तथा सब दोषोंके मिलापसे मांसमें प्रहर्ष होके रुधिर बिखरके घोर दुष्टव्रण होजाता है ॥ ३ ॥ और त्वचा, रक्तमेद इन्होंको दूषितकर अस्थियोंकै आश्रयहोके ऊठेहुए दोष शनैशनै अत्यंत शोजाको उत्पन्न करदेते है ॥ ४ ॥ तहां रक्त सहित शूलसहित पीडा होती है और कंपना होती है तहांरूषाव्रणहो वह वातसे उपजा जानना ॥ ५ ॥ और जो तप्तदाहज्वर, इन्होंसे युक्तहो और स्पर्शको सहै शीलाहो सुखहो हलका पाकहो वह पित्तसे उपजा व्रण होता है ॥ ६ ॥ और कठिनहो, गोल आकारहो, घोर हो, शीतलहो, थोडी पीडाहो, गरम वस्तुको सहै अति चीकनाहो बहुतकालमें पकै वह कफसे उपजा व्रण जानना ॥ ७ ॥ और जो सब लक्षण मिलते हो तो वह सन्निपातसे उपजा व्रण जानना और दो दोषोंसे उपजा व्रणमें दो दोषोंके लक्षण मिलते है ॥ ८ ॥ और चोटआदिसे उपजेहुये चार प्रकारके व्रण होते है और अन्य जो नाडीव्रण होते है वे पीडासहित और वात सहित होते है ॥ ९ ॥ और अन्य व्रण स्रोतोंमें होते है तिन्होंकी चिकित्साको सुन पहले तो मंडलको झिरावे पीछे पसीना दिवावै ॥ १० ॥ फिर तिसेर पकावे पकजावे तब व्रणके फाडनेकी विधि कही है पीछे शोधन करै पीछे व्रणको भरै ॥ ११ ॥ पीछे व्रणोंको हित करनेंवाला क्रम करना चाहिये रास्ना, वच, सूंठ, विजौराका रस॥१२॥ कांजी इन्होंसे धोवना वातके व्रणमें हित है और मूलहटी, महुआवृक्ष, मंजीठ,परवल, नींबके पत्ते॥१३॥इन्होंको दूधमें मिला क्काथ बना शीलाकर पित्तका व्रण धोवना चाहिये ॥ १४ ॥ और त्रिफला, कदंब, जामन, कैथ इन्होंका क्काथ बना गरम२ से कफसे उपजा व्रण धोवना चाहिये ॥ १५ ॥ और विजौरा, अरणी, मूली, कांजी, देवदार, सूंठ, इन्होंका लेप करना वातव्रणमें हित है ॥ १६ ॥ और नड, मूर्वा, मुलहटी, चंदन, लाल चंदन, इन्होंको चावलोंके धोवनके जलमें पीस लेप करनेंसे पित्तका व्रणका नाश होता है ॥ १७ ॥ और अंकोल, लोध, कदंब, अर्जुनवृक्ष, वेत, नींबके पत्ते इन्होंको पीस व्रणपे लेप करै ॥ १८ ॥ और व्रण पकजावे अथवा गंभीर होजावे पीडासहितहो अथवा छेकहो रहाहो तहां वैद्यजनोंनें शोधन और धावन करना चाहिये ॥ १९ ॥ और करंजुआ, धव, नींब, कदंब, अर्जुन और बेत इन्होंका चतुर्थांश क्काथ रहे तब उससें गंभीर व्रणकूं शोधन करे ॥ २० ॥ और मंजीठ, लाखका रस, मनसिल, दोनों प्रकारकी हलदी, इन्हों-

को समान भागले बकराका मूत्रमें पीस शहद मिला लेप करनेंसे व्रणोंका शोधन होता है यह हित है और नींबके पत्तोंको पीस शहद मिला लेप करनेंसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ ॥ २२ ॥ और नींबके पत्ते, तिल, शहद, दारुहलदी, शहद, तिलोंका कल्क इन्होंके लेप, करनेंसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २३ ॥ और तिल, नींब, बहेडा इन्होंके पत्ते और पुष्पोंका क्काथ बना सेक करनेंसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २४॥ पीछे शुद्धहुए व्रणको जानके व्रणको नौंनी घृतसे धोलेवे नौनी घृत श्रेष्ठ है इस्से व्रण भरजाता है ॥ २५ ॥

अथ जात्यादि घृत ॥

जातीकरञ्जपिचुमन्दपटोलमत्र यष्टीमधुश्च रजनी कटुरोहिणी च ॥ मञ्जिष्ठकोत्पलमुशीरकरञ्जबीजं स्यात्सारिवा त्रिवृन्मागधिका समांशा ॥ ॥ २६ ॥ पक्वं घृतं वै हितमेव व्रणे प्रशस्तं नाडीगते च सरुजे च सशोणिते च ॥ लूताविसर्पमपि हन्ति गभीरयेच्च व्रणाः सदाहकठिना अपि रोहयन्ति ॥ २७ ॥ इति जात्यादिघृतम् ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सा नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

जावित्री, करंजुवा, नींब, परवल, मुलहटी, हलदी, कुटकी, मंजीठ, कमल, खश, करंजुवाके बीज, अनंतमूल, निशोत, पीपल, इन्होंको समान भाग ले ॥ २६ ॥ इन्होंको घृतमें पकालेवे यह घृत व्रणमें हित है और पीडा सहित तथा रक्तसहित नाडीव्रण, लूत, विसर्परोग, इन्होंका नाश होता है और दाहसहित तथा कठिन ऐसा व्रण भरजाता है ॥ २७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सानाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अथ श्लीपदरोगकी निदान तथा लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ व्रणोत्कैरुपचारैश्च जायते श्लीपदं तथा ॥ वातेन स्फुटितं रूक्षं श्यामञ्चापि प्रदृश्यते ॥ १ ॥ सदाहपाकं पित्तेन सज्वरञ्चैव दृश्यते ॥ श्लेष्मणा जायते स्निग्धं घनं शोफसमन्वितम् ॥ २ ॥ सन्निपातेन सर्वाणि जायन्ते भिषजांवर ! ॥ मेदाश्रितं तु वाल्मीकं वल्मीकवत्

प्रदृश्यते ॥ ३ ॥ सदृशानि च चिह्नानि वातिकोत्थानि लक्षयेत् ॥ तस्य व्रणोक्ताः क्रियाश्च कारयेद्विधिपूर्विकाः ॥ ४ ॥ जात्यादि च घृतं शस्तं तथैवालेपनानि च॥ पुनः प्रलेपनं कार्य्यं धवार्जुनकदम्बकैः ॥ ५ ॥ गिरिकर्णिकामूलञ्च तथा वृक्षादनीमपि ॥ पिष्ट्वा प्रलेपनं कार्य्यं वाल्मीकश्लीपदस्य च ॥ ६ ॥ सूरणकन्दकं पिष्ट्वा मधुना च घृतेन च॥ लेपनं च हितं तस्य वाल्मीकश्लीपदापहम्॥७॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने श्लीपदचिकित्सा नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

व्रणमें कहेहुए उपचारोंकरके श्लीपद संज्ञकरोग हो जाता है वातसे उपजा श्लीपद स्फुटित हो रूखाहो श्यामवर्णवालाहो ॥ १ ॥ और पित्तसे उपजे श्लीपद रोगमें दाहहो पाकहो और ज्वर होता है और कफसे उपजा श्लीपदरोग चिकनाहो करडाहो शोजासे युक्त होता है ॥२॥ और सन्निपातसे उपजे श्लीपद रोगमें सब लक्षण मिलते है और मेदके आश्रय हुआ यह रोग सर्पकी बंबईके समान लक्षणोंवाला होता है ॥ ३ ॥ और वातसे उपजे इसरोगमें समान लक्षण होते है तिसकी क्रिया व्रणमें कहीहुई करनी चाहिये ॥ ४ ॥ और पहले कहाहुआ जात्यादिघृत लेप करनेमें हित है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, ॥ ५ ॥ गिरिकर्णिकाकी मूल, अमरवेल, इन्होंको पीस लेप करनेसे वल्मीक संज्ञक श्लीपदरोगका नाश होता है ॥ ६ ॥ और जमीकंदको पीस शहद और घृतमें मिला लेप करनेसे वल्मीक संज्ञक श्लीपदरोगका नाश होता है ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने श्लीपदचिकित्सानाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अथ अर्बुदरोगकी चिकित्सा ॥

वाताभिघातपवनाद्व्रणाद्वापि तथा पुनः ॥ रक्तनाड्यः प्ररोहन्ति रुंधन्ति च तथा पुनः ॥ १ ॥ तेन रक्तस्य मार्गस्तु रुध्यते तेन जायते ॥ अर्बुदश्च महास्थूलं मार्गरोधाच्च जायते ॥२॥ वातान्मृदुच परुषं कफाच्च घनशीतलम् ॥ पित्तेन दाहपाकाद्यं विजानीयं विचक्षणैः ॥ ३ ॥ सन्निपातेन कठिनं घनं पाषाणसन्निभम् ॥ वृद्धिमच्च गडुकं स्यादसाध्यं तद्भिषग्वर !

॥ ४ ॥ तस्यादौ पाटनं कार्य्यं मर्मस्थानञ्च वर्जयेत् ॥ सैन्धवेन घृतेनापि कुर्य्यात्तस्यानुलेपनम् ॥ ५ ॥ सूरणं कन्दकं दग्ध्वा घृतेन च गुडेन च॥ लेपनं चार्बुदानाञ्च नाशनञ्च भिषग्वर ! ॥ ६ ॥ शेषा व्रणक्रिया प्रोक्ता शस्ता वार्बुदशान्तये ॥ वातघ्नानि च पथ्यानि हितानि मधुराणि च ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अर्बुदचिकित्सा नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–चोटके अभिघातसे और वायुसे तथा व्रणसे रक्तकी नाडी भरजाती है और रुकजाती है ॥ १ ॥ तिससे रक्तका मार्ग रुकजाता है सो मार्गके रुकनेंसे महास्थूल अर्बुद रोग होजाता है ॥ २ ॥ वातसे उपजा अर्बुद रोग कोमलहो और कठिनहो और कफसे करडा और शीतल होता है और पित्तसे उपजामें दाह और पाक होता है ऐसे वैद्यजनोंनें जानना ॥३॥ सन्निपातसे उपजा कठिन और पत्थरके समान करडा होता है हे वैद्यजन ! बढनेंवाला और गोलीसरीखा यह अर्बुदरोग असाध्य होता है ॥ ४ ॥ तिसरोगकी आदिमें मर्मस्थानको वर्जके फाडनेंकी विधि करनी चाहिये पीछे सेंधानमक घृत, इन्होंका लेप करना चाहिये ॥ ५ ॥ और जमीकंदको दग्ध कर घृत और गुडमें मिला लेप करनेंसे अर्बुदरोगोंका नाश होता है ॥ ६ ॥ और बाकीकी व्रणमें कहीहुई क्रिया करनी यह श्रेष्ठ है और वातको नाश करनेंवाले मधुर पदार्थ हित कहे है और पथ्य है ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने अर्बुदचिकित्सानामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

अथ लूत तथा गंडमाला रोगका निदान और लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ इति व्रणक्रिया प्रोक्ता समासेन भिषग्वर ! ॥ यथायोगं चोपचारं ज्ञात्वा सम्यगुपाचरेत् ॥ १ ॥ दुष्टाम्बुपानाच्च कदन्ननिषेवणाच्च संजायते च क्रिमिसम्भवगण्डमाला ॥ समारुते च कफपित्तभवे विकारे संसर्पते क्रिमिजदोषगणश्च गण्डात् ॥ २ ॥ वातेन वातसदृशानि च लक्षणानि पित्तेन दाहसरुजव्रणशोषतापाः ॥ संश्लेष्मणा च शीतलघना संप्रयोगात्स्यात्सन्निपातविहिता च समस्तलिङ्गैः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे उत्तमवैद्य! इसप्रकारके संक्षेपमात्रसे व्रणकी चिकित्सा कहदी है इसके यथार्थ उपचारको जानके अच्छी तरहसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥ दूषित जलके पीनेंसे और कुत्सित अन्नके सेवनेंसे क्रिमिरोगसे उपजीहुई गंडमाला जाननी वातपित्त कफ इनदोषोंसे उपजेहुए इसविकारमें क्रिमियोंसे उपजाहुआ दोष अंड अर्थात् कपोलस्थानसे चलता है॥२॥वातसे उपजेहुए इसरोगमें वातके समान लक्षण होते है और पित्तसे उपजेमें दाह, पीडा, व्रण,शोष, ताप, ये होते है और कफसे उपजेमें शीतलता, कठोरता, ये उपचार होते है और जिसमें सब लक्षण मिलतेहों वह सन्निपातसे उपजा जानना ॥ ३ ॥

अथ लूता गंडमाला चिकित्सा ॥

तस्य चेमं प्रतीकारं वक्ष्यामि श्रृणु पुत्रक!॥ रोहिणी विशदा चैव विजया च विभेदिनी ॥ ४ ॥ कान्तारी वज्रपुष्पा च तथा चेन्द्रायुधापरा ॥ इति सप्तविधा लूताः श्रृणु पश्चात्पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥ रक्तमुण्डा भवेद्रक्ता रक्तस्थाने च रोहिणी ॥ विशदा मांसलस्थाने श्वेतवर्णा च दीर्घिका ॥६॥ विजया च शिरोमध्ये पीतवर्णा यवप्रभा॥७॥ भेदिनी मेदसंस्थाने श्वेता च नीलरेखिका ॥ ८ ॥ कान्तारी बस्तिमध्ये च श्वेताङ्गा रक्तमुण्डिका॥ वज्रपुष्पा चास्थिमध्ये श्वेता कृष्णा शिरा मता ॥९॥ इंद्रायुधा शिरान्ते च धूम्रा कृष्णा शिरा मता ॥ १० ॥ रोहिण्यङ्गुलिमात्रेण मूत्रेण विशदा समा ॥ विजया च यवाकारा वर्त्तुला विजया तथा ॥ ११ ॥ अन्या नृणां च विज्ञेया तण्डुलीकण्टकानिभा ॥ रोहिणी विजया विंशा मांसस्थाने समाश्रिता ॥ १२ ॥ गुल्फे वा चास्थिसन्धौ च दृश्यते भेदिनी नरे ॥ कुक्षौ कर्णान्तरेऽपाङ्गे कान्तारी विद्धि पुत्रक! ॥ १३ ॥ वज्रपुष्पा शिरसि च शिरान्ते चेन्द्रायुधा मता ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र! प्रयत्नतः ॥ १४ ॥ सान्द्रपूयविस्रावञ्च गम्भीरञ्च व्रणं विदुः ॥ अन्यच्च सरुजं चैव पक्वजम्बूसमप्रभम् ॥ १५ ॥ लूतांव्रणानां चैतानि अपक्वं यावद्दृश्यते ॥ त्यक्त्वा सन्धिस्थमर्मस्थां लूतां चैव हि तद्व्रणम् ॥ तदा तप्तेन तैलेन दाहश्चाशु विधीयते ॥ १६॥ अङ्कोलश्चैव मद्यानि पारिभद्रदलानि च ॥ गृहधूमं कृष्णजीरं गोमूत्रेण तु पेषितम् ॥ लेपनं च प्रशस्तं च लूतानां मारणे परम् ॥ १७ ॥ पिण्डीतकं विड

ङ्गानि तथा चेङ्गुदिमूलकम् ॥ बीजपूरकमूलानि पेषितानि विलेपयेत् ॥ गण्डमालां तथा घोरां हन्ति शीघ्रं प्रकण्टकान् ॥ १८ ॥ स्नुहीक्षीरं चार्कक्षीरं लूतारन्ध्रे नियोजयेत् ॥ तेन कीटस्तु तन्मध्ये म्रियते नात्र संशयः ॥ १९ ॥ आस्यतो गिरिकर्णीश्च चन्दनश्च समांशकम् ॥ पिष्ट्वा लेपः प्रयोक्तव्यो लूतां हन्ति सुदारुणाम् ॥ २० ॥ करवीरं चार्कदुग्धं तथा च कटुतुम्बिकाम् ॥ निशाद्वयं जाङ्गलिकां तिलतैले विपाचयेत् ॥ २८ ॥ लूतामभ्यञ्जने हन्ति गण्डमालाञ्च दारुणाम् ॥ घृतं जात्यादिकं नाम तथा चात्र प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥ अन्यान्यपि व्रणे यानि प्रोक्तानि च यथाविधि ॥ २२ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने लूतागण्डमालाचिकित्सा नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

हे पुत्र ! तिसका इलाजको कहते है सुन रोहिणी, विशदा, विजया, विभेदिनी, कांतारी, ॥ ४ ॥ वज्रपुष्पा, इंद्रायुधा, ऐसे सात प्रकारकी लूत होती है सो हे पुत्र! जुदी २ सुन ॥ ५॥ रक्तमुखवाली रक्तवर्णवाली रक्तके स्थानमें होनेवाली ऐसी रोहिणी नामक लूत होती है और सफेद वर्णवाली तथा दीर्घ ऐसी विशदानामवाली लूत मांसस्थानमें होती है ॥ ६ ॥ और विजयानामवाली लूत पीलावर्णवाली और शिरके मध्यमें होती है और जवसरीखो होती है ॥ ॥ ७ ॥ सफेदवर्णवाली नीलीरेखावाली ऐसी लूत मेदके स्थानमें भेदिनीनामवाली होती है॥ ॥८॥ और सफेदवर्णवाली रक्तमुखवाली ऐसी कांतारीनामवाली लूत बस्तिस्थानमें होती है और वज्रपुष्पा नामक लूत अस्थि स्थानमें होती है और सफेदवर्णवाली तथा काला मुखवाली होती है ॥ ९ ॥ और इंद्रायुधा लूत नसोंके मध्यमें होती है धूम्रवर्णवाली और काला शिर-वाली होती है ॥ १० ॥ और रोहिणीनामवाली लूता अंगुल प्रमाणमें होती है विशदा लूत सूतके समान होती है विजया लूत जवके आकारवाली अथवा गोल आकारवाली होती है ॥ ११ ॥ और अन्य लूत मनुष्योंके चौलाईके कांटेके समान जाननी और रोहिणी विजया विशदा लूत मांसस्थानके आश्रय रहती है ॥ १२ ॥ और टांकनेंकी गुल्फ अस्थि संधि इ-न्होंमें विभेदिनी लूत होती है और कूखि, कानके समीपस्थान, नेत्रोंके समीप यहां कांतारी-नामक लूत होती है ॥ १३ ॥ और वज्रपुष्पा शिरमें होती है और नसोंके मध्यमें इंद्रायुधा लूत होती है हे पुत्र ! अब इन्होंकी औषध कहते है यतनसे सुन ॥ १४ ॥ करडीराध झिरती हो तहां गंभीर व्रण कहते है और अन्य पीडा सहित और पकेहुए जामनके फलके समान व्रण होता है ॥ १५ ॥ और लूतके व्रण जबतक पके नही उससें पहले मर्म संधियोंको त्याग-के लूतको और व्रणको गरम २ तेलसे दग्ध करना चाहिये ॥ १६ ॥ और अंकोल, मदिरा,

नींबके पत्ते, घरका धूंमा, कालाजीरा, इन्होंको गोमूत्रमें पीस लेप करनेंसे लूतका नाश होता है ॥१७॥ और तगर,वायविडंग, इंगुदीवृक्षकी जड, विजौराकी जड, इन्होंको पिस लेप करनेंसे घोर गंडमाला कंटकरोग, इन्होंका शीघ्रही नाश होता है ॥१८॥ और थोहरका दूध, आकका दूध, इन्हांको लूतके छिद्रोंमें युक्त करनेंसे तिसके मध्यके कीडे मरजाते है ॥१९॥ सफेद गोकर्णी, चंदन, इन्होंको समान भागले पीसके लेप करनेंसे दारुण लूतका नाश होता है ॥ २० ॥ और कनेर, आकका दूध, कडुई तुंबी,दोनों हलदी, कपूर, कचरी, इन्होंको तिलोंके तेलमें पका ॥ २१ ॥ मालिस करनेंसे लूत, गंडमाला, इन्होंका नाश होता है और जात्यादिक नामवाला घृत यहां युक्तकरना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ और अन्य जो व्रणमें कहीहुई औषध है वे यहां करनी श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थानेलूतागंडमालाचिकित्सानाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ॥

आत्रेयउवाच॥ विरुद्धपानानि गुरूणि चाम्लपापोदकं सेवनकेन वापि॥ निद्रा दिवासुप्तिजागराच्च पित्तं प्रकुप्येद्रुधिराश्रितं तत् ॥ १ ॥ त्वचागतः सर्पति रोगदोषः कुष्ठेति संज्ञां प्रवदन्ति धीराः ॥ पापोद्भवास्ते प्रभवन्ति देहे नृणां भृशं कोपयतां विधिज्ञ ! ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विरुद्धपान और भारा अन्नपान, खट्टा तथा दूषित जलके सेवनेंसे दिनमें सोना और जागरण करनेंसे रक्तके आश्रयहुआ पित्त कुपित होता है ॥ १ ॥ त्वचामें प्राप्तहुआ रोगरूपदोष फैलता है तब कुष्ठ ऐसी संज्ञा होती है पापसे उत्पन्न होनेंवाले वे रोग मनुष्योंके शरीरमें कोपसे प्राप्त होजाते है अब तिन्होंके जुदे २ लक्षणोंको कहेंगे ॥ २ ॥

कुष्ठोंके सामान्यभेद और लक्षण

कुष्ठानि चाष्टादशधा वदन्ति तेषांपृथक्त्वेन वदामि लक्षणम् ॥ असाध्य साध्यानि च कर्मजानि दोषोद्भवानि च सहजानि तानि ॥ ३ ॥ कारुण्यपारुष्यमथैव कण्डूरोमप्रहर्षःस्तिमितं तथैषाम् ॥ तोदस्तथा संव्यथनं च देहे त्वचि स्थिते कुष्ठभवेति चिह्नम् ॥ ४ ॥

कुष्ठोंको अठारहप्रकारके कहते है, तहां कर्मसे उपजे कुष्ठ असाध्य है और वातआदि दोषोंसे तथा स्वभावसे उपजे साध्य है ॥ ३ ॥ दीनता, कठोरपना, खाज, रोमहर्ष, गीलापन, शरीरमें चभका, पीडा ये लक्षण कुष्ठकी आदिमें होते है ॥ ४ ॥

अथ कुष्ठोंके नाम ॥

कपालकं चैवमुदुम्बरञ्च तथैव दद्रूणि च मण्डलानि ॥ विसर्पकं हस्तिबलं किणञ्च गोजिह्वकं लोहितमण्डला वा ॥ ५॥ वैपादिकं चर्मदलं तथान्यं विस्फोटकान्यथ बहुव्रणञ्च ॥ कण्डूर्विचर्ची कथितं तथान्यद्धातुप्रभेदास्त्वचि रोगसिद्धाः ॥ ६ ॥

और कपालकुष्ठ, उदुंबरकुष्ठ, दद्रुमंडलकुष्ठ, विसर्पकुष्ठ, हस्तिबलकुष्ठ, किणकुष्ठ, गोजिव्हककुष्ठ, लोहितमंडला ॥ ५ ॥ वैपादिक, चर्मदल, विस्फोटक, बहुव्रण, कंडु, विचर्चिका, ऐसे इसप्रकारसे धातुवोंके भेदसे उपजेहुए रोग त्वचामें प्रतीत होते है ॥ ६ ॥

उदुंबरकुष्ठलक्षण ॥

कपालकाभं सितवर्णकञ्च कपाल्यकं तद्वदितं विधिज्ञैः ॥
स्निग्धश्च सर्वाङ्गगतं च कण्डूमुदुम्बरं तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ७ ॥

कपालसरीखा सफेद वर्णवालाहो वह वैद्यजनोंनें कपालक कुष्ठ कहा है और चिकनाहो सब अंगमें प्राप्तहो खाजीहो वह उदुंबर कुष्ठ कहाता है ॥ ७ ॥

अथ मंडलकुष्ठ तथागजचर्मकुष्ठका लक्षण ॥

दद्रूपमं यद्भवते च दद्रूर्दद्रूपमं मण्डलकं तमाहुः ॥
विसर्पकं सर्पति तद्विसर्पे तथान्यमान्तं गजचर्मतुल्यम् ॥ ८ ॥

और जो दादके समानहो दादसरीखे मंडलहो वह दद्रुमंडल कुष्ठ कहाता है और जो विसर्परोगकी तरह शरीरमें फैले तिसको विसर्पकुष्ठ कहते है जिसकी हस्ती सरीखी त्वचा होजावे तिसको गजचर्मक कुष्ठ कहते है ॥ ८ ॥

अथ गोजिव्हक कुष्ठ लक्षण ॥

यद्रूष्यपारुष्यसकर्कशञ्च गोजिह्वकं स्यात्खलु भेदयोग्यम्॥
यवासरक्तानि च मण्डलानि सकण्डुकानि व्रणसंयुतानि ॥ ९ ॥

और जो रूषाहो कठोरहो करडाहो गौकी जिव्हाके समान वर्णवालाहो वह गोजिह्वक कुष्ठ कहाता है और रक्त मंडलहो कुंडलसरीखेंहैं व्रणसे संयुक्तहो वह लोहितमंडल कुष्ठ जानना ॥ ९ ॥

अथ विपादिका कुष्ठ लक्षण ॥

ज्ञेयं तु तल्लोहितमण्डलश्च रक्तोद्भवं तद्रुधिराश्रितश्च ॥
सवेदनार्त्तस्य परिस्फुटश्च विपादिका सा कथिता विधेया ॥ १० ॥

और जो रक्तसे उत्पन्नहो रक्तकै आश्रय हो पीडासे युक्तहो प्रकटहो वह विपादिका कुष्ठ कहाता है ॥ १० ॥

सरक्तवातकुपितेन जाता तथैव विस्फोटकसन्निभा वा ॥ तथापरं नाम बहुव्रणं च सूक्ष्मा च सा सुविदिता नरस्य ॥ ११ ॥ कण्डूर्विचर्ची भुवने प्रतीता श्वेतानि सूक्ष्मानि च पाटलानि ॥ विसर्पते यस्य नरस्य रक्तं युवा न केनापि भवेच्च सिद्धः ॥ १२ ॥

और जो रक्तवातके कुपित होनेंसे उत्पन्नहो और विस्फोटकके समानहो और बहुतसे व्रणहो वह सूक्ष्मा विपादिका नामक कुष्ठ जानना ॥ ११ ॥ और कंडू, विर्चिका ये संसारमें प्रसिद्ध है और जिसकै सूक्ष्मवर्णवाले तथा सफेदवर्णवाले और पीले वर्णवाले ऐसे चिह्नदीखें और रक्त दुष्टहोके फैलता है ऐसा तरुणरोग किसी प्रकारसेभी सिद्ध नहीं होता है ॥ १२ ॥

अथ वातादिजन्य कुष्ठका लक्षण ॥

शिरीषपुष्पाणि शिरीषकाणि सन्त्यक्तभावः पुरुषश्चसूक्ष्मः ॥ तोदस्तथा वैपथुवातलिङ्गं पित्ते नशोषभ्रमदाहतृष्णाः ॥ १३ ॥ श्लेष्माद्भवे कठिनशीतलपाण्डुरश्च नेत्रेनखेषु च वपुष्यभिलाषता च ॥ मिश्रेण संभूतभवानि भवन्ति यस्य स्यात्सान्निपातिकभवं बहुभिश्च लिङ्गैः ॥ १४ ॥

और शिरसके पुष्पोंके समान और सिरसके समान वर्णहो कठोरहों सूक्ष्महों चभकाहो कंपना हो ये वातसे उपजे कुष्ठके लक्षण है और पित्तसे उपजा कुष्ठमें शोषहो, भ्रमहो, दाहहो, तृषाहो, ॥ १३ ॥ और कफसे उपजा कुष्ठ कठिन, शीतल होता है और नेत्र, नख, शरीर, ये पीले होजाते है इन्होंमे खाजि करनेंकी इच्छा रहे और सब मिलेहुए दोषोंसे मिलेहुए लक्षण होते है सन्निपातसे उपजे कुष्ठमें बहुतसे लक्षण मिलते है ॥ १४ ॥

अथ रक्तस्थ कुष्ठ ॥

रूक्षं तथा सकण्डु त्वक्स्थितश्च मृदु शीतलम् ॥
आस्रावदाहरक्ताभं रक्तस्थं रक्तगं विदुः ॥ १५ ॥

और जो रूषाहो खाजिहो कोमलहो शीतलहो वह त्वचामें स्थित कुष्ठ जानना और जिसमें झिरनाहो रक्तसरीखी कांतिहों वह रक्तमें स्थितहुआ कुष्ठ जानना ॥ १५ ॥

अथ मांसस्थ मेदःस्थ तथा अस्थिस्थ कुष्ठ ॥

सुस्निग्धं तोदगम्भीरं मांसगञ्च विनिर्दिशेत् ॥ मेदःस्थंतोदवेष्टत्वं सुस्निग्धं रक्तलोचनम् ॥ अस्थिसंस्थश्च गम्भीरं विसर्पे नासिकामुखे ॥ १६ ॥

और स्निग्धहो चभकाहो गंभीरहो वह मांसमें प्राप्त हुआ कुष्ट जानना जो मेदमें स्थितहो तिसमें चभकाकी पीडाहो चिकनाहो रक्तनेत्रहैं और जो अस्थिमें स्थितहो वह गंभीर होता है मुखमें तथा नासिकामें विसर्परोग दीखता है ॥ १६ ॥

अथ मज्जास्थ तथा शुक्रस्थ कुष्ठ ॥

मज्जसंस्थश्च विकलो मज्जास्रावश्च जायते ॥ विशीर्य्यते च सर्वाङ्गे त थैव शुक्रगं विदुः ॥ १७॥ अतो वक्ष्ये समासेन प्रतिकर्म भिषग्वर ! ॥१८॥

मज्जामें स्थितहोनेंसे विकल होजावे, और मज्जास्राव होता है और जिसमें सब अंग शिथिल होजावे वह वीर्यमें प्राप्त हुआ कुष्ठ जानना ॥१७॥ हे उत्तम वैद्य ! अब संक्षेप मात्रसे इन्हों-की चिकित्साको कहैगे ॥ १८ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ॥

त्वक्स्थे स्वेदस्यालेपो रक्तस्रावश्च रक्तगे ॥ विरेचं मांसगे प्रोक्तं मेदोगे क्राथपाचनम् ॥ १९ ॥ अथ तानि च त्रीण्येवमस्थिमज्जागतानि च ॥ वातिके स्वेदनं पथ्यं पित्ते शीतोपचारणम् ॥ २० ॥ कष्टसाध्यमिदं प्रो क्तमसाध्यं सान्निपातिकम् ॥ रोगकारणमालोच्य तदा कर्म समारभेत् २१

त्वचामें स्थितहुए कुष्ठमें पसीना दिवावे लेप करै रक्तमें प्राप्तहुएमें स्राव करावे मांसमें प्राप्तहुए कुष्ठमें जुलाब देवै, और मेदमें प्राप्तहुएमें क्राथ पाचन देवै ॥ १९ ॥ और यही उप-चार अस्थि, मज्जा इन्होंमें प्राप्तहुएमेंभी करना चाहिये वातसे उपजे कुष्ठमें पसीना दिवाना पथ्य है पित्तसे उपजेमें शीतल उपचार करना श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ यह कुष्ठरोग कष्टसाध्य कहा है और सन्निपातसे उपजा असाध्य होता है पहलेरोगके कारणको जानके पीछे कर्म करनें-का आचरण करै ॥ २१ ॥

पक्षान्पक्षाच्छोधनं पाचनञ्च मासान्मासान्कारयेद्रेचनञ्च ॥ मासान्कुष्ठे शोधनाय प्रकर्षात्षष्ठे षष्ठे मास्यसृग्मोक्षणञ्च ॥ २२ ॥ वासापटोलफ लिनीलवणं वचाञ्च निम्बत्वचं क्कथितमाशु पिबेत्कषायम् ॥ कुष्ठे करो ति वमनं मदनान्विते च पथ्याकषाय वमने मदनान्वितेषु ॥ २३ ॥ फ

लत्रिकं त्रिवृद्दन्ती विरेचकं भिषग्वर ! ॥ क्वाथो वचोष्णतोयेन पाने स्याद्भिषगुत्तम ! ॥२४ ॥ श्वासप्रश्वासयोर्वेध्या शिरा शिरसि चेद्बहिः ॥ ततः प्रयोजनीयश्च क्वाथस्नेहस्य भोजनम् ॥ २५ ॥

और पक्षपक्षके प्रति शोधन और पाचनकर्म करै महीना २ के प्रति जुलाब दिवानी चाहिये और कुष्ठरोगमें छठे महीनेंके प्रति रक्तको निकसावे ॥२२ ॥ और वांसा, परवल, मालकांगनी, नमक, वच, नींबकी त्वचा, इन्होंका क्वाथ बना मैनफल मिला कुष्ठमें पीनेंसे वमन होता है और पंचवृक्षोंका क्वाथ बना मैनफल मिला वमनकेवास्ते देना चाहिये ॥ २३ ॥ हे वैद्य ! त्रिफला, निशोत, इन्होंसे जुलाब दिवानी श्रेष्ठ है और वचका क्वाथ बना गरम २ जलके संग पीना श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ और कुष्ठमें जो ज्यादे श्वास होवे तो शिरमें रहनेंवाली बाहिरकी नस बींधनी चाहिये पीछे क्वाथ और स्नेह अर्थात् घृत आदिक भोजन करवाना चाहिये ॥ २५ ॥

शुण्ठ्यादिक्वाथ ॥

शुण्ठीकणाखदिरपाटलिकापटोलीमञ्जिष्ठाक्षुरविषबिल्वयवानिकानाम् ॥ वासाफलत्रिकजलेन कषायसिद्धः पानान्निहन्ति मनुजस्य च कुष्ठदोषम् ॥ २६ ॥ वासाविडङ्गपिचुमन्दपटोलपाठाशुण्ठीसुरेन्द्रतरुपञ्चतरुमूलपथ्याः ॥ क्वाथो निहन्ति मरुत्प्रभवं च कुष्ठं त्रिःसप्तकेऽहनि महौषधमेव योज्यम् ॥ २७ ॥

सूंठ, पीपल, खैर, पाडलवृक्ष, परवल, मंजीठ, लघुगोखरू, अतीश, वेलगिरी, अजमान, वांसा, त्रिफला, इन्होंका क्वाथ बना पीनेंसे मनुष्यका कुष्ठरोग दूर होता है ॥ २६ ॥ और वांसा, वायविडंग, नींब, परवल, पाठा, सूंठ, देवदार, वडआदि पंचवृक्ष, लाख, मूली, हरडै, इन्होंके क्वाथसे वातसे उपजा कुष्ठका नाश होता है इक्कीसदिनतक यह महान् औषध पीनि चाहिये ॥ २७ ॥

गुडूच्यादिक्वाथ ॥

नित्यं छिन्नोद्भवाचूर्णं तस्याः क्वाथसमन्वितम् ॥ पीतं जीर्णे सघृतञ्च पीतञ्च षाष्टिकं पयः॥२८॥हन्ति कुष्ठानि सर्वाणि सप्तधातुगतानि च ॥२९॥

और गिलोयके क्वाथके संग गिलोयका चूर्णको नित्य पीवे जर जावे तब घृत सहित सांठि चावलोंके मांडको पीवे ॥ २८॥ यह सातों धातुवोंमें प्राप्त हुए सब कुष्ठोंको नाशता है॥२९॥

अथ कुष्ठरोगमें लेपविधि ॥

काश्मर्य्यदरदघनश्च कुष्ठं निशाद्वयं काञ्जिककुष्ठमेतत् ॥ लेपे प्रशस्तं विनिहन्ति कुष्ठं विचर्चिकां तथा विसर्पदोषम् ॥ ३० ॥ पिष्टानि तत्र मधुकाञ्जिकमूत्रपिष्टलेपेन कुष्ठमपि दुष्टविचर्चिकाञ्च ॥ ३१ ॥ विसर्पदोषे प्रोक्तानि धावनानि च कारयेत् ॥ सौवीरकरसेनापि धावनं त्रिफलाम्बुना ॥ ३२ ॥ वातिके चैव कुष्ठे च प्रशस्तं कथितं बुधैः ॥ निम्बपत्रकषाये च यष्टी मधुककल्कितम् ॥ ३३ ॥ दुग्धेन शीतलेनापि विदार्य्याः क्राथकेन वा ॥ हन्ति कुष्ठं महाघोरं धावनं न प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ अग्निमन्थपटोलानि मातुलुङ्गदलानि च ॥ सठीपर्पटकः क्राथो धावनं श्लेष्मरोगिणाम् ॥ ३५ ॥ विपादिकां नवनीतेन क्षालयित्वा विदां वर ! ॥ स्वेदयित्वार्कदुग्धैश्च मधुतैलेन लेपनम् ॥ ३६ ॥

खंभारी, सिंगरफ, नागरमोथा, कूठ, दोनों हलदी कांजीमें शोधा हुआ लोहा, इन्होंको पीस कुष्ठपे लेप करना श्रेष्ठ कहा है और विचर्चिका, विसर्पदोष, इन्होंका नाश होता है ॥ ३० ॥ और सीसाकी रजको शहद, कांजी, गोमूत्र इन्होंमें पीस लेप करनेंसे कुष्ठ, दुष्टविचर्चिका, इन्होंका नाश होता है ॥ ३१ ॥ और विसर्प दोषमें कहेहुए धोवनेंके कर्म यहां करनें चाहिये और कांजी, त्रिफलाका रस इन्होंसे धोना श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ यह इलाज वैद्यजनोंनें वातसे उपजे कुष्ठमें श्रेष्ठ कहा है और नींबके पत्तोंका क्राथमें मुलहटीका कल्क बना ॥ ३३ ॥ शीतल दूधमें मिला अथवा विदारीकंदके क्राथमें मिला तिस्से धोवनें से महाघोर कुष्ठका नाश होता है ॥ ३४ ॥ और अरणी, परवल, बिजौराके पत्ते, कचूर, पित्तपापडा इन्होंका क्राथ बना कफसे उपजे कुष्ठको धोना श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥ और विपादिका कुष्ठको नौंनी घृतसें संयुक्त कर तहां आकके दूधसे पसीना दिवा शहद और तेलका लेप करै ॥ ३६ ॥

अथ खदिरआदिक्राथ ॥

खदिरनिम्बकदम्बकं तथा ककुभः पाटलिका शिरीषकम् ॥ कुटजकिंशुकवासुसमोरटः वटकूटं नटपिप्पलिपीलुकम् ॥ ३७ ॥ धवमुदुम्बरवेतसमेकतः क्वथितपानविधानघृतेन तु ॥ सकलकुष्ठविनाशनकारकं भवति चेन्दुसमानवपुर्नरः ॥ ३८ ॥

खैर, नींब, कदंब, अर्जुनवृक्ष, पाडलवृक्ष, शिरस, कूडाकी छाल, केशू, वांसा, मोर अर्थात् खैरका भेद, वड, टेंटूवृक्ष, पीपल, पीलूवृक्ष, ॥३७॥ धव, गूलर, वैत, इन्होंको एक जगहकर क्वाथ बना घृत मिला पीनेंसे संपूर्ण कुष्ठोंका नाश होता है और चंद्रमाके समान सुंदर शरीर होजाता है ॥ ३८ ॥

अथ आरग्वधआदिक्वाथ ॥

आरग्वधधातकीकर्णिकारधवार्जुनैः सज्जककिंशुकानाम् ॥ कदम्बनिम्ब कुटजाटरूषाः खदिरेण युक्ताश्च तथैव मूर्वा ॥ ३९ ॥ मूलानि चैषा मुपहृत्य सम्यगष्टावशेषे क्वथितः कषायः ॥ घृतेन तुल्यं प्रतिमानवस्य निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ॥४०॥ कुष्ठानि सर्वाणि विसर्पदद्रुविचर्चिका हन्ति नरस्य शीघ्रम् ॥ ४१ ॥

अमलतास, धाय, अमलतास, धववृक्ष, अर्जुनवृक्ष, रालवृक्ष, केशू, कदंब, नींब, कूडाकी छाल, वांसा, खैर, मूर्वा, ॥ ३९ ॥ इन्होंकी जडको ले क्वाथ बना लेवे पीछे अष्टमांश बाकी रहे तब उतार तिसमें समान भाग घृत मिला खानेंसे मनुष्यके शरीरके सब प्रकारके कुष्ठोंका नाश होता है ॥ ४० ॥ सबप्रकारके कुष्ठ, विसर्परोग, दाद, विचर्चिका इन्होंका शीघ्रही नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ खदिरादिघृतपानक ॥

खदिरकदरमूर्वावालकं कर्णिकारः कुटजसपरिभद्रारग्वधाश्चेति पिष्टाः ॥ क्वथितमिततमांशं वै घृतपानमस्य विनिहन्ति सकलान् वै कुष्ठवैसर्पदर्पान् ॥ ४२ ॥

खैर, सफेद खैर, मूर्वा, नेत्रवाला, बडा अमलतास, कूडाकी छाल, नींब, अमलतास, इन्होंको पीस इन्होंके समान घृत मिला क्वाथ बना पीनेंसे संपूर्ण कुष्ठरोग विसर्पदोष इन्होंका नाश होता है ॥ ४२ ॥

अथ भल्लातक तैल ॥

भल्लाकत्र्यूषणमक्षचूर्णं कुष्ठञ्च गुञ्जालवणानि पञ्च ॥ फल त्रिकं तैलविपाचितानि चाभ्यञ्जनं हन्ति च दद्रुकुष्ठम्॥४३॥

भिलावा, त्र्यूषण अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, बहेडा, कूठ, चिरमठी, पांचोंनमक, त्रिफला, इन्होंको समान भाग ले चूर्ण बना तेलमें पकावे पीछे तिस तेलकी मालिस करनेंसे दद्रुकुष्ठका नाश होताहै ॥ ४३ ॥

अथ तिलतैल ॥

अश्वघ्नमूलं मलिनं समङ्गा निशाद्वयं सर्षपचित्रकञ्च ॥ सभृङ्गराजं कुह तुम्बिका च कुष्ठं विडङ्गं मगधा च चूर्णम् ॥ ४४ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धेन विपाचितं तु तैलं तिलानां परिपक्वमेतत् ॥ अभ्यञ्जनं चैव नरस्य नूनं दद्रूणि कण्डूनि विनाशयेच्च ॥ ४५ ॥

कनेरकी जड, अगर, मंजीठ, दोनों हलदी, सिरसम, चीता, भंगरा, कुटकी, तुंबी, कूठ, वायविडंग, पीपली ॥ ४४ ॥ इन्होंको थोहरके दूधमें पका पीछे इसमें तिलोंके तेलको पकावे इसकी मालिस करनेंसे मनुष्यकें दद्रुकुष्ठोंका नाश शीघ्रही होता है ॥ ४५ ॥

अथ हरिद्रादितैल ॥

हरिद्रा समङ्गा सुराह्वं सचित्रविडङ्गानि कृष्णा विशालाम्बु कुष्ठम् ॥ तथा लाङ्गली चक्रमर्द्दं च गुञ्जा विशाला तथारिष्टपत्राणि चैतत् ॥ ४६ ॥ चूर्णं कृतं भावितं वैतथैतद्गुडेन घर्मे विपच्यम् ॥ हितं लेपने कुष्ठपामाविचर्चीर्नरस्यातिशीघ्रं निहन्ति ॥ ४७ ॥

हलदी, मंजीठ, देवदार, चीता, वायविडंग, पीपली, इंद्रायण, नेत्रवाला, कूठ, कलहारी, चिरमठी, इंद्रायण, नींबके पत्ते ॥ ४६॥ इन्होंको समान भाग ले चूर्ण बना गुडके रसमें भावना दे घाममें धरके पका लेप करना हित है, कुष्ठ, पांम, विचर्चिका इनरोगोंका शीघ्रही नाश होता है ॥ ४७ ॥

अथ निंबादिघृत ॥

निम्बं पटोलं च किरातकञ्च जाती विशाला सपुनर्नवा च ॥ पयोदलाक्षारसमेव वासा त्रायन्तिका बिल्वककुष्ठयष्टिः ॥ ४८ ॥ संचूर्णितं क्षीरदधिसमेतं घृतं विपक्वं परिषेचने च ॥ हितञ्च कुष्ठक्षतदद्रुरक्तं पामाविचर्चीर्विनिहन्ति कण्डूम् ॥ ४९ ॥

नींब, परवल, चिरायता, जावित्री, इंद्रायण, सांठी, नागरमोथा, लाख, वांसा, त्रायमाण, कंकुष्ठ, मुलहटी ॥ ४८ ॥ इन्होंका चूर्ण बना दही और दूध मिलावे तिसमें घृत मिला सिद्ध करै पीछे इसघृतसे सेक करनेंसे कुष्ठक्षत, दद्रुरक्त, पांम, विचर्चिका, कंडू, इन्होंका नाश होता है ॥ ४९ ॥

अथ पांडुरकुष्ठकी चिकित्सा ॥

पित्तश्चैव गदं भूत्वा वातेनैव समीरितम् ॥ सरक्तश्च प्रकुपितं कुरुते पा

ण्डुरच्छविम् ॥ ५० ॥ स्तब्धचित्तं विरूपश्च तस्य च शृणु लक्षणम् ॥ असाध्यं कुष्ठं साध्यं वा विज्ञेयं तद्भिषग्वरैः ॥ ५१ ॥ ईषद्रक्तं भवेत् पाण्डु सन्निपातोत्थं च जायते ॥ असाध्यं तच्च सर्वाङ्गचित्रं स्निग्धं तदेव तु ॥ ५२ ॥ पीतच्छवि पाण्डुररूक्षमेव उपागतं साध्यतमं प्रतीतम् ॥ संपाचनं शोधनमेव शस्तं विरेचनं रक्तविमोक्षणञ्च ॥ ५३ ॥ वासागुडूचीत्रिफलाकरञ्जपटोलनिम्बार्जुनवेतसानाम् ॥ कृष्णासमङ्गासहितं च कल्कं पाने हितं चित्रकमण्डले च ॥ ५४ ॥ खदिरवासकनिम्बपटोलकैर्धवयवासकमेव फलत्रिकैः ॥ सकलकुष्ठविसर्पकमण्डलं विजयते मनुजस्य च पाण्डुरम् ॥ ५५ ॥ पाठाविडङ्गमगधासुरदारुचित्रं दद्रुघ्नरात्रियुगलं च तथा समङ्गा ॥ कुष्ठं वचामधुकसैन्धवकाञ्जिकेन पिष्टं तु मूत्रकरुधिररसेन वापि ॥५६ ॥ प्रलेपने चित्रमथैव सिद्धं विनाशमायाति च कण्डुकुष्ठम् ॥ विचार्चिकां नाशयते च कण्डूं विस्फोटमाशु प्रतिसर्पणानि ॥ ५७ ॥ भृङ्गराजो हरिद्रा च दूर्वा जाती विडङ्गकाः ॥ कृष्णास्तिलाश्वित्रकाणि तथैव हरिचन्दनम् ॥ ५८ ॥ मूत्रेण पेषितं तत्तु लेपनं चित्रकुष्ठिनि ॥ हन्ति दद्रूणि सर्वाणि कुष्ठं दद्रूविचर्चिकाः ॥ ॥ ५९ ॥ न विदाहीनि चाम्लानि वातलानि तथैव च ॥ ज्वरे च प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ व्रणेषु कुष्ठराजीषु हितमेवोपचारिणाम् ॥ ६० ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कुष्ठचिकित्सा नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥ इति कायतन्त्रं समाप्तम् ॥

वातसे प्रेराहुआ पित्त रोगरूप होके रक्तके संग कुपितहो शरीरके पांडुर अर्थात् कछुक पीला सहित सफेद वर्णवाला करदेता है ॥ ५० ॥ चित्त दुखी रहे विरूप होजावे ऐसे लक्षणोंको सुन यह कुष्ठ असाध्य और साध्य दो प्रकारका होता है ॥ ५१ ॥ और जो कछुक लाल वर्णसे युक्त पीला वर्णवाला कुष्ठहो वह सन्निपातसे उपजा जानना वह असाध्य होता है तिसमें सब अंगमें चिकने २ चितंगे होते है ॥ ५२ ॥ और जो रूषा तथा पीला वर्णवाला पांडुरकुष्ठहो वह साध्य होता है तिसमें पाचन और शोधन करना तथा जुलाब दिवानी और फस्त खुलानी श्रेष्ठ है ॥ ५३ ॥ वांसा, गिलोय, त्रिफला, करंजुवा, परवल, नींब,

अर्जुनवृक्ष, बेत, पीपल, मंजीठ, इन्होंका कल्क बना चित्रकमंडल कुष्ठमें पीना हित है ॥५४॥ और खैर, वांसा, नींब, परवल, धव, जवांसा, त्रिफला, इन्होंका कल्क बना पीनेंसे सबप्रकारके कुष्ठ विसर्प, मंडल, पांडुरकुष्ठ, इन्होंका नाश होता है ॥ ५५ ॥ और पाठा, वायविडंग, पीपल, देवदार, चीता, पुआड, दोनों हलदी, मंजीठ, कूठ, वच, मुलहटी, सेंधानमक, इन्होंको कांजीमें अथवा गोमूत्रमें अथवा रुधिरके रसमें पीसि ॥ ५६ ॥ लेप करनेंसे चित्रकुष्ठका नाश होता है और खाजिवालाकुष्ठ, विचर्चिका, कंडू, विस्फोटक, विसर्प, इन्होंका नाश होता है ॥ ५७ ॥ और भंगरा, हलदी, दूब, जीरा, वायविडंग, कालेतिल, चीता, लाल चंदन, ॥ ५८ ॥ इन्होंको गोमूत्रमें पीस लेप करनेंसे चित्रकुष्ठका नाश होता है और सबप्रकारके दाद, दद्रुकुष्ठ, विचर्चिका, विस्फोटक और विसर्प इन्होंका नाश होता है ॥ ५९ ॥ और कुष्ठरोगमें विदाही, खट्टा, वातवाला ऐसा भोजन नहीं करना चाहिये और ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य है वे यहा करनें चाहिये और व्रणोंमें कुष्ठोंमें यही उपचार करना श्रेष्ठ हैं ॥ ६० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने कुष्ठचिकित्सानाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

अथ शालाक्य तंत्र ॥

अथ शिरोरोग चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ अतिभारातियोगेन अतितीक्ष्णोष्णभावतः ॥ विनाभ्यङ्गेन वा शैत्यात्पित्तेनातिविशेषतः ॥ १ ॥ क्रिमिदोषेण वा पुंसां जायते च शिरोगदः ॥ वातरक्तकफात्पित्तात्पित्तेनापि विशेषतः ॥ २ ॥ सन्निपातेन विज्ञेयाः क्रिमिजाश्च तथापरे ॥ अर्द्धशीर्षविकारश्च दिनवृद्धिकरस्तथा ॥ ३ ॥ वातेन रात्रौ भवते व्यथा च अथातुरस्य व्यथते शिरश्च ॥ सौख्यं लभेत् स्वेदनमर्दनेन वातेन सा विद्रूषणे रुजा वा ॥४॥ यस्योष्णमङ्गं भवते शिरस्यं घर्मे सतापे च दिने च रात्रौ ॥ स धूमतो वा कटुको बलाशे शीतात्सुखं वा निशि स्वास्थ्यमेति ॥ ५ ॥ शीतात्सुखं वा प्रथमश्च तृष्णा सतीव्रपित्ताद्भवते रुजा च ॥ सूर्य्योदये वा भव

ते दिनान्ते भ्रमश्च तृष्णा भवते सुतीव्रा ॥ ६ ॥ सजाड्यमुण्डं भवते च शीतं स्वेदेन युक्तं युगलञ्च नूनम् ॥ सुदृश्यनेत्रं नयते च तद्वा कफे यदीष्टः शिरसो विकारः ॥ ७॥ रक्तेन नासापुटकेऽपि जालं निरेति शोषा वदने च तृष्णा ॥ रक्ताक्षमन्या जठरे च यस्य तमाहू रक्तोद्भवशीर्षरोगम् ॥ ८ ॥ मध्यं प्रदूष्य प्रतनोति पीता नाशापरिस्राविं सविड्जलञ्च ॥ सजाड्यमोहश्वसनं च यस्य त्रिदोषरोधाद्भवते शिरोऽर्त्तिः ॥ ९ ॥ यस्यातिमात्रं शिरसि प्रतोदो विभज्यमानेऽपि च मस्तकान्ते ॥ घ्राणे परिस्रावि सरक्तपूयं क्रिमिप्रसूता च शिरोव्यथा च ॥ १० ॥ क्रोधाच्छोकाद्भवेच्चान्या व्यायामेऽतिश्रमेषु च ॥ सा वातेन शिरःपीडा सरुजे च तृणामपि ॥ ११ ॥ अतिलेखनपाठेन तथा सूक्ष्मान्निरीक्षणात् ॥ दूरदृष्टेक्षणेनापि वेदना वातरक्तजा ॥ १२ ॥ नासिकार्द्धे व्यथा तस्य व्यथा भ्रूयुगले भवेत् ॥ नीलं कृष्णञ्च पश्येत वेदना मस्तके भवेत् ॥ १३ ॥ न रक्तेन विना पित्तं रक्तं पित्तेन चाल्यते॥न पित्तेन शिरोऽर्त्तिः स्यात्पित्तं वातेन चाल्यते ॥ १४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अति भारके अत्यंत योगसे अति तीक्ष्ण भावसे मालिस करे विना शीतलता होनेंसे अत्यंत पित्तसे ॥ १ ॥ अथवा क्रिमि दोषसे पुरुषोंके शिरोरोग होता है और वातरक्त, कफपित्त, पित्त ॥ २ ॥ अथवा सन्निपात, इन्होंसे उत्पन्नहोनेंवाले शिरोरोग क्रिमिजशिरोरोग ऐसे होते है, और अधशिरका विकार तथा दिनके चढनेंके समय शिरोरोग होता है ॥ ३ ॥ वातदोषसे उपजे शिरोरोगमें रात्रीमें पीडाहो और पीडित हुआका शिर दूखै और पसीना दिवाना तथा मर्दन करनेसे सुख होवे विष्ठा उतरनेके समय अथवा वृषणस्थानमें दुःखहो वह वातसे उपजी पीडा जाननी ॥ ४ ॥ जिसका शिर गर्म रहे और घांमके संतापमें दिनमें अथवा रात्रिमें धूवांसे शिरमें पीडाहो कडु कफ गिरै वह पित्तसे उपजा शिरोरोग जानना तिसमें रात्रीमें सुख होता है ॥ ५ ॥ और शीतलतासे सुखहो तृषा लगे तीव्रपीडाहो वह पित्तसे उपजी पीडा जाननी और जो सूर्योदयमें अथवा दिनके अंतमें भ्रमहो तृषाहो पीडाहो ॥ ६ ॥ शिरमें जडताहो शीतलहो पसीनासे युक्त दोनों नेत्रहो और सुंदर नेत्रहो वह कफसे उपजा नेत्रविकार जानना ॥ ७ ॥ और रक्तसे उपजे शिरके विकारसें नासिकामांहसें रक्त झिरै मुखमें तृषा रहै और जिसके कंधा, कंधाके समीप मन्यास्थान, पैर, ये लालहो तिसको

कफसे उपजा शिरोरोग कहते है ॥ ८ ॥ और मध्यमें दूषितहो पीली नासिका होजावे दुर्गंधि सहित जल झिरै जडताहो मोहहो श्वासहो वह त्रिदोषसे उपजी शिरकी पीडा जाननी ॥ ९ ॥ जिसके शिरमें अत्यंत चभकाहो और मस्तक फटाजावे नासिकासें रक्त और राध झिरै वह क्रिमियोंसे उपजी शिरकी पीडा जाननी ॥ १० ॥ और क्रोध, शोक, कसरत, अत्यंत परिश्रम इन्होंसे उपजी हुई पीडा वातके कोपसे होती है तहां चभका होता है ॥ ११ ॥ और अत्यंत लिखना, पढना, सूक्ष्म देखना, दूरसे दृष्टि देके देखना इन्होंसे उपजी पीडा वात रक्तके कोपसे जाननी ॥ १२ ॥ तिसकी आधी नासिकामें और दोनों भ्रुकुटियोंको आधे भागमें पीडाहो नीला और काला वर्ण सरीखा दीखै मस्तकमें पीडाहो ॥ १३ ॥ और रक्तके विना पित्त नहीं होती है और रक्त, पित्तसे चलायमान होता है और पित्तसे शिरमें पीडा नहीं होतीहै पित्त वातसे चलायमान होताहै ॥ १४ ॥

तस्माद्वक्ष्याम्युपचारं शृणु भेषजलक्षणम् ॥ स्वेदःप्रलेपनं नस्यं पानाभ्यङ्गश्च मर्दनम् ॥ १५ ॥ स्वेदनं वातकफजे चाभिघाते तथा पुनः ॥ पित्तजे रक्तजे वापि न कुर्य्यात्स्वेदनं तयोः ॥ १६ ॥ रक्तजे च शिरा वेध्या पित्तजे वापि कुत्रचित् ॥ कोकिलाख्या च तर्कारी कटुका निम्बपत्रकैः ॥ १७ ॥ शोभाञ्जनकपत्रैस्तु क्वाथं वा तेन स्वेदयेत् ॥ अमीषाञ्च प्रलेपेन सौख्यं चास्य प्रजायते ॥ १८ ॥ संशीतपरिषेकैश्च यष्टीमधुकचन्दनैः ॥ केसरैर्मातुलुङ्गैश्च पित्तजे शीतलेपनम् ॥ १९ ॥ कदम्बार्जुनसिन्धुश्च लेपनार्थे भिषग्वर ! ॥ गुडेन नागरा वापि पथ्यां वापि गुडेन वा ॥ २० ॥ गुडशोभाञ्जनरसैर्नस्ययोगात्पृथक् पृथक् ॥ नस्येन बस्तमूत्रेण शिरोऽर्त्तिश्चोपशाम्यति ॥ २१ ॥ मरिचं पथ्या कट्फलं मूत्रेणोष्णोदकेन वा ॥ नस्यं कफोद्भवे घोरे शिरोरोगे भिषग्वर ॥ २२ ॥ वचामधुकसारं वा मूलं वा गिरिकर्णिका ॥ नस्यप्रयोगे विहितं सन्निपाते शिरोगदे ॥ २३ ॥ वन्ध्याकर्कटकीमूलं पिष्टमूष्णेन वारिणा ॥ मितं नस्ये प्रयुञ्जीत क्रिमिजे च शिरोगदे ॥ २४ ॥

इसवास्ते इसके उपचारको कहते है औषधोंको सुन पसीना दिवाना लेप करनां, नस्य दिवानी पान कराना मालिस, मर्दन कराना ॥ १५ ॥ और वात कफसे उपजे तथा चोट आदिसे उपजे शिरोरोगमें पसीना दिवावे और पित्तसे तथा रक्तसे उपजे पसीना नहीं दिवावे॥ १६॥ रक्तसे उपजे शिरोरोगमें नस विंधावे और कहींक पित्तसे उपजेमेंभी नस विंधवानी श्रेष्ठ है और कंकोल,

अरणी, कुटकी, नींबकेपत्ते, ॥ १७ ॥ सहौंजनाके पत्ते, इन्होंका क्वाथ बना तिस्से पसीना दिवावे अथवा इन्होंके लेप करनेंसे सुख होता है ॥ १८ ॥ और पित्तके शिरोरोगमें मुलहटी महुआवृक्ष, चंदन, इन्होंके शीतल क्वाथसे परिसेक करै और विजौराकी केशरसे शीतल २ लेपकरै ॥ १९ ॥ और हेउत्तमवैद्य ! कदंब, अर्जुनवृक्ष, सेंधानमक, इन्होंका लेप करना श्रेष्ठ है और गुडके संग सूंठ तथा हरडैका लेप श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ और गुड सहौंजनाका रस इन्होंकी पृथक् २ नस्य देनी श्रेष्ठ है और बकराके मूत्रकी नस्य देनेंसे शिरकी पीडाका नाश होता है ॥ २१ ॥ और कफसे उपजे घोर शिरोरोगमें मिरच, हरडै, कायफल, इन्होंको पीस गरम २ गोमूत्रके संग नस्य देना, श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ और वच, महुआ, मूली, अमलतास, इन्होंको नस्यमें देनेंसे सन्निपातसे उपजा शिरोरोगका नाश होता है ॥२३॥ और वांझ ककोडीकी जडको पीस गरम जलके संग नस्य देनेंसे उपजा शिरोरोगका नाश होता है॥२४॥

अथ षड्बिन्दुनामकतैल ॥

भृङ्गराजरसं चैकं द्विभागं काञ्जिकेन च ॥ शोभाञ्जनं भागत्रयं सर्वं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥ सौवीरकरसं पञ्च षड्भागं तुम्बिकारसम् ॥ शुण्ठी सैन्धवमम्लीका पटोलं वासकं शिवा ॥ २६ ॥ अभया सुरसा चैव तैलञ्च चतुरंशकम् ॥ पाचितं तत्तु नस्येन योजयेच्च षड्बिन्दुकम् ॥ २७ ॥ तथैव मस्तकाभ्यङ्गे हितं स्यात्कर्णपूरके ॥ हितं वातादिजे रोगे शिरोऽर्त्तौ क्रिमिजे तथा ॥ २८ ॥

भंगराका रस एक भाग, कांजी दो भाग, सहौंजना ३ भाग ॥ २५ ॥ वेरोंका रस पांच भाग तुंबीका रस ६ भाग ऐसे इन्होंको एक जगह मिला सूंठ, सेंधानमक, अमली, परवल, वांसा, हलदी, ॥२६॥ हरडै, तुलसी, इन्होंको मिला पीछे इनसब रसोंसे चतुर्थांश तेल मिला तिसको पकाके फिर तिस तेलकी छह बूंद नस्यमें देनेंसे ॥२७॥ तथा मस्तकपे लेप करनेंसे अथवा कानमें पूरनेंसे वातादिक शिरोरोग तथा क्रिमियोंसे उपजा शिरका रोगका नाश होता है ॥ २८ ॥

अथ बिंदुत्रयतैल ॥

करञ्जबीजस्य विभीतकानां पुटेन तैलं परिस्रुत्य धीमन् ॥
बिन्दुत्रयं नस्यविधौ प्रयोज्यं जघान कुष्ठं क्रिमिजं विकारम्॥२९॥

करंजुवाके बीज, बहेडा, इन्होंको पुटपाकमें धर तेल निकास तिसकी तीन बूंद नस्यमें देवे यह तेल कुष्ठ, क्रिमिसे उपजा विकार इन्होंका नाश करता है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठादिघृत ॥

कुष्ठं च यष्टीमधुकं च नीत्वा पटोलजातीसुरसारसञ्च॥विपाचितं तन्नव नीतकञ्च घृतेन नूनं च सरक्तपित्ते ॥ ३० ॥ सशर्करायुक्तमिदं दिवा च गव्यं प्रवृद्धप्रभवे च दोषे ॥ ३१ ॥

और कूठ, मुलहटी, परवल, जावित्री, ब्राह्मीका रस, नौंनी घृत इन्होंको पकालेवे पीछे इसघृतकी नस्य रक्तपित्तसे उपजे शिरके रोगमें देवै और दिनके बढनेके समय जो दर्द बढाता है ऐसे रोगमें इसघृतमें खांड मिलाके नस्य देना हित है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ लाक्षादितैल ॥

लाक्षारसं चन्दनयष्टिकानां पटोलधात्रीफलशर्कराणाम् ॥ दधि सदुग्धं नवनीतकं च विपाचिते नस्यविधौ प्रयुज्यते ॥ ३२ ॥ भ्रूदोषशङ्खक्षतज क्षये वा दिनादिवृद्ध्या प्रभवेऽपि दोषे ॥ ३३ ॥

लाखका रस, चंदन, मुलहटी, परवल, आंवला, खांड, दही, दूध, नौंनीघृत इन्होंको पका नस्य देनेंसे ॥३२ ॥ भ्रूदोष, कनपटीस्थानका दर्द, चोटसे तथा क्षयरोगसे उपजा तथा दिनवृद्धिके अनुसार शिरोरोग इन्होंका नाश होता है ॥ ३३ ॥

अथ कुंकुमादिघृत ॥

कुङ्कुमं यष्टिमधुकं कुष्ठं च शर्करासमम् ॥ पक्वञ्च नवनीतेन घृतं नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ३४ ॥ नश्यन्ति पित्तजा रोगा दिनवृद्ध्योपवर्जनात् ॥ अर्द्धशीर्षविकारश्च प्रशमं याति सत्वरम् ॥३५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शिरोरोगचिकित्सा नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

और केशर, मुलहटी, कूठ, खांड, नौनीघृत इन्होंको समान भाग ले पकाके नस्यदेनेंसे ॥ ३४ ॥ पित्तसे उपजे तथा दिनवृद्धि शिरोरोग अधशिरा इन्होंका शीघ्रही नाश होता है ॥ ३५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने शिरोरोगचिकित्सानामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

अथ भ्रूदोष लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ अतिपठनशीलस्य सूक्ष्मवस्त्रेक्षणेन वा ॥ दूरालोकेन

चोष्णेन भ्रूदोषश्चोपजायते ॥ १ ॥ रक्तवाताश्रितो दोषः पित्तेन सह मूर्च्छितः ॥ भ्रूव्यथा च प्रभवति नासावंशोद्भवा शिरा ॥ २ ॥ व्यथते चोष्णवेलासु शीतेन स्याद्विशेषतः ॥ नेत्रमध्ये नीलपीतमण्डलानि च पश्यति ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–अत्यंत पढनेंसे सूक्ष्म वस्त्र आदिके दीखनें दूरसे देखनेंसे गरम वस्तुके सेवनेंसे भ्रूदोष रोग होजाता है ॥ १ ॥ रक्त वातके आश्रयहुआ दोषपित्तके संग मूर्च्छित हो भ्रूकुटियोंमे पीडाकर देता है और नासिकाकी ठंडीपे होनेवाली नस ॥ २ ॥ पीडित होती है गरमीके समय पीडा होती है और ठंडकमें ज्यादे पीडा होती है और नेत्रोंके मध्यमें नीले और पीले मंडल दीखै ॥ ३ ॥

भ्रूदोषकी चिकित्सा ॥

तस्यादौ च क्रियां कुर्य्याच्छिरा वेध्या प्रयत्नतः ॥ पूर्वोक्तं स्वेदनं कार्य्यं नस्ये षड्बिन्दुकादिकम् ॥ ४ ॥ देवदारु रजनी घनं सठी पुष्करं कुटजबीजमागधी॥कुष्ठरोध्रचविकायवासकं क्वाथितंच पुनरेव विस्रुतम् ॥ ॥ ५ ॥ तत्र गुग्गुलं विनिक्षिपेत्पुनः शुण्ठिसैन्धवफलात्रिकं हितम् ॥ चूर्णितं दधिपयोविमिश्रितं पाचितं च नवनीतकं च तत् ॥ ६ ॥ सिद्धमेव विदधीत शीतलं शर्करायुतमिदं हितनस्यम् ॥ नस्यकर्म शिरसो रुजापहं भ्रूललाटभुजशङ्खमूलकम् ॥ ७ ॥ शीर्षरोगमपि चार्द्धशीर्षकं तोदने च विहितेन केवलम् ॥ कर्णरोगमपि वारयत्यपि तैलश्च शिरोरोगहरं परम् ॥ ८ ॥ ताम्बूलपत्रस्य रसं विडङ्गं सिन्धूद्भवं हिङ्गुगुडेन युक्तम्॥ जलेन पिष्टं विहितं च नस्यं भ्रूशङ्खदोषांश्च क्रिमीन्निहन्ति ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भ्रूदोषचिकित्सा नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस रोगकी आदिमें यतनसे नाडी बांधनेंका कर्म करै और पहले कहाहुआ पसीनाका कर्म करवावे और नस्यमें षड्बिंदुक आदि तेलको देवै ॥ ४ ॥ और देवदार, हलदी, नागरमोथा, कचूर, पौहकरमूल, कूडाका बीज, पीपल, कूठ, लोध, चव्य,जवांसा इन्होंका क्काथ बना तिसको छनि ॥ ५ ॥ पीछे तिसमें गूगल, सूंठ, सैंधानमक, त्रिफला इन्होंको चूर्ण मिला दही दूध ये मिला और नौंनीघृत मिला ॥ ६ ॥ पीछे इसको पकावे सिद्ध होजावे तब शीतलकर

खांड मिला इसकी नस्य देनेंसे शिरके रोगका नाश और भ्रूकुटि, मस्तक, भुजा, कनपटीका स्थान ॥ ७ ॥ शिरोरोग अधशिराका रोग इन सब रोगोंकी पीडाका नाश होता है और इसीप्रकारसे सिद्ध कियाहुआ तेलसे कानके रोगकी पीडा दूर होती है और शिरके रोग, हरनेमें अतिश्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ और नागर पानका रस, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, जुई इन्होंको जलमें पीस नस्य देनेंसे भ्रूकुटि, कनपटी इनकी पीडा क्रिमियोंसे उपजी शिरकी पीडा, इन्होंका नाश होता है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषायां भ्रूदोषचिकित्सानाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अथ नासारोग लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ नासारोगो भवेद्धीमन्! क्रिमिजो दोषजः पुनः ॥ रक्तजश्च भिषक्छ्रेष्ठ लक्षणञ्च शृणुष्व मे ॥ १ ॥ वाताच्छिरोऽर्त्तिः शोफश्च सदोषे वातपैत्तिकम्॥कफजे सघनं शीतं क्रिमिजेऽस्त्रगुपवाहनम्॥२॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे बुद्धिमन् वैद्य! नासिकाका रोग क्रिमिज और दोषज तथा रक्तज होता है तिन्होंके लक्षणोंको सुन ॥ १ ॥ वातसे उपजेमें शिरमें पीडा होती है और वातपित्तसे उपजेमें शोजा होता है कफके नासा रोगमें करडाई और ठंढकपना होता है क्रिमिसें उपजे नासारोगमें रुधिर वहता हैं ॥ २ ॥

अथ नासारोगच्चिकित्सा ॥

नासापाके गुडशुण्ठ्या वातिके नस्यमेव च ॥ शर्कराघृतयष्ट्या च पैत्तिके नस्यमेव च ॥ ३ ॥ श्लैष्मिके सुरसावासारसेन विहितश्च तत् ॥ विडङ्गहिङ्गुमगधाः क्रिमिदोषे हिता मताः ॥४॥ रक्तजेऽस्त्रग्विरेकश्च शिरोरोगस्योपक्रमे ॥ ५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नासारोगचिकित्सानाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२ ॥

वातके नासापाक रोगमें गुड, सूंठ इन्होंकी नस्य देवै पित्तके रोगमें खांड, घृत, मूलहटी, इन्होंकी नस्य देनी श्रेष्ठ है॥३॥और कफके नासारोगमें तुलसी, वांसा, इन्होंके रसकी नस्य देनी श्रेष्ठ है॥४॥और क्रिमिदोषके रोगमें वायविडंग, हींग, पीपली, इन्होंकी नस्य देनी श्रेष्ठ है रक्तसे उपजे नासारोगमें रुधिरकी फस्त खुलावे शिरोरोगके अनुसार कर्म करै ॥ ५ ॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषायां नासारोगचिकित्सानामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

अथ इन्द्रलुप्तरोगका लक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ ॥ केशघ्नस्य चिकित्सां तु शृणु हारीत ! साम्प्रतम् ॥ रूक्षं सपाण्डुरं वातात्पित्ताद्रक्तं सदाहकम् ॥ १ ॥ कफान्वितं भवेत् स्निग्धं रक्तात् पाकं व्रजन्ति तत् ॥ सन्निपातेन सदृशं जायते सर्वलक्षणम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं— हे हारीत ! अब इंद्रलुप्त अर्थात् वालोंका नाश होता है तिसकी चिकित्सा कहते है वातदोषसे रूषा और पांडुरवर्ण होजाता है पित्तसे रक्तवर्ण और दाह होती है॥१॥कफसे चिकना वर्ण होता है और रक्तदोषसे स्थान पक जाता है सन्निपातके इंद्रलुप्तमें सब लक्षण मिलते है ॥ २ ॥

इंद्रलुप्तरोगकी चिकित्सा ॥

गुडेन सुरसाशुण्ठीमातुलुङ्गरसेन तु ॥ केशघ्ने वातसम्भूते धावनञ्च प्रशस्यते ॥ ३ ॥ त्रिफलावचारोहीतं गुडेनापि प्रपेषितम् ॥ धावनं कफसम्भूत चैन्द्रलुप्ते प्रशस्यते॥४॥पैत्तिके च हितं दुग्धं नवनीतान्वितं तथा॥ सिताशिवाफलं यष्टी पैत्तिके धावनं मतम्॥५॥भृङ्गराजरसं ग्राह्यं शृंगवेररसंतथा ॥ सौवीरकरसेनापि तिलान् पिष्ट्वा प्रलेपनम् ॥ पश्चात्कार्य्यं पूरुषेण स्नानमुष्णेन वारिणा ॥ ६ ॥ धवार्जुनकदम्बस्य शिरीषमपि रोहितम् ॥ क्वाथमेषां शिरोदद्रूं शमयेदिन्द्रलुप्तकम् ॥ ७॥ कुरबकस्य पुष्पेण जपायाःकुसुमेन च ॥ घृष्टस्य चेन्द्रलुप्तस्य कृतमेव निवारणम्॥ ८॥ पैत्तिकानि च लिङ्गानि दृष्ट्वा दुग्धेन धावनम् ॥ शीतलानि प्रदेयानि पैत्तिकेन विधीयते ॥ ९ ॥ धत्तूरपत्राणि च मागधीनां निशाविशालगृहधूमकुष्ठम् ॥ घृतेन युक्तञ्च जलेन पिष्टं शिरःप्रलेपे क्षतवारणं स्यात् ॥ १० ॥ पित्तकृते दोषयुते च रोगे पटोलपत्रं पिचुमन्दकं वा ॥ तथामलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च ॥ ११ ॥ निवार्य्यते मस्तकजं क्षतञ्च शिरोऽर्त्तिसंघान्विनिहन्ति चैतत् ॥ गजेन्द्रदन्त

स्य मषीं गृहीत्वा प्रलेपनं वा नवनीतकेन ॥ १२ ॥ तिलार्कभल्लातकदग्धमाषक्षारस्य लेपो नवनीतकेन ॥ सर्पस्य क्षारस्य तथा प्रयोगः खल्लाटके केशचयं करोति ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने इन्द्रलुप्तचिकित्सानामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

वातसे उपजे इंद्रलुप्त रोगमें गुड, तुलसी, सूंठ, विजौराका रस, इन्होंका लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥ और त्रिफला, वच, बहेडा, गुड, इन्होंको पीस कफसे उपजे इंद्रलुप्तको धोवना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ और पित्तके इंद्रलुप्तमें दूध, नौंनीघृत, मिसरी, आंवला, मुलहटी, इन्होंको पीस धोना श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ और भंगराका रस, अदरकका रस, कांजीका रस, इन्होंमें तिलोंमें पीस लेप करने पीछे गरम जलसे स्नान करै ॥ ६ ॥ और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, शिरस, बहेडा, इन्होंका क्वाथ बना धोनेंसे शिरके दाद, इंद्रलुप्त इन्होंकी शांति होती है ॥ ७ ॥ और रक्तकोरंटा, जासवंद, इन्होंके पुष्पोंको घिस लेप करनेंसे इंद्रलुप्तका नाश होता है ॥ ८ ॥ और पित्तसे उपजे इंद्रलुप्तमें दूधसें धोवना श्रेष्ठ है और शीतल वस्तु देवै पित्तको करनेंवाले इलाज नहीं करे ॥ ९ ॥ और धतुराके पत्ते, पीपल, हलदी, इंद्रायण, घरका धूंवा, कूठ, इन्होंको जलमें पीस घृतमें मिला शिरपे लेप करनेंसे इंद्रलुप्तक नाश होता है ॥ १० ॥ और पित्त दोषसे उपजे इंद्रलुप्त रोगमें परवलके पत्ते, नींब, आवलाका फल, इन्होंको पीस घृत और खांड मिला लेप करनेंसे ॥ ११ ॥ मस्तकपे उपजा केशनाशकरोग दूर होता है और यह लेप शिरकी पीडाओंके समूहोंका नाश होता है और हस्तीदातको फूकि तिसकी स्याहीको नौंनीघृतमें मिला लेप करनेंसे ॥ १२ ॥ और तिलआक, मिलावा, उडद इन्होंको दग्ध करि इन्होंके खारको नौंनीघृतमें मिला लेप करनेंसे तथा विधिसे निकासाहुआ सर्पके खारका लेप करनेंसे गंजाशिरपे केशोंके समूह बढजाते है ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त०हारीतसंहिताभाषायां इंद्रलुप्तचिकित्सानाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४४ ॥

अथ कर्णरोगलक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ शेषेण वा तोयभृतेन वापि मलेन वा चाति भवेद्रुजा च ॥ उच्छ्वासरोधाद्भवते तथापि वातादिकैर्वा कुपितैरथापि ॥ १ ॥ संसर्गदोषैरपि सर्वदोषैः क्रिमिव्रणेनापि तथैव चान्या ॥ संजायते कर्ण

रुजा नरस्य शृणोति तेनापि बहुस्वनांश्च ॥२॥ निःस्वानमेघध्वनिदन्तशब्दान् शूलं सदाहश्च शिरोव्यथा च ॥ वेणुस्वनं वत्स! शृणोति सर्वं पित्ते न तं विद्धि भिषग्वरिष्ठ! ॥ ३ ॥ तथाच मूर्च्छा प्रतनोति शब्दं मेघस्वनं वा कफजे शृणोति ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषे स्रवेत्पूयं सरक्तं वाति सत्तम! ॥ तथाचैवाभिघातेन जायते तीव्रवेदना ॥ ५ ॥ क्षतेन पूयं स्रवते बाल्याद्भवति चापरः ॥ तत्रापि लूतिदोषेण जायते कर्णजा रुजा ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहतेहैं—कानमें प्राप्तहुआ जल शेष रहजावे और मैलहो तिस्से अति पीडा होनेंसे ॥ १ ॥ ऊंचा श्वासके रोकनेंसे तथा वातादिक दोषोंके कुपित होनेंसे और संसर्गदोषोंसे संनिपातसे अथवा क्रिमियोंसे उपजा व्रण होनेंसे मनुष्यके कानमें अत्यंत पीडा होजाती है तिस्से बहुतसे शब्दोंको सुनता है ॥ २ ॥ शब्दोंको मेघके गर्जनके समान और दांतोंके चाबनेंके शब्दके समान सुनै शूलहो दाहहो शिरमें पीडाहो वह सब कुछ बीनके शब्दके समान सुनता है हे उत्तम! तिसरोगको पित्तसे उपजा जान ॥ ३ ॥ और शब्द सुननेंसे मूर्च्छासीहो और मेघके गर्जनेंसरीखा शब्द सुनै ये कफसे उपजा कर्णरोगके लक्षण है ॥ ४ ॥ और क्रिमिदोषसे उपजे कर्णरोगमें रक्त सहित राध झिरै और चोटसे उपजेमें तीव्र पीडा होती है ॥ ५ ॥ क्षतसे उपजेमें राध झिरै और बालकअवस्थामें लूतिरोगसे उपजे कर्णरोगमें पीडा उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥

अथ कर्णरोगकीचिकित्सा ॥

न कर्णरोगे जलपूरणञ्च न चूर्णमेतत्कथितं बिधिज्ञैः ॥ तैलं हितं स्वेदनमेव कर्णे सबाष्पबिन्दुश्च हितो मतश्च ॥ ७ ॥ सैन्धवं समुद्रफेनश्च सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ॥ सौवीरकरसेनापि वातिके कर्णपूरणम् ॥ ८ ॥ आर्द्रसौवीरस्य रसं शुण्ठीसैन्धवगुग्गुलम् ॥ माषकुल्माषरसेन तैलं पक्वाति चोष्णकम् ॥ ९ ॥ कटुतुम्बेन धार्य्येत कर्णरोगे प्रशस्यते ॥ १० ॥ यष्टीमधुकुष्ठमरिष्टपत्रं निशा विशालासुमनःप्रबालाः॥विपाचितं कर्णभवे च शूले सपैत्तिके वा घृतमेव शस्तम् ॥११॥ ब्राह्मीरसं सैन्धवकं विडङ्गं सभृङ्गराजस्य घृतेन युक्तम् ॥ तथैव सौवीररसश्च पथ्या स्रुतञ्च वस्त्रं परिपूर्णमेतत् ॥ १२ ॥ हितं भवेत्तच्छ्रुतिपूरणाय पूयं सरक्तं क्रिमिजं

निहन्ति ॥ १३ ॥ सर्वे प्रोक्ताः शिरोरोगास्तैलानि च घृतानि च ॥ जात्यादिकान्वा युञ्जीत शिरोरोगविदांवरः ॥ १४ ॥ वातहारीणि पथ्यानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ १५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सा नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

कानके रोगमें जल पूरना और चूर्ण पूरना हित नहीं कहा है कानरोगमें तेल पूरना और पसीना दिवाना हित है और फांभ दिवानेंका कर्म हित कहा है ॥ ७ ॥ और सेंधानमक, समुद्रभाग, इन्होंका बारीक चूर्ण बना कांजीके रसमें मिला वातसे उपजे कानके रोगमें हित है ॥ ८ ॥ और आलेवेरोंका रस, सूंठ, सेंधानमक, गूगल, उडदोंके वाकले, इन्होंमें तेलको पका गरम गरम ॥ ९ ॥ तिस तेलके पूरनेंसे कानका रोग दूर होता है और इस तेलको कडुई तुंबीमें घालके धरै ॥ १० ॥ और मुलहटी, कूठ, निंबके पत्ते, हलदी, इंद्रायणके पुष्प तथा कोमल २ पत्ते, इन्होंमें घृतको पका पित्तसे उपजी कर्णशूलमें पूरण करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ और ब्राह्मीका रस, सेंधानमक, वायविडंग, भंगराका रस, घृत, कांजीका रस, हरडै, इन्होंको पका पीछे वस्त्रमांहके छान कानमें पूरनेंसे ॥ १२ ॥ क्रिमियोंसे उपजी कानमें रक्तसहित राधका नाश होता है और कानमें पूरन करनेंमें यह हित कहा है ॥ १३ ॥ और जितने शिरके रोग कहे है तिन्होंमें तैल और घृतमें सिद्ध कियेहुए औषधोंको वरतै ॥ १४ ॥ और वातको हरनेंवाले विदाही तथा भारे ऐसे भोजन पथ्य कहे है ॥ १५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सानाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ उष्णातिक्षारकटुकैरभिघातेन वा पुनः ॥ सूक्ष्मवस्त्रेक्षणेनापि दोषाः कुप्यन्ति नेत्रजाः ॥ १ ॥ सहजा ये पराजेया वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥ रूक्षः कण्डुश्च तोदश्च शुष्कशीतास्रसन्ततिः ॥ २ ॥ वातिकं तं विजानीयात्पैत्तिकं शृण्वतः परम् ॥ ३ ॥ सरक्ते सदाहे नेत्रे उष्णस्रावश्च पैत्तिके ॥ शोफकण्डू सन्निपाते शीतंजड्ये कफात्मके ॥

॥ ४ ॥ द्वन्द्वजो मिश्रलिङ्गैश्च सर्वैस्तैः सान्निपातिके॥ एतद्विलक्षणं ज्ञात्वा चोपचारं शृणुष्व मे ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—गरम, अतिखारा, चर्चरा ऐसे भोजनोंसे तथा अभिघातसे और सूक्ष्म वस्त्र मांहके देखनेंसे नेत्रमें रहनेंवाले दोष कुपित होजाते है ॥ १॥ और जो स्वभावसेही उत्पन्न होतेहै वे कष्ट साध्य होते है अब तिन्होंके लक्षणोंको सुन नेत्ररूखाहों खाजिहो,चभकाहो शुष्कहो और शीतला रुधिर झिरै ॥ २ ॥ वह वातका नेत्ररोग जानना अब पित्तके लक्षणोंको सुन ॥ ३ ॥ पित्तसे उपजे नेत्ररोगमें गरम २ जल झिरै और लाल तथा दाहसहित नेत्र हों कफके नेत्ररोगमें शीतलता और जडताहो सन्निपातके नेत्ररोगमें शोजा और खाजि होती है ॥ ४ ॥ और दो दोषोंसे उपजे नेत्ररोगमें मिलेहुए लक्षण होते है और सन्निपातके नेत्ररोगमें सब लक्षण मिलते है ऐसे विलक्षण रोगको जानके तिसकी चिकित्साको मुझसे सुन॥५॥

अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा ॥

शुण्ठीसुराह्वसुरसाः सह काञ्जिकेन चोष्णेन धावनमिदं सह पैत्तिके च ॥ श्लेष्मोद्भवे त्रिफलकल्कमिदं समूत्रं प्रशस्तमन्यैः कथितं भिषग्वैरस्तथा ॥ ६ ॥ शुण्ठी सठी च रजनी त्रिफला सनिम्बा पत्राणि सैन्धवयुतानि तुषाम्लकेन ॥ शस्तं वदन्ति नयनेषु ससन्निपाते रक्तोद्भवे च सरुजे च तथाच शस्तम् ॥ ७ ॥ फलत्रिकं चारुनिशासु धूमो वचासु वर्षाभवसैन्धवेन ॥ प्रलेपनं श्लेष्मभवे विकारे सवातिके वा हितमेव शस्तम् ॥ ८ ॥ शुण्ठीसैन्धवतक्रेण ताम्रभाण्डे विघर्षितम् ॥ अपामार्गस्य मूलं वा मूलं धत्तूरकस्य वा ॥ ९ ॥ अञ्जनञ्च हितं तेषां वातनेत्रामयापहम् ॥ १० ॥ दुग्धोत्पन्नं नवनीतं यष्टी निम्बस्तिलाश्च संयोज्याः ॥ त्रिफला गुडसंयुक्ता लेपनं कफनेत्रजरोगघ्नम् ॥ ११ ॥ शुण्ठी सैन्धव तुत्थं मागधिका ताम्रभाजने घृष्टम् ॥ दध्ना घृतेनाञ्जनकं निहन्ति सर्वांश्च नेत्रगदान् ॥ १२ ॥ वातपित्तकफदोषसम्भवान्नेत्रयोर्बहुव्यथां हरते क्षणात् ॥ एक एव हरति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥ १३ ॥

और संठ, देवदार, तुलसी, इन्होंको कांजीमें क्वाथ बना गरम २ से पित्तके उपजे नेत्ररोगमें नेत्रोंका धोवना श्रेष्ठ है और कफसे उपजे नेत्ररोगमे त्रिफलाके कल्कको गोमूत्रमें पका धोवना श्रेष्ठ है ऐसे अन्य वैद्योंनेंभी कहा है ॥ ६ ॥ और संठ, कचूर, हलदी, त्रिफला,

नींबके पत्ते, सेंधानमक, इन्होंको जवोंकी कांजीमें सिद्ध करि सन्निपातसे उपजा नेत्ररोग तथा रक्तसे उपजा हुआ पीडा सहित रोगमें धोवना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ और त्रिफला, दारुहलदी, घरका धूंवा, वच, सांठी, सेंधानमक, इन्होंका लेपकरनेंसे कफसे उपजा अथवा वातसे उपजा नेत्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ और सूंठ, सेंधानमक, इन्होंको तांबाके पात्रमें तक्रके संग घिस अंजन घालै अथवा ऊंगाकी जड तथा धतूराकी जडको घिस ॥ ९ ॥ अंजन घालनेंसे सब प्रकारके नेत्ररोगोंका नाश होता है ॥ १० ॥ और दूधमें उत्पन्न हुआ नौंनीघृत, मुलहटी, नींब, तिल, त्रिफला, गुड, इनसबोंको मिला पीसि लेप करनेंसे उपजा नेत्ररोगका नाश होता है॥ ११॥ और सूंठ, सेंधानमक, नीलाथोता, पीपली, इन्होंको तांबाके पात्रमें घिस दही और घृतके संग नेत्रमें आंजनेंसे नेत्रके सब रोगोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ और वात, पित्त, कफ, इन-दोषोंसे उपजे हुए नेत्ररोगकी बहुतसी पीडाका नाश शीघ्रही होता है और एक सहौंजनाके पत्तोंका रसमेंही शहद मिला नेत्रोंमें आंजनेंसे सब नेत्ररोग दूर होते है ॥ १३ ॥

अथ नेत्रके फूलेकी चिकित्सा ॥

मिथ्याहारविहारैस्तु नेत्रे पुष्पश्च जायते ॥ प्रथमं सुखसाध्यं स्याद्द्वितीयं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ तृतीयं शस्त्रसाध्यं तु चतुर्थं तदसाध्यकम् ॥ ॥ १५ ॥ शङ्खपुष्पं तथा रोध्रं शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ काञ्जिकेन तु संपिष्टा छायाशुष्का भिषग्वर ! ॥ १६ ॥ वातिके काञ्जिकेनापि पैत्तिके पयसा हिता ॥ श्लेष्मले मूत्रसंयुक्ता पुष्पस्याञ्जनके हिता ॥ १७ ॥ भृङ्गराजरसेनापि त्रिदोषशमने हिता ॥ हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥ १८ ॥ बिभीतकस्य मज्जा वा शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥ १९ ॥ नाशयेत्तिमिरं कण्डूपाटलान्यर्बुदानि च॥ हन्ति पुष्पं सपटलं रात्र्यान्ध्यञ्च नियच्छति ॥ २०॥ क्षताभिघाति शोकेन अग्निदग्धं च वा पुनः ॥ काचश्च नीलिका चैव सिद्धिमिच्छन्ति नेत्रयोः ॥ २१ ॥

अपथ्य आहारविहार करनेंसे नेत्रमें फूला होजाता है एकतो सुखसाध्य होता है और दूसरा कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और तीसरा शस्त्रसाध्य होता है चौथा असाध्य होता है ॥ १५ ॥ हे उत्तमवैद्य ! शंखपुष्पी, लोध, शंखकी नाभि इन्होंको कांजीमें पीस छायामें सुखा ॥ १६ ॥ तिस अंजनको वातके फुलेमें कांजीके संग और पित्तमें दूधके संग कफकेमें

गोमूत्रमें घिस नेत्रमें घालना हित है ॥ १७ ॥ और त्रिदोषसे उपजे फूलमें भंगराके रसके संग घालै और हरडै, वच, कूठ, पोपल, मिरच, ॥ १८ ॥ बहेडाकी मज्जा, शंखकी नाभि, मनशिल, इन्होंको समान भाग ले बकरीके दूधमें पीस ॥१९॥ अंजन घालनेंसे तिमिररोग, नेत्रकी खाजी, नेत्रके पटलदोष, अर्बुद रोग, नेत्रका फूला, पटलमें प्राप्तहुआ फूला, रातौंधा, इन्होंका नाश होता है ॥ २० ॥ और चोटआदिके अभिघातसे शोकसे तथा अग्निसे दग्धहुआ काचपटल और नीलिका, इननेत्ररोगोंकीभी सिद्धि होजाती है ॥ २१ ॥

अथ नेत्रपटलका लक्षण ॥

बाल्याद्दोषबलादेवदुष्टद्वाराभिषेवणात् ॥ वार्द्धक्याच्च पटलं स्यात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२२॥ वातात्सकश्मलं रूक्षं पित्तान्नीलं च पीतकम् ॥ कफेन शुभ्रं सघनं रक्तेनारक्तकं विदुः ॥ २३ ॥ सन्निपातादिलिङ्गैश्च अतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥ २४ ॥

बालक अवस्थासे दोषके बलसे और दूषित भोजन खानेंसे वृद्ध अवस्थामें नेत्रमें पटल होजाता है तिसके लक्षणको कहते है ॥ २२ ॥ वातसे उपजा मैलाहो और पित्तसे नीलावर्णवालाहो अथवा पीलाहो और कफसे करडाहो सफेदहो और रक्तके दोषसे लाल पटल होजाता है ॥ २३ ॥ और सन्निपातसे उपजेहुएमें मिलेहुए लक्षण होते है अब इन्होंकी औषधको कहते है ॥ २४ ॥

अथ नेत्रपटलचिकित्सा ॥

शुण्ठीवचारजनितुत्थमनःशिला च शोभाञ्जनाञ्जनविशालज्जटा च शङ्खम् ॥ वास्तूकमूलमधुसैन्धवकट्फलानां सौवीरकेण परिमर्दनवर्तिरेषा ॥ ॥२५॥ छायाविशुष्कनयनाञ्जनके प्रशस्तं नाशं नयेत्पटलनेत्रजरोगसङ्घान् ॥ २६ ॥ साञ्जना सकट्फलका हरीतकी मनःशिला ॥ गुडेन कट्फलश्चापि निहन्ति नेत्रप्रच्छदम् ॥ २७ ॥ महाविभीतकफलस्य च शङ्खनाभि घृष्टं ससैन्धवयुतं पयसाम्लकेन ॥ वर्तिर्गुडेन नयनाञ्जनके हिता च पित्तप्रसूतपटलस्य निवारणञ्च ॥ २८ ॥

सूंठ, वच, हलदी, नीलाथोथा, मनसिल, सहौंजना, कालासुरमा, इंद्रायण, जटामांसी, शंख, वथुवाकी जड शहद, सैंधानमक, कायफल इन्होंको कांजीमें खरल करि बत्ती बना ॥ २५ ॥ छायामें सुखा नेत्रोंमें आंजनी श्रेष्ठ कही है पटलरोग, अन्य नेत्र रोगोंका समूह;

इन्होंका नाश करती है ॥ २६ ॥ और काला सुरमा, कायफल, हरडै, मनसिल इन्होंके पीस अंजनेंसे अथवा गुडके संग कायफलको पीस नेत्ररोगोंका नाश होता है॥ २७ ॥ बडा बहेडा, शंखकी नाभि, सेंधानमक इन्होंको दूधमें तथा कांजीमें घिस पीछे गुड मिला बत्ती बना नेत्रमें आंजनेंसें नेत्रके पटल रोगका नाशहोता है ॥ २८ ॥

नेत्ररोगमेंवर्ज्य ॥

सधूमञ्च सवातञ्च रूक्षमुष्णादिकं तथा ॥ कटुकाम्लं व्यवायञ्च वर्जये न्नेत्ररोगिणाम् ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नेत्ररोग चिकित्सानाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

और नेत्ररोगवालेनें धूवासहित वायु रूषा और गर्म भोजन कडुआ तथा खट्टा भोजन और मैथुन करना ये वर्ज देने चाहिये ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनु०हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सानामपंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

अथ मुखरोगकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ ओष्ठौ च स्फुटितौ यस्य वातिवाहेन वातिकात् ॥ तस्य सर्पिर्म्रक्षणञ्च ओष्ठदारणवारणे ॥ १ ॥ सदाहञ्च भवेत्सौख्यं पैत्तिकं तं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

आत्रेयजो कहते हैं—और जिसके ओष्ठ फटे रहै और वायु वहै वह वातसे उपजा मुखरोग जानना तहां मुख फटे हुएको निवारणकेवास्ते घृतकी मालिस करै ॥ १ ॥ और दाहहो कभी सुखहो तहां पित्तसे उपजा रोग जानना ॥ २ ॥

ओष्ठ रोगकी चिकित्सा ॥

मधुना नवनीतेन ओष्ठयोर्म्रक्षणं मतम्॥लेपनं चौष्ठरोगेषु शर्करासहितं दधि ॥ ३ ॥ सरक्तमोष्ठरोगञ्च दृष्ट्वा रक्तावसेचनम् ॥ धवार्जुनकदम्बानां प्रलेपः स्यात्सुखावहः ॥ ४ ॥

और नौनीघृत शहद इन्होंकी मालिस करना श्रेष्ठ है और ओष्ठरोगोंमें खांड दही, इन्होंकी मालिस करना श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ और रक्तसहित ओष्ठरोग जानके रक्त निकलाना श्रेष्ठ है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब इन्होंका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ दंतरोग लक्षण ॥

कृष्णा दन्तावलिर्यस्य दन्तमूलं च वातिकात् ॥ चलनं वा प्रदृश्येत वातिकश्च विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥ पैत्तिकात्पित्तवाहश्च दन्तमांसं विनिर्दिशेत् ॥ श्लैष्मिकेदन्तपाके च शोफः स्याच्छ्वेतता भृशम्॥६॥रक्तजे जायते कण्डू रक्तस्रावश्च दृश्यते॥ सूयते दन्तमांसश्च सरक्ते दन्तपुटे तथा॥ ७ ॥ सच्छिद्रं दन्तमूलञ्च सबलं शूलमेव च ॥ दन्तमांसं विशीर्य्येत क्रिमिजा दन्तरुग्भवेत् ॥ ८ ॥

और जिसके दांत और दांतोंकी जड काले होजा और दांत हिलनें लग जावे वह वात से उपजा रोग जानना ॥ ५॥ और पित्तसे उपजेमें पित्त वहै दातोंपै मांस बढ जावे और कफसे उपजे दंत पाकरोगमें शोजा हो और बहुतसे सफेद होजावे ॥ ६ ॥ और रक्तसे उपजेमें खाजिहो रक्तस्रावहो और दांतोंके मांसमें शोजाहो और दांतोंके पुट रक्तहो ॥ ७ ॥ दांतोंकी मूल छिद्रसहित दीखै और अत्यंत शूलहो और दांतोंका मांस विखर जावे वह क्रिमिज दंतरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ दंतरोग चिकित्सा ॥

वचायवानीसहचित्रकेण सिन्धूत्थविश्वासहसिन्धुवारम्॥ कल्कं तथोष्णञ्च सदन्तरोगे मुखे च गण्डूषशतानि पञ्च ॥ ९ ॥ सर्वेषु मुखरोगेषु हितमेतत्प्रशस्यते ॥ वचासैन्धवशुण्ठ्या च घर्षणं दन्तमूलके ॥ १० ॥ यवानीं च वचां रात्रौ दन्तमूले च धारयेत् ॥ पित्तजदन्तरोगेषु नवनीतं सशर्करम् ॥ ११ ॥ धात्रीफलेन संघृष्टं दन्तरोगनिवारणम् ॥ श्लैष्मिकदन्तरोगेषु हरीतक्या गुडेन वा ॥ १२ ॥ घर्षणं च प्रशस्तं च त्रिफलाक्काथसंयुतम् ॥ अहिमारकमूलस्य क्काथो गण्डूषधारणात् ॥ १३ ॥ खदिरस्य तथा क्काथो यवानीक्काथ एव च ॥ क्काथश्च निम्बमूलस्य दन्तरोगनिवारणः ॥ १४ ॥ रक्तजे च विकारे च घर्षो लवणसर्षपैः ॥ रक्तञ्च स्रावयेत्तस्य इष्टमोष्ठपुटे च तत् ॥ १५ ॥ विडङ्गं हिङ्गु सिन्धुश्च वचा चूर्णेन घर्षयेत् ॥ क्रिमिजदन्तरोगेषु हितमेतत्प्रशस्यते ॥ १६ ॥

और वच, अजमान, चीता, सेंधानमक, सूंठ, संभालू, इन्होंका कल्क बना गरम २ दंत रोगमें लेपित करै और मुखमें पानसौ कुरले धारण करै ॥ ९ ॥ और सब मुखरोगोंमें यही विधि करनी श्रेष्ठ है और वच, सेंधानमक, सूंठ, इन्होंको दांतोंकी जडमें घिसै ॥ १०॥ और अजमान, वच, इन्होंको रात्रीमें दांतोंकी जडमें धारण करै और पित्तसे उपजे दंतरोगोंमें नौंनीघृत खांड इन्होंको लगावे ॥ ११ ॥ और आंवलाके फलको घिसके लगानेंसे दंतरोगोंका निवारण होता है और कफसे उपजे दंतरोगमें हरडै, गुड, इन्होंको ॥ १२ ॥ घिस त्रिफलाके क्राथमें मिला दांतोंकै लगानेंसे दंतरोग दूर होता है और गंधी हिंवरकी जडका क्राथ बना कुरले धारण करै ॥ १३॥ तथा खैरका क्राथ अजमानका क्राथ नींबकी जडका क्राथसें दंतरोगका निवारण होता है ॥ १४ ॥ और रक्तसे उपजे दंतरोगमें नमक, सेंधानमक इन्होंसे दांतोंको घिसै और ओष्ठ पुटमांससे रक्तको झिरवावे ॥ १५ ॥ और वायविडंग, हिंग, सेंधानमक, वच, इन्होंके चूर्णको दांतोंकै घिसै और क्रिमिज दंतरोगमेंभी यही विधि करनी हित है ॥ १६ ॥

अथ जिह्वारोग लक्षण ॥

जिह्वायां पिटिका यस्य जिह्वापाकं विनिर्दिशेत् ॥वातिके सरुजा कृष्णा पित्तेन दाहसंयुता॥१७॥श्लेष्मणा सघना श्वेता सर्वै वै सान्निपातिके॥१८॥

और जिसकी जिव्हापे पिडिकाहों वह जिव्हापाक जानना वातसे उपजी पिडिका पीडा सहित होती है और पित्तसे काली हों दाह करके युक्त हों ॥१७ ॥ कफसे करडी हो सफेद वर्णवाली हों और सन्निपातसे उपजी पिडिकाओंमें सब लक्षण मिलते है ॥ १८ ॥

अथ जिव्हारोग चिकित्सा ॥

वचाभया विडङ्गानि शुण्ठी सौवर्चलं कणा॥ घृतेन युक्तं जिह्वायां घर्षणं वातिके गदे ॥ १९ ॥ काञ्जिकेन तु तक्रेण सोष्णगण्डूषधारणम् ॥ यष्टीकं चन्दनं मुस्ता मागधी मधुसंयुतम्॥ २० ॥ लेपनं पैत्तिके दोषे जिह्वास्फोटकवारणम् ॥ दुग्धेन च शीतेनापि हन्ति गण्डूषधारणम् ॥ ॥ २१ ॥ दन्तरोगे तथा जिह्वापाके तच्च हितं विदुः ॥ रोध्रार्जुनकदम्बानां क्राथश्चोष्णः सुखावहः ॥ २२ ॥ श्लेष्मोद्भवे मुखपाके हितं गण्डूषधारणम् ॥ रक्तजेषु विकारेषु रक्तस्रावश्च कारयेत् ॥ २३ ॥ कण्टकेनापि जिह्वायाश्चीरयित्वा च लेपनम् ॥ मूर्वामुस्ताभयाशुण्ठीमागधीर

जनीद्वयम् ॥ २४ ॥ गुडेन मधुना युक्तं लेपनं रक्तजिह्वके ॥ मरिचश्च वचा कुष्ठं हरीतक्याश्च चूर्णितम् ॥ घर्षणं श्लेष्मणि जाते जिह्वापाके हितं विदुः ॥ २५ ॥

और वच, हरडै, वायविडंग, सूंठ, कालानमक, पीपली, इन्होंको घृतमें युक्तकरि जिव्हापे घिसनेंसे वातसे उपजा जिव्हारोग दूर होता है ॥ १९ ॥ और कांजी, तक्र इन्होंको गरम २ करि कुरले धारण करै और मुलहटी, चंदन, नागरमोथा, पीपली इन्होंको पीस शहदमें मिला ॥ २० ॥ लेप करनेंसे पित्त दोषसे उपजा जिव्हास्फोटक रोग दूर होता है और ठंढा २ दूधके कुरले धारण करना, ॥ २१ ॥ दंतरोग, जिव्हापाक, इन्होंमें हित है और लोध, अर्जुनवृक्ष, कदंब, इन्होंका क्वाथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ मुखमें धारण करना ॥ २२ ॥ कफसे उपजा मुखपाक रोगमें हित है और रक्तसे उपजे विकारोंमें रक्त निकलाना श्रेष्ठ है॥२३॥ कांटेसे जिव्हाको चीरके तहां मूर, नागरमोथा, हरडै, सूंठ, पीपली, दोनों हलदी, ॥ २४ ॥ गुड शहद, इन्होंको मिला रक्तसें उपजे जिव्हारोगपे लेप करै और मिरच, वच कूट, इन्होंका चूर्ण बना कफसे उपजा जिव्हारोगमें मसलना हित है ॥ २५ ॥

॥ अथ गलगडूरोगके लक्षण ॥

तिलपिच्छिलगौल्यादिसेवनातिद्रवादपि ॥ नवोदकेन कफजो जायते घण्टिकागदः ॥ २६ ॥ जिह्वामूले कण्ठसन्धौ श्लेष्मरक्तसमुद्भवा ॥ तेनास्य शोषो जडता ज्वरो मन्दश्च जायते ॥ २७ ॥ शिरोव्यथारुचिस्तन्द्रा तथास्य जडता भवेत् ॥

तिल और झागोंवाला तथा गुली बंधनेंवाला और पतला ऐसे भोजनके सेवनेंसे और नवीन जलसे कफसे उपजाहुआ घंटिकासंज्ञकरोग होजाता है ॥ २६ ॥ जिह्वाकी मूलमें कंठकी संधिमें कफ रक्तसे उपजाहुआ यह रोग होता है तिस्से मुखमें शोषहो जडताहो मंदज्वरहो ॥ २७ ॥ शिरमें पीडाहो अरुचिहो तंद्राहो मुखमें जडताहो. ॥

अथ गलगडु रोगकी चिकित्सा ॥

तर्जन्यां कण्ठमध्ये तु संपीड्य रक्तग्रन्थिका ॥ २८ ॥ परिस्रुतं तथा रक्तं तदा विम्लापनं हितम् ॥ वचाश्च मरिचं कृष्णाचूर्णं तत्र निधापयेत् ॥ ॥ २९ ॥ मर्दनं स्यात्कण्ठदेशे तेन ग्रन्थिर्विलीयते ॥ धान्यनागरजीमूतवचा ह्येताः समांशकाः ॥ ३० ॥ क्वाथः स्वेदो घण्टिकाया मुखे गण्डूषधारणम् ॥ दिवारात्रौ वचाग्रन्थिं मुखे संधारयेद्भिषक् ॥ ३१ ॥ तेन सौख्यं भवेत्तस्य मुखरोगाद्विमुच्यते ॥ ३२ ॥

तहां तर्जनी अंगुलीसे कंठके मध्यमें रक्तकी ग्रंथिको पीडित करै ॥ २८ ॥ तिस्से रक्त निकस जावे तब विम्लापन कर्म करना हित है तहां वच, मिरच, पीपल, इन्होंके चूर्णको बुरकावे ॥ २९ ॥ और कंठके मध्यमें मर्दन करै तिस्से वह ग्रंथि शांत होजाती है और धनियां, सूंठ, नागरमोथा, वच, इन औषधोंको समान भागले ॥ ३०॥ क्काथ बना पसीना दिवावे और गंडुरोगवाले पुरुषके मुखमें इस क्काथके कुरले धारण करवावे ॥३१॥ और दिनराति मुखमें वचको धारण रखवावे ऐसे करवानेंसे रोगाको सुख उत्पन्न होता है और मुखरोगसे छुट जाता है ॥ ३२ ॥

अथ गलशुंडिका रोगके लक्षण ॥

गले घण्टिकामार्गे च रक्तश्लेष्मविकारजा ॥ लम्बिका वर्धते नृणां विज्ञेया गलशुण्डिका ॥ ३३ ॥ रुन्धते चास्य मार्गश्च नेत्रस्रावः प्रदृश्यते ॥ शिरोऽर्त्तिः श्वासकासश्च ज्वरेणैव प्रपच्यते ॥ ३४ ॥

गलमें घाटीके मार्गमें रक्तकफके विकारसे उपजी हुई लंबी ग्रंथि हो जाती है मनुष्योंके वह गलशुंडिका रोग कहाता है ॥ ३३ ॥ वह रोग मुखके मार्गको रोकलेता है और नेत्रोंमें स्राव होता है शिरमें पीडाहो श्वासहो खांसीहो ज्वरकी तरह बाधाहो ऐसा यह रोग होता है ॥ ३४ ॥

अथ गलशुंडिका रोगकी चिकित्सा ॥

आशुकारी महाप्राज्ञः शीघ्रं कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ शस्त्रेण शुण्डिकां छित्वा कुर्य्याद्विम्लापनं हितम् ॥ ३५ ॥ मागधीमरिचं पथ्यावचाधान्ययवानिकाः ॥ क्काथः सोष्णः स्वेदमायाद्गलशुण्डोपशान्तये ॥ ३६ ॥ दिवारात्रौ यवान्याश्च मुखे संधारणं हितम् ॥ मर्दनं कण्ठदेशे तु तेन संपद्यते सुखम् ॥ ३७ ॥ सिद्धार्थकं वचा कुष्ठं रजनी पारिभद्रकम् ॥ गृहधूमं सलवणं कण्ठे वा लेपनं हितम् ॥३८ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि यानि तानि महामते !॥ न गौल्यं पिच्छिलं सेव्यं तैलं नैव गलामये ॥ ३९ ॥ इति गलशुण्डिकाचिकित्सा॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मुखरोगचिकित्सानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

शीघ्रकार्य करनेंवाला महान् वैद्य इस रोगका इलाज शीघ्रही करै शस्त्रसे गलशुंडिकाको छेदनकर विम्लापन कर्म करना हित है ॥ ३५ ॥ और पीपली, मिरच, हरडै, वच, ध-

नियां, अजमान, इन्होंका क्काथ बना तिस्से पसीना दिवानेसे गलशुंडिकारोगकी शांति होती है ॥ ३६ ॥ और दिनराति अजमानको मुखमें धारण रखना हित है और कंठकी जगह मर्दन करना हित है तिस्से रोगीको सुख उत्पन्न होता है ॥ ३७ ॥ और सिरसम, वच, कूठ, हलदी, नींब, घरका धूंवा, नमक, इन्होंका लेप कंठपे करना हित है ॥ ३८ ॥ और हे महामते ! ज्वरमें कहे हुए जो पथ्य है उन्होंको करै और गलरोगमें गुड़ी बंधनेंवाला तथा पिच्छल भोजन और तेलको नहीं सेवै ॥ ३९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने मुखरोगचिकित्सानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अथ वृद्धक्षीणानां वाजीकरणम्॥

आत्रेय उवाच ॥ क्लैब्यं पञ्चविधं प्रोक्तं समासेन शृणुष्व मे ॥ १ ॥ निरोधातिव्यवायेन वयःश्रान्तेऽपि मानवे ॥ जायते रेतसो हानिः क्लीबत्वञ्चापि जायते ॥ २ ॥ त्रिविधं जायते क्लैब्यं मानसं रेतसः क्षयात् ॥ सहजं शुष्कसंस्वेदाज्जायते क्लीबता नरे ॥ ३ ॥ यस्य वै ममता चित्ते दृष्ट्वा स्त्रीणां विरागिताम् ॥ स्पर्शने स्वेदकं पञ्च तत्साध्यं मानसं स्मृतम् ॥ ॥ ४ ॥ यस्य विद्वेषतः स्त्रीणां व्यवायेन मनःक्षितिः ॥ ध्वजभङ्गो भवेच्छीघ्रं तत्क्लैब्यं रेतसः क्षयात् ॥ ॥ ५ ॥ समप्रकृतिर्यस्यान्यः सोऽप्यसाध्यतमः स्मृतः ॥ मनःक्षये मनोद्रेको मुग्धस्त्रीसहसङ्गमः ॥ ६ ॥ सरागविभ्रमकथालापैः संवर्द्धते मनः ॥ शुक्रक्षये शुक्रवृद्धिं कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—नपुंसकपना पांचप्रकारका होता है सो संक्षेपमात्रसे कहते है सुन ॥ १ ॥ मैथुनके रोकनेंसे अथवा ज्यादे मैथुन करनेंसे अवस्थाकी हार होनेंसे मनुष्योंकै वीर्यकी हानिहो नपुंसकपना होजाता है ॥ २ ॥ मनुष्योंके तीनप्रकारका नपुंसकपना होता है मानस, वीर्यक्षय, और शुष्क पसीनासे उपजा सहज ॥ ३ ॥ ऐसे होता है जिसपुरुषकै स्त्रियोंके विरागभाव देखिकै मनमें ममताहो और स्पर्श करनेंमें पसीना आजावे वह मानस कहता है सुखसाध्यहोता है ॥ ४ ॥ और जिसका स्त्रियोंके संग वैरभाव रहे मैथुन करनेंसे

मनकी हानिहो और शीघ्रही लिंगका भंग होजाय वह वीर्यक्षय होनेंसे नपुंसकपना होता है ॥ ५ ॥ और जिसकी सदा समान प्रकृति रहे वह असाध्यरोग कहाता है मनके क्षय होनेंमें मनको बढावे और सुंदर भोली स्त्रीके संग विषय करवावे ॥ ६ ॥ और स्नेह सहित विभ्रमके वचन, स्त्रियोंकी कथाके आलाप इन्होंसे मनको बढावे और वीर्यक्षयके नपुंसकपनेमें वीर्यवर्द्धक औषधोंको कहते है ॥ ७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिके उपाय ॥

विदारिकागोक्षुरमूषकानां धात्रीफलं स्यात्सहसैन्धवानाम् ॥ समानि चैतानि च मागधीनां युक्तं सिताढ्यं पयसा पिबेच्च ॥ ८ ॥ विषं बृहत्यौ मगधात्रिकण्टास्तथात्मगुप्ता सशतावरी च ॥ सशर्करं गोपयसो घृतेन पानं नराणां प्रकरोति बीजम् ॥ ९ ॥ यवगोधूममाषाणां निस्तुषाणाञ्च चूर्णकम् ॥ दुग्धेनेक्षुरसेनापि संस्कृत्य तु घृतेन तु ॥ १० ॥ पाचितं वटकश्रेष्ठं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ तस्योपरि पयःपानं पिप्पलीशर्करान्वितम्॥ ११॥यवक्षारविदारीञ्च माषचूर्णं तथा यवान् ॥ मरिचानां सिताढ्यञ्च घृतानाञ्च प्रपोलिकाम् ॥ १२ ॥ पाचयेद्भक्षयेत्प्रातः पयःपानं तथोपरि ॥ वीर्य्यञ्च कुरुते पुंसां वनिता रमते भृशम् ॥ १३ ॥ गुडूची शतमूली च स्वयंगुप्ता बला तथा ॥ १४ ॥ शाल्मलीमुसलीमूलं चूर्णं गोपयसान्वितम् ॥ पानं नराणां श्रेष्ठं तु बीजमिन्द्रियकारकम् ॥ १५॥

विदारीकंद, गोखरू, मूषापर्णी, आवला, सेंधानमक, पीपली, इन्होंको समान भाग ले मिसरी मिला गौके दूधके संग पीवे ॥ ८ ॥ और अतीश, दोनों कटेहली, पीपली, गोखरू, कौंचके बीज, शतावरी, इन्होंका चूर्ण बना खांड मिला पीछे गौका दूध और घृतके संग पीनेंसे मनुष्योंके वीर्यवृद्धि होती है ॥ ९ ॥ और जव, गेहूं, उडद इन्होंके तुष उतारि चूर्ण बना पीछे दूधमें और ईखके रसमें मिला घृतमें ॥ १० ॥ पका तिनको प्रातःकाल उठके खावे और तिसके ऊपरि पीपली, खांड इन्होंसे युक्त दूधको पीवै ॥ ११ ॥ और जवाखार, विदारीकंद, उडदोंका चूर्ण, जव, मिरच, इन्होंका चूर्ण बना तिसमें मिसरी मिला पीछे पोली बना घृतमें सिद्ध करलेवे इनपोलियोंको ॥ १२ ॥ प्रातःकाल भक्षण करै और ऊपरसे दूध पीवे ऐसे करनेंसे पुरुषोंका वीर्य बढता है और स्त्रीकेसंग बहुतसा रमण करता है ॥ १३ ॥ और गिलोय, शतावरी, कौंचके बीज, खरैंहटी ॥ १४ ॥ सालवन, मुसलीकी जड इन्होंका चूर्ण बना गौके दूधके संग पीना श्रेष्ठ है और मनुष्योंकी इंद्रियमें वीर्यको बढानेंवाला है ॥ १५ ॥

अथ विदार्यादि औषध॥

विदारिकन्दांशुमती बृहत्यौ काकोलिका भीरु पुनर्नवे द्वे ॥ शृङ्गाटकं मागधिका बला च चूर्णं सिताढ्यं सितया प्रयोज्यम् ॥ १६ ॥ जीर्णे पयःपायसमेव योज्यं करोति पुंसां बलमेवमोजः ॥ स्त्रीणां सहस्रं भजतेऽपि षण्ढो मासद्वयोपस्तुतमेव शस्तम् ॥ १७ ॥

और विदारीकंद, शालवन, दोनोंकटेहली, काकोली, शतावरी, दोनोंप्रकारका सांठी, सिंघाडा, पीपली, खैरेहटी इन्होंका चूर्ण बना मिसरी मिला ॥ १६ ॥ दूधके संग पीनेसे पुरुषोंके बल और वीर्य बढता है और हीजडा हो वह भी हजारों स्त्रियोंके संग रमणकर सकता है दो महिनोंतक इस औषधका सेवना श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिमें वर्ज्य॥

वर्जयेत्कटुकं चाम्लं तीक्ष्णं चोष्णं विदाहि च ॥ रूक्षं वापि च सौवीरं प्रोक्तानि चेन्द्रियक्षतौ ॥ १८ ॥ पलाण्डुयवनं कन्दांस्तिलान्माषान्यथाबलम् ॥ तथौदनं विशालीनां दुग्धं चेक्षुरसं तथा ॥ १९ ॥ वास्तुकं चिल्लकानाञ्च पथ्ये शुक्रक्षयादपि ॥ वर्जित्वा सूरणं शुण्ठीं योगयुक्तो न योजयेत्॥२०॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

और चर्चरा, खट्टा, तीक्ष्ण ऐसे भोजनको वर्ज दे और गरम, विदाही, रूषा ऐसा भोजन, कांजी, इन्होंको वीर्यक्षयमें वर्ज देवै ॥ १८ ॥ और प्याज, तथा अन्यकंद, उडद, और शालीसंज्ञक चावलोंका भात, दूध, ईखका रस ॥१९॥ वथुआका शाक और चिल्लक अर्थात् अन्य वथुवाका भेद, इन्होंको अग्नि बलके अनुसार खावे ये वीर्यक्षयमें पथ्य है और जमीकंद, सूंठ, इन्होंको नहीं देवै ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

अथ वंध्यारोगके लक्षण॥

आत्रेय उवाच ॥ वन्ध्या स्यात्षट्प्रकारेण बाल्येनाप्यथवा पुनः ॥

गर्भकोशस्य भङ्गाद्वा तथा धातुक्षयादपि ॥ १ ॥ जायते न च गर्भस्य सम्भूतिश्च कदाचन ॥ काकवन्ध्या भवेच्चैका अनपत्या द्वितीयका ॥ ॥ २ ॥ गर्भस्रावी तृतीयाऽथ कथिता मुनिसत्तमैः ॥ मृतवत्सा चतुर्थी स्यात्पञ्चमी च बलक्षयात् ॥ ३ ॥ तस्योपक्रमणं वक्ष्ये येन सा लभते सुतम् ॥ ४ ॥ अजातरजसां स्त्रीणां क्रियते यदि मैथुनम् ॥ तेनैव गर्भसङ्कोचं भगत्वमुपगच्छति ॥ ५ ॥ तेन स्त्री भवते वन्ध्या गर्भं गृह्णाति नो भृशम् ॥ सा च कष्टेन भवति रामा गर्भवती भिषक्! ॥ ६ ॥ औषधैश्चोपचारैश्च सिद्धिश्चापि न संशयः ॥ अनपत्यबलेनापि जायते भिषजां वर! ॥ ७ ॥ न भवेत्काकवन्ध्या च अनपत्यापि सिध्यति ॥ सिध्यन्ती क्षीणधातुत्वाज्जायते सा भिषग्वर! ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—वंध्या रोग छह प्रकारका होता है. बालक अवस्थामें गर्भकोशके भंग होजानेंसे अथवा धातुके क्षय होनेंसे ॥ १ ॥ गर्भ कदाचित्भी नहीं ठहरता है और एक तो काकवंध्या होती है दूसरी अनपत्या होतीहै ॥ २ ॥ तीसरी गर्भस्रावी होती है चौथी मृतवत्सा होती है और पांचवी बलके क्षय होनेंसे होती है ॥ ३ ॥ अब इन्होंकी चिकित्सा कहते है जिसकरके सुख उत्पन्न होता है॥४॥जो यदि रजस्वला नहीं हुई हो ऐसी स्त्रीके संग मैथुन कर लेवे तो गर्भस्थान भगमें संकोचको प्राप्त होजाता है॥५॥तिसकरके स्त्री वंध्या हो जाती है विशेषकरिके गर्भको धारण नहीं करती है हे वैद्य! वह स्त्री कष्टसे गर्भवती होती है॥६॥और हे उत्तम वैद्य! जो अनपत्या वंध्या होती है वह औषधोंसे गर्भवती होती है॥७॥ फिर वह काकवंध्याभी नहीं होती और अनपत्याभी नहीं होती है और जो क्षीणधातु होनेंसे वंध्याहो वहभी औषधोंसे गर्भवती होजाती है ॥ ८ ॥

अथ वंध्यारोगको दूरकरनेवाले औषध ॥

चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनवालकम् ॥ मधुकं मधुयष्टी च तथा लोहितचन्दनम् ॥ ९ ॥ सारिवा जीरकं मुस्तं पद्मकञ्च पुनर्नवा ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तोद्भवे गदे ॥ १० ॥ ज्ञात्वा योनिविशुद्धिश्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा गिरिकर्णी सिता तथा ॥ ११ ॥ क्षीरेणालोडिता पित्ते पुष्पसिद्धिं करिष्यति ॥ १२ ॥

चंदन, खश, मंजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआवृक्ष, मुलहटी, लालचंदन, ॥ ९ ॥ अनंतमूल, जीरा, नागरमोथा, पद्माख, सांठी, इन्होंको दूधमें मिला खांड मिला पान करना पित्तसे उपजा वंध्यारोगमें हित है ॥ १० ॥ और योनिकी शुद्धिको जानके पीछे ये महान् उत्तम औषध देनी चाहिये चंदन, खश, मंजीठ सफेद गोकर्णी, मिसरी ॥ ११ ॥ इन्होंको दूधमें मिला घोटि पीनेंसे पित्तसे उपजे रोगमें स्त्रीकै पुष्प होते है ॥ १२ ॥

त्रिदोषदूषितरजकी चिकित्सा ॥

रजोरक्तं परीक्षेत वातपित्तकफात्मकम् ॥ सरुजश्च सकृष्णश्च पक्वजम्बूनिभं च यत् ॥ वातेन बाधितं पुष्पं तच्च संलक्षयेद्बुधः ॥ १३ ॥ तस्य नागरपिप्पल्यौ मुस्ताधन्वयवासकम् ॥ बृहत्यौ पाटला चैव क्वाथः स गुडको दधि ॥ १४ ॥ सप्ताहं पाययेद्धीमान्यावत्स्रवति शोणितम् ॥ विशुद्धे च तथा रक्ते पाययेत्पयसान्वितम् ॥ १५ ॥ श्वेता च गिरिकर्णी च श्वेता गुञ्जा पुनर्नवा ॥ तेन सा लभते गर्भं मासमेकं प्रयोगतः ॥१६॥

और वात,कफ पित्त इन्होंसे दूषित रजस्वलाके रक्तको जानके पीडासहित और कृष्णवर्णवाला पकेहुए जामनके फलके समान वर्णवाला ऐसे रक्तको वातके कोपसे उपजा हुआ जानै ॥ १३ ॥ तहां सूंठ, पीपली, नागरमोथा, धमांसा, दोनो कटेहली, पाडलवृक्ष, इन्होंका क्वाथ बना गुड और दही मिला ॥ १४ ॥ रजस्वला कालमें सात दिनतक पिवावे और रक्त शुद्ध होजावे तब इस क्वाथको दूधके संग प्यावे ॥ १५ ॥ और सफेद गोकर्णी, सफेद चिरमठी, सफेदसांठी, इन्होंको एक महीना तक पीवे तो वंध्या स्त्री गर्भको प्राप्त होजाती है ॥ १६ ॥

अथ पित्तदूषितरजकी चिकित्सा ॥

जपाकुसुमसङ्काशं कुसुम्भरक्तसन्निभम् ॥ दाहशोषमूत्रकृच्छ्रयुक्तं तत् पित्तदूषितम् ॥ १७ ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनवालकम् ॥ मधुकं यष्टिमधुकं तथा लोहितचन्दनम् ॥ १८ ॥ पद्मकं पुनर्नवे द्वे शारिवा जीरकं घनम् ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तकृते गदे ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा योनिविशुद्धिश्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥ श्वेतार्कमूलं पयसा श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ २० ॥ श्वेताद्रिकर्णीमूलञ्च पानं गोक्षीरसंयुतम् ॥ बन्ध्यानां गर्भजननं भवते लक्षणान्वितम् ॥ २१ ॥

और जासवंदके पुष्पके समान तथा कसुंभाके रंगके समान वर्णवाला रजका रक्तहो, दाहहो, शोषहो, मूत्रकृच्छ्रहो वह पित्तदूषित रक्त जानना ॥१७॥ तहां चंदन, खश, मंजीठ

परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआ, मुलहटी, लाल चंदन, ॥ १८ ॥ पद्माक, दोनोंसांठी अनंतमूल, भद्रमोथा, इन्होंको दूधमें मिला खांड मिला पित्तसे उपजे रोगमें पीना हित है ॥ १९ ॥ पीछे योनिकी शुद्धिको जानके आगे कही हुई ये महान् औषध देनी चाहिये सफेद आककी जड, दूधी, सफेद गोकर्णी॥२०॥सफेद गोकर्णीकी जड, इन्होंको गौके दूधके संग पीवे और सफेद कटेहलीकी जडको दूधके संग पीनेंसे वंध्या स्त्रीके गर्भ रहता है ॥ २१ ॥

अथ कफदुष्टरजकी चिकित्सा ॥

सघनं पिच्छलं चापि जाड्यं स्यान्मूत्ररोधनम् ॥ आलस्यतन्द्रा निद्रा च कफदुष्टं रजो विदुः ॥२२॥ त्रिफला गिरिकर्णी च तथारग्वधवत्सकौ ॥ पयसा पयसा पानं स्त्रीणाञ्च गर्भकारणम् ॥ २३ ॥ बलाद्यं चन्दनाद्यञ्च द्राक्षाद्यं चूर्णमेव च ॥ दापयेद्गर्भजननं नारीणां भिषगुत्तमः ॥ २४ ॥ खण्डकाद्यञ्च चूर्णञ्च नारीणां भिषगुत्तमः॥पुनर्नवाद्यं देयं वा स्त्रीणां गर्भ प्रदायकम् ॥ २५ ॥

और करडार२झागोंवाला, जडरूप, मूत्रको रोकनेंवाला, ऐसा रक्त गिरै और आलस्यहो निद्राहो तंद्राहो वह कफसे दूषित हुआ रक्त जानना ॥ २२ ॥ तहां त्रिफला, गोकर्णी, अमलतास, कूडाकी छाल, दूधी, इन्होंको दूधके संग पीनेंसे स्त्रियोंके गर्भस्थिति होती है ॥ २३ ॥ और पहले कहाहुआ बलाआदिक चंदनादिक और द्राक्षादिक चूर्णके देनेंसे हे उत्तमवैद्य! गर्भस्थिति होती है ॥ २४ ॥ और हे उत्तमवैद्य ! खंडकाद्य चूर्ण अथवा पुनर्नवाद्य चूर्ण देनेंसे स्त्रियोंके गर्भस्थिति होती है ॥ २५ ॥

अथ स्त्रियोंकेगर्भार्थपथ्य ॥

अथ पथ्यं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणाञ्च शृणु पुत्रक ! ॥ कच्चरं सूरणं चैव तथा चाम्लं च काञ्जिकाम् ॥ २६ ॥ विदाहिकं च तीव्रं च स्त्रीणां दूरे परित्यजेत् ॥ वन्ध्याकर्कटकीमूलं लाङ्गली कटुतुम्बिका ॥ २७ ॥ देवदाली द्विबृहती सूर्य्यवल्ली च भीरुका ॥ निर्माल्यं माल्यवस्त्रञ्च तथा स्यादृतुसङ्गमः॥२८॥ अन्यस्त्रीस्नातमुदकं स्त्रीणां पथ्यस्योपक्रमः॥२९॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने बन्ध्योपक्रमोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

और हे पुत्र ! अब स्त्रियोंकेवास्ते पथ्य कहते है कचरी, जमीकंद, चूकाका शाक, कांजी, ॥ २६ ॥ विदाही और तीक्ष्ण ऐसे भोजन स्त्रियोंको दूरसेही त्याग देने चाहिये और वांझ

ककोडीकी जड, कलहारी, कडुई तुंबी ॥ २७ ॥ देवदाली, दोनों कटेहली, सूर्यमुखी, शतावरी, ये वस्तु वंध्यास्त्रीको पथ्य है और जिस स्त्रीकै बालक होतेहो तिसकी झूटा भोजनआदिक और तिसका वस्त्र और तिसका रजस्वला अवस्थामें स्पर्श ॥ २८ ॥ तिसका ऋतुसमयमें स्नान कियाहुआ जल ऋतुसमयमें अपनें पतिके संग भोग ये पथ्य है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने वंध्योपक्रमोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

अथ गर्भोपचारविधि ॥

आत्रेय उवाच ॥ प्रथमे मासि यष्टीमधुपरुषकं मधुपुष्पाणि यथालाभम् ॥ नवनीतेन पयो मधुमधुरं पाययेच्च ॥ १ ॥ द्वितीये मासि काकोली मधुरं पाययेत्तथा ॥ तृतीये कृशरा श्रेष्ठा चतुर्थे च कृतौदनम् ॥ २ ॥ पञ्चमे पायसं दद्यात् षष्ठे च मधुरं दधि ॥ सप्तमे घृतखण्डेन चाष्टमे घृतपूरकम् ॥ ३ ॥ नवमे विविधान्नानि दशमे दोहदं तथा ॥ मासे तृतीये सम्प्राप्ते दोहदं भवति स्त्रियः ॥ ४ ॥ यद्यत् कामयते सा च तत्तद्दद्याद्भिषग्वरः ॥५॥ वर्जयेद्द्विदलान्नानि विदाहीनि गुरूणिच ॥ अम्लानि सोष्णक्षीराणि गुर्विणीनां विवर्जयेत् ॥ ६ ॥ मृत्तिका भक्षणीया न न च सूरणकन्दकाः ॥ रसोनश्च पलाण्डुश्च संत्याज्यो गुर्विणीस्त्रिया ॥७॥ सूरणानि प्रदेयानि गौल्यानि सरसानि च ॥ पथ्ये हितानि चैतानि गुर्विणीनां सदा भिषक् !॥८॥व्यायामं मैथुनं रोषं शोषंचंक्रमणं तथा ॥ वर्जयेद्गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुखसम्पदः ॥ ९ ॥ अथोपपन्नं विहितमपि स्वकीयाचारेण पञ्चमासिकमष्टमासिकं वा ॥ ब्राह्मणमङ्गलादिभिर्गोत्रभोजनमपि कर्त्तव्यम् ॥ दोहदादिषु परिपूर्णेषु रूपवान् शूरः पण्डितः शीलवान्पुत्रोजायते॥१०॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपचारो नामएकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पहले महीनेमें मुलहटी, फालसा, महुवृक्ष, इनमांहसे जितनें मिलैं उतनेंहियोंको नौंनीघृत दूध इन्होंके संग खांड मिलाके मीठा २ प्यावै ॥ १ ॥ और दूसरी महीनेमें काकोली, शहद, इन्होंको प्यावे तीसरे महीनेमें श्रेष्ठ कृशरा अर्थात् खीचडी, और चौथे महीनेमें चावलोंका भातका भोजन करै ॥ २ ॥ और पांचवें महीनेमें दूध और छठे महीनेमें मीठा दही देना चाहिये और सातवे महीनेसें घृत, खांड, आठमें महीनेमें घेवर ॥ ३ ॥ और नवमें महीनेमें अनेकप्रकारके भोजन दशवें महीनेमें गर्भवती स्त्रीके इच्छापूर्वक भोजन देनें चाहिये. और जब तीसरा महीना प्राप्त होता है तब स्त्रियोंकी इच्छा अनेक वस्तुओंमें होती है ॥ ४॥ तब स्त्री जिस २ वस्तुकी इच्छा करै वही २ भोजन देना चाहिये ॥ ५ ॥ और द्विदल धान्य विदाही तथा भारे भोजन, खट्टे भोजन, गरम दूध, इनवस्तुओंको गर्भवती स्त्री वर्ज देवै ॥ ६ ॥ और मृत्तिका नहीं भक्षण करनी चाहिये और जमीकंदको भक्षण नहीं करै और लस्सन, प्याज, ये गर्भवती स्त्रीको त्याग देनें चाहिये ॥ ७ ॥ और जमीकंद आदिक तथा गुल्ली बंधनेंवाले अन्न इन्होंको रससहित देवै हे वैद्य ! इसप्रकार कहेहुए पथ्य गर्भवती स्त्रीको सदा पथ्य कहे है ॥ ८ ॥ और कसरत, मैथुन, क्रोध, शोक, टहल, कदमी, ये सब गर्भवतीस्त्रियोंको वर्जे देने चाहिये तब सुखकी उत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥ और कहाहुआ इस विधानको करतेहुएभी अपने आचरण करके पांचवे महीनेमें अथवा छठे महीनेमें मंगलादिक करवाके ब्राह्मण और गोत्री भाई इन्होंको भोजन करवावे और गर्भवतीकी इच्छापूर्वक वस्तु मिलती रहे तो रूपवान्, शूर,वीर, पंडित, शीलवान् ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १०॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने गर्भोपचारोनामएकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

अथ चलितगर्भचिकित्सा ॥

आत्रेयउवाच ॥ प्रथमे मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदि ॥ तदा मधुक मृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनम्॥१॥पयसालोडितं पीतं तेन गर्भः स्थिरो भवेत् ॥२॥ द्वितीये मासि चलिते मृणाले नागकेशरम् ॥ तृतीये मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदा ॥ ३ ॥ तदा मूषककिट्टं तु शर्करापयसा पिबेत् ॥ चतुर्थे मासि दाहश्च पिपासा शूलमेव च ॥ ४ ॥ ज्वरेण स्त्रीणां यदि गर्भश्चलते तदोशीरचन्दननागकेशरधातकीकुसुमशर्कराघृतमधुदधि पाययेत् ॥ पञ्चमे मासे चलिते गर्भे दाडिमीपत्राणि चन्दनं दधि मधु च

पाययेत् ॥ षष्ठे मासि गैरिकं कृष्णमृत्तिकागोमयभस्म उदकं परिस्रुतं शीतलं चन्दनं शर्करया सह पिबेत् ॥ सप्तमे मासि गोक्षुरसमङ्गापद्मकघनमुशीरनागकेशरं मधुरं पाययेत् ॥ अष्टमे मासि रोध्रं मधु मागधिकाञ्च सह दुग्धेन पीतवतीनां चलिते गर्भे स्त्रीणां सुखं सम्पद्यते ॥ ५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जो यदि पहिलेमहीनेमें चलायमान दीखते मुलहटी, मुनक्का, दाख, चंदन, लाल चंदनी, ॥ १ ॥ इन्होंको दूधमें घोल पीनेंसे गर्भ स्थिर होजाता है ॥ २ ॥ और दूसरा महीनामें गर्भ चलायमान होजावे तो कमलकी नाली, नागकेशर, इन्होंको देवै, और तीसरे महीनेंमें गर्भ चलायमानहुआ दीखे ॥ ३ ॥ तो मूंसाकी वीटको खांड और दूधके संग पीवे और चौथे महीनें जो दाहहो तृषाहो शूलहो ॥ ४ ॥ और ज्वरसे स्त्रियोंका गर्भ चलताहुआ मालूम होवे तो खश, चंदन, नागकेशर, धायके फूल, खांड, घृत, शहद, दही, इन्होंको प्यावे और पांचवा महीनामें गर्भ चलताहुआ दीखे तो अनारके पत्ते, चंदन, दही, शहद, इन्होंको प्यावे, छठे महीनेंमें गेरू, काली मृत्तिका, गोवर आरनोंकी भस्म इन्होंको जलमें घोल छानके दालचीनो, चंदन, खांड, ये मिला पीवे और सातवे महीनेंमें गोखरू, मंजीठ, पद्माक, नागरमोथा, खश, नागकेशर, शहद, इन्होंको प्यावे और आठवे महीनेंमें लोध, शहद, पीपली, इन्होंको पीवती हुई स्त्रियोंका चलायमान गर्भ स्थिर रह जाता है और सुख होता है ॥ ५ ॥ इति वेरीनि०हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

—:o:—

अथ गर्भोपद्रव चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ शोषो हृल्लासच्छर्दिश्च शोफो ज्वरस्तथारुचिः ॥ अतीसारो विवर्णत्वमष्टौ गर्भस्योपद्रवाः ॥ १ ॥ वक्ष्यामि भेषजं तस्य यथायोगेन साम्प्रतम् ॥ वटप्ररोहं मगधामुशीरं घनमेव च ॥ २ ॥ युता खण्डगुटिकाख्ये विहिता शोषवारिणी ॥ ३ ॥ वत्सकं मगधा शुण्ठी तथा चामलकीफलम् ॥ युक्तं कोमलबिल्वेन दध्ना पिष्टं तु दापयेत्॥४॥

शर्करासंयुतं पानं स्त्रीणां गर्भे हितं सदा ॥ ५ ॥ पीतो भूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभावितः ॥ छर्दिं हरेच्च हृल्लेदं मधुना वा समन्वितः ॥ ६ ॥ शृङ्गवेरं सकटुकं मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ मार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोष्णवारिणा ॥ ७ ॥ गुर्विणीनाञ्च सर्वासामरुचिं च नियच्छति ॥ वत्सकं दाडिमं पाठा बिलबिल्वबलास्तथा ॥ ८ ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवाश्चैव यथा लाभेन सत्तम !॥ शर्करादधिसंयुक्तं स्त्रीणाञ्चैवातिसारके ॥ ९ ॥ हरीतकी नागरकं गुडेन वा त्रिफलाकषायः ॥ शीतः स्त्रीणां विनिहन्ति पाने विबन्धविद्रधींश्च ॥ १० ॥ मूत्रविबन्धनस्य त्रपुसैर्वारिबीजानि मागधी च ॥ शिलाभेदं सिताढ्यञ्च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ मूत्ररोधं गुर्विणीनां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ ११ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–शोष, थुकथुकी, छर्दि, शोजा, ज्वर, अरुचि, अतिसार, विवर्ण ये आठ गर्भके उपद्रव है ॥ १ ॥ अब योगसे तिसकी औषधको कहैंगे वडके अंकुर, पीपली, खश, नागरमोथा, इन्होंका चूर्ण करि ॥ २ ॥ मिला गोली बनाके मुखमें धारण करनेंसे शोषका निवारण होता है ॥ ३ ॥ और कूडाकी छाल, पीपली, सूंठ, आंवले, कच्चीबेलगिरी इन्होंको दहीमें पीस ॥ ४ ॥ खांड मिला देनेंसे स्त्रियोंका गर्भमें सदा सुख होता है ॥ ५ ॥ और चिरायताका कल्क बना बराबरकी खांड मिला पीनेंसे गर्भवती स्त्रीकी छर्दिका निवारण होता है और शहदमें मिलाके पीनेंसे हृदाकी ग्लानिका नाश होता है ॥ ६ ॥ और अदरक मिरच विजौराकी केशर, इन्हों करके दांत जिव्हा इन्होंको धोवे और कुरले धारण रक्खे ॥ ७ ॥ तो गर्भवती स्त्रियोंकी अरुचिका नाश होता है और कूडाकी छाल, अनारदाना, पाठा, बडीसेमफली, बेलगिरी, खरैहटी, ॥ ८ ॥ जामन, आंब, इन्होंके पत्ते इन मांहसे जितनी औषध मिलै उतनीहियोंको खांड, दही इन्होंमें मिलादेनेंसे वातसे उपजा स्त्रियोंका अतिसार रोग दूर होता है ॥ ९ ॥ और हरडै, सूंठ इन्होंको त्रिफलाके क्राथमें मिला और गुड मिला शीतलकर पीनेंसे गर्भवती स्त्रीका मलका बंधा, विद्रधी इन्होंका नाश होता है ॥ १० ॥ और काकडीके बीज, नेत्रवाला, पीपली, पाषाणभेद, मिसरी, इन्होंको चावलोंके धोवनके जलके संग पीवे तो स्त्रियोंका बंध हुआ मूत्र शीघ्रही उतरता है ॥ ११ ॥

मधुकादिकल्क ॥

मधुकविषमृणालं पद्मकिञ्जल्ककल्कं घनमतिविषमैन्द्रं बीजमौशीरनी

रम् ॥ समकृतमथ कल्कं देयमाशु प्रपाने हितमपि युवतीनां गर्भचाले सिताढ्यम् ॥ १२ ॥

और मुलहटी, अतीश, कमलकी नाली, कमलकेशर, इन्होंका कल्क बना अथवा नागरमोथा, अतीश, इंद्रजव, खश, नेत्रवाला इन्होंको समान भाग ले कल्क बना शीघ्रही गर्भवती स्त्रीको पान करावे गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ चलित होनेमें मिसरीसे युक्त इस औषधका पान कराना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

अथ गर्भोपद्रवमें उपचारकी शिक्षा ॥

गर्भस्योपद्रवाः शोफाः स्वेदयेदुष्णवारिणा ॥ न दातव्यो मतिमता विरेको दारुणो महान् ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सा नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

और गर्भके उपद्रव जो शोजे हो जावे तो गरम जलसे पसीना दिवावै और बुद्धिमानवैद्य गर्भवती स्त्रीको दारुण जुलाब नहीं देवै ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सानाम एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अथ मूढगर्भचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धाहारसेवाभिस्तथा गर्भव्यथासु च ॥ अतिमूर्द्धनपीडायाः पीडां प्राप्नोति चार्भकः ॥ १ ॥ तिर्य्यग्वापिच गर्भश्च त्यक्त्वा द्वारं भगस्य च ॥ अन्यद्वा म्रियतेऽपत्यं तेन कष्टं प्रपद्यते ॥ २ ॥ अथवा लज्जया स्त्रीणां सङ्कोचात्सङ्कुचिते भगे ॥ मूढगर्भश्च जानीयात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ३ ॥ बस्तिशूलश्च भवति योनिद्वारं निरुन्धति ॥ गर्जते जठरं यस्या आध्मानश्चैव जायते ॥ ४ ॥ तोदनं चाङ्गभङ्गश्च निद्राभङ्गश्च जायते ॥ वाताद्भवति गर्भस्य संरोधो भिषगुत्तम ! ॥ ॥ ५ ॥ शूलं ज्वरस्त्रिदोषश्च तृष्णादोषो भ्रमस्तथा ॥ मूत्रकृच्छ्रं शिरोऽर्त्तिः स्यात्पित्ताद्रोधो भ्रूणस्य च ॥ ६ ॥ आलस्यतन्द्रानिद्रा च जा

ड्याध्मानं च वेपथुः ॥ कासो विरसता चास्ये श्लेष्मणा मूढगर्भके॥७॥
द्वन्द्वैश्च द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वं स्यात्सान्निपातिकम् ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विरुद्धआहारादिक करनेंसे गर्भमें बाधा होनेंसे बालकके मस्तकमें पीडा होनेंसे बालक दुःखित होजाता है ॥ १ ॥ वह तिरछाहो भगके द्वारको त्याग देता है और कहीक मरजाता है तिस्से स्त्रीको कष्ट होता है ॥ २ ॥ अथवा लज्जासे स्त्रीकी भगका संकोच होनेंसे मूढगर्भ होजाता है तिसके लक्षणको कहते है ॥ ३ ॥ बस्तिमें शूल, योनिद्वार रुकजावे और जिसका उदर गर्जै, और अफाराहो ॥ ४ ॥ चभकाहो, अंगभंगहो, निद्राभंगहो, हे उत्तमवैद्य! तहां वातसे उपजा गर्भका निरोध जानना ॥ ५ ॥ और शूलहो त्रिदोषसहित ज्वरहो, तृषाहो, दोषका भ्रमहो, मूत्रकृच्छ्रहो, शिरमें पीडाहो वह पित्तसे उपजा गर्भनिरोध जानना, ॥ ६ ॥ और आलस्यहो, तंद्राहो, निद्राहो, जडपनाहो अफाराहो, कंपनाहो, खांसीहो, मुखमें विरसताहो, ये लक्षण कफसे उपजे मूढगर्भके हैं ॥ ७ ॥ और दोदोषोंसे मिलेहुए लक्षण जानें जिसमें सब लक्षण मिलै वह सन्निपातका मूढगर्भ जानना ॥ ८ ॥

अथ मृतगर्भका लक्षण ॥

भ्रममूर्च्छातृषाध्मानं वातरोधश्च विह्वलम् ॥ मूर्च्छावमिं सपारुष्यं दीनत्वमुपगच्छति ॥ ९ ॥ मृतगर्भं विजानीयादाशुकारी स्त्रियामपि ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं महामोहे विशारद ! ॥ १० ॥

भ्रमहो मूर्छाहो, तृषाहो, अफाराहो, वातका रोधहो, विव्हलहो, मूर्छाहो, वमनहो, कठोरताहो, गरीबपनाहो, ॥ ९ ॥ तहां स्त्रीके मराहुआ गर्भ जानना, इसका इलाज शीघ्रही करे हे वैद्य! इस महामोहकी अब औषधोंको कहेंगे ॥ १० ॥

अथ वातिकमूढगर्भचिकित्सा ॥

वातिके मर्दनाभ्यङ्गं स्वेदनं वाल्पमेव च ॥
यवागूं पञ्चकोलञ्च पाययेद्भिषगुत्तमः ॥ ११॥

वातके मृतगर्भमें मर्दन करै मालिस करै अल्प २ पसीना दिवावै और पंचकोल, अर्थात्, सूंठ, पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, इन्होंकी यवागू प्यावे ॥ ११ ॥

अथ पैत्तिकमूढगर्भचिकित्सा ॥

पैत्तिके शीतलं पानं शीतान्नसहितानि च ॥
व्यञ्जनानि तथा तस्य यष्टिकं पयसा पिबेत् ॥ १२ ॥

और पित्तके मृतगर्भमें शीतल पान, शीतल अन्न, और शाकआदिक देवै और मुलहटी-को दूधके संग पीवे ॥ १२ ॥

अथ कफजमूढगर्भचिकित्सा ॥

त्रिकटु त्रिफला कुष्ठं रोध्रं वत्सकधातुकी ॥
सगुडं क्वथितं पाने श्लेष्मणा मूढगर्भके ॥ १३ ॥

और कफके मूढगर्भमें सूंठ, मिरच, पीपली, त्रिफला, कूठ, लोध, कूडाकी छाल, धायके फूल, गुड इन्होंका क्वाथ बना पान कराना हित है ॥ १३ ॥

अथ रक्तपित्तजमूढगर्भचिकित्सा ॥

मूर्वाचिञ्चावास्तुकर्णीमञ्जिष्ठारोध्रनीलिकाः ॥ कर्कन्धूमूलं सौराष्ट्री क्वाथश्च सगुडो हितः ॥ १४ ॥ रक्तपित्तविकारेषु कुक्षिशुद्धिश्च जायते ॥ मृतगर्भस्य वक्ष्यामि भेषजं भिषजां वर ! ॥ १५ ॥ मर्दयित्वा मानुषीञ्च ततश्चापि प्रयत्नतः॥निराहाराच्च म्रियते यदि गर्भोऽन्तरे स्त्रियः॥१६॥

और मरोडफली, अमली, वास्तुकर्णी, मंजीठ, लोध, नील, वेरीकीजड, फटकटी, इन्होंका क्वाथ बना गुड मिला ॥ १४ ॥ रक्तपित्तके विकारोंमें कुक्षिकी शुद्धिकेवास्ते देना श्रेष्ठ है और हे उत्तम वैद्य अब मृतगर्भकी औषधको कहते है ॥ १५ ॥ जो यदि निराहार लंघन करनेंसे स्त्रीके उदरमें गर्भ मरजावे तो यतनसे स्त्रीको मर्दन करि पीछे शस्त्रक्रिया करै तिसको मुझसे सुन ॥ १६ ॥

अथ मूढगर्भमें शस्त्रचिकित्सा ॥

तदा शस्त्रप्रतीकारं भेषजानि शृणुष्व मे ॥ नाभिबिलशयाच्च सुकुण्डलिकां कृत्वा तु तस्योपरि मूढगर्भामुपवेश्य जानुनी प्रसार्य्य किञ्चित्पृष्ठभागे साधारणमवष्टभ्य उदरादधोऽवतारयेत् ॥ योनिद्वारे प्रगलति तिलतैलेन वारिणा परिभ्यज्य हस्तो याति योनिद्वारञ्च तस्मात्तर्जन्याङ्गुष्ठेन गलप्रदेशे धृत्वा निःसारयेत् ॥ अथवार्द्धचन्द्रेण शस्त्रेणैव मृतगर्भस्य बाहुयुगलं संच्छिद्य बाहू निःसारयेत् ॥ १७ ॥

नाभिके बिलके समान गोल और डूंघी कुंडलिका अर्थात् ईंढबीसी बनाके तिसके ऊपर मूढगर्भवाली स्त्रीको बैठाके तिसके गोडे पसराके पीठकी तर्फसे साधारण कछुक दबावै और उदरसे नींचेको गर्भको उतारे जब योनिके द्वारपे गर्भ आजावे तब तिलोंका तेल; ज-

ल इन्होंकी मालिस करै पीछे योनिद्वारसे बालकका हाथनिकसे तब तर्जनी अंगुली और अंगुठेको योनिके भीतर कर तिसबालके गलेको पकडि बाहिरको खींचलेवे अथवा अर्द्ध चंद्रनामवाले शस्त्रसे तिस मराहुआ बालककी दोनोंबाहुओंको काटि बाहिरको निकासदेवै॥ १७॥

अथ उत्पत्तिके उपायकेवास्ते मंत्र और औषध ॥

लाङ्गल्या मूलेन उष्णेन वारिणा योषितां नाभिलेपेन शीघ्रं गर्भो जायते प्रसूयते च ॥ बलामूलं सूर्य्यकान्तिसोमवल्लीकानि कज्जलेन पिष्ट्वा लेपनं करोतु ॥ १८ ॥

कलहारीकी जडको गरम जलमें पीस गर्भवती स्त्रियोंकी नाभिपे लेप करनेंसे शीघ्रही बालक उत्पन्न होता है और खैरहटीकी जड, सूर्यमुखी, चांदवेल, इन्होंको कज्जलके संग लेप करना हित है ॥ १८ ॥

अथ सुखसे बालकहोनेका यत्न ॥

भीरुभूनिम्बवार्त्ताकीमूलञ्च पिप्पलीयकम् ॥ यवान्यग्रवचाः पिष्ट्वा तथा चोष्णेन वारिणा ॥ १९ ॥ नाभिदेशादधस्ताच्च प्रलेपेन प्रसूयते ॥ मूलञ्च लाङ्गलिक्याश्च देवदाल्याश्च तुम्बिका ॥ २० ॥ कोशातक्यादिकं सर्वं लेपने परिकल्पितम् ॥ सूतिलेपाः स्त्रियो ह्येते सुखेन सा प्रसूयते ॥२१॥

शतावरी, चिरायता, वार्त्ताकी, कटेहलीका भेद, तिसकी जड, पीपली, अजमान, वच, इन्होंको गरम जलके संग पीस ॥ १९ ॥ नाभिस्थानसे नीचेंको लेप करनेंसे बालक उत्पन्न होता है और कलहारीकी जड, देवताडकी जड, तुंबी, ॥ २० ॥ तोरी, इन्होंको पीस लेप करना श्रेष्ठ हैं कहे हुए ये सब लेप करनेंसे स्त्री सुखसे बालकको जनती है ॥ २१ ॥

अथ मन्त्रः ॥

हिमवदुत्तरे कूले सुरसा नाम राक्षसी ॥ तस्या नूपुरशब्देन विशल्या गुर्विणी भवेत् ॥ २२ ॥ ऐं ह्रीं भगवति ! भगमालिनि ! चल चल भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा ॥ श्रीं नमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा ॥ एभिर्मन्त्रितं पयः पाययेत्तेन सुखप्रसवः॥२३॥

हिमवान् पर्वतकी दाहिनी तर्फको किनारेपे सुरसा नामवाली राक्षसणी रहती है तिसके

नूपुर विछुवोंके शब्दसे मूढगर्भवाली स्त्री बालकको जनती है ॥ २२ ॥ ऐंह्रीं भगवति भगमालिनि चलचल, भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा ॥ ओंनमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतिभगवासिनेह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा, इनमंत्रोंसे पढाहुआ दूधको प्यावे तिस्से सुखसे बालक होता है ॥ २३ ॥

अथ यन्त्रः ॥

ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः ॥ २४ ॥ इदं यन्त्रंभूर्जपत्रस्योर्ध्व भागे लिखित्वा मूढगर्भायै दर्शयेच्छय्यातले च स्थापयेत्तेन सुखेन प्रसवः ॥ २५ ॥

ऐं ह्रां ह्रींह्रू ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः ॥ २४ ॥ इसयंत्रको भोजपत्रके ऊपर लिखके मूढगर्भवाली स्त्रीकेवास्ते दिखावे अथवा तिसकी शय्याके नीचे स्थापित करदेवै तिस्से सुखसे बालक उत्पन्न होता है ॥ २५ ॥

अथ मंत्र ॥

गङ्गातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये ॥ तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ २६ ॥ ततःप्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा ॥ अनेन दूतो व्याकुलो भवेत्तावच्च पाययेत् ॥ २७ ॥ तेन प्रसूयते नारी गृहे काकसुखेन च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सा नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

"गंगातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये । तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ ततःप्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा ॥" अर्थ—गंगाके तीरपर हिमालयपर्वतमें एक काकी विचरती है. तिसके पंखसे गिराहुआ पानी स्त्रीको पिलावे. तिससें स्त्री प्रसवती है ऐसा काकरुद्रका वचन है ॥ २६ ॥ इसमंत्रको कहताहुआ दूत एकश्वाससे थकजावे तब गर्भवती स्त्रीको तिसजलको प्यादेवै ॥ २७ ॥ फिर वह स्त्री सुखसे बालको जनती है जैसे कागणी अंडेको तैसे ॥ २८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सानाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

अथ सूतिकारोगकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ प्रसूत्यनन्तरं रोध्रार्जुनकदम्बदेवदारुबीजकाह्वं कर्कन्धू

श्च यथालाभं लोहितविशुद्धे दापयेत् ॥ प्रसूतिजाता योनिः संशोध्यते॥ तैलेनापूर्य्याभ्यज्य चोष्णेन वारिणा स्वेदयेत् ॥ उपवासमेवं कृत्वा द्वितीये दिवसे गुडनागरहरीतकीश्च दापयेत् ॥ द्वययामोर्ध्वं कुलत्थयूषं वा सोष्णं पाययेत् ॥ तृतीयदिवसे पञ्चकोलयवागूर्दापयेत् ॥ चतुर्जातकमिश्रा यवागूर्दापयेत् ॥ पञ्चमेऽहनिशालिषष्टिकौदनं भोजयेत् ॥ अनेन क्रमेण दशपञ्चदशाहं चोपचारयेत् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बालक जननेंके पीछे लोद, अर्जुनवृक्ष, कदंब, देवदार, बिजौरा, बेरी इन्होंमेंसे मिलें उतनेंहियोंको लहूकी शुद्धिकेवास्ते क्वाथ बनाके देवै इस्से प्रसूति स्त्रीकी योनी शुद्ध होजाती है और तेलकी मालिस कर गरमजलसे पसीना दिवावै पहलेदिन स्त्रीको लंघन करवावै और दूसरे दिन गुड, सूंठ, हरडै इन्होंको देवै फिर दोपहर पीछे कुलथीका यूष गरम २ देवै और तीसरे दिन पंचकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, सूंठ, चव्य, चीता इन्होंकी यवागू बनाके देवै और चौथेदिन इसयवागूमें चातुर्जातक अर्थात दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर ये मिलाके देवै और पांचवे दिन शालिसंज्ञक चावलोंके भातका भोजन करै इसीक्रमके अनुसार पंदरह दिन पथ्यभोजनका उपचार करना चाहिये॥ १॥

अथ स्त्रीके दूध बढानेंके उपाय ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं घनबालुकम् ॥ कुस्तुम्बुरूणि मञ्जिष्ठां सह क्षीरेण कल्कयेत् ॥ २ ॥ पानं क्षीरविशुद्ध्यर्थं कल्कमश्नात्यनन्तरम् ॥ मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये ॥ ३ ॥ मागधी नागरी पथ्या गुडेन सघृतं पयः ॥ पानं जनयते क्षीरं स्त्रीणाञ्च क्षीरपादपि ॥ ४ ॥ एवं कृत्वा च नारीणां द्वादशाहे भिषग्वरः ॥ माङ्गल्यं वाचनं कृत्वा योषार्थञ्च प्रदर्शयेत् ॥ ५ ॥ जातके सुतमोक्षञ्च द्वादशाहं तथापुनः ॥ नामकर्मकृतौ सत्यां कर्णवेधनमेव च ॥ ६ ॥ वस्त्रबन्धं विवाहञ्च कारयेद्बालकस्य च ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने सूतिकोपचारोनाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

पीपल, पीपलामूल, सूंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, धनियां, मंजीठ इन्होंको दूधमें पीस कल्क बना ॥ २ ॥ इस कल्कको खावे और दूध पीवे ऐसे करनेंसे स्त्रीके दूधकी शुद्धि होजाती है और मिरच, पीपलामूल इन्होंसे युक्त दूधके पीनेंसे स्त्रियोंके दूधकी शुद्धि होती है

॥ ३ ॥ और पीपली, सूंठ, हरडै इन्होंको गुड घृतसहित दूधमें मिला पीनेंसे स्त्रियोंके दूध बढता है ॥४॥ और इसप्रकारके बारहमें दिन मंगलाचरण करवाके पीछे स्त्रियोंका अर्थगीत मंगलादिकके दर्शन करवावे ॥ ५ ॥ जातककर्ममें सुतकी उत्पत्ति होनेंका मंगल करवावे पीछे बारहमें दिन मंगल करवाके नामकर्म करवावे पीछे कर्णवेधकर्म करवावे ॥६॥ फिर वस्त्रबंध, तागडी आदि बांधनेंका कर्म और विवाहकर्म ये सब कर्म बालकके करवानें चाहिये ॥ ७ ॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने सूतिकोपचारोनाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अथ बालरोग निदानलक्षण ॥

आत्रेय उवाच ॥ पञ्चैव क्षीरदोषाश्च स्त्रीणाञ्च कथिता बुधैः ॥ घन क्षीरोष्णक्षीराम्लक्षीरा चैव तथा परा ॥ १ ॥ अल्पक्षीरा क्षारक्षीरा मृदु क्षीरा तथा परा ॥ मृदुक्षीरा भवेत्सौख्या पञ्चान्या दोषकारकाः ॥ २ ॥ घनाध्माननिरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः ॥ उत्फुल्लकुक्षितैवं हि घन क्षीरस्य सेवनात् ॥ ३ ॥ अल्पसत्वः कृशो दीनः श्वासातीसारपीडितः ॥ अल्पक्षीरस्य दोषेण सम्भवेद्धतवाक्सुतः ॥ ४ ॥ ज्वरः शोषस्तथाल्पत्व मुष्णक्षीरेण बालके ॥ तथैव चोष्णक्षीरेण ज्वरातीसार एव च ॥ ५ ॥ सुसत्वं बलमाप्नोति चारोग्यं लभते शिशुः ॥ मृदुक्षीरेण नियतं जायते रूपवानपि ॥ ६ ॥ चक्षूरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मावस्राविता ॥ संक्लेद युक्तं नासास्यं जायते क्षारदुग्धके ॥ ७ ॥

पंडितजनोंनें स्त्रियोंके दूधके दोष पांच कहे है गाढा दूध, गरम दूध, खट्टा दूध ॥ १ ॥ थोडा दूध, खारा दूध ये पांच दोष है और कोमल स्वच्छ दूधवाली स्त्री सुखसे युक्त कही और ये अन्य सब दूषित दूधवाली है ॥ २ ॥ जो बालक गाढा दूध पीवे तो करडा अफाराहो श्वास रोगहो खांसीहो और कूखि, जांघोंकी संधि ये फूली हुई रहै ॥ ३ ॥ और अल्प दूधके पीनेंसे थोडा बलहो, कृशहो, दीनहो, श्वास, अतिसार, इन्होंसे पीडितहो और वाणी नष्ट होजावे ॥ ४ ॥ और ज्वरहो अल्पशोषहो अतिसारहो ये स्त्रीका गर्म दूध पीनेंवाले बालकके रोग होजाते है ॥ ५ ॥ और कोमल स्वच्छ दूध पीनेंसे बालक मोठा होता है और बल बढता है निरंतर आरोग्य सुखमें प्राप्त रहता है और रूपवान् होता है ॥ ६ ॥ और

आंखोंमें रोगहो खाजिहो कफ गिरै बालके जलसे युक्त नासिका और मुख रहै ये खारा दूध पीनेंवाले बालककें रोग है ॥ ७ ॥

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु हारीत ! मे मतम् ॥ ८ ॥

हे हारीत ! अब इन्होंकी औषधोंको कहैंगे तू सुन यह मेरा मत है ॥ ८ ॥

अथ उत्फुल्लरोगकी चिकित्सा ॥

आध्मानात्फुल्लकुक्षिश्च श्वासदोषादिपीडितः ॥ उत्फुल्लिका च विज्ञेया बालानां दुःखकारिणी ॥ ९ ॥ उदरे च जलौकादिरक्तं चादौ विमोक्षयेत् ॥ उत्फुल्लिदोषे दातव्यं क्षीरदोषनिवारणम् ॥ १० ॥ अग्निना प्रबलः स्वेदो दहेद्वापि शलाकया ॥ जठरे बिन्दुकाकारा जायन्ते भिषगुत्तम ! ॥ ११ ॥ बिल्वमूलफलं पाठा त्रिकटु बृहतीद्वयम् ॥ क्वाथश्च गुडयुक्तश्च बालानाञ्च ज्वरे हितः ॥ १२ ॥ स्त्रीणां स्यात्पानमेतेषां बालानां ज्वरनाशनम् ॥ १३ ॥

अफारासे कूखि फूली रहे श्वासआदि दोषोंसे पीडितहो वह उत्फुल्लिकासंज्ञकरोग होता है बालकोंको दुःख करनेंवाला है ॥९॥ कुक्षि उत्फुल्लित रोगमें पहले जो दोष आदिकोंसें रुधिरको निकसावे पीछे दूधके दोषको निवारण करै ॥ १० ॥ और अग्निसे अति प्रबल पसीना दिवावे शलाकासे दग्ध करै उदरमें बिंदुवोंसरीखे आकार होजावे ऐसा दग्ध करै ॥ ११ ॥ और बेलगिरीकी जड और फल, पाठा, त्रिकटु अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल दोनों कटेहली, इन्होंका क्वाथ बना गुड मिला देना बालकोंको हितदायक कहा है ॥ १२ ॥ और इसक्वाथको बालककी माता स्त्रीको प्यावे तो बालकोंके ज्वरका नाश होता है ॥ १३ ॥

अथ बालरोगचिकित्साके अन्य उपाय ॥

हितः पर्पटकक्वाथः शर्करामधुयोजितः ॥ बालानां ज्वरनाशाय कैरातं मधुसंयुतम् ॥ १४ ॥ भार्ङ्गीरास्नाकर्कटकचूर्णं वा मधुसंयुतम् ॥ लेहो वा बालकस्यापि श्वासकासनिवारणः ॥ १५ ॥ पथ्यावचानागरकं घनं कर्कटमेव च ॥ चूर्णं सगुडमेवं हि बालानां कासनाशनम् ॥ १६ ॥ पलाशभेदं त्रिफलात्रपुसीवरीमागधीः ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन सिताढ्यं मूत्ररोधजित् ॥ १७ ॥ नागरीमभयादन्तीगुडचूर्णं प्रदापयेत् ॥ बालानां विद्रधिञ्चैव नाशयेच्च न संशयः ॥ १८ ॥ पाठाबिल्वशिलादीनि व

त्सकं शाल्मलीत्वचम् ॥ दुग्धेन पानं बालानामतिसारनिवारणम् ॥१९॥ अर्जुनश्च कदम्बश्च कुष्ठं गैरिकमेव च ॥ लेपनं त्वचो दोषाणां वारणं बालकस्य च ॥ २० ॥ रोध्रं रसाञ्जनं धात्री गैरिकं मधुना युतम् ॥ अञ्जनञ्चैव बालानां नेत्ररोगनिवारणम् ॥ २१ ॥

और पित्तपापडाके क्काथमें खांड और शहद मिलाके देना हित है और बालकोंके ज्वरके नाशकेवास्ते चिरायता, शहद, इन्होंका प्याना हित है ॥ १४ ॥ और भारंगी, रास्ना, काकडासींगी, इन्होंके चूर्णमें शहद मिला लेह बना बालको चबानेंसे बालकका श्वास, खांसी इन्होंका नाश होता है ॥ १५ ॥ और हरडै, वच, सूंठ, नागरमोथा, काकडासींगी, इन्होंका चूर्ण बना बराबरका गुड मिलादेनेंसे बालकोंकी खांसीका नाश होता है ॥ १६ ॥ और केशू, त्रिफला, खीरा, शतावरी, पीपली, इन्होंको चावलोंके धोवनके जलमें पीस प्यानेंसे बालमूत्ररोध दूर होता है ॥ १७ ॥ सूंठ, हरडै, जमालगोटाकी जड, इन्होंके चूर्णमें गुड मिलाके देनेंसे बालकोंके विद्रधीरोगका नाश होता है ॥ १८ ॥ और पाठा, बेलगिरी, शिलाजीत, कुडाकी छाल, सालवणकी छाल, इन्होंको पीसि दूधके संग प्यानेंसे बालकोंके अतिसारका नाश होता है ॥ १९ ॥ और अर्जुनवृक्ष, कदंब, कूठ, गेरू, इन्होंको शहदमें मिला अंजन घालनेंसे बालकोंके नेत्ररोगका नाश होता है ॥२०॥ लोध, रसांजन, आमला, गेरू, इन्होंके शहदके संग घिसकर अंजन करनेंसे बालकोंके नेत्रका रोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

अथ बालकोंकी वृद्धिको बढानेंवाले औषध ॥

वचा ब्राह्मी च मण्डूकी घनकुष्ठं सनागरम् ॥ घृतेन प्रातर्देयश्च बालानां पुष्टिकारकम् ॥ २२ ॥ गुडूचिकापामार्गश्च विडङ्गं शङ्खपुष्पिका ॥ विष्णुक्रान्ता वचा पथ्या नागरश्च शतावरी ॥ २३ ॥ चूर्णं घृतेन संमिश्रं लिहतो धीः प्रवर्त्तते ॥ त्रिभिर्दिनैः सहस्रकं श्लोकानामवधारयेत् २४

वच, ब्राह्मी, सूर्यफूलवेल, नागरमोथा, कूठ, इन्होंको घृतमें मिला प्रातःकाल देनेंसे बालकोंकी पुष्टि होतीहै ॥ २२ ॥ गिलोय, ऊंगा, वायविडंग, शंखपुष्पी, विष्णुक्रांता, वच, हरडै, सूंठ, शतावरी, ॥ २३ ॥ इन्होंके चूर्णको घृतमें मिला चटानेंसे बालककी बुद्धि बढती है तीन दिनमें हजार श्लोकोंको धारण कर सकता है ॥ २४॥

अथ बालकोंकी वाणीको करनेंवाले औषध ॥

त्रिकटु त्रिफला धन्या यवानी सालमूलिका ॥ वचा ब्राह्मी तथा भार्ङ्गी चूर्णञ्च मधुना हितम्॥वाक्पटुत्वञ्च बालानां नादो वीणासमस्स्वरः॥२५॥

सूंठ, मिरच, पीपली, त्रिफला, धनियां, अजमान, सालवृक्षकी जड, वच, ब्राह्मी, भारंगी, इन्होंका चूर्ण बना शहदके संग चाटनेंसे बालककी जुवान अति चपल होती है और वीनके समान शब्दका स्वर होता है ॥ २५ ॥

अथ बालकोंके अपस्मार रोगकी चिकित्सा ॥

यस्य श्वासो विचैतन्यं तन्द्रा चातीववेपथुः ॥ शिरोऽर्त्तिः संज्वरश्चैव स चासाध्यो भिषग्वर ! ॥ २६ ॥ लालाकृतिर्विचैतन्यं तृप्तविभ्रान्तलोचनम् ॥ स्तब्धाङ्गविकृतिर्यस्य चापस्मारी स उच्यते ॥ २७ ॥ अपस्मारे तु बालस्य शीतलानि प्रयोजयेत् ॥ वचा सैन्धवपिप्पल्यो नस्यं हि गुडनागरः ॥ २८ ॥ रसं चागस्तिपत्रस्य मरिचैः प्रतियोजितम् ॥ एतेन प्रतिसौख्यं स्यात्तदा चान्दोलनं हितम् ॥ २९ ॥ मस्तकान्ते ललाटे च दहेल्लोहशलाकया ॥ ३० ॥

जिसके अत्यंत श्वासहो चेत नहीं रहे, तंद्राहो, अत्यंत कंपनाहो, शिरमें पीडाहो, ज्वरहो, हे वैद्य ! वह असाध्य रोग होता है ॥२६॥लाल आकृतिहो, चेत नहीं हो, और फटे हुए भ्रमते हुए नेत्रहो, अंग जकडबंध बुरावर्णवाला होजा वह अपस्मार अर्थात् मृगीरोग जानना ॥ २७ ॥ अपस्मार रोगमें बालकको शीतल वस्तु देनी चाहिये और वच, सेंधानमक, पीपली सूंठ, गुड इन्होंको मिला नस्य देवै ॥ २८ ॥ अथवा अगस्तिवृक्षके पत्तोंका रसमें मिरच मिला नस्य देवै. इसप्रकार करनेंसे सुख होजावे तब आंदोलन अर्थात् हिलानें चलानेंका कर्म करै ॥ २९ ॥ और मस्तकके अंतमें शिरके ऊपरकी नसको शलाईसे दग्ध करना हित है ३०

अथ बालकोंके पूतनाका दोष ॥

शून्यागारे देवकुले श्मशाने देवमध्यगे ॥ चत्वरे सङ्गमे नद्योर्भयक्षुभित बालके॥३१॥ संक्रामन्ति भिषकछ्रेष्ठ ! बालकस्यापि पूतनाः॥३२॥लोहिता रेवती ध्वांक्षी कुमारी शाकुनी शिवा ॥ ऊर्ध्वकेशी तथा सेना अष्टौ चैताः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३३ ॥ तथान्यासाञ्च मत्तस्त्वं नामानि शृणु साम्प्रतम् ॥ रोहिणी विजया काली कृत्तिका डाकिनी निशा ॥ ३४ ॥ भूतकेशी कृशाङ्गी च अष्टौ चैताः प्रकीर्त्तिताः ॥ लक्षणञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु पूजाबलिक्रमम् ॥ ३५ ॥ जातमात्रस्य बालस्य लोहिता नाम पूतना ॥ विस्रगन्धा लोहितश्च रोदिति स मुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥ बलिं तस्याः

प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं प्रजायते ॥ द्वितीये दिवसे बालं रेवती नाम पूतना ॥३७॥ गृह्णाति लक्षणं तस्य रोदति कम्पते भृशम् ॥ कृष्णमृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा गन्धानुलेपनैः ॥ ३८ ॥ कृशराशालचूर्णञ्च दीपधूपैस्तथाक्षतैः॥ ताम्बूलैः कृष्णसूत्रैश्च रात्रौ नैर्ऋतिके क्षिपेत् ॥ ३९ ॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते वायसी नाम पूतना ॥ तया गृहीतमात्रेण रोदिति न पिबेत्स्तनम् ॥ ४० ॥ ज्वरश्चैवातिसारश्च काकवद्रुदति भृशम् ॥ तस्या दध्योदनं पात्रे यवकृशरपोलिकाः ॥ ४१ ॥ ध्वजाभिःसगुडश्चैव कृष्णगन्धानुलेपनम् ॥ धूपदीपाक्षतैश्चैव मध्याह्ने बलिमाहरेत् ॥ ॥४२ ॥ चतुर्थे दिवसे बालं कुमारी नाम पूतना ॥ गृह्णाति बालकस्तेन ज्वरेण परितप्यते ॥ ४३ ॥ शून्यं विगाहते बालस्तन्मुखं परिशुष्यति ॥ भृशं स रोदिति तस्याः शृणु पूजाबलिक्रमम् ॥ ४४ ॥ पायसं सघृतं खण्डं घृतस्य दीपकत्रयम् ॥ ४५ ॥ मृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा पुष्पधूपाक्षतैरपि ॥ कृतान्तदिशि मध्याह्ने बलिं दत्त्वा सुखी भवेत् ॥ ४६ ॥ पञ्चमे दिवसे बालं शाकुनी नाम पूतना ॥ गृह्णाति स तयाक्रान्तः स्तन्यं नाकर्षते शिशुः ॥ ४७ ॥ सज्वरो वमति रौति कासमानोऽथ वेपते ॥ ॥ ४८॥ तस्याः शोभनिका पूजा क्रियते तिललड्डुकैः ॥ श्वेतगन्धाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृन्मयाकृतिम् ॥ ४९ ॥ उत्तराशां समाश्रित्य पूर्वाह्णे बलिमाहरेत् ॥ षष्ठे च दिवसे प्राप्ते शिवा नाम कुमारिका ॥ ५० ॥ रौति निःश्वसिति तेन वमति कम्पते तथा ॥ स्तन्यञ्च नाहरेद्बालो ज्वरातिसारपीडितः ॥ ५१ ॥ तस्यै बलिः प्रदेयश्च सप्तव्रीहिमयश्चरुः ॥ पायसैर्दधिदीपैश्च पूज्या सा तिलचूर्णकैः ॥ ५२ ॥ गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृन्मयाकृतिम् ॥ ऐशानीं दिशमाश्रित्यापराह्णे बलिमाहरेत् ॥ ५३ ॥ सप्तमेऽह्नि पूतनाया ऊर्ध्वकेश्याः शिशौ तथा ॥ पूर्ववद्दृश्यते चिह्नं तथैव बलिमाहरेत् ॥५४ ॥ अष्टमे दिवसे प्राप्ते सेना नाम च पूतना ॥ तया गृहीतः श्वसिति हस्तौ कम्पयते भृशम् ॥ ५५ ॥ तस्यै दध्योदनं दद्यात्तिलचूर्णञ्च पोलिकाम् ॥ धूपदीपगन्धपुष्पताम्बूलान्यक्षतानि च ॥

॥ ५६ ॥ आग्नेय्यां दिशमाश्रित्य प्रदोषे बलिमाहरेत् ॥ एवं क्रमेण मासस्य वर्षस्य बलिकर्म च ॥५७॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने बालचिकित्सा नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥इति कौमारतन्त्रम्॥

शून्य मकानमें और देवताओंके मंदिरमें तथा देवताओंकी मूर्त्तिके समीपमें चुराहामें तथा नदीके संगममें भयसे क्षुभित बालक होजावे ॥ ३१ ॥ तब हेउत्तम वैद्य! तिसबालकको पूतना ग्रहण करलेती है ॥ ३२ ॥ और लोहिता, रेवती, ध्वांक्षी, कुमारी, शाकुनी, शिवा, उर्ध्वकेशी, सेना, ऐसे आठ प्रकारकी पूतना होती है ॥ ३३॥ और अन्य पूतनाओंके नाम तू अब मुझसे सुन. रोहिणी, विजया, काली, कृत्तिका, डाकिनी, निशा, ॥ ३४ ॥ भूतकेशी, कृशांगी, ये आठ कही है इन्होंके लक्षण और पूजा, बलिके क्रमको कहतेहैं सुन ॥ ३५ ॥ जन्ममात्र लियेहुए बालकके लोहिता पूतना लगती है तिस्से बालकमें बुरी गंध आवे वारंवार रोवै ॥ ३६ ॥ सो तिसकी बलिको कहैंगे तिस्से सुख होता है और जन्मसे दूसरेदिन बालकको रेवती नामवाली पूतना ग्रहण करती है ॥ ३७ ॥ तिस्से रोवै और वारंवार कांपे तहां काली मृत्तिकाकी मूर्ति बनाके गंध, चंदन, ॥ ३८ ॥ खीचडी, रालका चूर्ण, दीप, धूप, अक्षत, नागरपान, काला सूत इन्होंसे पूजन कर इन्होंको नैर्ऋत दिशामें गेर देवै ॥ ३९॥ और जन्मसे तीसरेदिन बालकको वायसी नामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से ग्रहण होनेंसे बालक रोवै चूंची नहीं पीवे ॥ ४० ॥ ज्वरहो अतिसारहो वारंवार काककी तरह पुकारे तिसपूतनाकेवास्ते दही, चावल, जवोंकी कृशरा, पोलिका, ॥ ४१ ॥ इन्होंको पात्रमें घाल ध्वजाढांक तिसमें गुड कालेपुष्प, काला चंदनआदि अनुलेप गेर धूप, दीप, अक्षत, इन्होंसे युक्त करि मध्यान्ह समयमें इसबलिको देवै ॥ ४२ ॥ और चौथेदिन बालकको कुमारी नामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से बालकको अति तप्त होती है ॥ ४३ ॥ और शूना रहजावे तब पीडितहो और तिसका मुख शूख जावे वारंवार रोवै ऐसी तिसपूतनाकी पूजा और बलिको सुन ॥ ४४ ॥ खीर, घृत, खांड, घृतके तीन दीप कर ॥ ४५ ॥ और माटीकी मूर्ति, पुष्प, धूप, अक्षत, इनसबोंको मध्यान्ह समयमें दक्षिणकी दिशामें स्थापित कर देवै ऐसें करनेंसे बालक सुखी होता है॥ ४६॥और पांचवेदिन बालकको शाकुनी नामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से ग्रसितहुआ बालक चूंचीको नहीं लेता है॥ ४७॥ ज्वरसे युक्तहो वमन करै रोवै खांसताहुआ कांपे ॥४८॥ तिसपूतनाकी सुंदर पूजा तिललड्डु इन्होंसें करै और सफेदगंध, अक्षत, धूप इन्होंसे मृत्तिकाकी मूर्ति बनाके तिसका पूजन करै ॥ ४९ ॥ उत्तरको दिशामें मध्यान्ह समयसे पहिले इसबलिको देवै और छठे दिन शिवानामवाली पूतना बालकको ग्रहण करती है ॥ ५० ॥ तिस्से बालक रोवै अत्यंत श्वास लेवे वमन करै कभी कांपे और चूंची नहीं पीवे ज्वर अतिसार इन्होंसे पीडित

होजावे ॥ ५१ ॥ तिसकेवास्ते सातव्रीही धान्य और खीर, दही, दीपक, इन्होंकी बलि देवै और तिलोंके चूर्णसे तिसका पूजन करै ॥ ५२ ॥ और माटीकी मूर्त्तिका गंध पुष्प धूप अक्षत इन्होंसे पूजन करै ऐशान्यदिशाको तीसरे पहरमें इस बलिको देवै ॥ ५३ ॥ और सातवेदिन बालकको ऊर्ध्वकेशी नामवाली पूतना ग्रहण करती है जिसके लक्षण पहिली कही पूतनाके समान होते है और पहली कहीहुई बलि देवै ॥ ५४ ॥ और आठवे दिन सेनानामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से ग्रसित हुआ अत्यंत श्वास लेवे वारंवार हाथ कांपे ॥ ५५ ॥ तिसकेवास्ते दही, चावल, तिलोंका चूर्ण, पोलिका, इन्होंकी बलि देवै और धूप, दीप, अक्षत, गंध, पुष्प, नागरपान, इन्होंसे पूजनकर ॥ ५६ ॥ अग्निकोण दिशामें प्रदोष समयमें इसबलिको देवै इसीप्रकारके क्रमसे महीनोंकी और वर्षोंकीभी देवै ॥ ५७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायांतृतीयस्थाने बालचिकित्सानाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

अथ भूतविद्या ॥

आत्रेय उवाच ॥ शून्ये देवकुले श्मशानभूमौ वीथीप्रतोलीतले रथ्याकारविहारशून्यनगरे चारामके चत्वरे ॥ १ ॥ जायन्ते क्षुभिते बलानि हृदये क्षुद्रग्रहाणां नरे ते चापि प्रथिता ग्रहा दशविधा वक्ष्याम्यतः साम्प्रतम् ॥ २ ॥ दश प्रोक्ता महाचार्य्यैः कैश्चिदप्येकविंशतिः ॥ दशग्रहाणां वक्ष्यामि चिकित्सां शृणु पुत्रक ॥ ३ ॥ ऐन्द्राग्नेयौ यमश्चान्यो नैर्ऋतो वरुणो ग्रहः ॥ मरुतोऽपि कुबेरश्च ऐशान्यो ग्रहको ग्रहः ॥ ४ ॥ पैशाचिको ग्रहश्चान्यो दशैते ग्रहनायकाः ॥ आरामे च विहारेच देवस्थाने च यो भवेत् ॥ ५ ॥ ऐन्द्रग्रहं विजानीयात्तेन हर्षति गायति ॥ सदर्पश्चासदर्पश्च उन्मादग्रस्त एव च ॥ ६ ॥ श्मशाने चत्वरे चैव गृह्णात्याग्नेयकुग्रहः ॥ तेनैव रोदित्यत्यर्थं पश्यति सर्वतो भयम् ॥ ७ ॥ युद्धभूमौ श्मशाने च यमश्चापि उदीर्य्यते ॥ तेन विह्वलो दीनश्च प्रेतवच्चेष्टते नरः ॥ ८ ॥ वल्मीकचत्वरे चैत्ये गृह्णाति नैर्ऋतो ग्रहः ॥ तेनासौ वर्त्तते

द्वेष्टि धावति मारयत्यपि ॥ ९ ॥ दृप्तनेत्रो विवर्णास्यो बलिष्ठो दुष्टचेत नः ॥ नदीतडागतीरे च चलति वारुणग्रहः॥१०॥तेनास्यात्स्रवति लाला भृशं मूत्रयति नरः ॥ नेत्रस्रावश्च दृश्येत मूकवत्प्रविलोक्यते ॥ ११ ॥ वातमण्डलीमध्ये च गृह्णाति मारुतग्रहः ॥ तेनास्यं शोषयेद्दीनः कम्पते रोदित्यथवा ॥ १२ ॥ विह्वलः श्रान्तनेत्रश्च निषीदति क्षुधातुरः ॥ हर्षगर्वाभिमाने च गृह्णाति यक्षराड् ग्रहः ॥ १३ ॥ तेन गर्वोद्धत श्चैव तथा लङ्कारसुप्रियः ॥ १४ ॥ देवस्थाने च रम्ये च शिवग्रहश्छल प्रदः ॥ भस्माङ्गरागं कुरुते भ्रमते च दिगम्बरः ॥ १५ ॥ शिव ध्यानरतो नित्यं गीतवाद्यप्रियस्तु सः ॥ १६ ॥ शून्यागारे शून्यकूपे ग्रह को ग्रहनामकः ॥ क्षुधार्त्तो न तृषार्त्तश्च कथति न शृणोति च ॥१७॥ उच्छिष्टे वा शुचौ यस्य छलति पिशाचग्रहः ॥ तेन नृत्यति रौति वा गा यति जल्पति तथा ॥ १८ ॥ मत्तवद्भ्रमते नग्नो लालास्रावः क्षुधादिकः॥ एवं दशग्रहाणाञ्च लक्षणं कथितं मया ॥ १९ ॥ वक्ष्याम्यतः प्रतीकारं शृणु पुत्र ! समासतः ॥ जलस्नानं सातिशयं तथा च बलिकर्म च ॥ पूजां यथा वाच्यमानां तेन संलभते सुखम् ॥ २० ॥ एलाजातिफलम धूकयुगलं रास्ना तथा खादिरः ॥ कर्पूरामलकीजटाबहुसुताघोण्टाम्ल सारास्तथा ॥ सीसं पारदसारदाडिमफलं मद्यैश्च संमीलितं प्रत्येकं दधिदु ग्धलाङ्गलरसैर्युक्तं समं कल्कितम् ॥ २१ ॥ रसेन भावितं तस्य गुटिका च प्रकल्पिता ॥ जयेच्चन्द्रप्रभा नाम तीव्रान्मोहादिकान्गदान् ॥ २२ ॥ शुण्ठी मधुकसारञ्च चवी किंशुकमेव च ॥ बचाहिङ्गुसमायुक्तं बस्तमूत्रेण संयुतम् ॥ देयं ग्रहविकारघ्नं ग्रहाणां नाशनं परम् ॥ २३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—देवताका शून्य मंदिरमें श्मशानभूमिमें मार्गमें और उज्जड परा हुआ शहर ग्रामआदिककी गलियों बगीचेमें चुराहेमें ॥ १ ॥ मनमें त्रासहोनेसे बलवंत ग्रह लग जाते है वे बलवंत ग्रह दश प्रकारके होते है तिन्होंको अब कहते है ॥ २ ॥ बडे आचार्योंने दशग्रह कहे है और कितनेक इक्कीस कहते है हे पुत्र ! तिन दशग्रहोंकी चिकित्साको कहते है सुन ॥ ३ ॥ ऐंद्र, आग्नेय, धर्मराज, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, ऐशान्य, ग्रहक

॥ ४ ॥ पैशाचिक ऐसे ये दशग्रहनायक है जो बगीचेमें तथा क्रीडास्थानमें देवताका मंदिरमें मालूम हुआहो ॥ ५ ॥ वह ऐंद्रग्रह जानलेना तिस्से हर्षहो कभी गावे कभी अभिमानहो कभी नहींहो और उन्मादसे ग्रसाहुआ रहे ॥ ६ ॥ और आग्नेयग्रह, श्मशान, चूराहा, इनस्थानोंमें ग्रहण करता है तिस्से अत्यंत रोवै चारोंतर्फ भयसहित देखै ॥ ७ ॥ और युद्धकी भूमि, श्मशान, इन्होंमें यमग्रह लगता है तिस्से विह्वल होजावे दीन हो और प्रेत सरीखी चेष्टा करै ॥ ८ ॥ और वंवई चुराहा, यज्ञस्थान इन्होंमें राक्षसग्रह लगता है तिस्से सबसे वैर करताहुआ रहे भाजे किसीको मारदेवै ॥ ९ ॥ और वरुणग्रहसे ग्रसितहुआ मनुष्यके गर्वित नेत्र रहै वर्ण और मुख बिगडा हुआ रहै बलवान् हो दुष्ट चित्तहो नदीतलावके तीरपे चलता हुआ रहे॥१०॥ और लाल गिरैं बहुत ज्यादै मूतैं और नेत्रोंमें जल भरारहै गूंगासरीखा दीखै ॥ ११ ॥ और जो वायुके भंभूलेमे पीडितहोवे मरुतग्रहसे पीडित जानना तिस्से मुखमे शोषहो दीनहो कांपे और रोवै ॥१२ ॥ और विव्हलहो नेत्रोंमें हार सीर है पीडाहो क्षुधासे पीडितहो, और कुबेर ग्रहसे ग्रसित वह होता है ॥ १३ ॥ जो कि हर्ष गर्व अभिमान इन्होंसे युक्त रहै तिस पुरुषकै गर्भ उठारहै और गहिनें पहरनेंमें प्रियरहै ॥ १४ ॥ और देवताके रमणीक स्थानमें शिवग्रहकी पीडा होती है तिस्से शरीरपे भस्म लगावे और नग्नहोके भ्रमता रहै ॥ १५ ॥ नित्य शिवजीके स्थानमें रत रहै गीतवाजा इन्होंमें रत रहै ॥ १६ ॥ और शूना मकान, शूना कूवा इन्होंमें ग्रहकनाम ग्रह पीडा करता है और क्षुधासे युक्त नहींहो तृषासे युक्त नहीं हो और कुटिलता करै सुनें नहीं ॥ १७ ॥ और झूठाहो अथवा अशुद्धहो तब पिशाच ग्रह पीडा करता है तिस्से नांचै और गावै और रोवै और शब्द करै ॥ १८ ॥ और नग्नहोके मदोन्मत्तकी तरह भ्रमैं लाल गिरै क्षुधा आदिकोंसे पीडितहो इस प्रकारसे मैनें दश ग्रहोंके लक्षण कह दिये है ॥ १९ ॥ अब इन्होंकी चिकित्साको संक्षेपमात्रसे सुन, अत्यंत जलमें स्नान और बलि देनेंका कर्म कही हुई पूजा ऐसे करनेंसे सुख होता है ॥ २० ॥ और इलायची, जायफल, मुलहटी, महुआ, रास्ना, खैर, कपूर, आंवला, जटामांसी, महाशतावरी, सुपारी, विजौरा, सीसा, पारा, चिरौंजी, अनारदाना, मदिरा, इन्होंको समान भाग ले कल्क बना ॥ २१ ॥ पीछे दही, दूध, कलहारीका रस इन्होंमें भावना दे तिसकी गोली बना लेवे यह चंद्रप्रभा नामवाली गोली मोह अज्ञान आदिक तीक्ष्णरोगोंको नाशती है ॥ २२ ॥ सूंठ, मधुकसार, चव्य, केसू, वच, हींग इन्होंकूं बकराके मूत्रके साथ देना इससे ग्रहोंका नाश होता है. यह ग्रहविकारनाशक उपाय है. ॥ २३ ॥

अथ ग्रहदोषनाशक धूप ॥

बिडालविष्ठाहिममोचनिम्बमयूरपिच्छं समराजिका च॥ निर्मोकपिण्डीतकसर्जमोचधूपं घृताक्तं ग्रहदोषशान्त्यै॥२४॥ चेतना नाम गुटिका तथा

ब्राह्मीघृतं स्मृतम्॥ अपस्मारे यान्युक्तानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥२५॥

बिलावका विष्ठा, कपूर, मोचरस, नींब, मोरका चंदा, इनसबोंके समान राई और सांपकी कांचली, मैनफल, राल, मोखावृक्ष, इन्होंको धूप बना तिसमें घृत मिला धूप देनेसे ग्रहदोषकी शांति होती है ॥ २४ ॥ और पहली कहीहुई चेतना नामवाली गुटिका और ब्राह्मी घृत और अपस्माररोगमें कहेहुए अन्य औषध तिनसबोंको यहां ग्रहदोषमें देवै ॥२५॥

अथ भूतेश्वरमंत्र ॥

गुग्गुलुं समधुघृतं तेन धूपेन धूपयेत् ॥ मन्त्रेण तेन हारीत! तर्जयेद्ग्रहपीडितम् ॥ २६ ॥ ओं नमो भगवते भूतेश्वराय कलिकलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्राय त्रिनयनधगधगितपिशङ्गललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखट्वाङ्गडमरुकधनुर्बाणमुद्गराभयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयदार्द्रदण्डमण्डिताय कपिलजटाजूटार्द्धचन्द्रधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय उग्रफणिकालकूटाटोपमण्डितकण्ठदेशाय जय जय भूतनाथामरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य चल चल पाशेन बन्ध बन्ध हुङ्कारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन निशितखड्गेन छिन्न छिन्न शूलाग्रेण भिन्न भिन्न मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशय स्वाहा ॥ २७ ॥

गूगल, शहद, घृत इन्होंकी धूप बनाके धूपित करै और हे हारीत ग्रहपीडित पुरुषको इस मंत्रसे ताडना दे ॥ २६ ॥ ओंनमो भगवते भूतेश्वराय कलिकलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्राय त्रिनयन धगधगितपिशंगललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखड्गाय डमरुकधनुर्बाणमुद्गराभयदंडत्रासमुद्राव्ययदसंयदार्द्रदंडमंडिताय कपिलजटाजूटचंद्रधारिणे भस्मरागरंजितविग्रहाय उग्रफणिकालकूटाटोपमंडितकंठदेशाय जय जय भूतनाथामरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य चल चल पाशेन बंध बंध हुंकारेण त्रासय त्रासय वज्रदंडेन हन हन, निशितखड्गेन छिन्न छिन्न शूलाग्रेण भिन्न भिन्न मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशयस्वाहा ॥२७ ॥

अथ आवेशमंत्र ॥

ग्रहाविष्टेन चेत्तस्मै दीयते बलिरुत्तमः ॥ मुक्तो भवति तस्माच्च संशयो नास्ति तत्र च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

जिसपुरुषमें ग्रहप्रवेश होरहाहोतिसके इसमंत्रको पढ ताडना दे जो ग्रहप्रवेश मालूम होताहो तिसी ग्रहकेवास्ते बलिदान देनेसे वह पुरुष ग्रहसे छुट जाता है इसमें संदेह नहीं ॥२८॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ विषतंत्र ॥

आत्रेय उवाच ॥ द्विविधं विषमुद्दिष्टं स्थावरं जङ्गमं भिषक् !॥ शृङ्गिको वत्सनाभश्च तथाच शार्ङ्गवेरिकः ॥ १ ॥ दारकः कालकूटश्च शङ्खः स्यात्सत्तुकन्दुकः॥हालाहलश्चाष्टभश्च तथाष्टौ विषजातयः॥२॥शृङ्गिकः कृष्णवर्णश्च वत्सनाभश्च पीतकः॥ शुण्ठीसमानवर्णश्च शार्ङ्गवेरः स उच्यते ॥ ३ ॥ दारको हरिवर्णश्च कालकूटो मधुप्रभः ॥ शङ्खश्चातिविषाभासः पीताभः सत्तुकन्दुकः ॥ ४ ॥ हालाहलः कृष्णवर्णश्चाष्टौ च जातयस्तथा ॥ पीतविषं नरं दृष्ट्वा सद्यो वमनमुत्तमम् ॥ ५ ॥ यावत्पीतानि विषश्च तावत्तु वमयेत्सदा ॥ सिञ्चेच्छीताम्भसा वक्त्रं मन्त्रपूतेन सत्वरम्॥६॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे वैद्य स्थावर और जंगम दो प्रकारका विष कहा है और शृंगिक, वत्सनाभ, शृंगवेरक, ॥ १ ॥ दारक, कालकूट, शंख, सत्तुकन्दुक, हालाहल ऐसे आठ प्रकारके विष कहे है ॥ २ ॥ शृंगिक विष काला वर्णवाला और वत्सनाभ विष पीला होता है और जो सूंठके समान आकारवर्णवालाहो वह शृंगवेरक विष होता है ॥ ३ ॥ दारकविष हरा वर्णवाला और कालकूट विष शहदके समान वर्णवाला होता है और शंख विष अतीशके समान होता है और सत्तुकन्दुक विष पीला होता है ॥ ४ ॥ हालाहल विष कालावर्णवाला होता है ऐसे आठ प्रकारकी विष जाति कही हैं जहर पीये हुए मनुष्यको देखि शीघ्रही वमन करवावे ॥ ५ ॥ जबतक पीये हुए जहरको गेरै तब तक वमन कराताही रहे और मंत्रसे पवित्र हुआ शीतल जलसे तिसके मुखको सींचै ॥ ६ ॥

अथ मुखसिंचन मंत्र ॥

ॐ हर हर नीलकण्ठ ! अमृतं प्लावय प्लावय हूङ्कारेण विषं ग्रस ग्रस क्लीङ्कारेण हर हर ह्रौङ्कारेण अमृतं प्लावय प्लावय हर हर नास्ति विष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

ॐहर हर नीलकंठ अमृतं स्रावय स्रावय हूंकारेण विषं ग्रस ग्रस क्लींकारेण हर हर ह्रौंकारेण अमृतं स्रावय स्रावय हर हर नास्तिविष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

अथ कानमें जपनेंके वास्ते मंत्र ॥

ॐ नमो हर हर नीलग्रीवश्वेताङ्गसङ्गजटाग्रमण्डितखण्डेन्दुस्फूर्त्तमन्त्ररूपाय विषमुपसंहर उपसंहर हर २ नास्ति विष २ उच्छिरे ३ इति कर्णजपमन्त्रेण वारंवारं तालुमुखं सिञ्चेच्छीतवारिणा ॥ ८ ॥

ॐनमो हर हर नीलग्रीव श्वेतांगसंगजटाग्रमंडितखंडेंदुस्फूर्त्तमंत्ररूपाय विषमुपसंहर उपसंहर हर ३ ना स्तिविष ३ उच्छिरे ३ इसकर्णे जपमंत्रसे वारंवार तालुवाको और मुखको शीतल जलसे सींचै ॥ ८ ॥

अथ विषशमन औषध ॥

ताण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा चोष्णेन वारिणा ॥ पीतं पीतविषं हन्ति वमने लाघवं भवेत्॥९॥काकजङ्घा सहचरीमूलं चैडगजस्य च॥कदरं कामुकश्चापि त्वचं पीत्वोष्णवारिणा॥पीतं तच्च विषं घोरं नाशयत्याश्वसंशयः ॥१०॥खदिरस्य च मूलञ्च तथा निम्बफलानि च॥उष्णोदकेन पीतानि विषं जयेयुस्तत्क्षणात्॥११॥वत्साह्वश्चाश्वगन्धाश्च पीत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ प्रपीतश्च विषं पाति चाशु नरस्य वेदवाक् ॥ १२ ॥ अथ प्रधान रक्तस्य क्षते रक्तं विषस्य च ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं येन सम्पद्यते सुखम् ॥ १३ ॥ मर्मस्थाने मर्मगतं तदसाध्यं भवेन्मतम् ॥ साध्यश्च तत्त्वग्रक्तस्थं मांसस्थं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ असाध्यं धातुसंप्राप्तं सखे! वक्ष्यामि भेषजम् ॥ विषलिप्तं नरं ज्ञात्वा ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥ रजनीयुग्मम्लकेन काञ्जिकेन तु पेषितम् ॥ लेपेन च विषं हन्ति प्रलिप्तं नात्र संशयः ॥ १६ ॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं काञ्जिकेन वा ॥ अतिशीतेन तोयेन प्रलिप्तं नात्र संशयः ॥ १७ ॥

चौलाईकी जडको गरम जलके संग पीसि पीनेंसे पीया हुआ विषका नाश होता है और वमन होके हलका होता है ॥ ९॥ और कावली, पीला कोरंटा, पुवाडकी जड, सफेद खैरकी छाल इन्होंको गरम जलके संग पीनेंसे घोर विषका नाश होता है ॥ १० ॥ और खैरकीजड, नींबके फल निंबोली, इन्होंको गरम जलके संग पीनेंसे शीघ्रही विषका नाश होता है॥

॥ ११ ॥ कूडाकी छाल, आसगंध, इन्होंको गरम जलके संग पीनेंसे पीया हुआ विष दूर होता है ॥ १२ ॥ इस्से अनंतर जो रक्तमें प्रधान तिस विषकेवास्ते तिसकी औषधोंको कहेंगे तिस्से सुख होता है ॥ १३ ॥ जो मर्मस्थानमें विष प्राप्त होजावे तब असाध्य जानना और त्वचा रक्त इन्होंमें स्थित हुआ विष कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और धातुमें प्राप्त हुआ विष असाध्य होता है हे प्रिय! तिन्होंकी औषधोंको कहते है विषसे लिये हुए मनुष्यको जानके पीछे तिसकी चिकित्सा करै ॥ १५॥ दोनों हलदियोंको विजौराके रसमें और कांजीमें पीस लेपकरनेंसे शरीरकै लिपाहुआ विषका नाश होता है ॥ १६ ॥ और विजौराके रसमें अथवा कांजीसे तथा शीतल जलसे धोवनेंसे शरीरकै लिपाहुआ विषका नाश होता है १७

अथ जंगमविषकी चिकित्सा ॥

विषं जङ्गममित्युक्तमष्टधा भिषगुत्तम ! ॥ दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च गुण्डसाः ॥ १८ ॥ वृश्चिको गोरकश्चापि तथाच खण्डबिन्दुकः॥ अलर्कमूषमार्जारविषं प्रोक्तमनेकधा ॥ १९ ॥ दार्वीकराणां सर्वेषामुक्तं वातात्मकं विषम् ॥ मण्डलिनाञ्च सर्वेषां पैत्तिकं विषमुच्यते ॥२०॥ राजिमन्तश्च ये प्रोक्तास्तेऽपि कफात्मका विषाः ॥ विचित्रगमनं मूर्ध्नः पीडनं चातिदुर्भरम् ॥ २१ ॥ हृदये व्यथनं यस्य तमसाध्यं वदन्ति च॥ नासारक्तस्रुतिर्यस्य नेत्रे स्रावश्च दृश्यते ॥ २२ ॥ जडा च जायते जिह्वा तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥ यस्य लोमानि शीर्य्यन्ते पीताभं शरीरं भवेत् ॥ २३ ॥ न स्थिरं मस्तकं यस्य तमसाध्यं भिषग्वर ! ॥ एभिर्विरहितं दृष्ट्वा कुर्य्यात्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥ २४ ॥

हे उत्तम वैद्य! जंगम विष आठ प्रकारका होता है दर्वीकर सर्प, मंडलि, राजिमंत, गुंडस, ॥१८॥ वृश्चिक, गोरक, खंडबिंदुक, ऐसे इन सर्पोंके विष कहे है और कुत्ता,मूसा, विलाव इत्यादिकोंके अनेक विष कहे है ॥ १९ ॥ दर्वीकर अर्थात् करछी सरीखे फणवाले सब सर्पोंका वातवाला विष होता है और मंडलवाले सर्पोंका पित्तवाला विष होता है ॥ २०॥ और जो राजिमंत अर्थात् रेखावाले सर्प कहे है तिन्होंका कफवाला विष होता है, और जिस पुरुषका विचित्र गमनहो और मस्तकमें अत्यंत दुर्भर पीडाहो ॥ २१ ॥ और जिसके हृदामें पीडाहो विषवाले तिस मनुष्यको असाध्य जानै और जिसकी नासिकासे रक्त झिरै नेत्रोंमें पानी भरा रहैं ॥२२॥ और जिह्वा जड होजावे तिसको वैद्यजन असाध्य कहतेहै और जिसके रोम विषर जावे और शरीर पीला होजावे ॥ २३ ॥और मस्तक स्थिर नहींहो हे उत्तमवैद्य! तिसको असाध्य जानै और जो पुरुष इनलक्षणोंसे रहितहो तिसका इलाज करै ॥२४॥

अथ विषबंधनमंत्रः ॥

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय उग्रकालकूटविष कवलिने विषं बन्ध बन्ध हर हर भगवतो नीलकण्ठस्याज्ञा ॥ ॐ नमो हर हर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय नासि अरेरे विष ! नील पर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐ हाहा ऊंचिरे२ ॥ अनेन मंत्रेण मुखमुदकेन त्रासयेत् ॥ ॐ नमोऽरेरे हंस ! अमृतं पश्य पश्य ॥ २५ ॥

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय उग्रकालकूटविषकवलिने विषं बंध२ हर २ भगवतो नीलकंठस्याज्ञा । ॐ नमोहरहर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय नासि अरेरे विष नीलपर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐ हाहा ऊंचिरे इसमंत्रको तीनवार पढ मुखपे जलके छिडके मारे ओं नमोरेरे हंस अमृतं पश्य पश्य ॥ २५ ॥ इति मंत्रः

अथ लेप ॥

जयकूटं वचाकुष्ठं सैन्धवं मगधा निशा ॥ लेपो दष्टव्रणे प्रोक्तो विषं हन्ति सुदारुणम् ॥ २६ ॥ सुरसा रजनी व्योषं यवानी पारिभद्रकम् ॥ सर्पदष्टव्रणे प्रोक्तं लेपनं विषशान्तये ॥ २७ ॥ कुष्ठं मुस्ता अजाजी च विडङ्गं मधुयष्टिका ॥ गुञ्जामूलं शीततोयैर्लेपो मण्डलिनां हितः॥२८॥ राजिमन्तो विषा यस्य गृहधूमं वचा घनम् ॥ सर्षपाश्च यवानी च पिचुमन्दफलत्रयम् ॥ लेपनं राजिमताञ्चैव व्रणतैलेन संयुतम् ॥ २९ ॥

इति राजिमतां लेपः ॥

लोहाका चूर्ण, वच, कूठ, सैंधानमक, पीपल, हलदी, इन्होंका लेप दष्टव्रणमें कहा है यह दारुण विषको नाशता है ॥ २६ ॥ और ब्राह्मी, हलदी, सूंठ, मिरच, पीपली अजमान, नींब इन्होंका लेप सर्पसे उपजा दष्टव्रणपे करना हित कहा है विषकी शांति होती है ॥२७॥ और कूठ, नागरमोथा, जीरा, वायविडंग, मुलहटी, चिरमठीकी जड इन्होंको शीतल जलमें पीसि लेप करनेंसे मंडलवाले सर्पोके विषका नाश होता है ॥ २८ ॥ और रेखावाले सर्पोंके विषके नाशकेवास्ते घरका धूंवा, वच, नागरमोथा, सिरसम, अजमान, नींब, त्रिफला इन्होंको व्रणमें कहेहुए तेलमें पीसि लेप करै ॥ २९ ॥

सठीकिरातं सकटुत्रयं च वचानिशालापिचुमन्दकञ्च ॥ पथ्यायवानीरजनीद्वयञ्च दष्टव्रणे लेपनमेव शस्तम् ॥ ३० ॥ स्थावरं जङ्गमं वापि वि

षं जग्धं भिषग्वर ! ॥ शीघ्रं दद्याद्व्यथां गुर्वीं प्रोक्तश्च नरसत्तमैः ॥ ३१ ॥

और कचूर, चिरायता, सूंठ, मिरच, पीपली, वच, इंद्रायण, नींब, हरडै, अजमान, दोनो हलदी इन्होंका लेप दुष्टव्रणपे करना श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ हे उत्तमवैद्य ! स्थावर अथवा जंगम भक्षण कियाहुआ विष शीघ्रही अत्यंत पीडा करता है ऐसे श्रेष्ठ मनुष्योंनें कहा है ३१

अथ मंत्र ॥

ॐ नमो भगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्रहाय अमृतकुम्भपरितोऽमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा ॥३२॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विषतन्त्रं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

ॐ नमोभगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्रहाय अमृतकुंभपरितोमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा॥३२॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने विषतंत्रंनाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अथ भिन्न अर्थात् शस्त्रआदिसे टूटाहुआकी चिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं घृष्टं पिष्टं तथैव च ॥ आस्फालितं सम्प्रहारः संघातः कथ्यते बुधैः ॥ १ ॥ शस्त्रभिन्नं नरं दृष्ट्वा कर्त्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ २ ॥ अस्थिस्थं विद्यते मांसमस्थि संच्छिद्यते यदि ॥ शाखाप्रशाखयोर्वापि छिन्नं तच्च निगद्यते ॥ ३ ॥ असन्धौ परिसंच्छिन्नं तदसाध्यं विनिर्दिशेत् ॥ खड्गार्द्धचन्द्रपरशुच्छिन्नं तु कथितं सदा ॥ ४ ॥ तस्यादौ चारणालेन धावनं परिकीर्त्तितम् ॥ पिचुना तिलतैलेन शीघ्रं संस्वेदनान्वितम् ॥ ५ ॥ यावद्धि स्रवति रक्तं तावत्तैलेन चाभ्यजेत् ॥ रक्ते वै विकृतिं प्राप्ते तैलेनाभ्यञ्जनं मतम् ॥ ६ ॥ शोफाद्याश्च प्रजायन्ते बहुलोपद्रवा व्रणे ॥ सन्धौ छिन्नं नरं दृष्ट्वा सेचयेत्तप्तवारिणा ॥ ७ ॥ सञ्चितस्य व्रणस्यापि प्रशस्तं पिचुतैलकम् ॥ पूये वापि विनिर्याति निम्बारग्वधपत्रकम् ॥ ८ ॥ गुडेन पथ्यां पिष्ट्वा च लेपनं पूयशोधनम् ॥ दिनत्रये विशुद्धेऽपि तत्रैव लेपनं हितम् ॥ ९ ॥ धवार्जुनकदम्बस्य वृक्षोदुम्बरयोस्त्वचम् ॥ जलेन पिष्ट्वा लेपश्च तेन संरोहते व्रणः॥

आत्रेयजी कहते हैं—छिन्न कटाहुआ, भिन्न टूटाहुवा, भग्न फूटाहुआ, घृष्ट दबाहुआ, पिष्ट पिशाहुआ, आस्फालित फटा हुआ, संप्रहार संघात, लाठी आदिकी चोट ऐसे ये हाड आदिके टूटनेंके रोग होते है॥ १ ॥ शस्त्रसे कटे हुए मनुष्यको देखि तिसकी क्रियाकरै॥२॥ अस्थिमें स्थित हुआ मांसभेदन होजावे अथवा शाखा प्रशाखाओंकी अस्थि छेदन होजावे वह छिन्न कहाता है ॥३॥ और जो संधिके बिना अन्य जगहकी हड्डी टूट जावे वह असाध्य कहाती है खड्ग अर्धचंद्रमाके समान शस्त्र फरशा इन्होंसे छिन्न अस्थि कही है ॥४॥ तिसकी आदिमें चारण, लेप, धोवना, ये कर्म करै और तिलोंके तेलसे रूईके फोहे करके चोपरिके पसीना दिवावै ॥ ५ ॥ जबतक रुधिर गिरै तबतक तेलसे चोपरता रहै और जब रक्त विकारको प्राप्त होजाता है तब तेलसे मालिस करना हित कहाहै ॥ ६ ॥ और तहां व्रणपे शोजा आदिक बहुतसे उपद्रव होजाते है संधिमें छिन्न हुए मनुष्यको देखिकै गरमजलसे सेक करै ॥ ७ ॥ फिर गरम जलसे सेक करलेवे तब फोहेसे तेल लगाना श्रेष्ठ है और जो राध निकलती हो तो नींब, अमलतास इन्होंके पत्ते बांधनें श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ और हरडैको पीस गुडके संग लेप करनेंसे राधकी शुद्धि होती है तीन दिनतक शुद्ध होंजावे तब इनआगे कही औषधों का लेपकरना हित है ॥९॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, पिलखनवृक्ष, गूलर इन्होंकी छालको जलमें पीस लेप करनेंसे घाव भरता है ॥ १० ॥

अथ भिन्नअस्थिकी चिकित्सा ॥

शक्तिशूलैश्चबाणैश्च भल्लारखड्गतोमरैः ॥ क्षुरिकामुखधाराभिर्भिन्नं तत्कथ्यते भिषक् ! ॥११॥ साध्यममर्मजं प्रोक्तं मर्मस्थं तन्न सिध्यति ॥ अपामार्गरसेनापि तथा कूष्माण्डकस्य च ॥ १२ ॥ धावनं काञ्जिकेनापि प्रशस्तं कथ्यते बुधैः ॥ तिलतैलेन चाभ्यङ्गो हितः स्यात्स्वस्थभिन्नके ॥ लेपनञ्च प्रयोक्तव्यं पूर्वोक्तञ्च हितावहम् ॥ १३ ॥

हे वैद्य ! शक्ति, शूल, बाण, भाला, तलवार, तोमर शस्त्र, छुरी, खांडा, इन्होंसे कटा हुआ हाड भिन्न कहा है ॥११॥ जो मर्ममें नहीं लगाहो वह साध्य कहा है और मर्मस्थानमें लगा हुआ असाध्य कहा है तहां ऊंगाके रससे अथवा कोहलाके रससे तथा कांजीसे धोवना श्रेष्ठ कहा है ॥ १२ ॥ और वैद्योंने कांजीसें धोना श्रेष्ठ कहा है और भिन्न हुए हाडमें तिलोंका तेलकी मालिसकरनी हित कही है और पहले कहा हुआ लेप करना हित कहा है ॥ १३ ॥

अथ शल्योद्धारचिकित्सा ॥

उरसि शिरसि शङ्खे कक्षयोः पादयोर्वा त्रिकजठरमुखाग्रे नेत्रयोः कर्णयोर्वा ॥ भवति हि यदि शल्यं कष्टसाध्यञ्च शस्त्रैर्भवति यदि न गूढं

भेषजैस्तैर्विधिज्ञ ! ॥ १४॥शाखाप्रशाखयोर्यच्च मर्मस्थं तन्न सिध्यति॥ यन्त्रशस्त्रप्रतीकारैः शल्यं प्राज्ञः समुद्धरेत् ॥ १५॥ द्वादशैव तु यन्त्राणि शस्त्राणि द्वादशैव तु॥चत्वारि च प्रबन्धानां शल्योद्धारे विनिर्दिशेत्॥१६ गोधामुखं वज्रमुखं च नाम संदंशचक्राकृतिकङ्कपादम् ॥अथानकं शृङ्गककुण्डलञ्च श्रीवत्ससौवस्तिकपञ्चवक्रम् ॥ १७ ॥ द्वादशैतानि यन्त्राणि कथितानि भिषग्वरैः ॥ अथ शस्त्राणि प्रोक्तानि नामानि च पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥ अर्द्धचन्द्रं व्रीहिमुखं कङ्कपत्रं कुठारिका ॥ करवीरकपत्रञ्च शलाककरपत्रकम् ॥ १९ ॥ बडिशं गृध्रपादश्च शूली च घनमुद्गरम् ॥ शस्त्राण्येतानि प्रोक्तानि शल्योद्धारे पृथक् पृथक् ॥ २० ॥ अतिगुप्तं च शल्यञ्च संदंशेन समुद्धरेत् ॥ भिन्नेन तत्प्रतीकारः कर्त्तव्यश्च सुधीमता ॥ २१ ॥ गम्भीरशल्यं ज्ञात्वा च प्रतीकारञ्च कारयेत् ॥ पाटनं कुशपत्रेण चोद्धरेत्कुङ्कुमेन च ॥ २२ ॥ भिन्नवत्प्रतीकारश्च कर्त्तव्यश्च सुधीमता ॥ २३ ॥ यत्र शोफो भवेत्तीव्रस्तत्र शल्यं विनश्यति ॥ सशल्यं सघनं चैव रुजावन्तं निरूप्य च ॥ २४ ॥ तत्र योग्यं च यन्त्रं च यन्त्रशस्त्रञ्च योग्यकम् ॥ तत्तत्र योजनीयञ्च ऊहापोहविशारदैः ॥२५॥ या वेदना शल्यनिपातजाता तीव्रा शरीरे प्रतनोति जन्तोः ॥ घृतेन संशान्तिमुपैति सिक्ता कोष्णेन यष्टीमधुनान्वितेन ॥ २६॥ सर्जार्जुनोदुम्बरमर्कटीनां रोध्रं समङ्गासुरसासमेतम् ॥ जलेन पिष्ट्वा प्रतिलेपनाय शल्योद्धृतौ सौख्यमिदं करोति ॥ २७॥ शेषा क्रिया च पूर्वोक्ता छिन्ने भिन्ने हिता तु या ॥ कर्त्तव्यो वालुकास्वेदो घटीस्वेदश्च तत्र च ॥ २८ ॥

छाती, शिर, कनपटी, दोनोंकाख, दोनोंपैर, कटिस्थान, उदर, मुख इन्होंके आगे नेत्र कान इन्होंमें जो यदि बाण आदि शल्य होवे तो शस्त्रोंसेभी कष्टसाध्य कही है और जो डूबै नहीं होवे तो औषधोंसे निकल जाती है ॥ १४ ॥ और शाखा प्रशाखा हाथपैर अंगुली आदिस्थान मर्मस्थान, इन्होंमें लगी हुई शल्य नहीं निकलती है और यंत्र शस्त्रोंके प्रकार इन्होंसे बुद्धिमान् पुरुष शल्यको निकासै ॥ १५ ॥ बारह यंत्र है और बारह प्रकारके शस्त्र कहे है और शल्योद्धारमें चार प्रबंध अर्थात् बंधन आदिक पट्टी कही है ॥ १६ ॥ गोधामुख, वज्रमुख,

संदंश, चक्राकृति, कंकपाद, आनक, शृंगक, कुंडल, श्रीवत्स, सौवत्तिक, पंचवक्र ॥ १७ ॥ ऐसे ये बारहप्रकारके यंत्र वैद्यजनोंनें कहे है और जुदे २ नामोंवाले बारह प्रकारके शस्त्र कहे है ॥ १८ ॥ अर्धचंद्रमाकेसमान, व्रीहिमुख, कंकपत्र, कुठारिका, करवीरकपत्र, कुशपत्र, शलाकाकरपत्र ॥ १९ ॥ बडिशशस्त्र, गृध्रपाद, शूली, घनमुद्गर, ऐसे ये जुदे २ दोशस्त्र शल्योद्धारमें कहे है ॥ २० ॥ जो अतिगुप्त शल्यहो वह संदंश अर्थात् चिमटासरीखे यंत्रसे निकालनी चाहिये और भिन्नहुई अस्थिके समान तिसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ और गंभीर शस्त्रको जानले तिसको कुशपत्र शस्त्रसे फाडना चाहिये, कुंकुमशस्त्रसे निकासै ॥ २२ ॥ और तिस शल्यकी चिकित्सा भिन्नहुए अस्थिके समान करै ॥ २३ ॥ और जहां अत्यंत शोजा होगयाहो तहां शल्य नहीं दिखता है तहां शल्य सहित और करडा पीडावाला ऐसा शोजाको जानके ॥ २४ ॥ तहां जैसा योग्यहो वैसाही यंत्र और शस्त्रको बुद्धिमान्-वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारके प्रयुक्तकरै ॥ २५ ॥ जो बाणआदि शल्यके लगनेंसे पीडा हुईहो वह मनुष्यके शरीरमें ज्यादै बढजावे तहां कुटक, मुलहटी, शहद, इन्होंसे संयुक्त किये हुए, कछुक गरम२ घृतसे सेकनेंसे वह पीडा शांतहोती है॥२६॥और रालकावृक्ष,अर्जुनवृक्ष,गूलर, कौंच, लोध, मंजीठ, तुलसी, इन्होंको जलमें पीस शल्य निकासी हुई जगहपे लेप करनेंसे सुख होता है ॥२७॥ और बाकी जो पहले वालुकास्वेद, घटीस्वेद, इत्यादिक क्रिया कहीहै वे और अस्थिछिन्न, भिन्नअस्थि इन्होंमें जो क्रिया हित कही है वे सब करनी चाहिये ॥ २८ ॥

अथ अस्थिभग्नकी चिकित्सा ॥

भग्नास्थिश्च नरं दृष्ट्वा तस्य वक्ष्यामि भेषजम् ॥ मणिबन्धे कूर्परे च जानौ भग्ने कटौ तथा ॥२९॥ पृष्ठवंशे विभग्ने च साध्यान्येतानि सत्तम ! ॥ ग्रीवादेशे चेन्द्रबस्तौ रोहिण्यां कूर्परादधः ॥ ३० ॥ स्कन्धकूर्परमध्ये च तथाच त्रिकमध्यतः ॥ उरसि चैव क्रोडे च विभग्नं तदसाध्यकम् ॥३१॥ विभग्नं च नरं दृष्ट्वा वेणुखण्डेन बन्धयेत् ॥ म्रक्षयेन्नवनीतेनैरण्डपत्रैश्च वेष्टयेत् ॥ ३२ ॥ उष्णाम्भसा सेचयेच्च वस्त्रेण मृदु बन्धयेत् ॥ ३३ ॥ धवार्जुनकदम्बानां वल्कलं काञ्जिकेन तु ॥ पिष्ट्वा हितः प्रलेपश्च तेन सौख्यं प्रजायते ॥ ३४ ॥ स्वेदयेत्तानि चोष्णेन आवासं कारयेत्पुनः ॥ एवं क्रियासमाप्तौ ततो बन्धं विमोचयेत् ॥ ३५ ॥ एकाहान्तरितेनापि पूर्ववत्तत्प्रबन्धयेत् ॥ यावद्ग्रन्थिं न बध्नाति तावन्न स्नापयेन्नरम्॥३६॥

भग्न अस्थिवाले मनुष्यकेवास्ते औषध कहते है पौंहचा कोहनी, गोडे कटि ॥ २९ ॥

पीठका वांस, ये जो भग्न होजावे तो साध्य कहे है और ग्रीवाके समीप, बस्तिस्थानकोहनी-के नीचेकी जगह, ॥ ३० ॥ और कांधा, कोहनींके बीचका स्थान, कटि, कलेजा, छाती, इन्होंमें भग्न हुई अस्थि असाध्य कही है ॥ ३१ ॥ भग्न अस्थि हुए मनुष्यको देखिके वांस-की फाटकोंसे बांध देवै और नौंनीघृतका लेप कर अरंडके पत्तोंसे बांध देवै ॥ ३२ ॥ और गरम जलसे सेक करै वस्त्रसे कोमल बांध देवै ॥ ३३ ॥ और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, इन्होंकी छालको कांजीमें पीस लेप करनेंसे सुख होजाता है ॥ ३४ ॥ पीछे गरम २ वस्त्र होजावे तबतक पसीना दिवावै वस्त्रको तहां बांधा रक्खै ऐसी क्रिया हो लेवे तब बंधनको खोलदेवै ॥ ३५ ॥ एकदिन खुला रक्खै और एकदिन बांधा रक्खै और जबतक टूटाहुआ हाडकी जगह ग्रंथि नहीं बंधै तबतक स्नान नहीं करवावै ॥ ३६ ॥

अथ घृष्ट हाडकी चिकित्सा ॥

घृष्टश्चैव नरं दृष्ट्वा धावनं काञ्जिकेन च ॥ मूत्रेण शीततोयेन धावनञ्च हितं मतम् ॥ ३७ ॥ यावद्वै स्रवति रक्तं तावत्तैलेन सेचयेत् ॥ अल्पानि चौषधान्यत्र कारयेद्विविधानि च ॥ ३८ ॥

घृष्ट अर्थात् किसी वस्तुसे घिसके दब जावे वह घृष्ट हाड कहाता है तिसको कांजीसे धोवै अथवा गोमूत्रसे तथा शीतल जलसे धोवना हित है ॥ ३७ ॥ और तहां जबतक रु-धिर झिरै तबतक तेलसें सेकता रहै और वैद्यजनको यहां स्वल्प औषध करनी चाहिये॥३८॥

अथ आस्फालित हाडकी चिकित्सा ॥

विपाके रक्तस्रावश्च स्वेदनश्च विधीयते ॥ भग्नवत्प्रतीकारश्च कारयेद्विधि पूर्वकम् ॥ ३९ ॥ आस्फालिते प्रतीकारे ज्ञातव्यश्च भिषग्वर !॥ ऊहापोहैश्च कर्त्तव्यस्तेन सम्पद्यते सुखम् ॥ ४० ॥

पकेहुए हाडमें रुधिर झिरताहो तो पसीना दिवाना हित है और भग्न हुए हाडके समान इसका इलाज करै ॥ ३९ ॥ ऐसे वैद्यजनोंको जानना चाहिये. और अपनी बुद्धिके बलके अनुसार चिकित्सा करै तिस्से रोगीको सुख होता है ॥ ४० ॥

अथ अभिघात अर्थात् चोट लगी हुईकी चिकित्सा ॥

शिरोऽभिघातजो दोषः शिरोरोगः प्रकीर्त्तितः ॥ उरसा चाभिघातेन य च्छूलमश्च जायते ॥ ४१ ॥ इत्येवञ्च प्रतीकारं कुर्य्याद्रक्तावसेचनम् ॥ स्वेदनञ्च प्रयोक्तव्यं भिषजा कर्मसिद्धये ॥ ४२॥ न च तैलञ्च भोक्तव्यं नात्युष्णकटुकं तथा ॥ मत्स्यानि न च मांसानि घनानि च गुरूणि

च ॥ ४३ ॥ श्वेतशालिसमुद्भूतं यूषं चैवाढकीषु च ॥ शशलावकवार्त्ता कक्कोलं तण्डुलीयकम् ॥ ४४ ॥ शतपुष्पाद्यमन्यच्च न च हिङ्गुसमन्वितम् ॥ लवणं वातिभोक्तव्यं यदीच्छेदात्मनः सुखम् ॥ ४५ ॥ व्यायामश्च व्यवायश्च दिवानिद्रां तथा क्रमम् ॥ वर्जयेत्सुखसम्पत्तिर्नरश्च प्रतिपद्यते ॥ ४६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सानाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

शिरमें चोट लगनेंसे कुपित हुए दोषको शिरोरोग कहते है और छातीमें चोट लगनेंसे यकृतरोग गुल्म ये रोग होते है ॥ ४१ ॥ इन्होंको दूर करनेंकेवास्ते रक्तको निकसावे और पसीना दिवावे ॥ ४२ ॥ और तेलका भोजन नहीं करै और अत्यंत गरम चर्चरा ऐसा भोजन नहीं करै और मछलियोंका मांस करडे तथा भारे पदार्थ इन्होंको नहीं खावे ॥ ४३ ॥ और शालिसंज्ञक सफेद चावलोंका यूष, तूरीधान्य, शूशा, लावापक्षी, वत्तक इन्होंका मांस कंकोल, चौलाईका शाक ॥ ४४ ॥ सौंफ, हींग आदि अन्य नमक, इन्होंको इच्छापूर्वक खावे इन्होंसे सुख होता है॥४५॥और कसरत, स्त्रीसंग, दिनमें सोना, टहल कदमी करना इन्होंको वर्ज देवै तब सुख उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सानाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

अथाग्निदग्धचिकित्सा ॥

आत्रेय उवाच ॥ अग्निदग्धं नरं दृष्ट्वा तच्च दग्धं चतुर्विधम् ॥ ईषद्दग्धं मध्यदग्धमतिदग्धञ्च वेदभाक् ! ॥ १ ॥ सम्यग्दग्धं भिषक्छ्रेष्ठ ! लक्षणं शृणु पुत्रक ! ॥ २ ॥ अतिदग्धं मांसगं स्याद्वातपित्तकफाश्रितम् ॥ सम्यग्दग्धञ्च निर्दोषं विज्ञेयं च चतुर्विधम् ॥ ३ ॥ त्वचा विशीर्य्यते येन स दाहः पित्तजो भवेत्॥सरक्तश्च सपित्तश्च पित्तकोपात्प्रदृश्यते ॥४॥ कृष्णवर्णञ्च तत्पित्तं मांसगं तीव्रवेदनम् ॥ तस्य वक्ष्यामि संसिद्ध्यै भेषजं भिषजां वर ! ॥ ५ ॥ ईषद्दग्धे काञ्जिकस्य लेपनं सुखहेतवे ॥ निम्बपत्राणि सुरसा कुष्ठं धात्रीफलानि च ॥ ६ ॥ ईषद्दग्धे यथालाभं लेपनं भिषगुत्तम ! ॥ मध्यदग्धे पयस्या या लेपनी सुखकारिणी ॥ ७ ॥ मधुकुष्ठकमञ्जिष्ठाघृतं पक्वं हितं मतम् ॥ कुष्ठञ्च यष्टीमधुकं चन्दनैरण्डप

त्रकम् ॥ ८ ॥ मध्यदग्धे हितो लेपो दुग्धेन परिपेषितः ॥ ९ ॥ घृतक पूरचूर्णश्च गैरिकं रोध्रमेव च ॥ शुष्कचूर्णं पूयहरं दग्धं संरोहयत्यपि ॥ ॥१० ॥ आमलक्या तिलं कुष्ठं लेपनं बाह्निदग्धके ॥ रोध्रोशीरं समङ्गा च लेपनं शीतवारिणा ॥ ११ ॥ अतसी स्नेहमभ्यङ्गमधुयष्टीघृतेन तु ॥ लेपाभ्यङ्गे हितं दग्धरोहणं दाहवारणम् ॥ १२ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अग्निसे दग्ध हुए मनुष्यको देखै चारप्रकारका अग्निदग्ध होता है कछुकदग्ध, मध्यदग्ध, अतिदग्ध, ॥१॥सम्यक्दग्ध, ऐसे चारप्रकारका होता है हे पुत्र! अब इन्होंके लक्षणको सुन ॥ २ ॥ जो अत्यंत दग्धहो वह मांसमें प्राप्त होता है और वात पित्त कफ इन्होंकै आश्रय होता है और जो सम्यक् अर्थात् सारा दग्ध होजावे वह दोषोंसे रहित दग्ध होताहै वह चारप्रकारका दग्ध होताहै ॥ ३ ॥ जिसमें त्वचा विखर जावे और दाहहो और रक्त तथा पित्त दीखै तहां दग्ध हुएमें पित्तका कोप जानना॥४॥और जहां काला वर्ण होजावे वह मांसमें प्राप्तहुआ पित्त जानना तिसमें तीव्रपीडा होती है हे उत्तमवैद्य! तिसकी सिद्धिकेवास्ते औषधको कहेंगे॥५॥कछुक दग्ध हुए पुरुषके सुखकेवास्ते कांजीका लेप करना हित हैं और हे उत्तमवैद्य! नींबके पत्ते, सफेद संभालू, कूठ, आवलाके फल,॥६॥इन्होंमेंसे जौनसी मिले उसीका लेप करना कछुक दग्ध हुए पुरुषको हित है और मध्यम दग्धहुए पुरुषकै दूधीका लेप करनेंसे सुख होता है॥७॥और शहद, कूठ, मंजीठ इन्होंमें घृतको पका लेप करना हित है और कूठ, मुलहटी, चंदन, अरंडके पत्ते ॥८॥ इन्होंको दूधमें पीस मध्यमदग्धहुए पुरुषकै लेप करना हित है ॥ ९ ॥ और घृत, कपूरका चूर्ण, गेरू, लोध, इन्होंके शूखे चूर्णको बुरकानेंसे राधका नाश होता है और दग्धहुएका व्रण भरजाता है ॥ १० ॥ और आंवला, तिल, कूठ इन्होंका लेप करनेंसे अग्निसे दग्धहुआ अच्छा होता है और लोध, खश, मंजीठ इन्होंको शीतल जलमें पीस लेप करना ॥ ११ ॥ अथवा अलसीका तेल, मुलहटी, घृत इन्होंका लेप करना हित है दग्धहुएका घाव भरता है और दाहका नाश होता है ॥ १२ ॥

अथ धूमपानचिकित्सा ॥

धूमोपघाते वमनं क्षीरपानं तथोपरि ॥ जले च तरुणं श्रेष्ठं धूमदाहोपशान्तये ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चिकित्सास्थानं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

धूंवांसे व्याकुलहुये पुरुषको दूध पिलाना हित है और जलमें तिरना श्रेष्ठ है धूंवाके दाहकी निवृत्ति होती है ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासि०हारीतसंहिताभाषायां चिकित्सास्थाने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ तुलामानविधि ॥

आत्रेय उवाच ॥ सर्षपस्य चतुर्थांशोऽणुः ॥ चतुःसर्षपैर्माषः ॥ चतुर्मा षैर्वल्लः ॥ चतुर्वल्लैः सुवर्णैः कर्षः ॥ चतुःकर्षैःपलम् ॥ चतुःपलैः कुडवः॥ चतुःकुडवैः प्रस्थः ॥ चतुःप्रस्थैराढकः ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः ॥ १ ॥ शुष्काणामौषधानाञ्च मानञ्च द्विगुणं भवेत् ॥ आर्द्राणामथ सर्वेषां विज्ञातव्यस्तुलाविधिः ॥ २ ॥

सिरसमका चौथा हिस्सा भागको अणु कहते है चार सिरसमोंका एक मासा चार मासोंका एक वल्ल और वल्लप्रमाणको सुवर्ण नामकभी कहते है और चार वल्लोंका अर्थात् चार सुवर्णोंका एक कर्ष होता है चार कर्षोंका एक पल और चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ चार प्रस्थोंका एक आढक चार आढकोंका एक द्रोण होता है ॥१॥ और शूखी हुई औषधोंका दूना प्रमाण लेवै और गीली औषधोंको कहेहुये प्रमाणके अनुसार लेवै ॥२॥

अथ अन्यमत ॥

सप्तभिर्यवशतैः साष्टषष्टिभिः पलं भवति ॥ चतुर्भिः पलैः कुडवः ॥ चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः ॥ प्रस्थैश्चतुर्भिराढकः ॥ चतुर्भि राढकैः कंसः ॥ द्वे पले प्रसृतिर्भवेत् ॥ ३ ॥ मस्तुतैलारनालानां क्षीरमंडगुडं सिता॥मधु मद्यं तथा द्राक्षा खर्जूरं गुग्गुलुस्तथा ॥ ४ ॥ रसोनलवणानाञ्च प्रोक्तावर्द्धार्धमानकौ ॥ बिडालप दिकामात्रं कर्षशब्दोऽभिधीयते ॥ ५ ॥ वटोदुम्बरमात्रेण पलमौ दुम्बरं विदुः ॥ चतुःपलं बिल्वमानं पलेद्वेअञ्जलिरुच्यते ॥ ६ ॥ कुडवं चाञ्जलिद्वे च वक्ष्यमाणं महामते ! ॥७॥ चतुरङ्गुलविस्तारं च तुरङ्गुलमुन्नतम् ॥ काष्ठजं मृन्मयं वापि कुडवं तं विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥ चतुःकुडवैः प्रस्थः स्याच्चतुःप्रस्थैस्तथाढकः ॥ चतुराढकः स्याद्द्रोणो मानसंख्या प्रकीर्त्तिता ॥ ९ ॥ वमनं च विरेकञ्च प्रदद्यात् कर्षमात्रक

म् ॥ सन्तर्पणं पलमात्रं चूर्णं कर्षकमात्रकम् ॥ १० ॥ क्षारमेव पलार्द्धं च कर्षं चैव हरीतकीम् ॥ पलं रसोनकल्कञ्च पलं गुग्गुलुमेव च ॥११॥ पलञ्च सूरणं कल्कं दापयेच्च सुपण्डितः ॥ अन्यानि चूर्णलोहानि कर्ष मात्राणि दापयेत् ॥ १२ ॥ ज्ञात्वा देहबलं सम्यगुत्तमाधममध्यम म्॥लेहं चूर्णं कषायं च दापयेद्विधिवत्सुधीः ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सातसौ अठसठ ७६८ जवोंका एक पल चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ, चार प्रस्थोंका एक आढक होता है और चार आढकोंका एक कंस होता है और दो पलोंकी एक प्रसृति होती है ॥ ३ ॥ और दहीका मस्तु, तेल, कांजी, दूध, मंड अर्थात् छाहकी कूही, गुड, मिसरी, और शहद, मदिरा, दाख, खिजूर, गूगल ॥४॥ लस्सन, नमक इन्होंका गीला प्रमाण अर्थात् शूखी औषधोंसे दूना प्रमाण कहा है, और बिडालपदिका यह शब्द कर्षप्रमाणका वाचक है ॥ ५ ॥ और वट उदुंबर अर्थात् गूलरका फल इन शब्दोंसे पल अर्थात् चार तोला प्रमाणका ग्रहण जानना और चार पलों-का बिल्वसंज्ञक प्रमाण होता है और दो पलोंका अंजलि कहते है ॥ ६ ॥ और दो अंज-लियोंका एक कुडव होता है हे महामते ! ऐसे प्रमाण कहा है ॥ ७ ॥ और चार अंगुल प्रमाणका और चार अंगुल ऊंचा ऐसा काष्ठका पात्र अथवा मृत्तिकाका पात्रको कुडब कहते है ॥ ८ ॥ और चार कुडवोंका प्रस्थ होता है और चार प्रस्थोंका आढक होता है चार आ-ढकोंका द्रोण होता है ऐसे प्रमाणकी संख्या कही है ॥ ९ ॥ वमन और जुलाबमें कर्षप्रमाण मात्रा देनी और संतर्पण औषध पलप्रमाण देनी और चूर्ण कर्षप्रमाण देना चाहिये ॥१०॥ क्षार औषधका आधा पल प्रमाण है हरडेका कर्ष प्रमाण देना है और लस्सनका कल्क गूग-ल, इन्होंका पल प्रमाण है ॥ ११ ॥ और उत्तमवैद्य ! जमीकंदके कल्ककोभी पल प्रमाण देवै और अन्य लोहआदिकोंके चूर्णको कर्षप्रमाण देवै ॥ १२ ॥ सम्यक् प्रकारसे देहके बलाबलको विचारि उत्तम, मध्यम, अधम ऐसे तीनप्रकारकी मात्रा देनी चाहिये ॥ १३ ॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषायां सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तैलपाकविधिः ॥

आत्रेय उवाच ॥ पाकश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तैलानां शृणु पुत्रक ! ॥ खर

चिक्कणमध्यस्तु विशोषी चापरो मतः ॥ १ ॥ दुग्धारनालक्काथश्चदधि वा शोषयत्यपि ॥ न चार्द्रता चौषधानां निष्फेनो विमलस्तु यः ॥ २ ॥ मञ्जिष्ठारससङ्काशो भवेत् सखरपाकगः ॥ वातघ्नः सोऽपि विज्ञेयो मर्दनाभ्यञ्जने हितः ॥ ३ ॥ सफेनो मध्यपाकी च द्रवो भवति पिण्डितः ॥ नातिफेनमफेनं वा मध्यपाकं विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥ बस्तौ पाने च शस्तश्च त्रिदोषघ्नं भिषग्वर ! ॥ सफेनश्चन्द्रभो यस्य भवेत् स्वस्थसमो द्रवः ॥ ॥ ५ ॥ स च चिक्कणकः पाको नस्ये प्रोक्तो हितः सदा ॥ ६ ॥ सधूमश्चातिदग्धश्च दग्धगन्धरसस्तथा ॥ विज्ञेयो वातशोषी च वर्जितः सर्वकर्मसु ॥७॥ मर्दने खरपाकश्च बस्तौ चिक्कणपाकितः ॥ बस्तौ पानेमध्यपाको विशोषी वर्जितस्तथा ॥ ८ ॥ पक्षे सिध्यति तैलञ्च सप्ताहे घृतमेव च ॥ कषायः प्रहरेणापि यत्नेनैव प्रसाधयेत् ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तैलपाकविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

हे पुत्र ! तेलोंका पाक चारप्रकारका कहाहै सो सुन खर, चिक्कण, मध्य, विशोषी ४ ऐसे है ॥ १ ॥ जहां दूध, कांजी, इत्यादिकोंके क्वाथको सुखा केवल तेलमात्र बाकी रहजावे और औषधोंका आलापन नहींहो झाग नहींहो निर्मलहो ॥ २ ॥ मंजीठके रंगके समान वर्णवालाहो वह खरपाक अर्थात् तीक्ष्ण पाकवाला तेल जानना वह वातको नाशता है मर्दन मालिस इन्होंमें हित है ॥ ३ ॥ और झागोंसहितहो मध्यम पाकवालाहो और जिसके द्रवमें चलनेमें बूंधसी बंधजावे अत्यंत झाग नहींहों अथवा झागहों वह मध्यमपाकी तेल कहाता है ॥ ४ ॥ हे उत्तमवैद्य ! वह तेल बस्तिकर्ममें पीनेमें श्रेष्ठ है त्रिदोषको नाशता है और जिसमें चंद्रमाके समान सफेद २ झागहो और विनापकाहुआ, स्वच्छ तेलके समान पतलाहो ॥५ ॥ वह चिक्कणपाकवाला तेल कहाता है नस्य देनेमें हित है॥६॥और जिसमें धूवाहो अत्यंत दग्ध होगयाहो और जिसका रस गंध दग्ध होगयाहो वह विशोषी पाकवाला तेल कहाता है वह सबकर्मोंमें वर्जित है॥७॥और मर्दन करनेमें खरपाक अर्थात् तीक्ष्णपाकवाला तेल हित है और बस्तिकर्ममें चिक्कण पाकवाला तेल हित है और मध्यपाकी तेल बस्तिमें तथा पीनेमें श्रेष्ठ है विशोषी तेल सब कर्मोंमें वर्जित है॥८॥तेल पंदरह दिनमें सिद्ध होता है अर्थात् वरतनेलायक होता है घृत सात दिनमें सिद्ध होता है क्वाथ एक पहरमें सिद्ध होता है ऐसे यतनकरके सिद्ध करै ॥ ९॥ इति वेरीनिवासि॰हारीतसंहिताभाषायां सूत्रस्थाने तैलपाकविधिर्नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ निरूहबस्तिकर्मविधिः ॥

आत्रेय उवाच ॥ चतुरङ्गुलां रेणुमयीं नाडीं प्रतिलक्षणं कृत्वा तया बस्तिप्रतिकर्म कुर्य्यात् ॥ १ ॥ नाति चोष्णे च काले च न शीते न च भोजिते ॥ न च निद्रालौ मूत्रार्त्ते विष्ठार्त्ते न च वेदभाक् ॥ २ ॥ निरूहं बस्तिकर्म च कारयेत्तं निरस्य च ॥ ३ ॥ आदौ मूत्रविष्ठोत्सर्गं कृत्वा गुदं प्रक्षाल्य नातिशिथिलशय्यायां शाययित्वा वामाङ्गे वामपादं दक्षिणाङ्गे दक्षिणपादञ्च सङ्कोच्य जङ्घोपरि संस्थाप्य गुदाभ्यन्तरे द्व्यङ्गुलमात्रां नाडीं सञ्चारयेत्सुधीः॥ ततः शनैः शनैर्बस्तिं निष्पीड्य द्विपलपरिमिततैलेन निरूहं कुर्य्यात् ॥ निरूहानन्तरं शनैः शनैरुत्तानं शाययित्वा ऊर्ध्वीकृत्वा च पश्चात्सङ्कोच्य पाणिभिः पञ्चवारान्स्फिक्पिण्डां स्फोटयेत्। ततः स्वस्थं कृत्वा क्षणेनापि आमाशयं मलस्थानं बोधयति ॥ बस्त्युदरवातान्दोषान्निवारयति ॥ पण्डितास्तं बस्तिनिरूहं तद्बस्तिकर्म च विदुः ॥ ४ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने निरूहबस्तिकर्मविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आत्रयजी कहते हैं—चार अंगुल प्रमाण वांसकी नलिका बना तिसके भीतर प्रवेश करनेंको पिचकारी बना तिस्से बस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढानेंका कर्म करे ॥ १ ॥ अत्यंत गरमीकी समय नहो और अत्यंत ठंढककी समय नहो भोजन नहीं किया हो, नींद नहीं आवतीहो मूत्र तथा विष्ठाकी हाजितसे पीडित नहींहो ॥ २ ॥ ऐसे पुरुषको देखि तिसकै बस्तिकर्म करै ॥ ३ ॥ पहिले मूत्र और विष्ठाका विसर्जन करवा गुदाको धुवाके पीछे अत्यंत शिथिल नहो ऐसी शय्यापे सुवा फिर वाये अंगकी तर्फ वाये पैरको और दाहीनें अंगकी तर्फ दहिनें पैरको समेटके दबा जंघाके उपरि स्थापित करि तिस नलिकाको दो अंगुल प्रमाण गुदाके भीतर चढा देवै पीछे बुद्धिमान् वैद्य शनैः शनैः बस्तिस्थानको पीडित कर दो पल अर्थात् ८ तोला प्रमाण तेलसे निरूह बस्तिकर्म करै पीछे निरूह बस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढानेंका कर लेवे तब शनैः शनैः सुधा सुवाके ऊपरको करवाके संकोच करवा वैद्यजन अपनें हाथासें पांचवार स्फिक् अर्थात् कूलाको मसलै तिस्से अनंतरता है और बस्तिदोष उदर

वात रोग इन्होंका निवारण होताहै पंडितजन इसको निरूहबस्ति कहतेहै और इसीको बस्तिकर्मभी कहते है ॥ ४ ॥ इति वेरीनिवासि०हारीतसंहिताभाषायां सूत्रस्थाने निरूह बिस्तकर्मविधिर्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ स्वेदनविधि ॥

स्वेदः सप्तविधः प्रोक्तो लोष्टस्वेदो बाष्पस्वेदोऽग्निज्वालास्वेदः घटीस्वेदो जलस्वेदः फलस्वेदो वालुकास्वेदश्च ॥ न तैलेन विना स्वेदं कदाचिदपि कारयेत् ॥ तैलेनाभ्यञ्जयेत्स्वेदं स भवेद्गुणकारकः ॥ १ ॥ तीव्रज्वरे दाह्यशोषे तथातीसारपीडिते ॥ मूर्च्छाभ्रमदाहार्त्तेच विषे स्वेदं न कारयेत् ॥ २ ॥ शूलशोफातुरे वाते शीतश्लेष्मातुरेषु च ॥ एतेषां शस्यते स्वेदो नराणां सुखदायकः ॥३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने स्वेदनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

स्वेद अर्थात् पसीना सातप्रकारका होता है लोष्टस्वेद, अर्थात् मृत्तिकाके पिंडआदिका स्वेद १ बाष्पस्वेद भांफोंका स्वेद २ अग्निज्वाला स्वेद ३ घटीस्वेद ४ जलस्वेद ५ फलस्वेद ६ वालुकास्वेद ७ ऐसे सातप्रकारका है ॥ १ ॥ और तेलके चोपरें बिना किसीसमयमेंभी पसीना नहीं दिवाना चाहिये तेल चोपरिके जो पसीना दिवाया जाता है वह गुण करनेंवाला है ॥ २ ॥ तीव्रज्वर, दाह, शोष, अतिसारसे पीडित मूर्छा, भ्रम, दाह इन्होंसे पीडित विषसे युक्त इन पुरुषोंके पसीना नहीं दिवावे ॥ ३ ॥ और शूल, शोजा इन्होंसे पीडित वातसे युक्त शीत कफ इन्होंसे पीडित इन पुरुषोंको पसीना दिवाना श्रेष्ठ कहा है सुख देनेंवाला है ॥ ४ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषायां सूत्रस्थाने स्वेदनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ रक्तावसेचन फस्तखुलानेंकी विधि ॥

रक्तावसेचनं चतुर्भिः प्रकारैर्भवति ॥ शिराविरेचनेनापि अलाबुभिस्तथै

व च ॥ श्लक्ष्णशृङ्गैर्जलौकाभीः रक्तश्च स्रावयेद्बुधः ॥ १ ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च नात्युष्णे नातिशीतले ॥ यवागूपरिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ २ ॥ शिरोरोगेषु सर्वेषु नासामध्यपुटे तथा ॥ अस्रजं रेचयेद्यत्नात्सर्वदा भिषगुत्तमः ॥ ३ ॥ ललाटमध्ये भ्रुवोरुपरिष्टादङ्गुलद्वयं त्यक्त्वा शिरां रेचयेत् ॥ बाह्वोः कूर्परमध्ये शिरां बन्धयेत् ॥ मणिबन्धसन्धौ अङ्गुष्ठमूलचतुष्टयमङ्गुलञ्च विहाय शिरां बन्धयेत् ॥ नातिपार्श्वे चतुरङ्गुलं विहाय शिरां बन्धयेत् ॥ घुण्टिकां शिरां पादे बन्धयेत् ॥ अपरमपि ग्रंथविस्तारभयान्नोक्तम् ॥ अलाबुशृङ्गैः रक्तावसेचनं सर्वैरपि ज्ञातव्यम् ॥ ४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बुद्धिमान् मनुष्य चारप्रकारसे रक्तकी फस्त खुलावे नसोंपे फस्त खुलाना, तूंबियोंसे फस्त खुलाना, बारीक सींगियोंसे फस्त खुलाना, जोखोंसे रुधिर निकसाना ऐसे चारप्रकारसे रक्तावसेचन होता है ॥ १ ॥ दुपहरे पहिले अथवा तीसरे पहरमें अत्यंत गरमी नहींहो और अत्यंत ठंढक नहींहो तब यवागू अर्थात् गुडियानी पिवायेहुए मनुष्यका रुधिर निकसावे ॥ २ ॥ और उत्तमवैद्यको संपूर्ण शिरके रोगोंमें नासिकाके मध्य पुटमें फस्त खुलानी चाहिये ॥ ३ ॥ मस्तकमें भ्रुकुटियोंसे ऊपरि दोअंगुल जगहको त्याग नाडीको वींधै और बाहुवोंकी नाडीको कोहनीके मध्यमें वींधै और पोंहचेंकी संधिमें अंगुठेकी जडमें चार अंगुल जगहको त्यागके नाडीको वींधै चार अंगुल जगहको त्याग अतिसमीपकी नसको नहीं वींधै और पैरमें टांकनेंकी नसोंको वींधै और अन्यप्रकरण ग्रंथके विस्तार होनेंके भयसे नहीं कहा है इसप्रकरणमें तुंबी सींगी इत्यादिकोंसे रुधिरका निकसाना श्रेष्ठ है॥४॥

अथ रक्तलक्षण ॥

सकृष्णं फेनिलं श्यामं रक्तं तद्वातदोषजम् ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नं विज्ञेयं तत्त्रिदोषजम् ॥ ५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

और जो काला तथा झागोंवाला रक्तहो वह वातके दोषका रुधिर जानना जो सब लक्षणोंसे संयुक्तहो वह त्रिदोषसे दूषित रुधिर जानना ॥ ५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशि०हारीतसंहिताभाषायां चतुर्थ सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ जलौकाचारविधि ॥

आत्रेय उवाच ॥ जलौकाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता इन्द्रायुधा
रोहिणी कालिका धूम्रा चेति ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहतेहैं–जोंख चार प्रकारकी कही है इंद्रायुधा १ रोहिणी २ कालिका ३ धूम्रा ४ ॥ १ ॥

अथ इंद्रायुधाके लक्षण ॥

नीलवर्णा पार्श्वरक्ता तीक्ष्णमुखी गम्भीरनिर्मलोदके पाषाणसन्धौ च प्रविशति ॥ तया विद्रध्युदरदाहशोफमूर्च्छाविषाद्युपद्रवयति ॥ २ ॥

जो नीलावर्णवालीहो पशलियोंकी तर्फ लालहो, तीक्ष्णमुखवाली हो यह जोख गंभीर निर्मलजलमें और पर्वतकी संधिमें रहती है इसकरके विद्रधि, उदररोग, दाह, शोष, मूर्च्छा, विष इत्यादिकोंको करती है ॥ २ ॥

अथ रोहिणीके लक्षण ॥

नीलवर्णा पार्श्वपीता शङ्कमुखी पद्मनाले प्रविशति ॥ तया
विद्रधिविसर्पशोफाद्युपद्रवयति ॥ ३ ॥

नीलावर्णवाली और पशलियोंकी तर्फ पीलावर्णवाली शंखसरीखा मुखवाली ऐसी रोहिणी जोख होती है यह कमलकी नालोंमें रहती है इसके लगानेंसे विष, विद्रधि, शोजा ये उपद्रव होते है ॥ ३ ॥

अथ कालिकाजोखके लक्षण ॥

कृष्णा कालिका मत्स्याशये दूरे त्याज्या ॥ ४ ॥

कालावर्णवाली जोख मत्स्याशय अर्थात् मच्छोंके वासमें रहती है यह दूरसे त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ धूम्राजोखके लक्षण ॥

धूम्रा कपोतमहिषवर्णा पीतोदरी अर्द्धचन्द्रमुखी कर्दमे कलुषोदके प्रविशति ॥ सा रक्तावसेचनयोग्यानिरुपद्रवा च ॥ ५ ॥

धूम्रा जोख, कपोत और भैंससरीखे वर्णवाली होती है पीला उदरवाली होती है आधा चंद्रमाकेसमान मुखवाली होती है यह कीचमें और गिधलेहुए जलमें रहती है यह रुधिर निकालनेंके योग्य कही है उपद्रवोंसे रहित है ॥ ५ ॥

अथ जोखलगवानेंका क्रम ॥

अवस्थानं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य नवनीतेन म्रक्षयित्वा उष्णोदकेन प्रक्षालयेत् ॥ पश्चात् तत्र जलौकावचारणीया ॥ ६ ॥ जलौका रक्तपूर्णा पश्चात् पातिता ॥ तस्या मुखं लवणेन मूत्रेण वा प्रक्षालयेत् ॥ अथ वा शनैर्गोस्तनवद्दुह्यते ॥ पुनर्नवनीतेन मुखमालिप्यावचारणीया ॥ दुष्टरक्ते विनिर्गते दंशं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य घृतमधुनाभ्यज्य वस्त्रेण बध्नीयात् ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने जलौकावचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ इति सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥

जोख लगवानेंके योग्य जगहको कांजीसे धोके नौंनीघृत लगा पीछे गरम जलसे धोके पीछे तहां जोख लगवानी चाहिये ॥ ६ ॥ जब जोख रक्तसे पूरण होजावे तब तिसको गिरा देवै और तिसके मुखको नमकसे अथवा गोमूत्रसे धोदेवै अथवा शनैः शनैः गौके थनकी तरह सूंत देवै पीछे मुखके नौंनीघृत लगाके फिर लगवा देवै और जब दुष्ट रुधिर निकस जावे तब जोखके डंकको कांजीसे धोके घृत और शहदसे चोपरी वस्त्रसे बांध देवै ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषायां सूत्रस्थाने जलौकाचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति सूत्रस्थानम् समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ कल्कस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हिमवच्छिखरे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ तत्रस्थं तपस्तेजस्थमत्रिञ्च मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥ कल्कानाञ्च प्रयत्नेन हारीतः परिपृच्छति ॥ २ ॥

सिद्ध गंधर्व इन्होंसे सेवित ऐसे हिमवान् पर्वतके रमणीक शिखरपे बैठे हुए तप और तेजमें स्थित मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे आत्रेयजीको ॥ १ ॥ हारीतमुनि कल्कोकी विधिको यत्नसे पूछते भये ॥ २ ॥

ज्ञातं चैतन्मया तात ! समासेन चिकित्सितम् ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कल्कस्थानं तु सुव्रत ॥ ३ ॥

हारीत पूछता है—हे पिता ! मैंनें यह चिकित्सास्थान संक्षेपमात्रसे जाना हे सुव्रत ! अब मैं कल्कस्थानको सुननेंकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

अथ हरीतकीका कल्क ॥

अत्रिरुवाच ॥ कल्कानामभया श्रेष्ठा तस्याः शृणु गुणागुणम् ॥ ४ ॥ स्वर्गस्थामराध्यक्षस्य अमृतं पिबतस्ततः ॥ पतिता बिन्दवो भूमौ तेभ्यो जाता हरीतकी ॥ ५ ॥ रसैः पञ्चभिः संयुक्ता रसेनैकेन वर्जिता ॥ कषायाम्ला च कटुका तिक्ता स्वादुरसा स्मृता ॥ लवणेन वर्जिता च शृणु तस्याः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥ त्वचाश्रितश्च कटुकं मेदस्तस्याः कषायकम् ॥ मेदोऽन्तरे तथा चाम्लं मधुरं चास्थिसंश्रितम् ॥ ७ ॥ तिक्तश्चान्तरे तावत् तु रसैः पञ्चभिः संयुता ॥ अम्लत्वान्मारुतं हन्ति पित्तं मधुरतिक्ततः ॥ कफं कटुकषायत्वात्त्रिदोषघ्नी हरीतकी ॥ ८ ॥ हरीतकी देहभृतां हिता स्यान्मातेव चैषा हितकारिणी च ॥ वरं कदाचित्कुपितापि माता न कुप्यते चाचरितापि पथ्या ॥ ९ ॥ तस्या उत्पत्तिनामानि वक्ष्यामि शृणु कोविद! ॥ १० ॥ विजया रोहिणी चैव पूतना चामृता तथा ॥ चेतकी चाभया चैव जीवन्ती चैव सप्तमी ॥ ११ ॥ विन्ध्ये च विजया जाता अभया च

हिमालये ॥ रोहिणी वैदिशे जाता पूतना मगधे स्मृता ॥ १२ ॥ जीवन्तिका सुराष्ट्रायां चम्पायां चेतकी मता ॥ अमृता सरयूतीरे इत्येताःसप्त जातयः॥१३॥अभया नेत्ररोगेषु शिरोरोगेषु कालिका॥सर्वप्रयोगे विजया रोहिणी क्षतरोहिणी॥१४॥ पूतना लेपनार्थं च अमृता च तथा मता ॥ चेतकी सर्वतो योज्या जीवन्ती चूर्णयोगतः ॥१५॥ बालानामुपकारार्थं विजयां परिलक्षयेत् ॥ त्र्यस्रा च रोहिणी प्रोक्ता अमृता स्थूलमांसला ॥ १६ ॥ पञ्चास्रा चाभया प्रोक्ता पूतना चतुरस्रका ॥ त्र्यस्रा तु चेतकी प्रोक्ता जीवन्ती दीर्घमांसला ॥ १७ ॥ विजया नीलवर्णा च पीता स्याद्रोहिणी भिषक् ! ॥ अमृता कृष्णवर्णा च किञ्चिच्छुभ्राभया तथा ॥ १८ ॥ सार्द्धद्व्यङ्गुलमानेन अमृतां लक्षयेद्बुधः ॥ १९ ॥ पथ्या भवेत्पथ्यतमा नराणां रोगांश्च सर्वान्विनिहन्ति सद्यः ॥ आयुःप्रदा तुष्टिमतीवमेधावर्णौजतेजःस्मृतिमातनोति ॥ २० ॥ उन्मूलिनीपित्तकफानिलानां सन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणाम् ॥ विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी रोगहरा नराणाम् ॥ २१ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्कस्थाने हरीतकीकल्कोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कल्कोंमें हरडै श्रेष्ठ है तिसके गुण औगुनोंको सुन ॥ ४ ॥ स्वर्गमें स्थितहुए इंद्रके अमृत पीवतेहुए पृथ्वीमें अमृतकी बिंदु गिरती भई तिन्होंसे हरडै उत्पन्न होती भई ॥ ५ ॥ यह पांच रसोंसे संयुक्त है और एक रससे रहित है कसैली, खट्टी, चर्चरी, कडुई, और मधुर रसवाली कही है नमकके रससे वर्जित है तिसके जुदे २ लक्षणोंको सुन ॥६॥इसकी त्वचा चर्चरी है और इसका मेद कसैलाहै मेदके भीतर खट्टापन है अस्थि मधुर है और भीतरसे कडुई है ऐसे पांच रसोंसे संयुक्त है ॥ ७॥ यह खट्टापनसे वातको नाशती है और मीठा तथा चर्चरापनसे पित्तको नाशती है और चर्चरा तथा कसैलापनसे कफको नाशती है ऐसे त्रिदोषको नाशनेंवाली हरडै है ॥ ८ ॥ देहधारियोंको हरडै हित हैं और यह माताकी तरह हित करनेंवाली है किसी समयमें माता तो कुपितभी होजाती है परंतु हरडै कुपित नहीं होती है ॥ ९ ॥ हे पंडितजन! तिसकी उत्पत्ति और नामोंको कहते हैं सुन॥१०॥ विजया १ रोहिणी २ पूतना ३ अमृता ४ चेतकी ५ अभया ६ जीवंती ७ ऐसे सातप्रकारकी है ॥ ११ ॥ विजया तो विंध्याचलमें उत्पन्नहुई है और अभया हिमाचलमें हुई है, रो-

हिणी वैदिश नगरमें उत्पन्नहुई, पूतना मगधदेशमें उत्पन्नहुई है ॥ १२ ॥ जीवंती हरडै सुराष्ट्रानदीपे हुई है, चंपानदीपे चेतकी हुई हैं, अमृता हरडै सरयू नदीके तीरपे उत्पन्न भई हैं ॥ १३ ॥ नेत्ररोगमें अभया और शिरोरोगमें कालिका हरडै श्रेष्ठ है और संपूर्ण रोगमें विजया और क्षतरोगमें रोहिणी हरडै हित है ॥ १४ ॥ पूतना और अमृता हरडै लेपमें हित कहीहै जीवंती हरडै सब योगोंमें युक्त करनी चाहिये जीवंती हरडैको चूर्णके योगमें प्रयुक्त करै ॥ १५ ॥ और बालकोंकेवास्ते विजया हरडै श्रेष्ठ कही है रोहिणी हरडै तिकूटी कही है और अमृता हरडै स्थूल मांसवाली होती है ॥ १६ ॥ अभया पांच कूटोंवाली और पूतना चौकूटी कही है और चेतकी तीन कूटोंवाली कही है और जीवंती दीर्घ मांसवाली कहीहै ॥ १७ ॥ और विजया नीलवर्णवाली कही है और हे वैद्य ! रोहिणी पीलावर्णवाली कहीहै अमृता कालेवर्ण कही है और अभया किंचित् सफेदवर्णवाली कही है ॥ १८ ॥ और जो अढाई अंगुल प्रमाणकी हो उसको बुद्धिमान् वैद्य अमृता जानै ॥ १९ ॥ पथ्या अर्थात् हरडै मनुष्योंको अत्यंत पथ्य है संपूर्ण रोगोंको तत्काल नाशती है आयुको देनेंवाली है तुष्टी, अत्यंत मेधा, वर्ण, पराक्रम, तेज, स्मृति इन्होंको बढानेंवाली है ॥२०॥ पित्त कफ वात इन्होंको समान करनेंवाली है बुद्धि बल इंद्रिय इन्होंको संतुष्ट करनेंवाली है मूत्र, विष्ठा, मल इन्होंको वहानेंवाली है हरडै मनुष्योंके रोगोंको हरनेंवाली कही है ॥ २१॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां पंचमे कल्कस्थाने हरीतकीकल्कोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ त्रिफलाक्काथः ॥

आत्रेय उवाच ॥ हरीतक्याश्चामलक्या विभीतकस्य च फलम् ॥ त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैर्वक्ष्यामि भागनिर्णयम् ॥ १ ॥ एकभागं हरीतक्या द्वौ भागौ च विभीतकम् ॥ आमलक्यास्त्रिभागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ त्रिफला कफपित्तघ्नी महाकुष्ठविनाशिनी ॥ आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥ ३ ॥ वर्णप्रदायिनी घृष्टा विषमज्वरनाशिनी ॥ दृष्टिप्रदा कण्डुहरा वमिगुल्मार्शनाशिनी ॥ ४ ॥ सर्वरोगप्रशमनी मेधास्मृतिकरी परा ॥ वक्ष्यामि योगयुक्तिञ्च रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥

वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा॥श्लेष्मे त्रिकटुकोपेता मेहे समधुवारिणा ॥ ६ ॥ कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवेनाग्निमान्द्यहा ॥ चक्षुर्धावनके क्काथो नेत्ररोगनिवारणः॥ ७ ॥ घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम्॥८॥ गुल्मार्शो गुडसूरणैः सः स्यात्तु गुणकारकः ॥ क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं गुडेन च ॥ ९ ॥ भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सह योजितः॥ वलीपलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ॥ १० ॥ सक्षीरः सगुडः क्काथो विषमज्वरनाशनः॥ सशर्कराघृतः क्काथः सर्वजीर्णज्वरापहः॥ ११ ॥ एषां नराणां हितकारिणी च सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृता च ॥ सर्वामयानां शमनी च सद्यः सतेजकान्तिं प्रतिमां करोति ॥ १२ ॥ शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयुता हिता च ॥ हिताऽतिसारे ग्रहणीविकारे हिता च तक्रेण फलत्रिका च ॥ १३ ॥ क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च॥स्यान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च कुष्ठे च कण्डूव्रणपीडने च ॥ १४॥ मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमान्द्ये हिता जलेन त्रिफलादिकल्कः ॥ सशीतकाले गुडनागरेण सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे ॥ १५ ॥ वर्षासु शुण्ठीसहिता फलत्रिका फलत्रिका सर्वरुजाहरा स्यात्॥ १६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्कस्थाने त्रिफला क्काथो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हरडै, आंवला, बहेडा इन्होंके फलको वैद्यजन त्रिफला कहते है अब इन्होंके भागका निर्णय करतेहै ॥ १ ॥ हरडै १ भाग, बहेडा २ भाग, आंवला ३ तीन भाग इस प्रकार इन्होंको एक जगह मिलावे ॥ २ ॥ यह त्रिफला कफपित्तको नाशता है महाकुष्ठको नाशता है आयुमें हित है दीपन है नेत्रोंमें हित है व्रणको शोधनकरनेवाला है ॥ ३ ॥ घिसके लगानेंसे व्रणको भरनेंवाला है ज्वरको नाशता है दृष्टीको देनेंवाला है खाजिको हरता है वमन, गुल्म, बवासीर इन्होंको नाशता है ॥ ४ ॥ संपूर्णरोगोंको शांत करता है और मेधा, स्मृति इन्होंको करनेंवाला है अब रोग २ में जुदी २ योगकी युक्तिको कहैंगे ॥ ५ ॥ वातमें घृत और गुडसे संयुक्त त्रिफला देना चाहिये पित्तमें शहद और खांडके संग कफमें सूंठ, मिरच, पीपल इन्होंकेसंग देना चाहिये प्रमेहरोगमें मीठांजलके संग देवै॥६॥कुष्ठरोगमें घृतकेसंग मंदाग्निमें सेंधानमकके संग देना चाहिये और इसके क्काथसे नेत्रोंको धोनेंसे

नेत्रोंके रोगोंका नाश होता है ॥ ७ ॥ और घृतके संग सेवनेंसे खाजिका नाश होताहै विजौराके रसकेसंग देनेसे वमनका नाश होता है ॥ ८ ॥ गुड और जमीकंदकेसंग देनेंसे गुल्म, ववासीर इन्होंका नाश होता है दूधके संगदेनेसे राजयक्ष्मारोगका नाश होता है गुडकेसंग देनेसे पांडुरोगका नाश होता है ॥ ९ ॥ और भंगराका रस तथा घृतकेसंग देनेंसे वलीपलित अर्थात् बुढापाके सफेद बालआदिरोग इन्होंका नाश होता है और बुद्धि बढती है॥ १०॥ और गुड मिला दूधका क्वाथ बना तिसके संग देनेंसे विषमज्वरका नाश होता है और खांड तथा घृतके संग क्वाथ बनाके देनेंसे संपूर्ण जीर्णज्वरोंका नाश होता है ॥ ११ ॥ यह त्रिफला मनुष्योंको हित करनेंवाली है और सब प्रयोगोंमें त्रिफला कहाता है तत्काल सब रोगोंको शांत करनेंवाला कहा है और तेज कांति सुंदर मूर्ति इन्होंको करनेंवाला कहा है॥१२॥ और शोजा, कामला, पांडुरोग, उदररोग इन्होंमें गोमूत्रके संग त्रिफला देना हित है और अतिसार संग्रहणी इनरोगोंमें तक्रके संग त्रिफला देना हित है ॥ १३ ॥ और क्षीण इंद्रियवाला, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, इन्होंमें दूधकेसंग त्रिफला देना हित है और नेत्ररोग, शिरोरोग, कुष्ठ, खाजी, व्रणकी पीडा ॥ १४ ॥ मूत्रग्रह, कामला, मंदाग्नि इनरोगोंमें जलके संग त्रिफलाका कल्क बनाके देना हित है और ठंढककी समयमें गुड सूंठ, खांड गरम २ दूध इन्होंके संग देना हित है ॥ १५ ॥ और वर्षासमयमें सूंठके संग त्रिफला दीहुई हित है यह त्रिफला सबरोगोंको नाशनेंवाली है ॥ १६ ॥ इति वेरीनिवासिबुध० हारीतसंहिताभाषायां पंचमे कल्कस्थाने त्रिफलाक्काथोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ हरडेके कल्क और वर्णोंका भेद ॥

आत्रेय उवाच ॥ अभया द्व्यङ्गुला प्रोक्ता पूतना चतुरङ्गुला ॥ सार्द्धाङ्गुला च जीवन्ती चेतकी स्यात्षडङ्गुला ॥ १ ॥ चेतकी द्विविधा प्रोक्ता आकारवर्णतस्तथा ॥ षडङ्गुला सिता प्रोक्ता शुक्ला चैकाङ्गुला स्मृता ॥ ॥ २ ॥ श्रेष्ठा कृष्णा समाख्याता रेचनार्थे जिगीषुणा ॥ ३ ॥ चेतकी वृक्षशाखायां यावत्तिष्ठति तां पुनः॥ भिन्दन्ति पशुपक्ष्याद्या नराणां कोऽत्र विस्मयः ॥ ४ ॥ चेतकीं यावद्विधृत्य हस्ते तिष्ठति मानवः ॥ तावद्भिनत्ति रोगांस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥ नृपाणां सुकुमाराणां तथा भे

षजविद्विषाम् ॥ कृशानां हितमेवं स्यात्सुखोपायविरेचनम् ॥ ६ ॥ हरीतकी दरिद्राणामनपायरसायनम् ॥ पथ्यस्यान्तेऽथवा चादौ भक्षेच्चामयनाशिनीम्॥७॥ तृषातुराणां हृदि कण्ठशोषे हनुग्रहे चापि गलग्रहे च॥नवज्वरे क्षीणबलेन्द्रियाणां न गर्भिणीनां कथिता प्रशस्ता ॥ ८ ॥ हरीतकी वा गुडनागरेण सिन्धूत्थयुक्ता कथिता प्रयोगे ॥ आमाशयस्था जठरामयश्च जघान चेन्द्रायुधवद्द्रुमाणाम् ॥ ९ ॥ सशारदे वा सितया प्रयुक्ता शुण्ठी गुडेनापि हिमे प्रयोज्या ॥ ससैन्धवपिप्पली शैशिरे च हितो वसन्ते त्रिकटुर्गुडेन ॥ १० ॥ ग्रीष्मे सितानागरकैश्च पथ्या वर्षासु सिन्धूत्थयुता हिता च ॥ निहन्ति सर्वामयमेव सद्यो घृतेन पथ्या विहिता हरीतकी ॥ ११ ॥ घृतेन देयं मनुजाय कल्कं आमानिलं हन्ति नरस्य कोष्ठे ॥ दुष्टान्विकारान्हरतीति सद्य एरण्डतैलेन विपाच्य पथ्यम् ॥ १२ ॥ खादेत्तदेवानुपिबेच्च तैलं सशूलविष्टम्भकृतान्विकारान् ॥ सर्वाञ्जयेत्पित्तकफानिलोत्थान्मूत्रे स्थितं सप्तदिनं महिष्याः ॥ १३॥ पञ्चाभया मूत्रपलानि पञ्च क्षीरेण सप्ताहमतिप्रशस्तम् ॥ क्षीरोदशोषी परतस्तथान्ये एष त्रिसप्तादपरः प्रयोगः ॥१४॥ वातोदरं शीघ्रमियं निहन्यात्प्लीहानमानाहमुरोग्रहश्च ॥ सपाण्डुरोगश्च क्रिमींश्च हन्ति हरीतकी धान्यतुषाम्बुसिद्धा ॥ १५ ॥ सपिप्पलीसैन्धवयुक्तचूर्णं सोद्गारधूपं भृशमप्यजीर्णम् ॥ निहन्ति सद्यो जनयेत्क्षुधाञ्च कल्कञ्च तस्याः सह नागरेण ॥ १६ ॥ ज्वरं जहाति सह सैन्धवेन दध्ना च तक्रेण हितातिसारे ॥ सराजयक्ष्मे मधुनावलिह्यान्मूत्रेण शोफोदरनाशहेतोः॥१७॥ सपाण्डुरोगे समशर्करायाः शोषे सदाहे सह मातुलुङ्ग्या ॥ रसेन युक्ता विहिता तिपथ्या कल्कं समाप्तं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ १८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्कस्थाने हरीतकीकल्कवर्णनभेदोनाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अभया दो अंगुल प्रमाणकी होती है पूतना चार अंगुल प्रमाणकी होती है जीवंती डेढ अंगुल प्रमाणकी होती है चेतकी छह अंगुल प्रमाणकी होती है

॥ १ ॥ तहां आकारसे और वर्णसे चेतकी हरडै दो प्रकारकी कही है तहां छह अंगुल प्रमाणवाली काली कही है और एक अंगुल प्रमाणवाली सफेद कही है ॥ २ ॥ तहां जुलाबकेवास्ते काली चेतकी हरडै श्रेष्ठ कही है ॥ ३ ॥ और जबतक चेतकी हरडैके वृक्षके नींचे स्थित रहै तबतक पशु पक्षीआदिकभी भेदन होते है दस्त लगजाते है मनुष्योंकी तो कौन बात है ॥ ४ ॥ और मनुष्य जबतक चेतकी हरडैको हाथमें रक्खै तबतक उसकै दस्त लगे रहते है और रोगोंका नाश होजाता है ॥ ५ ॥ और राजे तथा सुंदर कोमल शरीरवाले जन अथवा जिन्होंसे औषध नहीं लीजावे ऐसे मनुष्य कृश, ऐसे मनुष्योंके सुखके उपायकेवास्ते यही जुलाब दिवानी कही है ॥ ६ ॥ दरिद्री पुरुषोंको द्रव्य खरचकरें बिनाही यह हरडै रसायन रूप औषध कही है पथ्य भोजनके अंतमें अथवा आदिमें भक्षणकीहुई यह हरडै रोगोंको नाशनेंवाली कही है ॥ ७ ॥ और तृषासे पीडित पुरुष, हृदा, कंठ, इन्होंमें शोषवाले हनुग्रह तथा गलग्रहरोगवाले नवीनज्वर क्षीणबलइंद्रियवाले पुरुष गर्भिणी स्त्री इन्होंको यह हरडै देनी पथ्य नहीं कही है ॥ ८ ॥ और गुड, सूंठ, सैंधानमक, इन्होंकेसंग हरडैको देवे तो आमाशयमें स्थित होनेंवाले उदररोगोंका ऐसे नाश होता है कि जैसे बिजलीसे वृक्षोंका नाश होजाता है ॥ ९ ॥ शरद ऋतुमें मिसरीकेसंग देनी और हिमऋतुमें गुड, सूंठ, इन्होंकेसंग देनी शिशिरऋतुमें सैंधानमक, पीपली, इन्होंकेसंग देनी और वसंतऋतुमें सूंठ, मिरच, पीपली, गुड, इन्होंकेसंग देनी हित है ॥ १० ॥ और ग्रीष्मऋतुमें मिसरी, सूंठ इन्होंकेसंग देनी पथ्य है और वर्षासमयमें सैंधानमकके संग देनी हित कही है और घृतके संग हुई यह हरडै सब रोगोंको नाशती है ॥ ११ ॥ और इसका कल्क बना घृतकेसंग देनेंसे मनुष्यके कोष्ठकी आमवातका नाश होता है और दुष्ट विकारोंको तात्काल नाशती है और अरंडीके तेलमें पकाके देना पथ्य है ॥ १२ ॥ और त्रिफलाको खाके तिसपे यही तेल पीवे तो शूल मलका बंधाके कियेहुए विकार इन्होंका नाश होता है और पित्त, कफ, वात, इनसे उपजे सब विकारोंके नाशकेवास्ते, महिषीके मूत्रमें सात दिनतक स्थापित कियाहुआ त्रिफलाको खावे ॥ १३ ॥ और पांच हरडै वीस तोले गोमूत्रमें और दूधमें स्थापितकर रक्खै सात दिनतक स्थापित करना श्रेष्ठ कहा है और कईक वैद्य ऐसे है कि सात दिन पीछे दूध और गोमूत्र शूख जावे तबतक स्थापित रक्खै और कइक ऐसे कहते है कि इक्कीसदिन पीछेतक स्थापित रक्खै ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे सिद्धकीहुई यह हरडै वातोदर रोग तिल्ली अफारा छातीको ग्रहण करनेंवाला रोग इन रोगोंको नाशता है और धान्यकी कांजीमें सिद्धकीहुई हरडै पांडुरोग, क्रिमिरोग इन्होंका नाश करती है ॥ १५ ॥ पीपली, सैंधानमक इन्होंके चूर्णकेसंग दीहुई हरडै अढकारका धूवां अत्यंत अजीर्ण इन्होंका नाश करती है और तत्काल क्षुधाको उत्पन्न करती है और सूंठके संग इसका कल्क देनेंसे ॥ १६ ॥ तथा सैंधानमकके संगदेनेंसे ज्वरको नाशती है और दही

तथा तक्रके संगदेनेंसे अतिसारको नाशती है राजयक्ष्मा रोगमें शहदकेसंग चाटै और शोजा उदररोग इन्होंके नाशकेवास्ते गोमूत्रके संग देवै ॥ १७ ॥ पांडुरोगमें बराबरकी खांडकेसंग और दाह, शोष इन्होंमें बिजौराके संग देनी हित कही है इस प्रकारसे मुनियोंसे कहाहुआ यह हरडैका कल्क समाप्त होचुका है ॥ १८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनु॰हारीतसंहिताभाषायां पंचमे कल्कस्थाने हरीतकीकल्कवर्णभेदोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ रसोनकल्कः ॥

अमृतमथने जातः सुरासुरग्रहो महान् ॥ जहार वैनतेयश्च चञ्चुना त्रिदिवं गतः ॥ १ ॥ संग्रामश्रमसंप्राप्ते श्रमवेगप्रधाविते ॥ आरूढे वैक्लवं प्राप्ते च्युता ह्यमृतबिन्दवः ॥ २ ॥ सकृत्संदूषिते देहे पतितास्तत्र संस्थिताः ॥ तस्मात्कालवशाज्जातं दुर्भिक्षं द्वादशाब्दिकम् ॥ ३ ॥ विशुष्काः कानने सर्वा वृक्षकण्टप्रतानिकाः ॥ तस्माच्च ऋषयः सर्वे प्रकृष्टं गहनं गताः ॥४॥ तेषां मध्ये जराग्रस्तो गतिहीनोऽतिजर्जरः ॥ सयष्टिः सरणिक्षुण्णः शीर्णदन्तावलीमुखः ॥ ५ ॥ सव्यक्तस्थैः क्षुधापन्नैर्ऋषिभिस्तत्र विश्रुतः ॥ सोऽपि क्षुधातुरः सर्वां पर्य्यटत्युर्वरां महीम् ॥ ६ ॥ कुत्रचित् पुण्ययोगेन दृष्टवान्विटपान् शुभान् ॥ नीलशैवालसङ्काशान् शाद्वलान्बहलान् भुवि ॥ ७ ॥ क्षुधासंपीडनेनापि भुक्तवान् सदलानपि ॥ ८ ॥ षण्मासानन्तरं शुष्कान् बिटपांस्तदनन्तरम् ॥ भुक्तवान्कन्दकान् सोऽपि मासमेकं तथा ऋषिः ॥ ९ ॥ पश्चात् सुभिक्षे सञ्जाते सर्वे चैकत्र संस्थिताः ॥ सोऽपि वृद्धो युवा भूत्वा गतस्तत्र च यत्र ते ॥ १० ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयापन्नाः पप्रच्छुः किं कृतं त्वया ॥ नोक्तवान् सतु किञ्चिच्च रुषा तैः शापितस्ततः ॥ ११ ॥ यत्त्वया खादितं द्रव्यं तदभक्ष्यं द्विजातिभिः ॥ दुर्गन्धमपि चित्रञ्च तस्माज्जातं रसोनकम् ॥ १२ ॥ अथवीर्य्यञ्च वक्ष्यामि रसोनस्य महामते ! ॥ रसैः पञ्चभिः संयुक्तो रसोनस्तेन वर्जितः ॥ १३ ॥

अमृतमथनेंके समय देवताओंका और दैत्योंका महान् युद्ध होता भया तब गरुड अमृतको हरके चूंचमें ग्रहणकर स्वर्गमें जातेभये ॥ १ ॥ फिर युद्धकी हारके श्रमसे और मार्गके खेद होनेंसे युक्त होगया तब बैठ गया तहां अमृतकी बिंदु गिरती भई वे बूंद ॥ २ ॥ विष्ठासे दूषित हुए किसीके शरीरपे गिरके तहांही स्थित होती भई पीछे कालके वशसे तिस देशमें बारह वर्षतक दुर्भिक्ष काल पडताभया ॥ ३ ॥ तिस वनमें सब वेलवृक्ष पत्ते शूखते भये तिस्से सब ऋषि दूर गह्वरवनमें जाते भये ॥४॥ तिन ऋषियोंमें बुढापासे ग्रसितहुआ गमन करनेंमें समर्थ नहीं, जर्जर अंगवाला यष्टिकाको पकडे हुए क्षुधासे युक्तहुआ, दात हिलते हुए ऐसा एक ऋषि था ॥ ५ ॥ सो क्षुधामें युक्त हुए कहीं एकांतमें बेंमालूम हुए ऐसे अन्यऋषियोंसे विछडताभया पीछे वहभी क्षुधासे युक्तहुआ सब पृथ्वीपे विचरताभया ॥ ६ ॥ पीछे पुण्यके योगसे कहींक सुंदर वृक्षोंको देखताभया और नीली सिवालाके समान कांतिवाले बहुतसे घासोंको पृथ्वीपे देखताभया॥७॥पीछे क्षुधासे पीडित होनेंसे तिन वृक्षोंके पत्तोंको खाता भया ॥ ८ ॥ फिर छह महीनें पीछे शूखे वृक्षोंको खाताभया पीछे वह ऋषि एक महिनातक कंद अर्थात् वृक्षआदिकी जडोंको खातेभये तहा लस्सन कंदभी खाया, फिर सुभिक्ष संवत् होगया ॥ ९ ॥ तब सब ऋषि सब ऋषि एक जगह इकट्ठे हुए और वह वृद्ध ऋषिभी जहां वेथे उसी जगह जवान होके आया ॥ १० ॥ तब तिसको देख आश्चर्यमें युक्तहो पूछते भये कि तैनें क्या किया फिर वह कुछभी नहीं बोला तब उन्होंने क्रोध होके शाप देदिया ॥ ११ ॥ कि जो द्रव्य तैनें खाया है वह द्विजाति ब्राह्मणआदि जातियोंको भक्षण करनेंको योग्य नहीं है इसवास्ते दुर्गंधवाला और चित्र ऐसा लस्सन होगया ॥ १२ ॥ हे महामते ! अब लस्सनके गुणोंको कहेंगे यह पांच रसोंसे युक्त है और एक रससे वर्जित है इसवास्ते इसको रसोन कहते है ॥ १३ ॥

अथ लस्सनके गुण ॥

कट्वम्लवीर्य्यो लशुनो हितश्च स्निग्धो गुरुः स्वादुरसोऽथ बल्यः ॥ वृद्धस्य मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसन्धानकरः सुतीक्ष्णः ॥ १४ ॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलप्रमेहहिक्कारुचिगुल्मशोफान् ॥ दुर्नामकुष्ठानलश्यावजं तु समीरणं श्वासकफान् निहन्ति ॥ १५ ॥ तेन रसोनकं नाम विख्यातं भुवनत्रये ॥ कुक्कुटाण्डनिभं ग्रीष्मे शीर्णपर्णं समुद्धरेत् ॥ १६ ॥ बद्धा पुटे सुनिर्गुप्तं धारयेत्तं महामते ! ॥ वर्षासु शिशिरे चैव कारयेन्मात्रया युतम् ॥ १७ ॥ रामठं जीरके द्वे च अजमोदा कटुत्रयम् ॥ घृतसौवर्च

लोपेतं वातरोगे विशेषतः ॥ १८ ॥ मातुलुङ्गरसेनापि शूलानाहे प्रकीर्त्तितः ॥ दध्ना वातादिशमनो रसोनो विहितो बुधैः ॥ १९ ॥ जाङ्गलादि रसान्येव भोजनार्थे प्रदापयेत् ॥ २० ॥

लस्सन चर्चरा और खटा है, हित है, स्निग्ध है, भारा है, स्वादु रसवाला है, बलदायक है, वृद्ध पुरुषकी बुद्धि, स्वर,वर्ण, नेत्र, भग्नअस्थि इन्होंको जोडनेंवाला है सुंदर तीक्ष्ण है ॥१४॥और हृदयरोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, प्रमेह, हिचकी, अरुचि, गुल्म, शोजा, ववासीर, कुष्ठ वायुसे उपजे हुए क्रिमि वात, श्वास, कफ इन्होंको नाशता है ॥ १५ ॥ पांच रसोंवाला होनेंसे यह रसोन नामसे प्रसिद्ध हैं यह ग्रीष्मऋतुमें मुरगेके अंडेकेसमान होता है शिथिल २ पत्ते होते है ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् जन इसको पुटविधिसे बांधके गुप्त धारण रक्खै और वर्षाऋतुमें तथा ग्रीष्मऋतुमें इसको मात्रासे युक्त करै ॥ १७ ॥ और हिंग, दोनों जीरे, अजमोद, सूंठ, मिरच, पीपल, घृत, कालानमक इन्होंसे युक्तकर वातरोगमें देना श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥ और विजौराके रसके संग देनेंसे शूल, अफारा इन्होंका नाश होता है और दहीके संग दियाहुआ लस्सन वातआदि दोषोंको शांत करता है ॥ १९ ॥ और जांगल देशके जीवोंका रस भोजनमें हित कहा है ॥ २० ॥

अथ पेयरसोनविधिः ॥

निष्पीड्य च रसं तस्य गृहीत्वा मुनिसत्तम ! ॥ दुग्धेन शर्करोपेतं पित्तरोगे पिबेन्नरः ॥ २१ ॥ राजयक्ष्मक्षये पाण्डौ कामलायां हलीमके ॥ शिरोरुजासु सर्वासु रक्तपित्तभ्रमेषु च ॥ २२ ॥ शोषमूर्च्छापस्मारे च हितं चैतद्रसायनम् ॥ २३ ॥

हे उत्तममुनि ! लस्सनके रसको निचोड तिसमें दूध और खांड मिला पीनेंसे पित्तरोग शांत होता है ॥ २१ ॥ और राजयक्ष्मा, क्षयीरोग, पांडुरोग, हलीमक, संपूर्ण शिरके रोग और रक्तपित्तसे उपजे भ्रम॥२२॥ शोष, मूर्च्छा, मृगीरोग इन्होंमें हितहै और रसायन है॥२३॥

परिपिष्य रसोनञ्च तत्समा त्रिवृता मता ॥ गुडेनैरण्डतैलेन शीतं दत्त्वा च लेहकम् ॥ २४ ॥ भवत्येतत्समादृत्य पाययेन्मूत्ररोगिणम् ॥ शोफे गुल्मे वाऽऽमवाते हितमेतत्तदार्शसाम् ॥२५॥ हरिणशशकलावातित्तिराणाञ्च मांसं कर्कशमपि मयूरादिसाराद्यजाद्यम् ॥ घृतमधुररसानां शालिगोधूममासां हितमिति मनुजानां गुग्गुले वा वसोने ॥ २६ ॥ व्यायामया

नातपमैथुनानि क्रोधाध्वजीर्णान्परिवर्जयेच्च ॥ विवर्जयेद्वापि तथातिसारे मेहामये पाण्डुगुदामये च॥२७॥न गर्भिणीनां न च बालकानांभ्रमातुरे वा न मदातुरे च ॥ न रक्तपित्ते न च कुष्ठिनेऽपि न रक्तवाते न विसर्पिके च॥ २८ ॥ दत्तो रसोनो यदि मूढबुद्ध्या विरेचनं वा वमनं विधेयम् ॥ न वान्यथा कुष्ठमथापि पाण्डुं त्वग्दोषरोषं कुरुते नरस्य ॥ सुयोगयुक्त्याऽमृतवन्नराणां वीर्य्येन्द्रियं पुष्टिबलं तनोति ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्कस्थाने रसोनकल्को नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

लस्सनको पीस तिसके समान निशोत मिला और गुड अरंडीका तेल, दालचिनी इन्हों-का अवलेह बनादेंनेसे ॥ २४ ॥ मूत्ररोगवाले पुरुषोंके सुख होता है और शोजा, गुल्म, आमवात, ववासीर इन रोगवालोंको हित है ॥ २५ ॥ और हिरन, शूशा, लावा, तीतर, ककेरा, मोर, सारस, बकरा इत्यादिकोंका मांस, घृत, मधुररस, शालिसंज्ञक चावल, गेहूं इन्होंका भोजन करना गूगल तथा लस्सन खानेके पीछे हित कहाहै ॥ २६ ॥ और कसरत, गमन करना, घामसेवना, मैथुन करना, क्रोध, मार्गका श्रम इन्होंको वर्ज देवै और अतिसार प्रमेह, पांडुरोग, गुदाके रोग, इन रोगोंमेंभी इन पिछली कहीहुई वस्तुओंको वर्ज देवै ॥ २७ ॥ और गर्भिणी स्त्री बालक भ्रमातुर पुरुष, मदातुर, रक्तपित्तवाले कुष्ठवाले,रक्तवातवाले, विसर्प रोगवाले इन मनुष्योंको लस्सन नहीं देवै ॥ २८ ॥ और जो यदि मूर्खपनेंसे दियाजावे तो जुलाब दिवाना अथवा वमन कराना चाहिये नहीं तो मनुष्यके शरीरमें कुष्ठ, पांडुरोग, त्वक्दोष इन्होंको करदेता है और सुंदर योगयुक्तिसे दियाहुआ लस्सन मनुष्योंको अमृतकेसमान है वीर्य, इंद्रिय, पुष्टि, बल इन्होंको बढाता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां कल्कस्थाने रसोनकल्कोनाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ गुग्गुलकल्कः ॥

हारीत उवाच ॥ भगवन् ! गुग्गुलो नाम योगवीर्य्यमथोगुणम् ॥ वक्तुमर्हसि रोगेषु येषु वापि प्रशस्यते ॥ १ ॥ एवमुक्तस्तु शिष्येण प्रत्युवाच महातपाः ॥ २ ॥

हारीत पूछता है—हे भगवन्! गुग्गुलनामक औषधके योग वीर्य और गुणको आप कहो जिन २ रोगोंमें श्रेष्ठ कहा है सो सुन ॥ १ ॥ ऐसे शिष्यसे पूछे हुए महान् तपवाले आत्रेयजी प्रतिवचन कहते है ॥ २ ॥

आत्रेय उवाच ॥ मरुभूमौ प्रजायन्ते प्रायशः पुरपादपाः ॥ भानोर्मयूखैः सततं ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलम् ॥ ३ ॥ हिमाद्रितो वा हेमन्ते विधिवत्तं समाहरेत् ॥ जातरूपनिभं शुभ्रं पद्मरागनिभं क्वचित् ॥ ४ ॥ क्वचिन्महिषनेत्राभं यक्षदैवतवल्लभम् ॥ विधानं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम ॥ ५ ॥ त्रिदोषशमनो वृष्यः स्निग्धो बृंहणदीपनः ॥ गुग्गुलः कटुकः पाके वर्णप्रबलवर्द्धनः ॥ ६ ॥ आयुष्यः श्रीकरः पुत्रस्मृतिमेधाविवर्द्धनः ॥ पापप्रशमनः श्रेष्ठः शुक्रार्त्तवकरः स्मृतः ॥ ७ ॥ वर्णगन्धरसोपेतो गुग्गुलो मात्रया युतः ॥ भेषजैः सह निष्क्वाथ्यो यथा व्याधिहरैः पृथक् ॥ ८ ॥ मात्रावशिष्टं तं दृष्ट्वा चालयेच्छुक्लवाससा ॥ मृन्मये हेमपात्रे च राजते स्फाटिकेऽपिवा ॥ ९ ॥ पुण्ये तिथौ शुभे भे च जीर्णाहारःक्षमान्वितः ॥ हुत्वाग्निं पर्य्युपासीत देवब्राह्मणभक्तितः ॥ १० ॥ प्रविश्य कुसुमाकीर्णे मन्दिरे च समाश्रिते ॥ रास्ना गुडूची चैरण्डो दशमूलं पृसारिणी ॥ ११ ॥ क्वाथं तेषां यथायोग्यं यवान्या वातिके पिबेत् ॥ पृथक्छृतैर्जीवनीयैः पिबेत्पित्तामयार्दितः ॥ १२ ॥ वासाचन्दनह्रीबेरं मृद्वीका तिक्तरोहिणी ॥ खर्जूरश्च परूषश्च तथा जीवककर्षकौ ॥ सपित्तरोगे पानाय क्वाथः स्याद्गुग्गुलान्वितः ॥ १३ ॥ त्रिफलाव्योषगोमूत्रनिम्बधान्यकपुष्करैः ॥ अमृता दीप्यकः क्वाथः पटोली च कफार्दितः ॥ १४ ॥ नाडीदुष्टव्रणग्रन्थिगण्डमालार्बुदान्वितः ॥ त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं पिबेन्मेही व्रणी तथा ॥ १५ ॥ किरातकामृतानिम्बवृषाव्याघ्रीदुरालभाः ॥ एषां क्वाथेन संयुक्तं गुग्गुलं पाययेद्भिषक् ॥ १६ ॥ गुल्मे कासे क्षते श्वासे विद्रधावरुचौ व्रणे ॥ दार्वीपटोलक्वाथेन संयुतं गुग्गुलं पिबेत् ॥ १७ ॥ कण्डूपिटकशोफाद्ये पिबेद्वातकफापहम् ॥ पथ्या पुनर्नवा दार्वी गोमूत्रममृतं तथा ॥ १८ ॥ एषां क्वाथो हितः पाण्डौ शोथो

दरकिलासिनाम् ॥ भवेन्मात्रां पलं यावत्कर्षादारभ्य यत्नतः ॥ १९ ॥
जीर्णेऽश्नीयान्मुद्गयूषैरसैर्वा जाङ्गलैस्तथा ॥ पयसा षष्टिकान्नञ्च शाली
नामोदनं मृदु ॥ २० ॥ दिनाः सप्त प्रथमा च मध्यमा द्विगुणाः स्मृताः॥
त्रिगुणाः परमा मात्रा विज्ञेया योगचिन्तकैः ॥ २१ ॥ सेवते गुग्गुलं यो
वै वर्षेणापि नरः क्रमात् ॥ स्थावराज्जङ्गमाच्चैव न स्यादस्य क्षतिर्विषात्
॥ २२ निर्मुक्तो वलितत्वचोपि पलितो वृद्धो युवा जायते मेधादृष्टिब
लौजवीर्य्यमधिकं वृद्धत्वहीनो भवेत् ॥ गुल्माष्ठीलहृदामवातशमनः कु
ष्ठं प्रमेहाश्मरीं शूलानाहविसर्परक्तशमनो भूतोपसृष्टे हितः ॥ २३ ॥ इ
त्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्कस्थाने गुग्गुलकल्को नाम पञ्चमोऽध्यायः ५

आत्रेयजी कहते हैं–विशेष करिकै गूगलके वृक्ष मरुदेशमें होते है सो निरंतर सूर्यकी किरणोंसे ग्रीष्मऋतुमें गूगलको त्यागते है ॥ ३ ॥ और हिमाद्रिपर्वतमें गूगलवृक्षोंसे हेमंतऋतुमें गूगल निकसता है कहीक तो चांदीकेसमान सफेद होता है कहीं पद्मरागकेसमान होता है ॥ ४ ॥ कहींक भैंसाके नेत्रोंकेसमान वर्णवाला होता है वह यक्षदेवता इन्होंको प्रिय है सो तिसका विधान विधिसे कहतेहुए मुझसे सुन ॥ ५ ॥ यह त्रिदोषको शांत करनेंवाला है वीर्यमें हित है स्निग्ध है धातुवोंको बढानेंवाला है अग्निको दीप्त करनेंवाला है और गूगल पाकमें चर्चरा है वर्ण, बल इन्होंको बढानेंवाला है ॥ ६ ॥ आयुमें हित है लक्ष्मी बढानेंवाला है पुत्र, स्मृति, मेधा इन्होंको बढानेंवाला है पापको शांत करनेंवाला है श्रेष्ठ है वीर्य स्त्रीके आर्तव इन्होंको करनेंवाला है॥७॥और वर्ण, गंध, रस इन्होंसें संयुक्त गूगलमात्रसे युक्त कियाहुआ और औषधोंकेसंग क्काथ बनाके दियाहुआ व्याधिके अनुसार दियाहुआ सब व्याधियोंको नाशता है ॥ ८ ॥ मात्राके अनुसार तिस गूगलको देखके सफेद वस्त्रमांहके छान लेवे पीछे मट्टीके पात्रमें अथवा सुवर्णके पात्रमें तथा चांदीके पात्रमें तथा कांचके पात्रमें ॥ ९ ॥ शुभ तिथिमें और शुभ नक्षत्रमें घाल धरै पीछे भोजन जर जावे तब क्षमासे युक्तहुआ पुरुष सुंदर पुष्पोंसे आकीर्णहुआ मंदिरमें जाके देवता ब्राह्मण इन्होंकी भक्ति और उपासना कर ॥ १० ॥ तिस गूगलको स्थापित करदेवै और वातसे उपजे रोगमें खायेहुए गूगलके ऊपर रास्ना, गिलोय, अरंड, दशमूल, खींप ॥ ११ ॥ अजमान इन्होंका क्काथको यथायोग्य पीवे और पित्तरोगसे पीडितहुआ पुरुष पृथक् २ जीवनीयगुणकी औषधोंमें पकायाहुआ क्काथको पीवै ॥ १२ ॥ और वांसा, चंदन, नेत्रवाला, मुनक्का, दाख, कुटकी, खिजूर, फालसा, जीवक, ऋषभक इन्होंका क्काथ गूगलमे युक्तकर पित्तके रोगोंमें पीना हित है ॥ १३ ॥ और त्रिफला, सूंठ, मिरच, पीपली, गोमूत्र, नींब, धनियां पौहकरमूल, गिलोय, अजमान, परवल,

इन्होंके क्काथकेसंग गूगल लेना कफके रोगोंमें हित है ॥ १४ ॥ दुष्टनाडीव्रण, ग्रंथिरोग, गंडमाला, अर्बुद प्रमेह, व्रण, इन रोगोंवाला पुरुष त्रिफलाके क्काथकेसंग पीवै ॥ १५ ॥ और चिरायता गिलोय, नींब, वांसा, कटेहली, धमांसा, इन्होंके क्काथकेसंग गूगलको पीवे॥१६॥ तो गुल्म, खांसी, चोट, श्वास, विद्रधि, अरुचि, व्रण, इन्होंका नाशहोता है, और दारुहलदी, परवल इन्होंके क्काथकेसंग गूगलको पीवे ॥ १७ ॥ तो खाजी, पिडिका, शोजाआदिक वात, कफ इन्होंका नाश होता है और हरडै, सांठी, दारुहलदी, गोमूत्र, दूध ॥१८॥ इन्होंके क्काथके संग गूगल पीनेंसे पांडुरोग, शोजा, उदररोग, किलासकुष्ठ इन्हों-का नाश होता है और एक तोलासे लेके चार तोला प्रमाणतक गूगलका खाना हित है॥१९॥ और जब खायाहुआ गूगल जर जावे तब मूंगोंका यूष और जांगलदेशके जीवोंका रसकेसंग भोजन करना हित है और दूधके संग सांठी चावल और शालीसंज्ञक चावलोंको खावै॥२०॥ सात दिनतक गूगलका सेवन करना प्रथम मात्रा है, और १४ दिनतक मध्यम मात्रा, और इक्कीस दिनतक सेवन करनेंको परममात्रा कहते है ऐसे योग युक्तिको जाननेंवालोंनें कहा है ॥ २१ ॥ और जो पुरुष क्रमसे वर्ष दिनतक गूगलको सेवता है तिसको स्थावर और जं-गमविषोंकी मात्रा दुःख नहीं देती है ॥ २२ ॥ और जिसकी त्वचामें गुगल ऊठ गिर पडे बाल सफेद होजा ऐसा वृद्ध पुरुषभी इसके खानेंसे जवान होजाता है और बुद्धि, दृष्टी, बल, वीर्य इन्होंकी वृद्धि होती है वृद्धपनेंके दुःखोंसे दूर होजाता है और गुल्म, अष्ठीला, हृदाका रोग, आमवात इन्होंको शांत करता है कुष्ठ, प्रमेह, पथरी, शूल, अफारा, विसर्प, रक्तदोष, भूतव्याधि इन्होंको शांत करता है ॥ २३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त-शास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां कल्कस्थाने गुग्गुलकल्कोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति कल्कस्थानं समाप्तम् ॥

अथ शारीरस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ शारीराध्यायः ॥

आत्रेय उवाच ॥ पञ्चभूतात्मकं देहं पञ्चेन्द्रियसमायुतम् ॥ सप्तधातुगुणोपेतं दशवातात्मिकं विदुः ॥ १ ॥ जीवो मनस्तथाकाशस्तथैव त्रिगुणात्मिकः ॥ शुक्रशोणितसम्भूतं शरीरं दोषभाजनम् ॥ पञ्चभूतमयं चैतद्विज्ञेयं भिषजां वर ! ॥ २ ॥ चतुर्विधं शरीरं स्याद्बाल्यं प्रौढं प्रगल्भकम् ॥ स्थविरञ्च तथा प्रोक्तं बाल्यमल्पशरीरकम् ॥ षोडशवार्षिकं यावद्बाल्यं तावत् प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥ धातूनाञ्च बलं तत्र धातुमूलं शरीरकम् ॥ धातूनां पुष्टियोगेन शरीरञ्चातिवर्द्धते ॥ ४ ॥ जीवितं धातुमूलं तु मृत्युर्धातुक्षयादपि ॥ हीनधातोश्च योगेन लभते स्वल्पजीवनम् ॥ ५ ॥ नरो धातुबलेनापि जीवितश्चात्र दृश्यते ॥ तस्माच्च मैथुनात्सम्यग्जायते गर्भसम्भवः ॥ ६ ॥ आदौ धातुबलं तस्मात्सत्वं तस्माद्रजो विदुः ॥ रजसा जायते कामः कामात्सुरतसङ्गमः ॥ ७ ॥ मासे मासे ऋतुः स्त्रीणां दृष्ट्वा ऋतुमतीस्त्रियः ॥ रजः सप्तदिनं यावदृतुश्च भिषजां वर ! ॥ ८ ॥ सप्तरात्राद्योनिशुद्धिस्तस्मादृतुमती भवेत् ॥ दृश्यते च रजः स्त्रीणां विना योगेन पुत्रक ! ॥ ९ ॥ दृश्यते न विना योगात्फलं स्त्रीणां तु पुत्रक ! ॥ संशयाद्विस्मितश्चित्ते हारीतः परिपृच्छति ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं–पांच तत्वोंसे उत्पन्न होनेवाला पांच इंद्रिय और सात धातु तथा दश वायुवोंसे युक्त ऐसा देहको कहते है ॥ १ ॥ और जीव, मन, आकाश ऐसे त्रिगुणात्मक शरीर है वीर्य और शोणितसे उपजेहुए शरीरको दोषका पात्र कहते है हे उत्तमवैद्य ! पांच तत्वोंसे उत्पन्न होनेवाला शरीर जान॥२॥चार प्रकारका शरीर होता है बालक १, जवान २, प्रगल्भ ३, वृद्ध ४, ऐसे चार प्रकारका कहा है तहां बालक अल्प शरीर कहा है और जब तक सोलह वर्षका हो तबतक बालक अवस्था रहती है ॥ ३ ॥ तहां शरीरमें धातुवोंका बल

होता है और धातुवोंकी जडवाला शरीर कहा है और धातुवोंकी पुष्टीके योगसे शरीर अत्यंत बढता है ॥ ४ ॥ जीवना धातुवोंकी जडसे है और धातुक्षय होनेंसे मृत्यु होजाती है और हीन धातुके योगसे थोडा जीवना होता है ॥ ५ ॥ मनुष्यका जीवना धातुकेही बलसे दीखता है इसवास्ते मैथुनसे सम्यक् प्रकारसे गर्भ स्थित होता है ॥ ६ ॥ पहले धातुका बल तिससे सत्वगुण, सत्वगुणसे रजोगुण, तिस्से काम, कामसे मैथुनका संगम होता है ॥ ७ ॥ महीना २ केप्रति ऋतु अर्थात् स्त्री रजस्वला धर्ममें होती है हे उत्तमवैद्य ! सात दिनतक स्त्रियोंके रज रहता है तबतक ऋतुसमय कहाती है ॥ ८ ॥ और सात रात्री पीछे योनिकी शुद्धि होजाती है तब वह ऋतुमती कहाती है हे पुत्र ! स्त्रियोंके रज विनाही योगसे होता है ॥ ९ ॥ और फल अर्थात् गर्भस्थितिसंयोगकी विना नहीं होती है ऐसे सुनके संदेहमें युक्त हो हारीत फिर पूछता भया ॥ १० ॥

हारीत उवाच ॥ संयोगेन विना प्राज्ञ ! कथं गर्भो न जायते ॥ संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ॥ ११ ॥ वृक्षवन्न कथं स्त्रीणां फलोत्पत्तिः प्रदृश्यते॥ एतत्पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच ऋषिपुङ्गवः ॥ १२ ॥

हारीत पूछने लगा—हे महाराज ! संयोगके बिना स्त्रियोंके गर्भ क्यों नहीं ठहरता है क्यौंकि संयोगके बिना पुष्प तो होगये फिर फलभी क्यौं नहीं होता है ? ॥ ११ ॥ वृक्षकी तरह स्त्रियोंकेभी गर्भकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ऐसे पूछाहुआ ऋषियोंमें उत्तम महान् आचार्य फिर बोलता भया ॥ १२ ॥

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धानाञ्च वल्लीनां स्थावराणाञ्च पुत्रक ! ॥ तत्र धातुसमं बीजं सह योगेन वर्त्तते॥ १३ ॥न भिन्नदृष्टिस्तस्यैव दृश्यते शृणु पुत्रक ! ॥ स्थावराणाञ्च सर्वेषां शिवशक्तिमयं विदुः ॥ १४ ॥ निश्चलोऽपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तिशक्तिर्महामते ! ॥ तत्र स्त्रीपुरुषगुणा वर्त्तन्ते समयोगतः ॥ १५ ॥ आम्रपुष्पं फलं तद्वद्बीजं शुक्रमयं विदुः ॥ स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजाढ्यमिन्द्रियं नरे ॥ तस्मात्संयोगतः पुत्र ! जायते गर्भसम्भवः ॥ १६ ॥ प्रथमेऽहनि रेतश्च संयोगात्कललं च यत् ॥ जायते बुद्बुदाकारं शोणितञ्च दशाहनि ॥ १७ ॥ घनं पञ्चदशाहे स्याद्विंशाहे मांसपिण्डकम् ॥ पञ्चविंशतमे प्राप्ते पञ्चभूतात्मसम्भवः ॥ १८ ॥

मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चतत्त्वं प्रजायते ॥ पञ्चाशद्दिने संप्राप्ते अङ्कुराणा
ञ्च सम्भवः ॥ १९ ॥ मासत्रये तु संप्राप्ते हस्तपादौ प्रवर्धते ॥ सार्द्धमा
सत्रये प्राप्ते शिरश्च सारवद्भवेत् ॥ २० ॥ चतुर्थके च लोमानां सम्भ
वश्चात्र दृश्यते ॥ पञ्चमे च सुजीवः स्यात्षष्ठे प्रस्फुरणं भवेत् ॥ २१ ॥
अष्टमे मासि जाते च अग्नियोगः प्रवर्त्तते ॥ मासे तु नवमे प्राप्ते जाय
ते तस्य चेष्टितम् ॥ २२ ॥ जायते तस्य वैराग्यं गर्भवासस्य कारणात् ॥
दशमे च प्रसूयेत तथैकादशमेऽपिवा ॥ २३ ॥ अथ दोषबलेनापि गर्भो
वापि प्रसूयते ॥ वातसंप्रेरिते गर्भे अपूर्णे दिवसैर्यदि ॥ २४ ॥ प्रसूयते
वाप्यथ तद्गर्भे बालः प्रदृश्यते ॥ अथ वक्ष्यामि देहस्य वर्णज्ञानं महा
मते ! ॥ २५ ॥ नररेतोऽधिकत्वेन तथा शुक्राधिकेन तु ॥ हीनरसेन्द्रियै
र्वापि जायते पुरुषाधिकः ॥ २६ ॥ स्त्रीरेतसोधिकत्वेन हीनशुक्रेन्द्रिया
दपि ॥ रजसोप्यधिकत्वेन स्त्रीसम्भूतिः प्रजायते ॥२७॥ सप्तधातुबलेना
पि प्रकृत्या विकृतेः समे ॥ ऋतुव्याप्तरजःस्त्रीणां या या भवति भावना
॥ २८ ॥ सात्विकी राजसी वापि तामसी वापि सत्तम ! ॥ तादृशं जन
येद्बालं गुणैर्वा तादृशैरपि ॥ ५९ ॥ या च भावयते चित्ते भ्रातरं पि
तरं नरम् ॥ येन वा तेन सदृशं सूयते सा भिषग्वर ! ॥ ३० ॥ वातेन श्या
मः पुरुषो वातप्रकृतिसम्भवः ॥ पित्तेन गौरो भवति पित्तप्रकृतिवान्भवेत्
॥ ३१ ॥ श्लेष्मणा जायते स्निग्धः श्यामश्च लोमशस्तथा ॥ दीर्घशिरो
रुहः स्थूलो दीर्घप्रकृतिसंयुतः ॥ ३२ ॥ वातरक्तेन कृष्णोऽपि पित्तरक्ते
न पिङ्गलः ॥ पित्तवांश्च नरो रूक्षः स्निग्धः श्यामः कफासृजा ॥ ३३ ॥
भृङ्गराजाञ्जनाकारं वातेन दृष्टिमण्डलम् ॥ सूक्ष्मलोमा च कृष्णश्च रू
क्षमूर्द्धजयान्वितः ॥ यस्य वातेन तं विद्धि नखसूक्ष्मासितच्छविम्॥३४॥
पित्तेन पीतश्च भवेदलोमा पिङ्गेक्षणाभासपिशङ्गकेशः ॥ आलोमशः
पीतनखप्रभः स्यात्क्षुधातुरो निरूष्मणा स दृप्तः ॥ ३५ ॥ स लोमशो दृ
प्तकठोरकेशः श्यामच्छविर्दृप्ततनुर्विशालः ॥ सुस्निग्धदन्तः सितनेत्ररम्यो
नखच्छविःपाण्डुसुदीर्घनासः ॥ ३६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! विरुद्ध जो स्थावर वृक्ष वेल आदिक है तिन्होंको तो धातुके संग बीज योगसहित प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! तिन्होंके भिन्न दृष्टी नहीं है सो सुन संपूर्ण स्थावर वृक्ष आदिकोंके शिव और शक्तिको जान ॥ १४ ॥ तहां निश्चल तो शिव है और शक्ति व्याप्तहो रही है तहां स्त्री पुरुषके गुणसंगही प्रवृत्त होते है ॥ १५ ॥ इसवास्ते आंबके पुष्प और फल संगमें ही प्रवृत्त होता है, और बीजको वीर्यकी जगह जान और स्त्रियोंके रजही वीर्य है, और पुरुषके वीर्य बीजरूप है हे पुत्र ! इसवास्ते संयोगसेही गर्भकी उत्पत्ति होती है ॥ १६ ॥ और पहले दिन वीर्यके संयोगसे बुलबुलाके आकार वीर्य स्थित होता है दशदिनमें रुधिर होजाता है ॥ १७ ॥ पंदरहदिनमें करडा होजाता है और बीसमें दिनमें मांसकी पिंडी होती है २५ दिनमें पांच तत्वोंका संभव होता है ॥ १८ ॥ एक महीना तिसके पांचों तत्व प्रकट होजाते है पंचाशदिनोंमें अंकुरोंकी उत्पत्ति होजाती है ॥ १९ ॥ तीन महीनें होजावे तब हाथ पैर वढनें लगजाते है साढेतीन महीनोंमें शिर प्रकट होजाता है ॥ २० ॥ चौथा महीनामें रोम होते है और पांचवां महीनामें जीव प्रकट होजाता है छठा महीनामें फुरनें लगजाता है ॥ २१ ॥ पीछे आठमें महीनेंमें तिसकै जठराग्निका योग होजाता है नवमा महीनामें तिसको चेष्टा होती है ॥ २२ ॥ पीछे तिसको गर्भवासके कारणसे वैराग्य होता है अर्थात् संसारसे दूर होनेंका ज्ञान होता है फिर दशवे महीनेंमें उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥ और वातआदिक दोषोंके बलसे गर्भ जनता है जो दशवां महीनातक दिन पूरे नहीं हुएहो ॥ २४ ॥ तो वह वातदोषसे प्रेरितहुआ गर्भ पहलेभी उत्पन्न होजाता है हे महामते ! अब देहके वर्ण ज्ञानको कहते है ॥ २५ ॥ मनुष्यका वीर्य शुक्र अधिक होवे तो पुरुष जन्मै ॥ २६ ॥ और स्त्रीका वीर्य रज अधिक होवे और शुक्र हीन होवे तो कन्या जन्मै ॥ २७ ॥ और सात धातुवोंके बलसे प्रकृती और विकृति जब समान होजावे और रजस्वला होनेंके स्त्रीके ऋतुसमयमें स्त्रियोंकी जैसी २ भावना हो ॥ २८ ॥ सत्वगुणी अथवा रजोगुणी तथा तामसी जैसी प्रकृतिहो तैसेही गुणोंसे युक्त तैसेही बालकको स्त्री जनती है ॥ २९ ॥ और जो स्त्री तिस समयमें चित्तमें भ्राता अथवा पिता अथवा अन्यपुरुष जिसका स्मरण करती है हे उत्तमवैद्य ! तिसीके सदृश पुत्रको जनती है ॥ ३० ॥ और वात दोषसे श्यामवर्णवाला पुरुष होता है और वातकी प्रकृतिवाला होता है पित्तसे गौर वर्णवाला और पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ ३१ ॥ कफसे चिकना और श्यामवर्णवाला तथा रोगोंवाला होता है और बडे बालहों, स्थूलहो दीर्घ प्रकृतिसे युक्त होता है ॥ ३२ ॥ वात रक्तसे काला वर्णवाला और पित्तरक्तसे पिंगल वर्णवाला होता है और पित्तवाला मनुष्य रूक्षा होता है और कफरक्तसे स्निग्ध और कालेवर्णवाला होता है ॥ ३३ ॥ और वात दोषसे भौंरा तथा अंजनके आकारवाले दृष्टिमंडल होते है और जिसकै सूक्ष्म रोमहों काले

और रूखें वालहों और जिसके सूक्ष्म २ लाल नखहो उसकी वातकी प्रकृति जाननी ॥३४॥ पित्तसे पीले रोम होते है और पीले नेत्र तथा वांदरसरीखे केश होते है और रोम नख ये पीले होते है और क्षुधासे युक्त रहता है मुखसे भांफनिकसती रहती है और बहुतसे रोम होते है गर्वीले ॥ ३५ ॥ तथा कठोर वाल होते है श्याम कांति हो और गर्विला तथा सुंदर शरीर होताहै चिकनें दांतहो सुंदर रमणीक सफेद नेत्र रहते है नख पीले रहते है और दीर्घ नासिका होती है ॥ ३६ ॥

अथ नपुंसक तथा अपत्ययुग्मका विचार॥

समवीर्य्यरजस्त्वेन नरः स्त्रीप्रकृतिर्भवेत् ॥ नपुंसकमिति ख्यातं न स्त्री न पुरुषो वदेत् ॥ ३७ ॥ दोषधातुविशेषेण सङ्गे सत्यङ्गसंभवः ॥ कृत भ्रान्ते च संभोगे द्वाभ्याञ्च द्रवते मनः ॥ ३८ ॥ दृश्यते यमलोत्पत्तिर न्यचित्तप्रियङ्करी ॥ ३९ ॥

और मैथुन करनेंके समय पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज जो समान होवे तो नपुंसक जन्मता है वह न तो पुरुष नहीं स्त्री होता है ॥३७॥ और दोष धातु इन्होंका विशेष करिकै संग होनेंसे जो अंगका संभव होता है और भ्रांत चित्त होके जो भोग करते है तहां दोष और धातु दोनुवोंसे मन द्रवता है ॥ ३८ ॥ तहां यमल अर्थात् जोडेले बालक उत्पन्न होते है वे अन्योंके चित्तको प्रसन्न करनेंवाले है ॥ ३९ ॥

अथ नपुंसकका विचार ॥

समदोषबलेनापि प्रकृत्या विकृतेरपि॥ शुक्रासृक्च भवेच्छ्यामा नपुंसक समुद्भवा ॥४०॥ अथ बीजलेहिपञ्चभूताग्निना परिपक्वं कललं क्रियते॥ सोऽपि चान्तःस्थो वायुर्बुद्बुदाकारो बाह्यवातेन संभृतो भवति ॥ स च कललं भूत्वा पञ्चभूताग्निना पिण्डं जनयति ॥ तच्च पिण्डं परिपाकं गतं घनसंघातञ्च जातं व्यानवातेन पञ्चतत्त्वानि हस्तपादादीञ्छिरोऽवयवा न्संजनयति ॥ अन्तःस्थो वायुरेकोऽपि नानास्थानं समाश्रित्य देहाकारं करोति ॥ उदानो गलहृदयसंस्थितो देहमुखद्वारं प्रकाशयति ॥ अपान वायुरधःस्थोऽपानद्वारं विशोधयति ॥ एते चान्तःस्थाः पृथक्पृथक् मार्गे छिद्रं कृत्वा निर्गच्छन्ति ॥ तान्ये व नवद्वाराणि मुखघ्राणकर्णनेत्रापान मेहनानि चैतानि द्वाराणि वातेन प्रभवन्ति ॥ तत्रान्तःस्थो वायुः प्र

तानत्वेन हस्तपादाद्यानवयवान्संजनयति ॥ ४१ ॥ त्वङ्मांसकेशरोमास्थिभूभागं जनयेत्तथा ॥ रसं रक्तञ्च लालाञ्च मूत्रं शुक्रं जलानि च ॥ ४२ ॥ अग्निं पित्तञ्चनेत्रञ्च तमः क्रोधादिपञ्चकम् ॥ श्रुतिः स्पर्शस्तथोच्छ्वासः स्वेदश्चंक्रमणादि च ॥ ४३ ॥ वाता ह्येते परिज्ञेया अन्या प्रकृतिरेव च ॥ मनो बुद्धिस्तथा निद्रा आलस्यं मद एव च ॥ ४४ ॥ शून्यात्पञ्च प्रजायन्ते देहे देहे व्यवस्थिताः ॥ वातरक्तेन त्वग्देहे मांस त्वगाश्रितं मतम् ॥ ४५ ॥ शुक्रश्लेष्मोद्भवो मेदो रसोऽस्थिरक्तसंभवः ॥ पित्ताश्रितं हृदयस्थं वातरक्तमयं यकृत् ॥ ४६ ॥ रक्तश्लेष्मरसाश्रित उरुः कफरक्तश्लेष्ममयः ॥ प्लीहा कफरक्तमय्यः पेश्यश्च ॥ ४७ ॥ पञ्चभूतमयं देहमाकाशं शून्यमेव च ॥ शून्याद्वायुः समुत्पन्नो वायोः प्राणः प्रजायते ॥ प्राणांशश्च तथा जातः सर्वसत्वे प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥

और दोष धातु इन्होंके समान होनेसे तथा प्रकृति और विकृतिकेसमान होनेसे वीर्य और रजसे संयुक्त स्त्री जन्मती है अर्थात् हीजडी होती है ॥ ४० ॥ और मैथुन समयमें योनिमें प्राप्तहुए वीर्यको पंच तत्वोंकी अग्नि पकाके कलल कर देती है पीछे उदरमें स्थितहुआ वह कलल बाहिरकी वायुसे बुलबुलेके आकार होजाता है फिर वह कललहोके पांच तत्वोंकी अग्निसे पिंड होजाता है पीछे पकाहुआ वह पिंड करडा इकट्ठा होजावे तब उदानवायु पांच तत्व हाथ पैरआदिक–शिरआदि अंग इन्होंको उत्पन्न कर देता है और अंतर हृदामें स्थितहुआ एकही वायु अनेक स्थानोंकै आश्रय होके तिस पिंडको देहकै आकार कर देता है उदानवायु तो गल हृदा इन्होंमें स्थित होके देहमें मुखके द्वारको प्रकाशित कर देता है और अपानवायु नींचाको स्थितहो गुदाके द्वारको शोध देता है ये सब भीतर रहनेवाले वायु पृथक् पृथक् मार्गमें छिद्रकरके निकसते है वे ही नव द्वारोंको करते है मुख. नासिका, कर्ण, नेत्र, गुदा, लिंग ऐसे ये ९ द्वार वायुसे होते है तहां भीतर रहनेवाला वायु विस्तृतहोके हाथ पैरआदिक अंगोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ४१ ॥ और त्वचा, मांस केश, रोम, अस्थि ये पृथ्वी तत्वसे उत्पन्न होते है रस, रक्त, राल, मूत्र, वीर्य ये जलतत्वसे उत्पन्न होते है ॥ ४२ ॥ और पित्त, नेत्र, अंधेरा, क्रोध, मोहआदिक पांच ये अग्निसे होते है कान, स्पर्श ऊंचा श्वास, पसीना, चहलकदमी आदि करना ॥ ४३ ॥ ये वातसे उत्पन्न होते है और मन, बुद्धि, निद्रा, आलस्य, मद ॥ ४४ ॥ ये पांच आकाश तत्वसे होते है ऐसे सब शरीरोंमें व्यवस्था है और वातरक्तसे शरीरमें त्वचा होती है ॥ ४५ ॥ और मांस त्वचाकैं आश्रय कहा हैं

और वीर्य तथा कफसे मेद उत्पन्न होता है और अस्थि रक्त इन्होंसे रस होता है और हृदामें पित्तका आश्रय है और वातरक्तसे युक्त यकृत् स्थान है ॥ ४६ ॥ और रक्त, कफ, रस इन्हों के आश्रय जांघ है और कफरक्त इन्होंके आश्रय तिल्लीस्थान है और कफरक्तके आश्रय मांसकी पेशी है ॥ ४७ ॥ यह पंच तत्वोंका शरीर है तहां आकाश शून्य है शून्यसे वायु उत्पन्न होता है वायुसे प्राण होते है फिर प्राणोंके अंशसे संपूर्ण जीवोंमें होनेवाला सत्वगुण होता है ॥ ४८ ॥

आकाशाज्जलमुत्पन्नं जलाज्जाता वसुन्धरा ॥ तस्यास्तेजस्तथा जातं तेजसो जायते तमः ॥ ४९ ॥ पञ्चभूतात्मके देहे पञ्चेन्द्रियसमायुते ॥ भूतानाञ्च प्रधानो य आकाशमिति शब्दितः ॥ ५० ॥ आकाशात्तेजस्तेजसो दर्पो दर्पात्पराक्रमस्तस्मादहङ्कारस्ततः कोपः कोपात्तमस्तमसः पापमिति ॥ आकाशात्सत्वं सत्वात्सत्यं सत्यात्तपस्तपसो नयो नयाद्विवेको विवेकाच्छान्तिः शान्त्या धर्म इति ॥ सत्याद्रजो रजसः कामः कामाल्लौल्यं लौल्यादसत्यमसत्यात्पापमिति ॥ रसात्कामः कामादभिलाषोऽभिलाषात्प्रजा प्रजाया मैत्री मैत्र्याः स्नेहः स्नेहान्मोहो मोहान्माया ततो भ्रान्तिर्भ्रान्त्या मिथ्या ततोऽविद्या अविद्यायाः पुण्यपापानि पुण्यपापेभ्यः सम्भव इति ॥ ५१ ॥ सत्वाच्च तम एव स्याज्जायते स्वपते प्रभुः ॥ तमसा प्रवृतो देही व्योमेन शून्यतां गतः ॥ ५२ ॥ देहं विश्रमते यस्मात्तस्मान्निद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ नासार्द्धे च भ्रुवोर्मध्ये लीयते चान्तरात्मना ॥ ५३ ॥ तस्माच्चेतो भवेत्तत्र निद्रा व्यालीयते नृणाम् ॥ ५४ ॥ सत्वात्तेजः समाख्यातं तेजसा पित्तमेव च ॥ जायते वायुर्मनसः स्वपते तमसावृतः ॥ ५५ ॥ वायोस्तमःसमायोगात्स्वभावस्थेति गीयते ॥ सत्वं तमस्तथा वायुर्वर्त्तते चैकयोगतः ॥ ५६ ॥ आहरनिद्रा च क्षुधा च तृष्णा भयञ्च मात्सर्य्यमदश्च मोहः ॥ क्रोधाभिलाषः सुखतृप्तिशान्तिर्भवन्ति वै देहभृतां शृणु त्वम् ॥ ५७ ॥ आहारस्येच्छया देहे विचरते हुताशनः ॥ तृप्तिं वापि समाप्नोति रसस्वादरजस्य च ॥ ५८ ॥ यदा यदा शोषयते मलानामग्निस्तदा तृप्तिमिवाननोति ॥ यदा च यस्यैव भवेदतृप्तिर्तद

व तृष्णां प्रतनोति चेतः ॥ ५९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे शारीर स्थाने शारीराध्यायो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥इति शारीरस्थानं समाप्तम्॥

और आकाशसे जलतत्व होता है तिससे पृथ्वी होती है तिससे अग्नितत्व होता है अग्नि से तमोगुण होता है ॥ ४९ ॥ और पंचभूतात्मक तथा पांच इंद्रियोंसे युक्त ऐसे शरीरमें जो तत्वोंमें प्रधान है वह आकाश कहाता है ॥ ५० ॥ आकाशसे अग्नि होता है अग्निसे अभिमान होताहै तिस्से पराक्रम होता है तिस्से अहंकार अहंकारसे क्रोध होता है तिस्से तमोगुण और तमोगुणसे पाप होता है और आकाशसे सत्वगुण तिसे सत्य सत्यसे तप नीति नीतिसे विवेक विवेकसे शांति शांतिसे धर्म होता है और सत्यसे रजोगुण होता है रजोगुणसे कामना कामनासे चंचलपना होता है चंचलपनेंसे असत्य और असत्यसे पाप होता है और रससे कामना कामसे अभिलाषा अभिलाषासे प्रजा अर्थात् संतान और प्रजा से मित्रभाव होता है तिस्से स्नेह स्नेहसे माया होती है तिस्से भ्रांति भ्रांतिसे मिथ्या तिस्से अविद्या और अविद्यासे पुण्य तथा पाप दोनों होते है फिर पुण्यपापोंसे जन्म होता है॥५१॥ सत्वगुणसे तमोगुण होता है वह जाग्रत् अवस्था तथा स्वप्न अवस्थामें बलवंत है और तमोगुणसे प्रवृत्त हुआ जीव आकाशके संग शून्यभावको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ तब देहको विश्रामदेता है तिसको निद्रा कहते है नासिकाका अर्द्धभाग और भृकुटि मध्य तहां अंतरात्मके संगलीन होता है ॥ ५३ ॥ तहां चित्त रहता है तिस्से मनुष्योंकी निद्रा दूर होती है ॥ ॥ ५४ ॥ और सत्वगुणसे तेज तेजसे पित्त होता है और मनसे वायु उत्पन्न होता है और तमोगुणसे युक्त हुआ जीव सोवता है ॥ ५५ ॥ और तमोगुणके योगसे जो वायु होता है वह स्वप्नअवस्था कहाती है और सत्वगुण तमोगुण, वायु ये तीनों स्वप्नअवस्थामें एक योगसे वर्त्तते है ॥ ५६ ॥ और आहार, निद्रा, क्षुधा, तृषा, भय, मत्सरपना, मद, मोह, क्रोध, अभिलाष, सुखकी तृप्ती, शांति ये सब देहधारियोंके होते है ऐसे तू सुन ॥ ॥ ५७ ॥ और देहमें विचरताहुआ अग्नि भोजनकी इच्छा कर देता है ॥५८॥ और जठराग्नि जब २ मलोंको शोषती है तब तिसकी तृप्ति रहती है और जब तिसकी तृप्ति नहीं होती है तब वह तृषाको उपजा देती है ॥ ५९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषायां शारीरस्थाने षष्ठेशरीराध्यायोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ परिशिष्टाध्यायः ॥

इति प्रोक्तः शरीरार्थस्तद्व्यासेनोपदिश्यते ॥ श्रुत्वा चैनं महातेजा हारीतो मुनिसत्तमः ॥ १ ॥ प्रणिपत्य गुरुश्रेष्ठं हृष्टान्तःकरणस्ततः ॥ जगाम स्वर्णदीतीरं स्नानध्यानरतस्तथा ॥ २ ॥ य एतत् पठति शास्त्रं महर्षेर्वचनाच्छ्रुतम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो नीरुजः सुखमश्नुते ॥ ३ ॥ आदौ यद् ब्रह्मणा प्रोक्तमत्रिणा तदनन्तरम् ॥ धन्वन्तरिणा प्रोक्तश्च अश्विना च महात्मना ॥ ४ ॥ एवं वेदसमं ज्ञेयं नावज्ञाकारणं मतम् ॥ अन्यैश्च बहुधा प्रोक्तं नानाशास्त्रविशारदैः ॥ ५ ॥ अमीषां च मतं ग्राह्यं तस्मात् सर्वै समं विदुः ॥ चरकः शुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथापरः ॥ ६ ॥ मुख्याश्च संहिता वाच्यास्तिस्र एव युगे युगे ॥ ७ ॥ अत्रिः कृतयुगे वैद्यो द्वापरे शुश्रुतो मतः ॥ कलौ वाग्भटनामा च गरिमात्र प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ वैष्णवी चाश्विनी गार्गी तत्र माध्याह्निकापरा ॥ मार्कण्डेया च कथिता योगराजेन धीमता॥९॥ संहिता ऋषिभिः प्रोक्ता मन्त्रैर्नानाविधैर्विभो ! ॥१०॥ अग्निवेशश्च भेडश्च जातूकर्ण्यः पराशरः ॥ हारीतः क्षारपाणिश्च षडेते ऋषयस्तु ते ॥ ११ ॥ यथा सिंहो मृगेन्द्राणां यथानन्तो भुजङ्गमे ॥ देवानाञ्च यथा शम्भुस्तथात्रेयोऽस्ति वैद्यके ॥ १२ ॥ तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैः सादरार्द्रसुमानसैः ॥ अर्चनीयोऽनुमन्तव्यो दास्यति सुखसम्पदः॥१३॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे परिशिष्टाध्यायः ॥ १ ॥ इति हारीतसंहिता समाप्ता ॥

इस प्रकारसे आत्रेयजीनें शरीरकी चिकित्सा विस्तारसे कह दी तब महान् तेजवाला उत्तम हारीत मुनि सुनके ॥ १ ॥ तिस श्रेष्ठ गुरुको प्रमाणकर अंतःकरणमें प्रसन्नहो देवताओंकी नदीके तीरपे जा तहां स्नान ध्यानमें रत होता भया ॥ २॥ महर्षिके वचनोंसे कहाहुआ इस शास्त्रको जो सुनता है वह सब पापोंसे छुटके सुखको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ पहले यह शास्त्र ब्रह्माजीनें कहा है पीछे अत्रिमुनिनें फिर धन्वंतरिनें कहा है और अश्विनीकुमारोंनें कहा है ॥ ४ ॥ ऐसे वेदमें युक्तहुआ यह शास्त्र चला आता है निंदित करनेंके योग्य नहीं है और अनेक शास्त्रोंको जाननेवाले अन्य बहुतसे ऋषियोंनें अनेकप्रकारसे कहा है ॥ ५ ॥

और इन आगे कहेहुए ऋषियोंका मत है इसवास्ते सबको माननेंलायक है चरक, सुश्रुत, वाग्भट इत्यादिक ॥ ६ ॥ मुख्य ऋषियोंसे यह संहिता युग२में कहीं हुई है ॥ ७ ॥ अत्रिमुनि सतयुगमें वैद्य होते भये द्वापरमें सुश्रुत होते भये और कलियुगमें वाग्भटनामवाला महान् वैद्य दीखता है ॥ ८ ॥ और वैष्णवी, आश्विनी, गार्गी, माध्यान्हिका, मार्कंडेया, ये संहिता योगराजनें कही है॥९॥ और आयुर्वेद संहिता ऋषियोंनें अनेक प्रकारके मंत्र और औषधासे युक्त कर दी है ॥ १० ॥ और अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण्य, पराशर, हारीत, क्षारपाणि, ये छह ऋषि कहे है ॥ ११ ॥ और जैसे मृगोंमें सिंह है और सर्पोंमें शेषनाग है देवताओंमें शिवजी है तैसेंही वैद्योंमें आत्रेयमुनि उत्तम है ॥ १२ ॥ इसवास्ते यतनसे उत्तम वैद्योंनें आदरसे सुंदर मनसे अत्रिमुनि पूजन करनेंको योग्य है और माननेंको योग्य है सुख संपत्ति इन्होंको देवेगा ॥ १३ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायपुत्रवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहितायां परिशिष्टाध्यायः ॥ १ ॥

॥ इति हारीतसंहिता संपूर्णा ॥

वैद्यकग्रंथाः ।

१ हारीत संहिता भाषाटीकासहित ...	३—०	०—८
२ अष्टांगहृदय (वाग्भट) भाषाटीका अत्युत्तम वैद्यकग्रंथ सम्पूर्ण छपके तैयारहै	१०-०	१—०
३ बृहन्निघंटुरत्नाकर प्रथमभाग ...	३—०	०—६
४ बृहन्निघंटुरत्नार द्वितीयभाग ...	३—०	०—६
५ बृहन्निघंटुरत्नाकर तृतीयभाग ...	३—८	०—८
६ बृहन्निघंटुरत्नाकर चतुर्थभाग ...	२—८	०—५
७ रसराजसुंदर भाषाटीकासह मथुराका छापा पथ्यापथ्यभाषाटीका ...	०—१२	०—१॥
८ शार्ङ्गधर निदानसह भाषाटीका पं०दत्तराम चौबे मथुरानिवासीका बनाया	३—०	०—६
९ अमृतसार कोशसहित हिंदी भाषामें नवीन छपके तैयार है ...	२—४	०—८
१० चिकित्साखण्ड भाषाटीका प्रथमभाग ...	४—०	०—१०
११ चिकित्साक्रमकल्पवल्ली संस्कृत काशिनाथकृत ...	२—८	०—८
१२ माधवनिदान उत्तम भाषाटीका ...	२—८	०—८
१३ वैद्यरहस्यभाषाटीकासह ...	२—८	०—५
१४ चर्य्याचंद्रोदयभाषाटीका (व्यंजनबनानेका ग्रंथ) ...	२—०	०—४
१५ योगतंगिणी बहुतही उत्तम ...	२—०	०—४
१६ वीरसिंहावलोकन ज्योतिषशास्त्रादिकर्मविपाक चिकित्सा नवीन टाईपमें अति उत्तम ...	१—१२	०—४
१७ योगचिंतामणि भाषाटीका ...	१—४	०—४
१८ लोलिंबराज वैद्यजीवन संस्कृतटीका और भाषाटीका ...	१—०	०—४
१९ नाडीदर्पण नाडी देखनेमें अत्यंत उत्कृष्ट ...	०—६	०—१
२० अनुपानदर्पण भाषाटीका सहित ...	०—१०	०—१
२१ बालबोधपाकावली ...	०—२	०—॥
२२ कुटमुद्गराख्यसटीक ...	०—३	०—॥
२३ कालज्ञान भाषाटीका ...	०—२॥	०—॥
२४ ज्ञानभैषज्यमंजरीभाषाटीकासह ...	०—३	०—॥
२५ रसमंजरी टिप्पणीसह ...	०—८	०—१
२६ चिकित्साधातुसार भाषा ...	०—६	०—१
२७ वैद्यक देवप्रकाश लघु ...	०—२	०—॥
२८ रसराज महोदधि भाषा वैद्यक यूनानी हिकमत और यूनानीदवा और फकीरोंकी जडी बूटी और सन्तोंकी पुस्तककी संग्रह है ...	०—१२	०—२

ज्योतिषग्रंथाः ॥

२९ बृहज्जातकभाषाटीका अत्युत्तम	१—८	०—४
३० वर्षदीपकपत्रीमार्ग वर्षजन्मपत्र बनानेका	०—४	०—१
३१ मुहूर्तचिंतामणि प्रमिताक्षरा रफ् रु. १ ग्लेज्	१—८	०—३
३२ मुहूर्त्तचिंतामणि पीयूषधारा टीका	३—०	०—७
३३ ताजिकनीलकंठीसटीकतंत्रत्रयात्मक	१—४	०—२
३४ ज्योतिषसार भाषाटीकासहित	१—०	०—२
३५ मुहूर्त्तचिंतामणिभाषाटीका	१—०	०—३
३६ बालबोधज्योतिष	०—२	०—॥
३७ चमत्कारचिंतामणि भाषाटीका	०—३	०—॥
३८ जातकालंकारभाषाटीका	०—६	०—॥
३९ जातकालंकारसटीक	०—६	०—१
४० जातकाभरण	०—१२	०—२
४१ लघुपाराशरीसटीक	०—३	०—॥
४२ मुहूर्तमार्तंड	०—१२	०—२
४३ शीघ्रबोधभाषाटीका	०—६	०—१
४४ षट्पंचाशिकासटीक	०—३	०—॥
४५ षट्पंचाशिका भाषाटीका	०—४	०—१
४६ भुवनदीपक सटीक	०—४	०—॥
४७ जैमिनिसूत्रसटीक चार अध्यायका	०—७	०—१
४८ रमलनवरत्न	०—८	०—१
४९ सर्वार्थचिंतामणि	०—१२	०—२
५० लघुजातकसटीक	०—६	०—१
५१ सामुद्रिकभाषाटीका	०—४	०—॥
५२ यवनजातक	०—२	०—॥
५३ पंचांगतिथिपत्र संवत् १९५० का	०—१॥	०—॥
५४ अर्घप्रकाश ज्योतिषभाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेकाविचार है	०—४	०—॥

और भी अनेक पुस्तकें हमारे यहां विक्रयार्थ तैयारहैं. आध आनेका टिकट आनेंसें बडा सूचीपत्र भेज दिया जायगा.